संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका

—डा॰ बाबूराम सक्सेना

प्रकाशक
रामनारायण लाल
बेनी माधव
इलाहाबाद

SRI AUROBINDO LIBRARY
PONDICHERRY, INDIA

sa 1475 Samskrita Vyakarana Pravesika

BaSa Baburam Saraswati

19

Fumigated — SEP 1985

But thought nor word can seize eternal truth

6626

संस्कृत व्याकरण-प्रवेशिका

लेखक

बाबूराम सक्सेना एम० ए०, डी० लिट्०,

SRI AUROBINDO LIBRARY PONDICHERRY (India)

प्रकाशक

रामनारायणलाल

इलाहाबाद

Sri Aurobindo International Centre of Education School Library No. सं.आ.2८. Pondicherry

SRI AUROBINDO INTERNATIONAL CENTRE OF EDUCATION

पुस्तक प्राप्ति-स्थान :—

रामनारायणलाल बेनीमाधव

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

इलाहाबाद—२

दशम संस्करण] १९७० [मूल्य रु० ५·८४ पैसे

प्रकाशक
रामनारायणलाल बेनीमाधव
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
इलाहाबाद

Sai 70-192

मुद्रक
विजय कुमार अग्रवाल
नव साहित्य प्रेस
इलाहाबाद

यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम् ।
स्वजनः श्वजनो मा भूत्सकलः शकलः सकृच्छकृत् ।।

भूमिका

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण बारह-तेरह वर्ष पूर्व निकला था। उस समय हिन्दी के माध्यम से संस्कृत की पढ़ाई कहीं-कहीं ही होती थी। अँग्रेजी का बोलबाला था। तब भी हिन्दी-भाषी क्षेत्र में सभी विश्वविद्यालयों और बोर्ड ने इसे स्वीकृत किया और विद्वत्समाज ने इसका समुचित ही नहीं, आशातीत आदर किया। हिन्दी में संस्कृत-व्याकरण की सर्वांगपूर्ण पुस्तक इसके पूर्व नहीं थी।

संस्कृत-व्याकरण के विषय में कोई बात मौलिक कहना असंभव है, किन्तु विषय के प्रतिपादन में कुछ नवीनता हो सकती है। प्रस्तुत ग्रन्थ में हिन्दी भाषा के प्रयोगों से संस्कृत के व्याकरण की तुलना करके विषय को समझाने का प्रयत्न किया गया है। पाणिनि की परिभाषाओं को तथा प्रत्ययों के नामों को उसी रूप में रक्खा है, जिससे विद्यार्थी को आगे चलकर कठिनाई और भ्रम न हो। पाणिनि की पद्धति को समझाने का यथेष्ट प्रयत्न भी किया गया है। पाद-टिप्पणियों में सूत्र उद्धृत कर दिये गये हैं। उदाहरणों का बाहुल्य विषय को स्पष्ट करने के लिए रक्खा गया है। परिशेषों में आवश्यक जानकारी की चीजें हैं। इस प्रकार पुस्तक को यथा-साध्य उपयोगी बनाने का उद्योग किया गया है।

हिन्दी के माध्यम से अब ऊँची से ऊँची शिक्षा दी जायगी। इस दृष्टि से वर्तमान संस्करण में यथेष्ट परिवर्धन कर दिया गया है। आशा है कि बी० ए० तक के विद्यार्थियों के लिए यह उपयोगी सिद्ध होगा। परिवर्धन के कार्य में श्री विद्यानिवास मिश्र ने प्रारम्भिक थोड़े से अंश में और शेष समस्त अंश में डा० आद्याप्रसाद मिश्र ने पर्याप्त मदद दी है। प्रथम संस्करण में मेरे पुराने शिष्य पं० रामकृष्ण शुक्ल ने सहायता दी थी। प्रस्तुत संस्करण के प्रूफ आदि देखने का सारा भार उन्हीं के ऊपर था। जिस लगन और परिश्रम से शुक्ल जी ने अपना काम निभाया है, उसे देखकर प्रसन्नता होती है। मैं इन तीनों शिष्यों का आभार मानता हूँ।

पुस्तक का प्रथम संस्करण पूज्य पाद गुरुवर्य डा० गंगानाथ झा महोदय को समर्पित था। अब वे इस भौतिक संसार में नहीं हैं। लेखक पर उनकी विशेष कृपा रहती थी। विश्वास है कि संस्कृत के पठन-पाठन में उत्तरोत्तर वृद्धि देखकर उनकी आत्मा प्रसन्न होती होगी और पुस्तक का वर्तमान संस्करण उन्हें सन्तोष देगा।

यह पुस्तक कई वर्षों से अप्राप्य थी। अध्यापकों और विद्यार्थियों की माँग पर माँग आती थी। पर मैं प्रेस और कागज की भौतिक कठिनाइयों का सामना करने में असमर्थ रहा। यही क्या कम सन्तोष की बात है कि पुस्तक अब भी प्रकाश में आ रही है?

संस्कृत विभाग
इलाहाबाद युनिवर्सिटी,
रामनवमी, २००८ वि०

बाबूराम सक्सेना

दशम संस्करण

'संस्कृत-व्याकरण-प्रवेशिका' का प्रस्तुत संस्करण संशोधित रूप में पाठकों के सामने जा रहा है। यह संस्करण भी लोकप्रिय और उपादेय सिद्ध होगा।

प्रयाग
२०२६ वि०

बाबूराम सक्सेना

विषय-सूची

प्राक्कथन

विषय	सेक्शन		पृष्ठ
व्याकरण शास्त्र	१	...	२५
पाणिनि	२	...	२६
अष्टाध्यायी	३	...	२६
प्रत्याहार	४	...	२७
अनुबन्ध	५	...	२८
गणपाठ	६	...	२८
संज्ञाएँ और परिभाषाए	७	...	२८
वृद्धि	७ (१)	...	२९
गुण	७ (२)	...	२९
सम्प्रसारण	७ (३)	...	२९
टि	७ (४)	...	२९
उपधा	७ (५)	...	२९
प्रातिपदिक	७ (६)	...	२९
पद	७ (७)	...	२९
सर्वनामस्थान	७ (८)	...	३०
अङ्ग	७ (९)	...	३०
भ	७ (१०)	...	३०
घु	७ (११)	...	३०
घ	७ (१२)	...	३०
विभाषा	७ (१३)	...	३०
निष्ठा	७ (१४)	...	३०
संयोग	७ (१५)	...	३०

विषय	सेक्शन		पृष्ठ
संहितां	७ (१६)	...	३०
प्रगृह्य	७ (१७)	...	३०
सार्वधातुक प्रत्यय	७ (१८)	...	३१
आर्धधातुक प्रत्यय	७ (१९)	...	३१
सत्	७ (२०)	...	३१
अनुनासिक	७ (२१)	...	३१
सवर्ण	७ (२२)	...	३१
अनुवृत्ति	८	...	३१
पाणिनीय संस्कृत की जीवितरूपता	९	...	३२
कात्यायन	१०	...	३२
पतञ्जलि	११	...	३३
जयादित्य और वामन	१२	...	३३
जिनेन्द्रबुद्धि	१२	...	३३
हरदत्त	१२	...	३३
भर्तृहरि	१२	...	३४
कैयट	१२	...	३४
विमल सरस्वती	१२	...	३४
रामचन्द्र	१२	...	३४
भट्टोजि दीक्षित	१२	...	३४
कोण्डभट्ट	१२	...	३५
पंडितराज जगन्नाथ	१२	...	३५
नागेश भट्ट	१३	...	३५
चन्द्रगोमी	१४	...	३५
शर्व वर्मा	१४	...	३५
जैनेन्द्र व्याकरण	१४	...	३५
शाकटायन शब्दानुशासन	१४	...	३५
हेमचन्द्र का शब्दानुशासन	१४	...	३५
सारस्वत व्याकरण	१४	...	३५

Sai 70-192

विषय	सेक्शन		पृष्ठ
बोपदेव का मुग्धबोध व्याकरण	१४	...	३५
जौमर व्याकरण	१४	...	३५
सौपद्म व्याकरण	१४	...	३५
रामाश्रम की सारस्वत-चन्द्रिका	१४		३६
पाणिनि व्याकरण के अध्ययन की			३६
विधि	१५	...	३६

वर्ण-विचार — प्रथम सोपान

'संस्कृत' शब्द का अर्थ	१	...	३७
संस्कृत-वर्णमाला	२	...	३८
स्वर के तीन प्रकार	२ (क)	...	४०
व्यञ्जनों के भेद	२ (ख)	...	४०
उच्चारण-विधि	३	...	४१
वर्णों के उच्चारण-स्थान	३ (क)	...	४१

सन्धि-विचार — द्वितीय सोपान

सन्धि-लक्षण	४	...	४४
सन्धि-जनित परिवर्तन	५	...	४५

स्वर सन्धि

दीर्घ सन्धि	६	...	४६
गुण सन्धि	७	...	४७
वृद्धि सन्धि	८	...	४८
पररूप सन्धि	८	...	४९
यण् सन्धि	९	...	४९
एचोऽयवायावः	१०	...	५०
पूर्वरूप सन्धि	११	...	५१
प्रगृह्य नियम	१२	...	५१
प्लुत सन्धि	१२	...	५१

विषय	सेक्शन		पृष्ठ
हल् सन्धि			
श्तोः श्चुना श्चुः	१३ (क)	...	५२
ष्टुना ष्टुः	१३ (ख)	...	५३
न पदान्ताट्टोरनाम्	१३ (ग)	...	५३
तोः षि	१३ (घ)	...	५३
झलां जश् झशि	१४	...	५३
झलां जशोऽन्ते	१४ (क)	...	५४
यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा	१५	...	५४
तोर्लि	१६	...	५४
उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य	१६ (क)	...	५५
झयो होऽन्यतरस्याम्	१७	...	५५
खरि च	१८	...	५५
शश्छोऽटि	१९	...	५५
अनुस्वार-विधान	२०	...	५६
अनुस्वार के भिन्न-भिन्न स्थानीय	२२	...	५६
णत्व-विधान	२३	...	५७
षत्व-विधान	२४	...	५७
"सम्" की सन्धि	२५	...	५८
"छ" सन्धि (छे च, दीर्घात्)	२६	...	५९
विसर्ग सन्धि			
पदान्त स् का विसर्ग हो जाना	२७	...	५९
विसर्ग का स् हो जाना	२८	...	६०
विसर्ग का जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय होना	२८ (क)	...	६०
विसर्ग का विकल्प से स् होना	२८ (ख)	...	६०
विसर्ग का विसर्ग ही बना रहना	२८ (ग)	...	६०
नमस्पुरसोर्गत्योः	२९	...	६१

विषय	सेक्शन		पृष्ठ
तिरसोऽन्यतरस्याम्	३०	...	६१
द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे	३१	...	६१
विसर्ग का उ हो जाना	३२	...	६२
भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि	३२ (क)	...	६२
रोऽसुपि	३२ (ख)	...	६३
विसर्ग का र् हो जाना	३३	...	६३
ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽण:	३३ (क)	...	६३
"स:" तथा "एष:" के विसर्ग का लोप	३४	...	६४
संज्ञा-विचार	तृतीय सोपान		
परिवर्तनशील तथा अपरिवर्तनशील शब्द	३५	...	६५
पुरुष तथा वचन	३५ (क)	...	६५
संज्ञाओं के तीन लिङ्ग	३५ (ख)	...	६५
विभक्ति-विचार	३६	...	६६
स्वरान्त तथा व्यञ्जनान्तप्रातिपदिक	३७	...	६९
अकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द	३८	...	७०
आकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द	३९	...	७२
इकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द	४०	...	७३
ईकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द	४१	...	७५
उकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द	४२	...	७६
ऊकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द	४३	...	७७
ऋकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द	४४	...	७७
ऐकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द	४५	...	७९
ओकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द	४६	...	७९
औकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द	४७	...	८०
अकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द	४८	...	८०
इकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द	४९	...	८१

विषय	सेक्शन		पृष्ठ
उकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द	५०	...	८३
ऋकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द	५१	...	८४
आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द	५२	...	८४
इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द	५३	...	८५
ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द	५४	...	८५
उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द	५५	...	८७
ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द	५६	...	८८
ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द	५७	...	८९
औकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द	५८	...	९०
व्यञ्जनान्त संज्ञाएँ			
चकारान्त शब्द	५९	...	९१
जकारान्त शब्द	६०	...	९३
तकारान्त शब्द	६१	...	९६
दकारान्त शब्द	६२	...	१००
धकारान्त शब्द	६३	...	१०१
नकारान्त शब्द	६४	...	१०२
पकारान्त शब्द (अप् शब्द)	६५	...	१०८
भकारान्त शब्द	६६	...	१०९
रकारान्त शब्द	६७	...	१०९
वकारान्त शब्द	६८	...	११०
शकारान्त शब्द	६९	...	११०
षकारान्त शब्द	७०	...	११३
सकारान्त शब्द	७१	...	११३
हकारान्त शब्द	७२	...	११९
सर्वनाम-विचार	चतुर्थ सोपान		
सर्वनाम का लक्षण	७३	...	१२१
उत्तम पुरुष (अस्मद् शब्द)	७४	...	१२२

विषय	सेक्शन		पृष्ठ
मध्यम पुरुष (युष्मद् शब्द)	७५	...	१२३
भवत् शब्द	७६	...	१२५
इदम्	७७ (क)	...	१२७
एतद्	७७ (ख)	...	१२८
तद् शब्द	७७ (ग)	...	१२९
अदस् शब्द	७७ (घ)	...	१३१
यद् शब्द	७८	...	१३२
किम् शब्द	७९	...	१३३
निजवाचक सर्वनाम	८०	...	१३४
निश्चयवाचक सर्वनाम	८१	...	१३५
अनिश्चयवाचक सर्वनाम	८१ (क)	...	१३६
विशेषण-विचार	पंचम सोपान		
विशेषण की विभक्ति	८२	...	१३७
सार्वनामिक विशेषण	८३	...	१३८
सम्बन्ध-सूचक सार्वनामिक विशेषण	८४	...	१३८
प्रकार-वाचक विशेषण (मादृश्), मादृश, त्वादृश्, त्वादृश इत्यादि	८५	...	१४०
परिमाण-सूचक विशेषण	८६	...	१४२
संख्या-सूचक	८७	...	१४३
सर्व शब्द के रूप	८८	...	१४४
अल्प, अर्ध, नेम, सम आदि शब्द	८९	...	१४५
पूरक-संख्यावाचक विशेषण (प्रथम, चरम इत्यादि)	८९ (क)	...	१४५
कतिपय शब्द	८९ (ख)	...	१४६
तीय प्रत्ययान्त शब्दों के रूप	८९ (ग)	...	१४६
उभ शब्द	९०	...	१४७
उभय शब्द	९० (क)	...	१४७
संस्कृत की गिनती	९१	...	१४९

विषय	सेक्शन		पृष्ठ
संख्यावाचक शब्दों के रूप	९२	...	१६१
एक के रूप	९२ (क)	...	१६१
द्वि के रूप	९२ (ख)	...	१६२
त्रि के रूप	९२ (ग)	...	१६२
चतुर् के रूप	९२ (घ)	...	१६३
पञ्चन् के रूप	९२ (च)	...	१६३
षष् के रूप	९२ (छ)	...	१६४
सप्तन् के रूप	९२ (ज)	...	१६४
अष्टन् के रूप	९२ (झ)	...	१६४
नवन्, दशन् आदि शब्द	९२ (ट)	...	१६५
ऊनविंशति आदि शब्द	९२ (ठ)	...	१६५
विंशति के रूप	९२ (ड)	...	१६५
त्रिंशत्, चत्वारिंशत् के रूप	९२ (ढ)	...	१६६
षष्टि तथा सप्तति के रूप	९२ (त)	...	१६६
पूरक संख्यावाची शब्दों के रूप	९३	...	१६७
संख्याओं के बनाने के नियम	९४	...	१६७
क्रमवाची विशेषण	९५	...	१६८
'अन्यत्' के रूप	९५ (क)	...	१६८
'पूर्व' के रूप	९५ (ख)	...	१७०
तुलनावाचक विशेषण बनाने के नियम (तरप्, तमप्, ईयसुन्, इष्ठन्)	९६	...	१७१

कारक-विचार षष्ठ सोपान

कारक की परिभाषा	९७	...	१७५
प्रथमा विभक्ति का प्रयोग	९८	...	१७६
द्वितीया विभक्ति का प्रयोग	९९	...	१७९
तृतीया विभक्ति का प्रयोग	१००	...	१९४
चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग	१०१	...	२००

विषय	सेक्शन		पृष्ठ
पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग	१०२	...	२०७
सप्तमी विभक्ति का प्रयोग	१०३	...	२१५
प्रत्येक विभक्ति का भिन्न-भिन्न कारक में उपयोग	१०४	...	२२०
षष्ठी	१०५	...	२२१
समास-विचार	**सप्तम सोपान**		
समास-लक्षण	१०६ (क)	...	२३४
विग्रह-लक्षण	१०६ (ख)	...	२३४
समास के चार भेद	१०७ (क)	...	२३५
अव्ययीभाव समास	१०८	...	२३६
तत्पुरुष समास	१०९	...	२४१
व्यधिकरण तत्पुरुष समास	११०	...	२४१
समानाधिकरण तत्पुरुष समास	१११ (क)	...	२४७
समानाधिकरण अथवा कर्मधारय तत्पुरुष	१११ (ख)	...	२४८
व्यधिकरण तत्पुरुष	१११ (ग)	...	२४८
कर्मधारय के लक्षण	१११ (घ)	....	२४८
विशेषणपूर्वपदकर्मधारय	११२ (क)	...	२४८
उपमानपूर्व-पदकर्मधारय	११२ (ख)	...	२४९
उपमानोत्तरपदकर्मधारय	११२ (ग)	...	२४९
विशेषणोभयपदकर्मधारय	११२ (घ)	...	२५०
द्विगुसमास	११३	...	२५०
अन्य तत्पुरुष समास	११४	...	२५२
नञ् तत्पुरुष समास	११४ (क)	...	२५२
प्रादि तत्पुरुष समास	११४ (ख)	...	२५२
गति तत्पुरुष समास	११४ (ग)	...	२५३
उपपद तत्पुरुष समास	११४ (घ)	...	२५४

विषय	सेक्शन		पृष्ठ
अलुक् तत्पुरुष समास	११४ (च)	...	२५५
मध्यमपदलोपी तत्पुरुष समास	११४ (छ)	...	२५६
मयूरव्यंसकादि तत्पुरुष समास	११४ (ज)	...	२५६
द्वन्द्व समास	११५	...	२५७
इतरेतर द्वन्द्व	११५ (क)	...	२५७
समाहार द्वन्द्व	११५ (ख)	...	२५८
एकशेष द्वन्द्व	११५ (ग)	...	२६०
द्वन्द्व समास के नियम	११६	...	२६०
बहुव्रीहि समास	११७ (क)	...	२६१
बहुव्रीहि तथा तत्पुरुष के भेद	११७ (ख)	...	२६२
बहुव्रीहि के दो भेद	११७ (ग)	...	२६३
समानाधिकरण बहुव्रीहि	११८ (क)	...	२६३
व्यधिकरण बहुव्रीहि	११८ (ख)	...	२६४
अन्य बहुव्रीहि	११८ (ग)	...	२६४
बहुव्रीहि के नियम	११९	...	२६४
समासान्त प्रकरण	१२०	...	२६७
तद्धित-विचार	अष्टम सोपान		
तद्धित-लक्षण	१२१	...	२७१
तद्धित प्रत्ययों के जोड़ने के नियम	१२२	...	२७१
अपत्यार्थ	१२३	...	२७३
मत्वर्थीय	१२४	...	२७५
भावार्थ तथा कर्मार्थ	१२५	...	२७६
समूहार्थ	१२६	...	२७९
सम्बन्धार्थ एवं विकारार्थ	१२७	...	२७९
परिमाणार्थ तथा संख्यार्थ	१२८	...	२८०
हितार्थ	१२९	...	२८१
क्रियाविशेषणार्थ	१३०	...	२८२

विषय	सेक्शन		पृष्ठ
शैषिक	१३१	...	२८४
प्रकीर्णक	१३२	...	२८८
क्रिया-विचार	**नवम सोपान**		
लकारों के विषय में नियम	१३३	...	२९४
लट् लकार		...	२९४
लिट् लकार (परोक्षभूत)		...	२९५
लुट् लकार		...	२९६
लृट् लकार		...	२९६
लङ लकार		...	२९६
लिङ लकार	१३३	...	२९७
आशीर्लिङ	१३३	...	२९८
लुङ लकार	१३३	...	२९८
लृङ लकार	१३३	...	२९९
'धातु' शब्द का अर्थ	१३४	...	३००
धातुओं के दश गण	१३४ (क)	...	३००
धातुओं के तीन विभाग (सेट्, वेट्, अनिट्)	१३४ (ख)	...	३००
सकर्मक तथा अकर्मक धातुएँ	१३४ (ग)	...	३०१
धातुओं के दो पद	१३४ (घ)	...	३०१
धातुओं के तीन वाच्य	१३५	...	३०१
वर्तमान काल का प्रयोग	१३५ (१)	...	३०२
आज्ञा का प्रयोग	१३५ (२)	...	३०२
विधिलिङ का प्रयोग	१३५ (३)	...	३०२
तीन भूत काल (१) अनद्यतन भूत (२) परोक्षभूत (३) सामान्यभूत का प्रयोग	१३५ (४,५,६)	...	३०२

विषय	सेक्शन		पृष्ठ
दोनों भविष्य काल		...	३०३
(१) अनद्यतन भविष्य का प्रयोग	१३५ (७,८)	...	३०३
(२) सामान्य भविष्य	१३५ (७,८)	...	३०३
आशीर्लिङ का प्रयोग	१३५ (९)	...	३०३
क्रियातिपत्ति का प्रयोग	१३५ (१०)	...	३०४
लकारों के प्रत्यय	१३६	...	३०४
वर्तमान काल (लट्) के प्रत्यय	१३६ (क)	...	३०४
आज्ञा (लोट्) के प्रत्यय	१३६ (ख)	...	३०५
विधिलिङ के प्रत्यय	१३६ (ग)	...	३०५
अनद्यतन भूत (लङ) के प्रत्यय	१३६ (घ)	...	३०६
परोक्ष भूत (लिट्) के प्रत्यय	१३६ (च)	...	३०७
सामान्य भूत (लुङ) के प्रत्यय	१३६ (छ)	...	३०७
अनद्यतन भविष्य (लुट्) के प्रत्यय	१३६ (ज)	...	३०९
सामान्य भविष्य (लृट्) के प्रत्यय	१३६ (झ)	...	३०९
आशीर्लिङ के प्रत्यय	१३६ (ट)	...	३०९
क्रियातिपत्ति (लृङ) के प्रत्यय	१३६ (ठ)	...	३१०
भ्वादि गण	१३७-१४०	...	३११-३४८
अदादि गण	१४१-१४२	...	३४९-३७२
जुहोत्यादि गण	१४३	...	३७३-३८३
दिवादि गण	१४४-१४५	...	३८३-३९३
स्वादि गण	१४६	...	३९३
तुदादि गण	१४७-१४८	...	४०१
रुधादि गण	१४९	...	४०९
तनादि गण	१५०	...	४१८
क्र्यादि गण	१५१	...	४२३
चुरादि गण	१५२-१५३	...	४३२

विषय	सेक्शन		पृष्ठ
क्रिया-विचार (उत्तरार्ध) दसम सोपान			
कर्मवाच्य तथा भाववाच्य	१५४-१५५	...	४४१
प्रत्ययान्त धातुएँ	१५६	...	४५६
णिजन्त धातुएँ	१५७	...	४५७
सन्नन्त	१५८	...	४५९
यङन्त	१५९	...	४६२
नामधातु	१६०-१६२	...	४६४
आत्मनेपद तथा परस्मैपद की व्यवस्था	१६३	...	४६७
कृदन्त-विचार एकादश सोपान			
कृत् लक्षण	१६४	...	४७३
कृत्य प्रत्यय	१६५	...	४७४
तव्यत्, तव्य, अनीयर्	१६६	...	४७५
यत् प्रत्यय	१६७	...	४७६
क्यप् प्रत्यय	१६८	...	४७७
ण्यत् प्रत्यय	१६९, १७०	...	४७८
कृत् प्रत्यय			
कृत् प्रत्यय	१७१	...	४८०
भूतकाल के कृत् प्रत्यय	१७२-१७३	...	४८१
वर्तमान काल के कृत् प्रत्यय	१७४-१७५	...	४८४
(सत् प्रत्यय—शतृ, शानच्)	१७५	...	४८५
शानच् प्रत्यय	१७५ (क)	...	४८६
चानश् प्रत्यय	१७५ (ख)	...	४८६
भविष्यकाल के कृत् प्रत्यय	१७६	...	४८६
तुमुन् प्रत्यय	१७७	...	४८७
पूर्वकालिक क्रिया (क्त्वा, ल्यप्)	१७८	...	४८८
पूर्वकालिक क्रिया (णमुल् प्रत्यय)	१७९	...	४९१

विषय	सेक्शन		पृष्ठ
कर्तृवाचक कृत् प्रत्यय	१८०	...	४९३
कर्तृवाचक ण्वुल् तथा तृच् प्रत्यय	१८० (क)	...	४९३
कर्तृवाचक ल्यु, णिनि तथा अच् प्रत्यय	१८० (ख)	...	४९४
कर्तृवाचक क प्रत्यय	१८० (ग)	...	४९४
कर्तृवाचक अण् प्रत्यय	१८० (घ)	...	४९४
आतोनुपसर्गे कः (कर्तृवाचक)		...	४९५
कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम् (कर्तृवाचक)		...	४९५
अच् प्रत्यय अर्हः (कर्तृवाचक)		...	४९५
ट प्रत्यय (चरेष्टः, कर्तृवाचक)	१८० (ङ)	...	४९५
भिक्षासेनादायेषु च (कर्तृवाचक)	१८० (ङ)	...	४९५
हेतुताच्छील्य आदि में कृ से ट प्रत्यय		...	४९५
खश् प्रत्यय (कर्तृवाचक)	१८० (च)	...	४९६
खच् प्रत्यय	१८० (छ)	...	४९७
क प्रत्यय (कर्तृवाचक)	१८० (झ)	...	४९८
क्विप् प्रत्यय (कर्तृवाचक)	१८० (ञ)	...	४९९
णिनि प्रत्यय (कर्तृवाचक)	१८० (ट)	...	४९९
ड प्रत्यय	१८० (ठ)	...	५००
शील-धर्म-साधुकारिता-वाचक			
कृत् प्रत्यय साधुकारिता-वाचक			
तृन् प्रत्यय साधुकारिता-वाचक	१८१ (क)	...	५०१
इष्णुच् साधुकारिता-वाचक	१८१ (ख)	...	५०१
वुञ् साधुकारिता-वाचक	१८१ (ग)	...	५०१
युच् साधुकारिता-वाचक	१८१ (घ)	...	५०२
षाकन् साधुकारिता-वाचक	१८१ (ङ)	...	५०२
आलुच् प्रत्यय साधुकारिता-वाचक	१८१ (च)	...	५०२
उ प्रत्यय साधुकारिता-वाचक	१८१ (छ)	...	५०२

विषय	सेक्शन		पृष्ठ
क्विप् प्रत्यय साधुकारिता-वाचक	१८१ (ज)	...	५०२
भावार्थ कृत् प्रत्यय			
घञ् (भाववाचक)	१८२ (क)	...	५०२
अच् (भाववाचक)	१८२ (ख)	...	५०३
अप् प्रत्यय (भाववाचक)	१८२ (ग)	...	५०३
नङ् प्रत्यय (भाववाचक)	१८२ (घ)	...	५०३
कि प्रत्यय (भाववाचक)	१८२ (ङ)	...	५०३
क्तिन् प्रत्यय (भाववाचक)	१८२ (च)	...	५०४
क्विप् प्रत्यय (भाववाचक)	१८२ (छ)	...	५०४
अ प्रत्यय (भाववाचक) तदनन्तर टाप्	१८२ (ज)	...	५०४
अङ् प्रत्यय (भाववाचक)तदनन्तर टाप् (चिन्ता, पूजा, कथा, कुम्वा)	१८२ (झ)	...	५०५
युच् प्रत्यय (भाववाचक) तदनन्तर टाप् (कारणा, हारणा, दारणा)	१८२ (ञ)	...	५०५
क्त तथा ल्युट् प्रत्यय (भाववाचक)	१८२ (ट)	...	५०५
घ प्रत्यय (नामवाचक)	१८२ (ठ)	...	५०५
खलर्थ कृत् प्रत्यय			
खल् प्रत्यय	१८३ (क)	...	५०५
खलर्थ युच् प्रत्यय	१८३ (ख)	...	५०६
उणादि प्रत्यय	१८४	...	५०६

लिङ्ग-विचार द्वादश सोपान

संस्कृत में तीन लिङ्ग (पुंल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग)	१८५	...	५०८
पुंलिङ्ग शब्द	१८६	...	५०८
स्त्रीलिङ्ग शब्द	१८७	...	५१०

विषय	सेक्शन		पृष्ठ
स्त्री प्रत्यय	१८८	...	५११
टाप् प्रत्यय	१८९	...	५१२
ङीप् प्रत्यय	१९०	...	५१२
ङीष् प्रत्यय	१९२	...	५१४
ङीन्	१९२	...	५१५
नपुंसकलिङ्ग शब्द	१९३	...	५१६
अव्यय-विचार	**त्रयोदश सोपान**		
अव्यय-लक्षण	१९४	...	५१८
उपसर्ग	१९५	...	५१८
क्रियाविशेषण	१९६	...	५२१
समुच्चयबोधक शब्द	१९७	...	५२४
मनोविकारसूचक अव्यय	१९८	...	५२५
प्रकीर्णक अव्यय	१९९	...	५२६
	१—परिशेष		
छन्द		...	५२७
वृत्त तथा जाति		...	५२८
वृत्त		...	५२८
आठ गण		...	५२८
जाति		...	५२९
मात्रा-गण		...	५३०
तीन प्रकार के वृत्त—सम, अर्धसम तथा विषम		...	५३०
समवृत्त		...	५३०
आठ अक्षर वाले समवृत्त		...	५३०
ग्यारह अक्षर वाले समवृत्त		...	५३१
(१) इन्द्रवज्रा		...	५३१
(२) उपेन्द्रवज्रा		...	५३१
(३) उपजाति		...	५३१

विषय		पृष्ठ
वारह अक्षर वाले समवृत्त	...	५३२
(१) द्रुतविलम्बित	...	५३२
(२) भुजङ्गप्रयात	...	५३२
चौदह अक्षर वाले समवृत्त	...	५३२
वसन्ततिलका	...	५३२
पन्द्रह अक्षर वाले समवृत्त	...	५३३
मालिनी	...	५३३
सत्रह अक्षर वाले समवृत्त	...	५३३
(१) मन्दाक्रान्ता	...	५३३
(२) शिखरिणी	...	५३४
उन्नीस अक्षर वाले समवृत्त	...	५३४
शार्दूलविक्रीडित	...	५३४
इक्कीस अक्षर वाले समवृत्त	...	५३५
स्रग्धरा	...	५३५
अर्धसमवृत्त	...	५३६
पुष्पिताग्रा	...	५३६
विषमवृत्त	...	५३७
जाति	...	५३७
आर्या	...	५३७
२—परिशेष		
रोमन अक्षरों में संस्कृत लिखने की विधि	...	५३८
३—परिशेष		
धातुओं की अकारादि क्रम से सूची	...	५४०

SRI AUROBINDO
LIBRARY
PONDICHERRY (India)

प्राक्कथन

१—व्याकरण-शास्त्र का जितना विस्तृत और सूक्ष्म अध्ययन संस्कृत भाषा में हुआ है, उतना अन्य किसी भी भाषा में नहीं। व्याकरण को साङ्ग वेद का मुख बताया गया है। वैदिक युग से ही शब्द की मीमांसा की ओर भारतीय मनीषियों की बुद्धि दौड़ती रही है। उच्चारण पर विचार करने वाले वेदाङ्ग 'शिक्षा' के प्रतिपादन के लिए 'प्रातिशाख्यों' की रचना हुई। इसके उपरान्त यास्क मुनि ने शब्दनिरुक्ति-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'निरुक्त' प्रस्तुत किया। यास्क ने ही सर्व-प्रथम शब्दों के चतुर्विध विभाजन (नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात) को स्थापित किया है और यह सिद्ध करने का स्तुत्य प्रयास किया कि सारे शब्दों का आधार धातु-समूह ही है। इन्हीं सिद्धान्तों पर पाणिनि की अष्टाध्यायी एवं आधुनिक निरुक्ति-विज्ञान अधिकतर आश्रित हैं। यास्क का समय अनुमान से ८०० वर्ष ईसा से पूर्व है।

खेद है कि यास्क के परवर्ती और पाणिनि के पूर्ववर्ती आचार्यों का उल्लेख-मात्र मिलता है, उनकी कृतियाँ (पाणिनि की अष्टाध्यायी के कारण) विस्मृति के गर्त्त में विलीन हो चुकी हैं। आपिशलि, काशकृत्स्न, शाकल्य, शाकटायन, इन्द्र प्रभृति विभिन्न वैयाकरणों का उल्लेख पाणिनि की अष्टाध्यायी में तथा बाद की टीकाओं में मिलता है। इनमें ऐन्द्र व्याकरण का एक प्रतिष्ठित सम्प्रदाय बहुत दिनों तक रहा। इसका अनुसरण (चीनी यात्री ह्वेनसांग तथा तिब्बती इतिहासकार तारानाथ के अनुसार) कलापव्याकरण ने किया है। तैत्तिरीय-संहिता के अनुसार ऐन्द्र व्याकरण ही सर्वप्रथम व्याकरण है। डाक्टर बर्नेल ने इस मत की पुष्टि करने के लिए प्राचीनतम तामिल व्याकरण तोल्कापियम् की ऐन्द्र व्याकरण से समानता दिखलायी है और यह मत स्थापित किया है कि ऐन्द्र व्याकरण ही सर्वप्रथम है और इसका अनुकरण करके ही कातन्त्र तथा अन्य व्याकरणों की रचना हुई है। वररुचि और व्याडि इसी व्याकरण के सम्प्रदाय के थे। ऐन्द्र व्याकरण की मुख्य विशेषता यह है कि इसकी परिभाषाएँ पाणिनि,

की परिभाषाओं की तरह जटिल और प्रौढ़ नहीं हैं। सम्भवतः ऐन्द्र के वाद कम से कम दो और सम्प्रदाय पाणिनि के पूर्व प्रवर्तित हुए—ऐसा आधुनिक विचारकों का अनुमान है।

२—पाणिनि अत्यन्त संक्षिप्त रूप में एक विस्तृत भाषा का अति सुसंयत और सुदृढ़ व्याकरण लिखने के लिए संसार में विख्यात हो गये हैं। उनके ग्रंथ में वैज्ञानिक विवेचना की परिपूर्णता तथा शैली की अनुपमता दोनों इस तरह मिली हुई हैं कि संसार की किसी अन्य भाषा में इसके टक्कर की इस विषय पर अन्य कोई भी पुस्तक नहीं है। वहुत वाद-विवाद के उपरान्त डाक्टर वासुदेव-शरण अग्रवाल ने पाणिनि का समय ५०० ई० पू० और ४०० वर्ष ई० पू० के बीच निश्चित किया है। मैक्स मूलर ने इनकी तिथि ३५० वर्ष ई० पू० निर्धारित की थी।

पाणिनि की जीवनी के विषय में केवल इतना ज्ञात है कि वह आधुनिक अटक जिले के शालातुर नामक ग्राम के अधिवासी थे, (पतंजलि के महाभाष्य से पता चलता है कि) उनकी माता का नाम दाक्षी था, (कथा सरित्सागर चतुर्थ तरंग की एक कथा के अनुसार) वह उपवर्ष (वर्ष) के शिष्य तथा कात्यायन, व्याडि और इन्द्रदत्त के समकालीन थे तथा (पंचतन्त्र के एक श्लोक के अनुसार) उनकी मृत्यु व्याघ्र के हाथों हुई थी। पाणिनि अध्ययन में अधिक प्रखर न थे। इससे कुछ निराश होकर उन्होंने तपस्या की और भगवान् शंकर को प्रसन्न करके उनके डमरू से निकले हुए ध्वनि-समूह को चौदह "माहेश्वर-सूत्र" मानकर, जो सम्भवतः पाणिनि के महेश्वर नामवाले अथवा महेश्वर-स्वरूप गुरु द्वारा पाणिनि को व्याकरण रचना के निमित्त मार्गदर्शन के लिए निर्मित प्रतीत होते हैं, उन्हीं के वताए मार्ग पर पाणिनि ने समस्त अष्टाध्यायी वनाई। रूपरेखा गुरु की ही वनाई समझ पड़ती है। उस पर उन्होंने समस्त ग्रन्थ की रचना की, ऐसी जनश्रुति है। पाणिनि की निधन तिथि सम्भवतः त्रयोदशी थी। इस तिथि पर वैयाकरण विद्वान् आज भी व्याकरण नहीं पढ़ते-पढ़ाते।

३—इनका ग्रन्थ अष्टाध्यायी लगभग ४००० सूत्रों से निर्मित है और आठ अध्यायों में विभाजित है। प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। (पाँच सूत्रों को छोड़कर शेष) समस्त सूत्रों का मूल रूप सौभाग्यवश पंडितों द्वारा सुरक्षित

चला आया है। प्रथम अध्याय में व्याकरण शास्त्र सम्बन्धी संज्ञाएँ तथा परिभाषाएँ हैं। दूसरे अध्याय में समासों का विस्तृत विवेचन तथा कारक की व्याख्या है। तीसरे अध्याय में तथा आठवें में कृदन्त प्रकरण है। चौथे और पाँचवें में तद्धित प्रकरण है तथा इसके पश्चात् छठे और सातवें में तिङ, सुप् प्रत्ययों से सम्बन्धित प्रक्रिया का विवेचन है। आठवें में सन्धि-प्रकरण भी है। पाणिनि ने अत्यन्त शृंखलाबद्ध और संश्लिष्ट विधि से व्याकरण की बिखरी हुई सामग्री को सफलता के साथ एकत्र किया है। पाणिनि का ध्यान इस प्रयास में संक्षेपातिशय पर बहुत केन्द्रित रहा है। इसलिए अष्टाध्यायी का दुर्गम होना स्वाभाविक है।

संक्षेप करने में प्रधान हेतु सम्भवतः कंठाग्र कराना और लेखन-सामग्री की प्रचुरता के अभाव ही रहे होंगे। इस संक्षेप के लिए पाणिनि को मुख्य रूप से छः साधनों का आश्रय लेना पड़ा है—(१) प्रत्याहार, (२) अनुबंध, (३) गण, (४) संज्ञाएँ (घ, षट्, श्लु, लुक्, टि, घु प्रभृति), (५) अनुवृत्ति, (६) जगह-जगह कई सूत्रों के लागू होने वाले स्थानों के लिए पूर्वत्राऽसिद्धम् (८।२।१) सदृश नियमों (परिभाषाओं) की स्थापना। यहाँ सक्षेप में इन साधनों की कुछ व्याख्या की जाती है।

४—प्रत्याहार नीचे चौदह माहेश्वर सूत्रों को आधार मानकर बनाये गये हैं—

अइउण् ।१। ऋऌक् ।२। एओङ ।३। ऐऔच् ।४। हयवरट् ।५। लण् ।६। ञमङणनम् ।७। झभञ् ।८। घढधष् ।९। जबगडदश् ।१०। खफछठथचटतव् ।११। कपय् ।१२। शषसर् ।१३। हल् ।१४।

इनमें जो अक्षर हल् हैं (अर्थात् स्वर से वियुक्त हैं) वे इत् कहलाते हैं जैसे ण्, क् आदि। इन्हें इत् संज्ञा देने वाला सूत्र हलन्त्यम् (१।३।३) है। आदि-रन्त्येन सहेता (१।१।७१) इस सूत्र से इन चतुर्दश गणों में आने वाला इत् से भिन्न कोई भी अक्षर जब किसी इत्संज्ञक अक्षर के पूर्व मिलाकर लिखा जाता है, तब प्रत्याहार बनता है। उदाहरणार्थ अइउण् से अ को लेकर और ऋऌक् से इत्संज्ञक क् को लेकर अक् प्रत्याहार बनता है जो 'अ इ उ ऋ ऌ' समुदाय का बोधक होता है। इसी तरह झश् प्रत्याहार द्वारा 'झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द'

समुदाय का बोध होता है। प्रत्याहार की इस विधि के द्वारा अत्यन्त संक्षेप हो गया है।

५—अनुबन्ध—जो अक्षर इत् होते हैं उनकी सूची निम्नलिखित है—१—उन्हीं उपदेशों के अन्त में आनेवाला हल् २—(हलन्त्यम् १।३।३।), धातु प्रत्यय, आगम, आदेश आदि (उपदेश) के मूल में स्थित 'अनुनासिक स्वर' (उपदेशेऽजनुनासिक इत् ।१।३।२।), ३—किसी धातु के आदि में प्रयुक्त ञि, टु, डु (आदिर्ञिटुडवः ।१।३।५।), ४—किसी प्रत्यय के आदि में आने वाले चवर्ग और टवर्ग (चुटू १।३।७), ५—किसी प्रत्यय के आदि में आने वाला ष् (षः प्रत्ययस्य १।३।६), ६—तद्धित से भिन्न अन्य प्रत्ययों के आदि में आने वाले ल्, श् और कवर्ग (लशक्वतद्धिते ।१।३।८) । इन इत् संज्ञकों का यद्यपि लोप हो जाता है, पर इनका उपयोग दूसरे प्रकार से होता है। ये अनुबन्ध प्रायः वृद्धि, गुण, आगम, आदेश, उदात्तादि स्वर प्रभृति प्रक्रियाओं के निमित्त बनते हैं। उदाहरणार्थ, स्त्रीप्रत्यय के विधान के लिए एक सूत्र है (षिद्गौरादिभ्यश्च ।४।१।४१) । इसके अनुसार जिन प्रत्ययों में ष् इत् होता है उन प्रत्ययों वाले शब्दों मे स्त्रीलिङ्ग के द्योतनार्थ ङीष् प्रत्यय जुड़ता है; जैसे रजक (रञ्ज्+ ष्वुन्) शब्द में ष्वुन् प्रत्यय आया है। इसलिए उसमें ङीप् जुड़कर 'रजकी' यह रूप बनेगा। इन अनुबन्धों का उपयोग वैदिक भाषा पर विचार करते समय पाणिनि ने अधिक किया है।

६—गणपाठ—जब कई ऐसे शब्द हों जिनमें एक ही प्रत्यय लगाना हो या किसी एक प्रकार के विधान की रचना बतानी हो तो उन सब का एक गण बना कर गण के आदि में आने वाले शब्द को लेकर ही एक सूत्र रच दिया गया है और गणपाठ अन्त में दे दिया गया है। उदाहरणार्थ गर्गादिभ्यो यञ् (४।१।१०५) एक सूत्र है। इसके अनुसार गर्ग से शुरू होने वाले गण में यञ् प्रत्यय लगता है। गर्गादि गण में १०२ शब्द आये हैं। ये सब शब्द सूत्र में नहीं गिनाये गये और गर्गादि कह कर काम निकाल लिया गया। इस तरह जगह बहुत कम घिरती है और सुविधा के साथ नियम भी बन जाते हैं।

७—संज्ञाएँ और परिभाषाएँ—प्रयत्नलाघव के लिए इनकी रचना हुई है। इनमें से कुछ पाणिनि की स्वयं बनायी और कुछ उनके पहले से चली आयी हैं। कुछ मुख्य-मुख्य यहाँ दी जाती हैं—

(१) वृद्धि—वृद्धिरादैच् (।१।१।१।)—आ, ऐ, औ को वृद्धि कहते हैं।

(२) गुण—अदेङ् गुणः (१।१।२) अ, ए, ओ गुण कहलाते हैं।

(३) सम्प्रसारण—(इग्यणः सम्प्रसारणम् १।१।४५) य्, व्, र्, ल् के स्थान पर इ, उ, ऋ, लृ का हो जाना सम्प्रसारण कहलाता है।

(४) टि—अचोऽन्त्यादि टि (१।१।६४) किसी भी शब्द के अन्तिम स्वर और यदि उसके वाद कोई व्यञ्जन हो तो वह भी 'टि' कहा जाता है, जैसे शक में क का अकार तथा मनस् में अस् 'टि' है।

(५) उपधा—अलोऽन्त्यात्पूर्वं उपधा (१।१।६५)—अन्तिम वर्ण (स्वर या व्यंजन) के तुरन्त पहिले आने वाले वर्ण (स्वर या व्यंजन) को 'उपधा' कहते हैं।

(६) प्रातिपदिक—अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् (१।२।२४) धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त के अतिरिक्त कोई भी शब्द जो अर्थयुक्त हो, वह प्रातिपदिक होता है। इनके अतिरिक्त कृदन्त, तद्धितान्त और समस्त पदों को भी यह संज्ञा प्राप्त होती है—कृत्तद्धितसमासाश्च (१।२।४६)। उदाहरण के लिए राम शब्द लीजिए। अवतार राम के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के केवल नाम होने से यह अर्थवान् है, उसके विषय में न यह धातु है और न प्रत्ययान्त ही। इसलिए यह प्रातिपदिक कहा जायगा। किन्तु जव अवतार राम के लिए होगा तो रम् धातु से घञ् प्रत्ययान्त होकर कृदन्त होने के नाते प्रातिपदिक कहलाएगा। इसी प्रकार रघु में अण् प्रत्यय जोड़ने से तद्धितान्त राघव प्रातिपदिक वना।

(७) पद—सुप्तिङन्तं पदम् (१।४।१४) सुप् और तिङ प्रत्ययों से युक्त होने पर कोई शब्द पद वनता है। प्रातिपदिक में लगने वाले प्रत्ययों को सुप् तथा धातु में लगने वाले प्रत्ययों को तिङ कहते हैं। राम में सु प्रत्यय से रामः वना। यह पद हुआ। इसी प्रकार भू धातु में तिप्, तस् इत्यादि तिङ प्रत्यय जुड़ने से भवति, भवतः इत्यादि क्रियापद बनते हैं। इसके अतिरिक्त सु से लेकर कप् तक के प्रत्ययों में, सर्वनामस्थान को छोड़ कर अन्य प्रत्ययों के आगे जुड़ने पर पूर्व शब्द की भी 'पद' संज्ञा होती है। स्वादिष्वसर्वनामस्थाने (१।४।१७)।

(८) सर्वनामस्थान—सुडनपुंसकस्य (१।१।४३) पुंल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग प्रातिपदिक शब्दों के आगे लगने वाले सुट्—सु, औ, जस्, अम् तथा औट् (विभक्ति) प्रत्यय सर्वनामस्थान कहलाते हैं।

(९) यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् (१।४।१३) जिस शब्द के आगे कोई प्रत्यय जोड़ा जाय, उस प्रत्यय के पूर्व सम्पूर्ण शब्द-समुदाय को अङ्ग कहते हैं।

(१०) भ—यचि भम् (१।४।१८) सु से लेकर कप् तक के प्रत्ययों में यकार अथवा स्वर से आरम्भ होने वाले प्रत्ययों के आगे जुड़ने पर पूर्व शब्द की ('पद' संज्ञा न होकर) 'भ' संज्ञा होती है।

(११) घु—दाधाघ्वदाप् (१।१।२०) दाप् (काटना) और दैप् (साफ करना) को छोड़कर दा और धा स्वरूपवाली धातुओं की 'घु' संज्ञा होती है।

(१२) घ—तरप्तमपौ घः (१।१।२३) तरप् और तमप् इन प्रत्ययों की 'घ' संज्ञा होती है।

(१३) विभाषा—नवेति विभाषा (१।१।४४) जहाँ पर विकल्प से होने और न होने, दोनों की सम्भावना रहती है, वहाँ पर विभाषा संज्ञा होती है।

(१४) निष्ठा—क्तक्तवतू निष्ठा (१।१।२६) क्त और क्तवतु इन दोनों प्रत्ययों की 'निष्ठा' संज्ञा है।

(१५) संयोग—हलोऽनन्तराः संयोगः (१।१।७) बीच में किसी स्वर के न रहने पर, दो या अधिक मिले हुए हल् (व्यञ्जन) 'संयुक्त' कहे जाते हैं जैसे भव्य शब्द में व् और य् के बीच में कोई स्वर नहीं आया है इसलिए वे संयुक्त वर्ण कहे जायँगे। इसी प्रकार कात्स्न्र्य, माहात्म्य आदि में।

(१६) संहिता—परः सन्निकर्षः संहिता (१।४।१०९)—वर्णों की अत्यन्त समीपता संहिता कही जाती है।

(१७) प्रगृह्य—ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् (१।१।११) ईकारान्त, ऊकारान्त, ऐकारान्त द्विवचन (सुवन्त अथवा तिङन्त) पद प्रगृह्य कहे जाते हैं।

(१८) सार्वधातुक प्रत्यय—तिङ् शित् सार्वधातुकम् (३।४।११३) धातुओं के आगे जुड़ने वाले प्रत्ययों में तिङ् प्रत्यय एवं वे प्रत्यय जिनमें श् इत्संज्ञक हो जाता है (जैसे शप् शतृ आदि) सार्वधातुक प्रत्यय कहलाते हैं।

(१९) आर्धधातुक प्रत्यय—आर्धधातुकं शेषः (३।४।११४) धातुओं से जुड़ने वाले शेष अर्थात् सार्वधातुक के अतिरिक्त प्रत्यय आर्धधातुक कहे जाते हैं।

(२०) सत्—तौ सत् (३।२।१२७) शतृ और शानच् दोनों का नाम सत् है।

(२१) अनुनासिक—मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः (१।१।८) जिन वर्णों का उच्चारण मुख और नासिका दोनों से होता है उन्हें अनुनासिक कहा जाता है। जैसे अँ, आँ, एँ, लँ इत्यादि। यह अनुनासिक चिह्न के द्वारा प्रकट किया जाता है। वर्गों के पंचमाक्षर ङ, ञ्, ण्, न् तथा म् भी अनुनासिक वर्ण हैं, क्योंकि इनमें भी नासिका की सहायता ली जाती है।

(२२) सवर्ण—तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् (१।१।९) जब दो या उससे अधिक वर्णों के उच्चारणस्थान (मुखविवर में स्थित ताल्वादि) और आभ्यन्तर प्रयत्न समान या एक हों तो उन्हें परस्पर 'सवर्ण' कहते हैं।

८—अनुवृत्ति—सूत्रों के विस्तार को अधिक से अधिक संकुचित करने के लिए अनुवृत्ति पाँचवीं प्रणाली है। पाणिनि ने कुछ ऐसे सूत्र बनाये हैं जिनका अलग तो कोई अर्थ नहीं होता, लेकिन परवर्त्ती सूत्रमाला के प्रत्येक सूत्र से युक्त होने पर अर्थ निकलता है। ऐसे सूत्र 'अधिकारसूत्र' कहे जाते हैं। इनकी अनुवृत्ति का क्षेत्र तब तक बना रहता है जब तक कोई दूसरा अधिकार-सूत्र नहीं आ जाता। जैसे—तस्य, विकारः (४।३।१३४), तस्यापत्यम् (४।१।९२), अनभिहिते (२।३।१) प्रभृति सूत्र हैं।

इसके अतिरिक्त पाणिनि की अष्टाध्यायी के समझाने के लिए टीकाकारों ने ज्ञापक सूत्रों को अलग से ढूंढ़ निकाला है तथा सूत्रों में योगविभाग करके कुछ स्पष्ट न कही गयी बातों को भी शामिल किया है। परन्तु इन सबका ज्ञान केवल सूक्ष्म अध्ययन करने वाले के लिए अपेक्षित है, इसलिए यहाँ इनकी विवेचना नहीं की जा रही है।

९—पाणिनि ने संस्कृत को जीवित (बोलचाल की) भाषा के रूप में लिया है। उन्होंने लोक, वेद की भाषा संस्कृत ही बतायी है। लोक की संस्कृत को 'भाषा' तथा वेद की संस्कृत को 'छादस्' शब्द का प्रयोग करते हैं। भाषा-शब्द का अर्थ ही है जिसे लोग भाषित करें या बोलें। इसके प्रमाण में हम केवल दो-चार युक्तियाँ यहाँ प्रसंगवश दे देते हैं। पहले तो वैदिक भाषा को अपवाद के रूप में ग्रहण करना इसी तथ्य की ओर संकेत करता है कि पाणिनि के सामने वर्तमान भाषा छान्दस् भाषा से कुछ आगे चली आयी थी, पर अभी वहुत दूर नहीं हुई थी, अन्यथा वैदिक भाषा का वे अलग से व्याकरण अवश्य लिखते। दूसरे, स्तम्बशकृतोरिन् (३।२।२४), हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ (३।२।२५), व्रीहिशाल्योर्ढक् (५।२।२) नते नासिकायाः संज्ञायां टीटाञ् टीटानाटज्भ्रटचः (५।२।३१), कृञ द्वितीय-तृतीय-शम्बबीजात्कृषौ (५।४।५८) प्रभृति सामान्य कृषक-जीवन से ही सम्बन्ध रखने वाले सूत्रों की रचना स्पष्ट यही सिद्ध करती है कि जिस भाषा का विश्लेषण पाणिनि कर रहे हैं, वह बोलचाल की भाषा है। तीसरे, गणपाठों में आये हुए नाम इतने विचित्र और अनजान से लगते हैं कि किसी को यह स्वप्न में भी विचार नहीं हो सकता कि ये शब्द स्टैण्डर्ड भाषा के होंगे। उदाहरणार्थ गुहुलु, आलिगु, कहूषय, नवाकु, वटाकु, बसुह्यस्क, शिग्रु, कहोढ प्रभृति।

कात्यायन

१०—पाणिनि के लगभग १२५० सूत्रों पर आलोचनात्मक दृष्टि से वररुचि। (कात्यायन) ने ४००० वार्त्तिकों की रचना की है। ७०० से अधिक सूत्रों की उन्होंने विना उनमें कोई दोष दिखाये सुन्दर व्याख्या की है, करीब १० सूत्रों को व्यर्थ वताया है तथा लगभग ५४० सूत्रों में परिवर्तन एवं परिष्करण किया है। कात्यायन पाणिनि के प्रति उचित श्रद्धा भी यत्र-तत्र प्रदर्शित करते हैं। परन्तु उन्होंने अनेक स्थलों पर पाणिनि को समझने में ही भूल की है और कहीं-कहीं वे अनुचित आलोचना भी कर गये हैं। इस अनौचित्य की ओर महाभाष्यकार पतञ्जलि ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। कात्यायन के वार्तिक श्लोक और गद्य दोनों में हैं। वे दाक्षिणात्य थे जैसा 'प्रियतद्धिता दाक्षिणात्याः' महाभाष्य के इस वाक्य से प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त कात्यायन वाजसनेयी प्राति-

शास्त्र के भी प्रणेता हैं । वररुचि का समय ४०० वर्ष ई० पू० और ३०० ई० पू० के बीच में पड़ता है ।

पतञ्जलि

११—पाणिनि व्याकरण के अध्ययन के प्रथम युग का अन्त पतञ्जलि के महाभाष्य ही में होता है तथा पाणिनि के स्थान को दृढ़ वनाने में कात्यायन और पतञ्जलि ने अपूर्व परिश्रम किया है । इसीलिए परवर्ती वैयाकरणों ने इन तीनों को 'मुनित्रय' के नाम से पुकारा है । पतञ्जलि के समय (दूसरी शताब्दी ई० पू०) के वारे में अत्यत्त दृढ़ प्रमाण उन्हीं के ग्रन्थ में मिले हैं । 'पुष्यमित्रं याजयामः,' 'अरुणद्यवनः साकेतम्', 'अरुणद्यवनो मध्यमिकाम्' इन तीन उद्धरणों से इतना निश्चित होता है कि पुष्यमित्र (शुङ्गराजा) के समय में सम्भवतः उसी के दरवार में पतञ्जलि विराजमान थे तथा उनके समय में मिनेण्डर (मिलिन्द) ने अयोध्या और मध्यमिका पर आक्रमण किया था । वह गोनर्द (सम्भवतः वर्तमान गोंडा जिला) के निवासी थे तथा उनकी माता का नाम गोणिका था । शंका, समाधान आदि को अत्यन्त रोचक रूप में देते हुए और वहुतेरे घरेलू दृष्टान्तों के द्वारा विषय का सुगमता से प्रतिपादन करते हुए तथा साथ ही साथ अपने समय की सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक और साहित्यिक सव प्रकार की प्रवृत्तियों का अत्यन्त मनोरम परिचय देते हुए, पतञ्जलि ने महाभाष्य के रूप में एक अपूर्व रचना की है । इसके जोड़ का संस्कृत में और कोई भी ग्रन्थ नहीं है । पतञ्जलि की शैली के प्रवाह की वरावरी केवल श्रीशंकराचार्य का शारीरिक भाष्य करता है ।

१२—पतञ्जलि के वाद सातवीं शताब्दी तक दार्शनिक विचारधारा का सर्वत्र अधिक जोर रहा । अतः व्याकरण शास्त्र की मीमांसा कुछ समय के लिए बन्द-सी हो गई । सातवीं शताब्दी में जयादित्य और वामन द्वारा अष्टाध्यायी पर एक सरल और सर्वाङ्गीण वृत्ति (टीका) 'काशिका' लिखी गयी । जयादित्य का समय सन् ६६० ई० है । इस काशिका पर भी उपटीकाएँ 'न्यास' जिनेन्द्र बुद्धि द्वारा और 'पद-मंजरी' हरदत्त द्वारा लिखी गयीं । इसी समय के

आसपास व्याकरण का दार्शनिक विवेचन महाभाष्य के टीकाकार भर्तृहरि ने 'वाक्यपदीय' लिखकर किया, जिसमें आगम, वाक्य और प्रकीर्ण इन तीन कांडों में कारिकाओं में अत्यन्त जटिल प्रश्न सुलझाये गये हैं और स्फोटवाद तथा 'शब्द से ही संसार के विवर्त्तित होने' का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। चीनी यात्री इत्सिग के अनुसार भर्तृहरि की मृत्यु सन् ६५० ई० में हुई थी। महाभाष्य पर काश्मीरी पंडित कैयट ने सन् ११०० ई० के लगभग 'प्रतीप' नाम की वहुत सुन्दर टीका लिखी। काव्यप्रकाशकार मम्मटाचार्य के भाई कहे जाते हैं।

इस समय तक संस्कृत के केवल अध्ययन-अध्यापन की भाषा रह गयी थी। अतः व्याकरण में मौलिक ग्रन्थों के लिखने का यों ही अवसर नहीं रह गया। इसके अतिरिक्त केवल वाल की खाल निकालने और नैयायिक समालोचना करने की ही प्रथा चल पड़ी थी। अतः पाणिनीय व्याकरण के अध्ययन की भी दृष्टि वदली, उसके क्रम में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने लगे। अव विषय-विभाग के आधार पर अष्टाध्यायी के सूत्रों की व्यवस्था की जाने लगी। विमल सरस्वती ने सन् १३५० ई० में 'रूप-माला' और रामचन्द्र ने १५वीं शताब्दी ई० में 'प्रक्रिया-कौमुदी' इसी दृष्टिकोण से लिखी। परन्तु इस श्रेणी में सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना सन् १६३० ई० के लगभग प्रख्यात विद्वान् भट्टोजि दीक्षित ने 'सिद्धान्त-कौमुदी' के नाम से की। इसकी महत्ता केवल इसकी टीकाओं की अनन्त शृङ्खलाओं से अथवा पाणिनीय व्याकरण की सबसे अधिक प्रचलित पाठ्य पुस्तक होने ही से नहीं है। इसका महत्त्व इसलिए इतना अधिक है कि इस ग्रन्थ में मुनित्रय के सिद्धान्तों के सांगोपांग समन्वय के साथ अन्य वैयाकरणों तथा अन्य पद्धतियों से भी सार ग्रहण किया गया है और नवोदित पद्धतियों की आलोचना इतनी सफलतापूर्वक की गयी है कि इस ग्रन्थ ने अध्ययन के क्षेत्र से पाणिनि की अष्टाध्यायी के क्रम को तो निकाल ही दिया है, साथ ही साथ वोपदेव के 'मुग्धवोध', शर्ववर्मा के 'कातन्त्र' तथा चन्द्रगोमी के 'चान्द्र' प्रभृति व्याकरणों को भी वाहर कर दिया। भट्टोजि रामचन्द्र शेष की चलाई नयी परम्परा के धुरीण हैं। यह रंगोजि दीक्षित के पुत्र तथा शेषकृष्ण के शिष्य थे। इन्होंने सिद्धान्त कौमुदी पर स्वयं 'प्रौढ़ मनोरमा' नाम की टीका लिखी तथा पाणिनि की अष्टाध्यायी पर 'शब्द-कौस्तुभ' नाम की विस्तृत व्याख्या की।

भट्टोजि के भतीजे कोण्डभट्ट ने 'वाक्यविन्यास' और दार्शनिक विवेचन-सम्बन्धी 'वैयाकरण-भूषण' नामक पुस्तक लिखी। भट्टोजि के गुरु-भाई पंडितराज जगन्नाथ ने 'प्रौढ़ मनोरमा' पर 'मनोरमाकुच-मर्दिनी' नामक आलोचनात्मक टीका लिखी है।

१३—इनके अनन्तर व्याकरण के क्षेत्र में सबसे उज्ज्वल, चमकने वाले सितारे तथा अनेक शास्त्रों पर समान अधिकार रखने वाले, प्रखर मेधावी नागेश-भट्ट का नाम आता है। धर्म-शास्त्र, साहित्य, योग आदि के अतिरिक्त व्याकरण शास्त्र में एक दर्जन के लगभग टीका-ग्रन्थों एवं स्वतंत्र ग्रन्थों का प्रणयन इस विश्रुत विद्वान की लेखनी से हुआ। इनमें शब्द-रत्न (प्रौढ़ मनोरमा पर टीका), विषमी (शब्दकौस्तुभ की टीका), वैयाकरण-सिद्धान्त-मंजूषा, शब्देन्दु-शेखर और परिभाषेन्दु-शेषर बहुत प्रसिद्ध हैं। नागेशभट्ट ने गंगेश उपाध्याय द्वारा प्रवर्त्तित नव्यन्याय की प्रतिपादन-शैली में गंभीर और सूक्ष्म विचार प्रकट किये हैं।

सिद्धान्तकौमुदी का संक्षेप बालकों की सुविधा के लिए लघु-सिद्धान्तकौमुदी तथा मध्य-सिद्धान्तकौमुदी के रूप में वरदराजाचार्य ने किया। लघुकौमुदी का प्रचार बहुत हुआ है।

१४—यहाँ हम संक्षेप में अन्य पद्धतियों का भी उल्लेख मात्र कर दे रहे हैं। ४७० ई० के लगभग बौद्ध पंडित चन्द्रगोमी ने बहुत कुछ पाणिनि के आधार पर ब्राह्मण प्रभाव से बचते हुए बौद्धों के लिए चान्द्रव्याकरण बनाया। इसमें ३१०० के लगभग सूत्र हैं। इसके पहले ही शर्ववर्मा ने ऐन्द्र व्याकरण के आधार पर कातन्त्र-व्याकरण की रचना सम्भवतः ईसा की पहली शताब्दी में की थी। जैनेन्द्र-व्याकरण छठी तथा शाकटायन शब्दानुशासन ८वीं, हेमचन्द्र का शब्दानुशासन १२वीं, सारस्वत-व्याकरण, बोपदेव का मुग्धबोध, जौमर-व्याकरण १३वीं तथा सौपद्म व्याकरण १४वीं शताब्दी में लिखे गये। इनमें प्रायः पाणिनि के संशोधन एवं सरलीकरण का प्रयास हुआ है तथा बहुतों ने न्यूनतम सूत्रों की संख्या के लिए जी-जान से कोशिश की है। मुग्धबोध में १२००, तथा सारस्वत में केवल ७०० सूत्र हैं। ये ही दो प्रचलित भी हुए हैं। बोपदेव वैष्णव थे। अतः उनका व्याकरण वैष्णव रंग में रँगा हुआ है इसीलिए उनके व्याकरण का अभी तक बंगाल में (चैतन्य महाप्रभु के कार्यक्षेत्र में) बहुत प्रचार

है। सारस्वत व्याकरण पर सत्रहवीं सदी में रामाश्रम ने सारस्वत-चन्द्रिका नामक टीका लिखी और वह भी कुछ समय पूर्व तक काशी के क्षेत्र में बहुत प्रचलित रही है। अन्यों का प्रभुत्व बहुत पूर्व से ही हट चुका है।

पाणिनि-व्याकरण के अध्ययन की विधि

१५—व्याकरण-शास्त्र को अच्छी तरह अल्पकाल में समझने के लिए वैज्ञानिक विधि यह है कि संज्ञाओं, प्रत्याहारों तथा अन्य पूर्वोल्लिखित साधनों का सम्यक् ज्ञान कर ले। संज्ञा प्रभृति का साधारण और आवश्यक परिचय पूर्व में दिया जा चुका है। इसके पश्चात् किस तरह प्रत्यय जुड़ते हैं और किस प्रकार एक सूत्र से दूसरे सूत्र में अनुवृत्ति की जाती है, इसे समझने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रत्यय लगने की विधि नीचे दी जाती है। (१) प्रत्यय में पहले यह देखना चाहिए कि कितना अंश जुड़ने के उपयोग में आने वाला है, जैसे ण्यत् प्रत्यय में चुटू सूत्र से आदि में आने वाला ण् तथा हलन्त्यम् सूत्र से त् लुप्त हो जाते हैं। केवल य भर बच रहता है। (२) पुनः यह देखना चाहिए कि इस प्रत्यय को पहले जुड़ना है या पीछे या बीच में। इस सम्बन्ध में एक ही नियम है प्रत्ययः (३।१।१) परश्च (३।१।२) अर्थात् प्रत्यय सदा बाद में ही जुड़ते हैं—(केवल तद्धित का एक प्रत्यय बहुच् ऐसा है जो ईषदसमाप्ति अर्थ में शब्द के पहिले जुड़ता है, जैसे बहुतृण आदि)। (३) फिर यह देखना चाहिए कि जिसमें प्रत्यय को जुड़ना है, उसमें अनुबन्धों के कारण किस विकार का होना आवश्यक है, जैसे अचो ञ्णिति (७।२।११५) अर्थात् ञित् तथा णित् प्रत्यय बाद में रहने पर पूर्व में आने वाले अजन्त अङ्ग के स्वर की वृद्धि हो जाती है। इस सूत्र के अनुसार 'हृ' के आगे 'ण्यत्' आने पर 'हृ' के ऋ में वृद्धि होकर 'आर्' हो जाता है। (४) और अन्त में, अर्थ समझने के लिए 'किस हेतु से प्रत्यय लगा है' इसे समझना चाहिए। कृदन्त तथा तद्धित प्रकरणों में इसका विशेष विवेचन किया जायगा। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए यदि कोई अध्ययन करे तो अल्पकाल में ही साधारण कोटि का व्युत्पन्न हो सकता है।

प्रथम सोपान

वर्ण-विचार

१—संस्कृत शब्द का अर्थ है 'संस्कार' की हुई, परिमार्जित, शुद्ध, सम्प्रति इस शब्द से आर्यों की साहित्यिक भाषा का बोध होता है। यह भाषा प्राचीन काल में आर्य पण्डितों की बोली थी और इसी के द्वारा चिरकाल तक आर्य-विद्वानों का परस्पर व्यवहार होता था। जन-साधारण की भाषा का नाम प्राकृत था। संस्कृत भाषा का महत्त्व विशेषतः आज भी है, क्योंकि आर्य-सभ्यता के द्योतक अधिकांश ग्रन्थ इसी में हैं और इसके ही ज्ञान से उन तक पहुँच हो सकती है।

'व्याकरण' का अर्थ है 'किसी वस्तु के टुकड़े-टुकड़े करके उसका ठीक स्वरूप दिखाना।' यह शब्द भाषा के सम्बन्ध में ही अधिक प्रयोग में आता है। यदि देखा जाय तो प्रत्येक भाषा वाक्यों का समूह है। वाक्य कोई बड़े होते हैं, कोई छोटे। बड़े वाक्य बहुधा छोटे-वाक्यों के सुसम्बद्ध समूह होते हैं। वस्तुतः वाक्य ही भाषा का आधार है। वाक्य-शब्दों का समूह होता है। प्रत्येक शब्द में कई वर्ण होते हैं, जिनको अक्षर भी कहते हैं। अक्षर शब्द का अर्थ है 'अविनाशी'—जिसका कभी नाश न हो। वर्ण को यह नाम इसलिए दिया जाता है, क्योंकि प्रत्येक (वर्ण का) नाद अविनश्वर है। यदि किसी शब्द का उच्चारण करें तो उसके अक्षर उच्चारण-काल में नाद कहलावेंगे और उस दशा में शब्द नादों का समूह होगा और इस नाद-समूह को शब्द भी इसीलिए कहते हैं क्योंकि नाद, शब्द और ध्वनि का प्रायः एक ही अर्थ है। अतएव महाभाष्यकार ने कहा है 'तस्माद् ध्वनिः शब्दः' सृष्टि में इन नादों का भण्डार अनन्त है। प्रत्येक भाषा एक परिमित संख्या में ही नादों का प्रयोग करती है। उदाहरणार्थ, चीनी भाषा में

बहुत से ऐंसे नाद हैं, जो संस्कृत भाषा में नहीं। संस्कृत में कई ऐंसे हैं जो फारसी, अँग्रेजी आदि में नहीं।

२—संस्कृत भाषा में जिन अक्षरों का उपयोग होता है, वे ये हैं—

अ इ उ ऋ लृ	—ह्रस्व (सादे)	स्वर
आ ई ऊ ॠ	—दीर्घ (सादे)	
ए ऐ ओ औ	—दीर्घ (मिश्रविकृत)	
क ख ग घ ङ	—कवर्ग (कु)[1]	
च छ ज झ ञ	—चवर्ग (चु)	
ट ठ ड ढ ण	—टवर्ग (टु)	
त थ द ध न	—तवर्ग (तु)	
प फ ब भ म	—पवर्ग (पु)	
य र ल व	—अन्तःस्थ	
श ष स ह	—ऊष्म वर्ण	
ं	—अनुस्वार	
ँ	—अनुनासिक	
:	—विसर्ग	

१ पाणिनि ने इन्हीं अक्षरों को इस क्रम में बाँधा है—

१ अइउण्, २ ऋलृक्, ३ एओङ्, ४ ऐऔच्, ५ हयवरट्, ६ लण्, ७ ञमङणनम्, ८ झभञ्, ९ घढधष्, १० जबगडदश्, ११ खफछठथचटतव्, १२ कपय्, १३ शषसर्, १४ हल्।

ये चौदह सूत्र माहेश्वर कहलाते हैं, क्योंकि पाणिनि को महेश्वर की कृपा से प्राप्त हुए थे, ऐसा सम्प्रदाय है। इनको प्रत्याहार सूत्र भी कहते हैं; क्योंकि इनके द्वारा सरलता से और सूक्ष्म रीति से अक्षरों का बोध हो जाता है। ऊपर के जो अक्षर हल् हैं इत् कहलाते हैं, जैसे ण्, क् आदि। इनके द्वारा प्रत्याहार बनते हैं। पूर्व के किसी सूत्र का कोई वर्ण लेकर उसको यदि आगे की किसी इत् के पूर्व जोड़ दें तो प्रत्याहार बनेगा वह उस पूर्व वर्ण का तथा उसके और इत्

१. कु, चु, टु, तु, पु उदित् कहलाते हैं तथा अपने-अपने 'वर्ग' के वाचक होते हैं, जैसे कु से कवर्ग, चु से चवर्ग, टु से टवर्ग आदि।

के बीच के सभी वर्णों का (बीच में पड़ने वाले इतों को छोड़कर)बोधक होगा, (आदिरन्त्येन सहेता १।१।७१)। यथा—अक् अ इ उ ऋ लृ का, शल् श ष स ह का।

(क) यद्यपि प्रत्याहार की इस विधि के अनुसार उनकी संख्या सहस्रों हो सकती है, तथापि प्रत्याहार ४३ ही हैं। इसका कारण यह है कि मुनित्रय पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि को व्याकरण शास्त्र की प्रक्रिया में जितने प्रत्याहारों की आवश्यकता पड़ी और फलतः जितने का उन्होंने उपदेश किया, उतने ही प्रत्याहार प्रयोग में आये। आवश्यकता पड़ने पर उनकी संख्या बढ़ भी सकती थी।

मिश्रविकृत दीर्घ किन्हीं दो भिन्न स्वरों के मिश्रण-विशेष से बनता है; जैसे—

अ+इ=ए; अ+उ=ओ।

स्वर का अर्थ है, ऐसा वर्ण जिसका उच्चारण अपने आप हो सके, जिसको दूसरे वर्ण से मिलने की अपेक्षा न हो। ऐसे वर्ण जिनका बिना किसी दूसरे वर्ण (अर्थात् स्वर) से मिले हुए उच्चारण नहीं हो सकता, व्यंजन कहलाते हैं। ऊपर क से लेकर ह् तक सारे वर्ण व्यंजन हैं। क में अ मिला है, इसका शुद्ध रूप केवल क् होगा। स्वरों का दूसरा नाम अच् भी है, क्योंकि पाणिनि के क्रमानुसार स्वरवाची प्रत्याहार सूत्र सब इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। (प्रथम सूत्र का प्रथम अक्षर अ और चतुर्थ सूत्र का अन्तिम अक्षर च्)। इसी प्रकार व्यंजन का दूसरा नाम हल् भी है, क्योंकि व्यंजनवाची प्रत्याहार सूत्र सब (५ से १४ तक) इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। इन हलों (व्यंजनों) के स्वरविहीन शुद्ध रूप को प्रकट करने के लिए इनके नीचे तिरछी रेखा (्) लगा देते हैं जिसे हल्-चिह्न कहते हैं।

उदितों के पञ्चम वर्ण अर्थात् ङ, ञ्, न्, म् को भी अनुनासिक कहते हैं, क्योंकि इनका उच्चारण मुख और नासिका दोनों से होता है।[1]

स्वर तीन प्रकार के होते हैं—ह्रस्व, दीर्घ (सादे और मिश्रविकृत) और प्लुत।[2]

१. मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः।१।१।८।

२. ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः।१।२।२७।

स्वर के उच्चारण में यदि एक मात्रा-समय लगे तो वह ह्रस्व, जैसे—अ; यदि दो मात्रा-समय लगे तो दीर्घ, जैसे—आ (मिश्रविकृत स्वर दीर्घ होते हैं।) और यदि तीन मात्रा-समय लगे तो प्लुत कहलाता है, जैसे अ३। इस अंतिम प्रकार के स्वर का प्रयोग प्रायः पुकारने में होता है; यथा—राम३।[1]

(ख) उच्चारण के अनुसार ही उन्हीं स्वरों के तीन भेद हैं—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।[2]

सभी स्वर फिर दो प्रकार के होते हैं। एक अनुनासिक जिनमें नासिका से भी उच्चारण में कुछ सहायता ली जाती है; यथा—अँ, आँ, एँ, ऐं आदि और दूसरे अननुनासिक अर्थात् सादे यथा—अ, आ, ए, ऐ आदि।

व्यंजनों[3] के भी कई भेद हैं—क से लेकर म तक के व्यंजन 'स्पर्श' कहलाते हैं। इनमें कवर्ग आदि पाँच वर्ग हैं। य, र, ल, व 'अंतःस्थ' हैं अर्थात् स्वर और व्यंञ्जन के बीच के हैं। श, ष, स, ह 'ऊष्म' हैं, अर्थात् इनका उच्चारण करने के लिए भीतर से जरा अधिक जोर से श्वास लानी पड़ती है।

विसर्ग को वस्तुतः एक छोटा ह समझना चाहिए। यह सदा किसी स्वर के अन्त में आता है। यह स् अथवा र् का एक रूपान्तर मात्र है, किन्तु उच्चारण की विशेषता के कारण इसका व्यक्तित्व अलग है। यह जिस स्वर के पश्चात् जुटा होगा उसी के उच्चारण-स्थान से उच्चरित होगा।

क और ख के पूर्व कभी-कभी एक अर्धविसर्ग-सा उच्चारण के प्रयोग में आता है। उसे (⌣) इस चिह्न द्वारा व्यक्त करते हैं और उसकी संज्ञा जिह्वामूलीय बताते हैं। इसी प्रकार से प और फ के पूर्व वाले विसर्गनाद को उपध्मानीय कहते हैं, और उसी (⌣) चिह्न से व्यक्त करते हैं।

---

१. एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चार्धमात्रकम्॥

२. उच्चैरुदात्तः (१।२।२९), नीचैरनुदात्तः (१।२।३०), समाहारः स्वरितः (१।२।३१) उच्चारण-स्थान के उच्च अंश से उच्चरित स्वर उदात्त, नीचे से अनुदात्त तथा दोनों से स्वरित कहलाता है।

३. कादयो मावसानाः स्पर्शाः। यरलवा अन्तःस्थाः। शषसहा ऊष्माणः।

अनुस्वार यदि पंचवर्गीय अक्षरों के पूर्व आवे तो उसका उच्चारण उस वर्ग के पंचम अक्षर-सा होता है, यदि अन्यत्र आवे तो उसका एक विभिन्न ही (केवल नासिका से) उच्चारण होता है, इस कारण इसका व्यक्तित्व भी अलग है।

व्यंजनों[1] का एक भेद अल्पप्राण और महाप्राण भी किया जाता है। जिनके उच्चारण में कम श्वास की आवश्यकता होती है, वे अल्पप्राण और जिनमें अधिक की, वे महाप्राण होते हैं। वर्गों के प्रथम, तृतीय और पंचम वर्ण तथा अन्तःस्थ अल्पप्राण हैं और शेष—अर्थात् वर्गों के द्वितीय और चतुर्थ तथा ऊष्म—महाप्राण हैं।

३—उच्चारण करने का उपाय यह है कि अन्दर से आती हुई श्वास को स्वच्छन्दता से न निकाल कर, उसे मुख के अवयवविशेषों से तथा नासिका से विकृत करके निकाला जाय। इस विकार के उत्पन्न करने में नासिका तथा मुख के भाग प्रयोग में आते हैं। विकार के कारण ही नादों में भेद पड़ जाता है। जिन-जिन अवयवों से विकार उत्पन्न किया जाता है, उनको नादों का स्थान कहते हैं।

(क) हमारे वर्णों के स्थान इस प्रकार हैं—

अ,	आ,	विसर्ग,	क,	ख,	ग,	घ,	ङ,		—कण्ठ
इ,	ई	य,	च,	छ,	ज,	झ,	ञ,	श	—तालु
ऋ,	ॠ,	र,	ट,	ठ,	ड,	ढ,	ण,	ष	—मूर्धा
लृ,	लॄ	ल,	त,	थ,	द,	ध,	न,	स	—दन्त
उ,	ऊ,	उपध्मानीय,	प,	फ,	ब,	भ,	म		—ओष्ठ

---

१ वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमाः यणश्चाल्पप्राणः।
वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः।

२ अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः।
इचुयशानां तालु।
ऋटुरषाणां मूर्धा।
लृतुलसानां दन्ताः।
उपूपध्मानीयानाम् ओष्ठौ।
ञमङणनानां नासिका च
एदैतोः कण्ठतालु।
ओदौतोः कण्ठोष्ठम्।
वकारस्य दन्तोष्ठम्।
जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्।
नासिकानुस्वारस्य।

ञ, म, ङ, ण, न—इनके उच्चारण में नासिका की सहायता आवश्यक है, इस प्रकार ञ् के उच्चारण-स्थान तालु और नासिका दोनों हैं, ङ के कंठ और नासिका—इत्यादि ।

ए	और	ऐ	—कंठ और तालु
ओ	और	औ	—कंठ और ओठ
व			—दाँत और ओठ
जिह्वामूलीय			—जिह्वा की जड़
अनुस्वार			—नासिका ।

इन वर्णों के उच्चारण में दो प्रकार का प्रयत्न होता है, एक उनके स्फुट उच्चारित होने के पूर्व और दूसरा उच्चारण क्रिया के पश्चात् । अतः पहिले को आभ्यन्तर और दूसरे को बाह्य प्रयत्न कहते हैं । आभ्यन्तर प्रयत्न पाँच प्रकार के होते हैं—स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषद्विवृत, विवृत और संवृत । इनमें स्पर्श वर्णों का स्पृष्ट प्रयत्न है, अन्तःस्थों का ईषत्स्पृष्ट, ऊष्मा का ईषद्विवृत, स्वरों का विवृत तथा केवल ह्रस्व अ का सिद्ध प्रयोग रूप में संवृत, अन्यथा तो, अन्य स्वरों की भाँति उसका भी विवृत हो होता है ।

बाह्य प्रयत्न ग्यारह प्रकार के होते हैं—विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ।

इनमें वर्गों के प्रथम, द्वितीय वर्ण तथा श्ष्स् (खर्) का विचार, श्वास और अघोष प्रयत्न है । शेष (हश्) का संवाद, नाद और घोष । अल्पप्राण और महाप्राण का निर्देश पहले किया जा चुका है । उदात्त, अनुदात्त और स्वरित प्रयत्न केवल स्वरों का होता है ।

एक[१] ही स्थान से निकलने वाले तथा एक ही आभ्यन्तर प्रयत्न वाले वर्ण सवर्ण कहलाते हैं । भिन्न स्थानों से उच्चारण किये हुए वर्ण परस्पर असवर्ण कहलाते हैं । ऋ और लृ में उच्चारण-स्थान का भेद रहने पर भी परस्पर सवर्णता रहती है ।

---

१ तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् ।१।१।९। ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद्द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णसंज्ञं स्यात् ।

ऊपर वर्णों के उच्चारण के स्थान संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार दिये गये हैं। आजकल किसी-किसी वर्ण के उच्चारण में भेद पड़ गया है, यथा—ऋ का उच्चारण हम लोग शुद्ध नहीं करते। कोई रि करते हैं कोई रु। ष का उच्चारण मूर्धा (तालु के सबसे ऊपर के भाग) से होना चाहिए, किन्तु बहुधा लोग इसे श की तरह बोलते हैं और कोई-कोई ख की तरह। लृ का उच्चारण तो साहित्यिक संस्कृत के समय में ही लुप्तप्राय हो गया था।

वर्णमाला में ह के उपरान्त बहुधा क्ष, त्र, ज्ञ देने की रीति है, किन्तु ये शुद्ध वर्ण नहीं हैं—दो वर्णों के मेल हैं—

क्ष=क्+ष, त्र=त्+र, ज्ञ=ज्+ञ।

इस कारण इनको वर्णमाला में सम्मिलित करना भूल है।

द्वितीय सोपान

सन्धि-विचार

४—ऊपर कहा जा चुका है कि प्रत्येक वाक्य में कई शब्द रहते हैं। संस्कृत के शब्द का किसी भी स्वर अथवा व्यंजन से आरम्भ होकर, किसी स्वर, व्यंजन, अनुस्वार अथवा विसर्ग में अन्त हो सकता है।

दो शब्द जब पास-पास आते हैं तो एक दूसरे की निकटता के कारण पहले शब्द के अन्तिम वर्ण में अथवा दूसरे शब्द के प्रथम वर्ण में अथवा दोनों में कुछ परिवर्तन हो जाता है। उदाहरणार्थ हिन्दी भाषा को लें। जब हम सँभाल-सँभाल कर बोलते हैं तब तो कहते हैं—चोर् ले गया, मार् डाला, पहुँच् जाऊँगा। किन्तु इन्हीं वाक्यों को यदि बहुत जल्दी में बोलें तो उच्चारण इस प्रकार होगा—चोल् ले गया, माड् डाला, पहुँज् जाऊँगा। इसी प्रकार जितनी बोलचाल की भाषाएँ हैं उनमें परिवर्त्तन होता है। साधारण वक्ता इस परिवर्तन को नहीं जान पाता, किन्तु यदि हम ध्यानपूर्वक अपनी अथवा दूसरे की बोली को सुनें तो हमें इस कथन के सत्य का निश्चय हो जायगा। संस्कृत भाषा में इस प्रकार के परिवर्तन को "सन्धि" कहते हैं। सन्धि का साधारण अर्थ है "मेल"। दो वर्णों के निकट आने से मेल उत्पन्न होता है, उसे, इसीलिए सन्धि कहते हैं। सन्धि के लिए दोनों वर्ण एक दूसरे के पास-पास सटे हुए होने चाहिए, दूरवर्त्ती शब्दों में सन्धि नहीं हो सकती। वर्णों की इस समीप स्थिति को संहिता[१] कहते हैं। इसलिए संस्कृत भाषा में सन्धि का नियम यह है कि जिन शब्दों में निकटता की घनिष्टता हो उनमें सन्धि अवश्य हो, जहाँ निकटता घनिष्ठ न हो वहाँ सन्धि करना, न करना बोलने वाले की इच्छा पर निर्भर है। नियम यह है—

---

१ परःसन्निकर्षः संहिता १।४।१०९।

एकपद[1] के भिन्न-भिन्न अवयवों में धातु और उपसर्ग के बीच और समास में सन्धि अवश्य होनी चाहिए (क्योंकि वहाँ संहिता ऐच्छिक नहीं हो सकती), वाक्य के अलग-अलग शब्दों के बीच में सन्धि करना, न करना (संहिता) बोलने वाले की इच्छा पर है। जैसे—

एकपद—पौ+अकः=पावकः।

उपसर्ग और धातु—नि+अवसत्=न्यवसत्, उत्+अलोकयत्=उदलोकयत्।

समास—कृष्ण+अस्त्रम्=कृष्णास्त्रम्, श्री=ईशः=श्रीशः।

वाक्य—रामः गच्छति वनम्, अथवा रामो गच्छति वनम्।

५—सन्धि के कारण नीचे लिखे परिवर्त्तन उपस्थित हो सकते हैं—

(१) लोप—प्रथम शब्द के अन्तिम अक्षर का (यथा—रामः आयाति= राम आयाति), अथवा द्वितीय शब्द के प्रथम अक्षर का (यथा—दोषः+अस्ति =दोषोऽस्ति)।

(२) दोनों के स्थान में कोई नया वर्ण (यथा—रमा+ईशः=रमेशः) अथवा दो में से किसी एक के स्थान में नया वर्ण (यथा—नि+अवसत्=न्यवसत्, कस्मिन्+चित्=कस्मिश्चित्)।

(३) दो में से एक का द्वित्व (यथा—एकस्मिन्+अवसरे=एकस्मिन्नवसरे)।

शब्दों की निकटता इसलिए नीचे लिखे प्रकारों की होगी—

(१) जहाँ प्रथम शब्द का अन्तिम वर्ण तथा द्वितीय का प्रथम वर्ण दोनों स्वर हों।

---

१ संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते॥

वाक्य में जो विवक्षा दी गयी है, इसको भी अच्छी शैली के लेखक उचित नहीं समझते और विकल्प के रहते हुए भी सन्धि करते ही हैं। पद्य में तो यदि सन्धि का अवसर हो और न की जावे तो उसे विसन्धि दोष कहते हैं—न संहिता विवक्षामीत्यसन्धानं पदेषु यत्तद्विसन्धीति निर्दिष्टम्।

(काव्यादर्श)।

(२) जहाँ दो में से पर स्वर हो, पूर्व व्यंजन।

(३) जहाँ दोनों व्यंजन हों।

(४) जहाँ प्रथम का अन्तिम विसर्ग हो और द्वितीय का प्रथम स्वर अथवा व्यंजन। द्वितीय के आरम्भ में विसर्ग नहीं आ सकता, क्योंकि विसर्ग से किसी शब्द का प्रारम्भ नहीं होता।

इनमें से (१) को स्वर-सन्धि, (२) और (३) को व्यंजन-सन्धि और (४) को विसर्ग-सन्धि कहते हैं।

स्वर-सन्धि

६—यदि[1] साधारण ह्रस्व अथवा दीर्घ अ, इ, उ, ऋ स्वर के अनन्तर सवर्ण ह्रस्व अथवा दीर्घ स्वर आवें, तो दोनों के स्थान में 'सवर्ण-दीर्घ' स्वर होता है, यथा—

दैत्य+अरिः=दैत्यारिः।	तव+आकारः=तवाकारः।
यदा+अभवत्=यदाभवत्।	विद्या+आतुरः=विद्यातुरः।
इति+इव=इतीव।	अपि+ईक्षते=अपीक्षते।
श्री+ईशः=श्रीशः।	राज्ञी+इह=राज्ञीह।
विष्णु+उदयः=विष्णूदयः।	साधु+ऊचुः=साधूचुः।
चमू+ऊर्जः=चमूर्जः।	वधू+उपरि=वधूपरि।
कॄ+ऋकारः=कॄकारः।	होतृ+ऋकारः=होतॄकारः।

यदि ऋ या ऌ के बाद ह्रस्व ऋ या ऌ आवे तो दोनों के स्थान में ह्रस्व ऋ या ऌ भी स्वेच्छा से करते हैं,[2] जैसे—होतृ+ऋकारः=होतृकारः या होतॄकारः।

इस प्रकार सब मिलाकर तीन रूप हुए—

(१) होतृकारः (२) होतॄकारः (३) होऋकारः[3]।

होतृ+ऌकारः=होतॢकारः अथवा होतृ ऌकारः।

---

१ अकः सवर्णे दीर्घः ६।१।१०१।

२ 'ऋति सवर्णे ऋ वा' तथा 'ऌति सवर्णे ऌ वा' (वार्त्तिक)

३ होतृऋकारः यह रूप तो ऋत्यकः ६।१।१२८ से प्रकृतिभाव होने से बना है।

७—यदि[1] अ या आ के बाद (१) ह्रस्व इ या दीर्घ ई आवे तो दोनों के स्थान में "ए" हो जाता है; (२) यदि ह्रस्व उ या दीर्घ ऊ आवे तो दोनों के स्थान में "ओ" हो जाता है; (३) यदि ह्रस्व ऋ या दीर्घ ॠ आवे तो दोनों के स्थान में "अर्" हो जाता है; (४) यदि लृ आवे तो दोनों के स्थान में "अल्" हो जाता है। इस सन्धि का नाम गुण है। जैसे—

उप+इन्द्रः=उपेन्द्रः।	गण+ईशः=गणेशः।
रमा+ईशः=रमेशः।	गङ्गा+ईश्वरः=गङ्गेश्वरः।
वृक्ष+उपरि=वृक्षोपरि।	गगन+ऊर्ध्वम्=गगनोर्ध्वम्।
गङ्गा+उदकम्=गङ्गोदकम्।	मायया+ऊर्जस्वि=माययोर्जस्वि।
कृष्ण+ऋद्धिः=कृष्णर्द्धिः।	ग्रीष्म+ऋतुः=ग्रीष्मर्तुः।
महा+ऋषिः=महर्षिः।	महा+ऋद्धिः=महर्द्धिः।
तव+लृकारः=तवल्कारः।	

कुछ स्थल ऐसे हैं जहाँ पर यह नियम नहीं लगता; वे नीचे दिखाये जाते हैं—

(क)[2] अक्ष+ऊहिनी=अक्षौहिणी। (यहाँ पर "न" के स्थान में "ण" कैसे हो गया, यह आगे बताया जायगा।) यहाँ गुण स्वर ओ न होकर वृद्धि स्वर औ हुआ है।

(ख)[3] जब "स्व" शब्द के बाद "ईर्" और ईरिन् आते हैं तो "स्व" के अकार और ईर् व ईरिन् के ईकार के स्थान में "ऐ" हो जाता है; जैसे—स्व+ईरः=स्वैरः (स्वेच्छाचारी)। स्व+ईरिणी=स्वैरिणी। स्व+ईरम्=स्वैरम्। स्व+ईरी=स्वैरी (जिसका स्वेच्छानुसार आचरण करने का स्वभाव हो)।

(ग)[4] जब प्र के बाद ऊह, ऊढि, एष, एष्य आते हैं तो दोनों के स्थान पर सन्ध्यक्षर गुण स्वर न होकर वृद्धि स्वर होता है। जैसे—

---

१ आद्गुणः।६।१।८७।

२ अक्षादूहिन्यामुपसङ्ख्यानम् (वार्त्तिक)।

३ स्वादीरेरिणोः (वार्त्तिक)।

४ प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु (वार्त्तिक)।

प्र+ऊहः=प्रौहः। प्र+ऊढः=प्रौढः। प्र+ऊढिः=प्रौढिः।

प्र+एषः=प्रैषः। प्र+एष्यः=प्रैष्यः।

(इनमें प्रथम तीन उदाहरण 'आद्गुणः' सूत्र तथा अन्तिम दोनों 'एङि पररूपम्' के अपवाद हैं।)

(घ)[1] यदि अकारान्त उपसर्ग के बाद ऐसी धातु आवे जिसके आदि में ह्रस्व "ऋ" हो तो "अ" और "ऋ" के स्थान में "आर्" (वृद्धि) नित्य हो जाता है; जैसे—उप+ऋच्छति=उपार्च्छति। प्र+ऋच्छति=प्रार्च्छति।

किन्तु[2] यदि नामधातु हो तो "आर्" विकल्प से होगा; जैसे—

प्र+ऋषभीयति=प्रार्षभीयति, प्रर्षभीयति (बैल की तरह आचरण करता है)।

(ङ)[3] जब ऋत शब्द के साथ किसी पूर्वगामी शब्द का तृतीयासमास हो, तब भी पूर्वगामी अ और ऋत के ऋ से मिलाकर आर् बनेगा, अर् नहीं। जैसे—सुखेन ऋतः=सुख+ऋतः=सुखार्तः।

(च)[4] अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ तथा ऌ जब किसी पद के अन्त में रहें और इनके बाद ह्रस्व "ऋ" आवे तो वे विकल्प से ह्रस्व हो जाते हैं। यदि पहले से ह्रस्व है, तो वह भी फिर से हुआ ह्रस्व माना जायगा और इस प्रकार हुई ह्रस्व विधि में फिर दूसरी सन्धि नहीं होती। इसे 'प्रकृतिभाव' कहते हैं। यह नियम गुणसन्धि का विकल्प प्रस्तुत करता है; जैसे—

ब्रह्मा+ऋषिः=ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः। सप्त+ऋषीणाम्=
सप्त ऋषीणाम्, सप्तर्षीणाम्।

८—जब[5] "अ" अथवा "आ" के बाद (१) "ए" या "ऐ" आवे, तो दोनों के स्थान में "ऐ" हो जाता है, और (१) जब "ओ" या "औ" आवे, तो दोनों के स्थान में "औ" हो जाता है। इस सन्धि का नाम "वृद्धि' है, यथा—

---

१ उपसर्गादृति धातौ।६।१।६१।

२ वा सुप्यापिशलः।६।१।६२।

३ ऋते च तृतीयासमासे (वार्त्तिक)।

४ ऋत्यकः।६।१।१२८। (ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वत्)।

५ वृद्धिरेचि।६।१।८८।

(१) कृष्ण+एकत्वम्=कृष्णैकत्वम् ।
गङ्गा+एषा=गङ्गैषा ।

(२) जल+ओघः =जलौघः गङ्गा+ओघः=गङ्गौघः ।

नियमातिरेक

(क)[1] यदि अकारान्त उपसर्ग के वाद एकारादि या ओकारादि धातु आवे तो दोनों के स्थान में "ए" या "ओ" हो जाता है; यथा—

प्र+एजते=प्रेजते । उप+ओषति=उपोषति ।

किन्तु[2] यदि वह धातु नामधातु हो तो विकल्प से वृद्धि होती है; जैसे—

उप+एडकीयति=उपेडकीयति या उपैडकीयति ।

प्र+ओघीयति=प्रोघीयति या प्रौघीयति ।

(ख)[3] एव के साथ भी जब अनिश्चय का बोध हो, तब पूर्वगामी अकारान्त शब्द का अ और एव का ए मिल कर ए ही रह जायँगे; जैसे—

क्व एव भोक्ष्यसे—क्वेव भोक्ष्यसे (कहीं भी खा लोगे) ।

जब अनिश्चय नहीं रहेगा तब ऐ ही होगा, यथा 'तवैव' ।

(ग)[4] शक+अन्धुः, कुल+अटा, मनस्+ईषा इत्यादि उदाहरणों में भी परवर्ती शब्द के आदि स्वर का ही अस्तित्व रहता है । पूर्ववर्ती शब्द की 'टि' परवर्ती के आदि स्वर के रूप में मिल जाती है । इनमें प्रथम दो उदाहरण 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र से होने वाली दीर्घ सन्धि के अपवाद हैं ।

शक+अन्धुः=शकन्धुः, कुल+अटा=कुलटा, मनस्+ईषा=मनीषा ।

९—यदि[5] ह्रस्व या दीर्घ इ, उ, ऋ तथा लृ के बाद असवर्ण स्वर आवे तो इ, उ, ऋ, लृ के स्थान में क्रमशः य्, व्, र् और ल् हो जाते हैं; जैसे—

---

१ एङि पररूपम् । ६।१।९४।

२ नामधातु के आगे रहने पर इस प्रकार की विकलपता का कारण 'एङि पररूपम्' में वा सुप्यापिशलेः से 'वासुपि' की अनुवृत्ति है ।

३ एवे चानियोगे (वार्त्तिक) ।

४ शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम् (वार्त्तिक) तच्च टेः—सि० कौ०

५ इको यणचि ।६।१।७७।

.दधि+अत्र=दध्यत्र ।	इति+आह=इत्याह ।
मधु+अरिः=मध्वरिः ।	गुरु+आदेशः=गुर्वादेशः ।
साधु+इति=साध्विति ।	शिशु+ऐक्यम्=शिश्वैक्यम् ।
धातृ+अंशः=धात्रंशः ।	पितृ+आकृतिः=पित्राकृतिः ।
सवित+उदयः=सवित्रुदयः ।	मातृ+औदार्य्यम्=मात्रौदार्य्यम् ।
लृ+आकृतिः=लाकृतिः ।	

१०—ए,[1] ऐ, ओ, औ (एच्) के आगे कोई भी स्वर आवे तो उन (एच्) के स्थान में क्रम से अय्, आय्, अव्, आव् हो जाते हैं; यथा—

हरे+ए=हरये । नै+अकः=नायकः ।
विष्णो+ए=विष्णवे । पौ+अकः=पावकः ।

(क) पदान्त[2] य् या व् के ठीक पूर्व यदि अ या आ रहे और पश्चात् कोई 'अश्' प्रत्याहार का वर्ण आवे तो य् और व् का विकल्प से लोप होता है, और लोप होने के पश्चात् उनमें फिर कोई सन्धि नहीं होती; यथा—

हरे	+	एहि	=	हर	एहि	या	हरयेहि
विष्णो	+	इह	=	विष्ण	इह	या	विष्णविह
तस्यै	+	इमानि	=	तस्या	इमानि	या	तस्यायिमानि
श्रितै	+	उत्सुकः	=	श्रिया	उत्सुकः	या	श्रियायुत्सुकः
गुरौ	+	उत्कः	=	गुरा	उत्कः	या	गुरावुत्कः
रात्रौ	+	आगतः	=	रात्रा	आगतः	या	रात्रावागतः
ऋतौ	+	अन्नम्	=	ऋता	अन्नम्	या	ऋतावन्नम्

मध्यस्थ[3] व्यंजन अथवा विसर्ग के लोप हो जाने पर जब कोई दो स्वर समीप आ जायँ तो प्रायः उनकी आपस में सन्धि नहीं होती ।

(ख)[4] जब ओ या औ के बाद यकारादि प्रत्यय (ऐसा प्रत्यय, जिसके

---

१ एचोऽयवायावः ।६।१।७८।

२ लोपः शाकल्यस्य ।८।३।१९।

३ 'पूर्वत्रासिद्धमिति' लोपशास्त्रस्यासिद्धत्वान्न स्वरसन्धिः ।

४ वान्तो यि प्रत्यये ।६।१।७९।

आरम्भ में 'य्' हो) आवे तो "ओ" और "औ" के स्थान में क्रम से अव् और आव् हो जाते हैं; यथा—

(गोर्विकारो) गो+यत्=गव्यम् । (नावा तार्यं) नौ+यत्=नाव्यम् ।

११—पदान्त[1] एकार या ओकार के बाद यदि "अ" आवे तो दोनों के स्थान में क्रमशः—एकार तथा ओकार (पूर्वक) हो जाते हैं, और ऽ चिह्न अ की पूर्व उपस्थिति की सूचना मात्र देने को दिया जाता है, जैसे—

हरे + अव = हरेऽव (हे हरि रक्षा कीजिए) ।
विष्णो + अव =विष्णोऽव (हे विष्णु रक्षा कीजिए) ।

(क)[2] परन्तु गो शब्द के आगे अ आये तो विकल्प से प्रकृतिभाव भी हो जाता है, जैसे—गो+अग्रम्=गो अग्रम्, अन्यथा पूर्वनियम से पूर्वरूप होने पर गोऽग्रम् होता है ।

(ख)[3] यदि गो के बाद कोई स्वर हो तो गो के ओ के लिए 'अव' का आदेश भी विकल्प से हो जाता है, जैसे—

गो+अग्रम्+गवाग्रम् या गो अग्रम् या गोऽग्रम् ।

(ग)[4] यदि इन्द्र शब्द आगे रहे, तो गो के ओ को 'अव' आदेश नित्य होता है । जैसे—गो+इन्द्रः=गवेन्द्रः ।

१२—यदि[5] प्लुत स्वर के बाद अथवा प्रगृह्यसंज्ञक वर्णों के बाद कोई स्वर आवे तो सन्धि नहीं होती । प्रगृह्यसंज्ञा वाले वर्ण इस प्रकार हैं—

(क)[6] जब संज्ञा अथवा सर्वनाम अथवा क्रियावाचक शब्द के द्विवचन रूप के अन्त में "ई", "ऊ" या "ए" रहता है, तो उस "ई", "ऊ" और "ए" को 'प्रगृह्य' कहते हैं; जैसे—हरी एतौ, विष्णू इमौ, गङ्गे अमू, पचेते इमौ ।

---

१ एङः पदान्तादति ।६।१।१०९।

२ सर्वत्र विभाषा गोः ।६।१।१२२।

३ अवङ स्फोटायनस्य ।६।१।१२३।

४ इन्द्रे च ।६।१।१२४।

५ प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ।६।१।१२५।

६ ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् ।१।१।११।।

(ख)[1] जब अदस् शब्द के मकार के बाद ई या ऊ आते हैं तो वे प्रगृह्य होते हैं; जैसे—अमी ईशाः, अमू आसाते (इसमें उस ई या ऊ का द्विवचनान्त होना आवश्यक नहीं)।

(ग)[2] आङ के अतिरिक्त अन्य एकस्वरात्मक निपातों (अव्ययों) की भी प्रगृह्य संज्ञा होती है; जैसे—इ इन्द्रः, उ उमेशः, आ एवं नु मन्यसे।

(घ)[3] जब निपात (अव्यय) ओकारान्त हो तो ओ को प्रगृह्य कहते हैं, जैसे— अहो ईशाः।

(ङ)[4] संज्ञा शब्दों के सम्बोधन के अन्त के ओकार के बाद "इति" शब्द आवे तो सम्बुद्धि निमित्तक उस ओकार की विकल्प से प्रगृह्य संज्ञा होती है; जैसे—विष्णो+इति=विष्णो इति, विष्ण इति विष्णविति।

प्लुतों के साथ भी सन्धि नहीं होती; जैसे—एहि कृष्ण३ अत्र गौश्चरति। यहाँ दूर से पुकारने वाले वाक्य की 'टि' प्लुत हो गयी।[5]

हल् सन्धि

१३—(क[6]) जब सकार या तवर्ग शकार या चवर्ग के योग में आता है तो सकार और तवर्ग के स्थान में क्रम से शकार और चवर्ग हो जाता है; जैसे—

हरिस्+शेते=हरिश्शेते—हरि सोता है
रामस्+चिनोति=रामश्चिनोति—राम इकट्ठा करता है।
सत्+चित्=सच्चित्—सत्य और ज्ञान।
शार्ङ्गिन्+जय=शार्ङ्गिञ्जय—हे विष्णु जय हो।
सत्+शिष्यः=सच्शिष्यः (अच्छा शिष्य) (इसका सच्छिष्यः रूप आगे शश्छोटि नियम में बताया जायगा)।

---

१ अदसो मात् १।१।१२।
२ निपात एकाजनाङ ।१।१।१४।
३ ओत् १।१।१५।
४ संबुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे ।१।१।१६।
५ दूराद्धते च ।८।२।८४।
६ स्तोः श्चुना श्चुः ।८।४।४०।

अपवाद[1]—जब तवर्ग "श्" के बाद आते हैं, तो उनके स्थान में चवर्ग नहीं होते; जैसे—विश्+नः=विश्नः। प्रश्+नः=प्रश्नः।

(ख)[2] जब स् अथवा तवर्ग ष् या टवर्ग के योग में आता है तो स् के स्थान में ष् और तवर्ग के स्थान में टवर्ग हो जाते हैं; जैसे—रामस्+षष्ठः=रामष्षष्ठः। राम छठवाँ है। रामस्=टीकते=रामष्टीकते—राम जाता है।

तत्+टीका=तट्टीका—उसकी व्याख्या।
चक्रिन्+ढौकसे=चक्रिण्ढौकसे—हे कृष्ण, तू जाता है।
पेष्+ता=पेष्टा—पीसने वाला।

(ग) पदान्त[3] टवर्ग से परे 'नाम' प्रत्यय (तथा नवति और नगरी शब्दों) के नकार को छोड़कर कोई तवर्ग-वर्ण या सकार हो, तो उसके स्थान में टवर्ग या षकार आदेश नहीं होता; जैसे—

षट्+सन्तः=षट्सन्तः। षट्+ते=षट् ते।
परन्तु षड्+नाम्=षण्णाम्। षड्+नवतिः=षण्णवतिः।
षड्+नगर्यः=षण्णगर्यः में टवर्ग आदेश हो जाता है।

(घ) यदि[4] तवर्ग के किसी अक्षर के बाद ष् आवे तो उसके स्थान पर मूर्धन्य नहीं होता; जैसे—सन्+षष्ठः=सन्षष्ठः।

१४—जब[5] झल् (अर्थात् अन्तःस्थ और अनुनासिक व्यंजन को छोड़कर और किसी भी व्यंजन) के उपरान्त झश् (अर्थात् किसी वर्ग का तृतीय अथवा चतुर्थ वर्ण) आवे, तो पूर्ववर्ती व्यंजन जश् (अर्थात् अपने वर्ग के तृतीय वर्ण) में परिणत हो जाता है। (यह सन्धि प्रायः अपदान्त वर्णों में ही चरितार्थ होती है। पदान्त वर्णों में तो आगे वाली विधि प्रवृत्त होगी) जैसे—

१ शात्।८।४।४४।
२ ष्टुना ष्टुः ८।४।४१।
३ नपदान्ताट्टोरनाम्।८।४।४२। (अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्—वा०)
४ तोः षि।८।४।४३।
५ झलां जश् झशि।८।४।५३।

वृध्+धः=वृद्धः । सन्नध्+धः=सन्नद्धः ।

(क) पदान्त[1] के 'झल्' के स्थान में 'जश्' आदेश हो जाता है; जैसे—
वाक्+ईशः=वागीशः । जलमुक्+गर्जति=जलमुग्गर्जति ।

१५—यदि[2] यर् प्रत्याहार (अर्थात् ह को छोड़कर किसी पदान्त व्यंजन) के बाद कोई अनुनासिक वर्ण आवे, तो यर् के स्थान में उसी वर्गवाला अनुनासिक वर्ण विकल्प से होता है; और यदि किसी प्रत्यय का अनुनासिक वर्ण आगे हो, तो नित्य होता है। जैसे—

एतद्+मुरारिः—एतन्मुरारिः । षट्+मासाः=षण्मासाः ।
षट्+नगर्यः=षण्णगर्यः । तद्+मात्रम्=तन्मात्रम् ।
चिद्+मयम्=चिन्मयम् । वाक्+मयम्=वाङ्मयम् ।

[3]क् से म् तक के वर्णों में यह नियम सुविधा के साथ चरितार्थ हो जाता है, अतः र् का सवर्णी अनुनासिक करने में नहीं लगता । अतएव चतुर्मुखः आदि में र् के स्थान में कोई अनुनासिक वर्ण नहीं होता । (बचे यण् और ऊष्मा, उनमें य् व् ल् का तो अनुनासिक हो भी सकता है, श् ष् स् की तो अन्त में सत्ता ही दूसरे रूप में रहती है ।)

१६—तवर्ग[4] के बाद यदि ल् आवे तो उसके स्थान में ल् हो जाता है; जैसे—
तत्+लयः=तल्लयः (उसका नाश) ।
वृक्षात्+लगुडम्=वृक्षाल्लगुडम् ।
(न् के स्थान में ल् अनुनासिक अर्थात् लँ होता है)
विद्वान् + लिखति=विद्वाल्लिँखति ।

---

१ झलां जशोऽन्ते ।८।२।३९।
२ यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ।८।४।४५।
प्रत्यये भाषायां नित्यम् (वा०)
३ स्थानप्रयत्नाभ्यामन्तरतमे स्पर्शे चरितार्थो विधिरयं रेफे न प्रवर्तते । सि० कौ० ।।
४ तोर्लि ।८।४।६०।

(क) यदि[1] उद् के पश्चात् स्था या स्तम्भ शब्द आवें तो उनके स् को थ् का आदेश होगा। जैसे उद्+स्थानम्=उत्थ्थानम्:; और स् के स्थान में आदिष्ट इस थ् का विकल्प से लोप होने पर उत्थानम्[2] भी रूप बनता है। उद्+स्तम्भनम्=उत्तम्भनम्। थ का लोप न होने पर उत्थ्तम्भनम् रूप बनेगा (इस आदिष्ट थ् को त् करने पर थ् आदेश ही असिद्ध हो जायगा); (द् के स्थान में त् कैसे हुआ इसके लिए देखिए नियम १८)

१७—यदि[3] वर्गों के प्रथम, द्वितीय, चतुथ वर्णों अर्थात् य् प्रत्याहार के बाद ह् आवे तो ह के स्थान में उसी वर्ग का चौथा अक्षर विकल्प से होता है; जैसे—वाक्+हरि:=वाग्घरि: अथवा वाग्हरि:।

यहाँ कवर्ग के प्रथम अक्षर क् के बाद ह् आया है अतः ह् के स्थान में कवर्ग का चतुर्थ अक्षर घ् हो गया, (क् के स्थान में ग् कैसे हुआ, इसके लिए देखिए नियम १४)।

१८—झल्[4] अर्थात् अनुनासिक व्यंजन (ञ्, म्, ङ, ण्, न,) तथा अन्तःस्थ वर्णों को छोड़कर और किसी व्यंजन के बाद यदि खर् अर्थात् क्, ख्, च्, छ ट्, ठ्, त्, थ्, प्, फ् में से कोई वर्ण आवे तो पूर्वोक्त व्यंजन के स्थान में चर् अर्थात् उसी वर्ग का प्रथम वर्ण हो जाता है, परन्तु[5] जब उसके बाद कुछ भी नहीं रहता, तब उसके स्थान में प्रथम अथवा तृतीय वर्ण हो जाता है; जैसे—उद्+कीर्ण::=उत्कीर्णः। सुहृद्+क्रीडति=सुहृत्क्रीडति। वाक्, वाग्। रामात्, रामाद्।

१९—श्[6] यदि किसी ऐसे शब्द के बाद आवे, जिसके अन्त में झय् (अर्थात् वर्गों के प्रथम, द्वितीय या चतुर्थ वर्ण) हों और श् के बाद अट् बल्कि अम् तक

---

१ उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य ८।४।६१।

२ झरो झरि सवर्णे ८।४।६५।

३ झयो होऽन्यतरस्याम्।८।४।६२।

४ खरि च।८।४।५५।

५ वाऽवसाने।८।४।५६।

६ शश्छोऽटि।८।४।६२। छत्वममीति वाच्यम्।

(अर्थात् कोई स्वर, अन्तःस्थ, अनुनासिक व्यंजन या ह्) रहे तो श् के स्थान में विकल्प से छ होता है, जैसे—

तद्+शिवः=तच्छिवः, तच्शिवः ।

तद्+श्लोकेन=तच्छ्लोकेन, तच्श्लोकेन ।

२०—पदान्त[1] म् के बाद यदि कोई व्यंजन आवे, तो उसके स्थान में अनुस्वार हो जाता है, जैसे—

हरिम्+वन्दे=हरिं वन्दे । गृहम्+चलति=गृहं चलति ।

किन्तु गम्+य+ते=गम्यते, न कि गंयते होगा; क्योंकि म् पद के अन्त में नहीं है, बल्कि बीच में है ।

२१—अपदान्त[2] म्, न् के बाद यदि झल् (अर्थात् अनुनासिक व्यंजन तथा अन्तःस्थ को छोड़ कर कोई भी व्यंजन) आवे, तो म्, न् के स्थान में अनुस्वार हो जाता है; जैसे—

आक्रम्+स्यते=आक्रंस्यते । यशान्+सि=यशांसि ।

परन्तु मन्+यते=मन्यते । यहाँ मंयते नहीं होगा, क्योंकि यहाँ पर न् के बाद य आ जाता है जो कि अन्तःस्थ है ।

उसी प्रकार ग्रामान्+गच्छति=ग्रामान् गच्छति । यहाँ पर ग्रामां गच्छति नहीं होगा, क्ययोंकि न् पद के अंत में है ।

२२—यदि[3] पद के मध्य में स्थित अनुस्वार के बाद यय् (अर्थात् श्, ष्, स् और ह् को छोड़कर कोई भी व्यंजन) आवे, तो अनुस्वार के स्थान में सर्वदा ही उस वर्ग का पंचम वर्ण हो जाता है, जिस वर्ग का व्यंजन वर्ण अनुस्वार के बाद रहता है; जैसे—

गम्+ता=गं+ता (२१)=गन्ता । सन्+ति=संति (२१) =सन्ति । अन्क्+इतः=अंक्+इतः (२१)=अंकितः । शाम्+तः=शां+तः (२१)शान्तः । अन्च्+इतः=अंच+इतः (२१) =अञ्चितः ।

---

१ मोऽनुस्वारः ८।३।२३।

२ नश्चापदान्तस्य झलि ।८।४।२४।

३ अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः । ८।४।५८।

(क) यदि[1] अनुस्वार किसी पद के अन्त में रहे तो ऊपर वाला नियम विकल्प से लगता है; जैसे—त्वम्+करोषि=त्वं करोषि या त्वङ्करोषि। तृणम्+चरति=तृणंचरति या तृणञ्चरति। नदीम्+तरति=नदीं तरति या नदीन्तरति। पुस्तकम्+पठति=पुस्तकं पठति या पुस्तकम्पठति।

(ख) किन्तु[2] जव राज् धातु परे हो और उसमें क्विप् प्रत्यय जुड़ा हो तव पूर्ववर्ती सम् का म् ही रहेगा, अनुस्वार नहीं होगा; जैसे—

सम्+राट्=सम्राट्।

२३—किसी[3] एक ही पद में यदि र्, ष् अथवा ह्रस्व या दीर्घ ऋ के वाद न् आवे तो न् के स्थान में ण् हो जाता है और यदि र्, ष् और न् के बीच में कोई स्वर, य्, व्, र्, ह्, कवर्ग, पवर्ग, आङ तथा अनुस्वार में से कोई एक अथवा कई का व्यवधान आ जाय, तव भी न् के स्थान में ण् होता है। इस नियम के प्रयोग को णत्वविधान कहते हैं; जैसे—

चतुर्+नाम्=चतुर्णाम्। पूष्+ना=पूष्णा। पितृ+नाम्=पितॄणाम्।

मित्रा+नि=मित्राणि। द्रव्ये+न=द्रव्येण। रामे+न=रामेण।

शीर्षा+नि=शीर्षाणि।

किन्तु ऋषि+निवासः=ऋषिनिवासः, यहाँ "ऋषिणिवासः" नहीं होगा, क्योंकि "ऋषि" और "निवासः" दो अलग-अलग पद हैं।

किन्तु[4] जब न् किसी पद के अन्त में आता है तो वह ण् नहीं होता; जैसे—रामान्, पितॄन्, वृषभान्, ऋषीन्।

२४—यदि[5] इण् (अर्थात् अ, आ को छोड़ कर किसी स्वर, अन्तःस्थ वर्ण, ह्) अथवा कवर्ग के वाद कोई प्रत्यय सम्बन्धी स्, या किसी दूसरे वर्ण के स्थान में

---

१ वा पदान्तस्य।८।४।५९।

२ मोराजि समः क्वौ।८।२।२५।

३ रषाभ्यां नो णः समानपदे। अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि।८।४।१२।
ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्—(वा०)।

४ पदान्तस्य।८।४।३७।

५ अपदान्तस्य मूर्धन्यः। इण्कोः। आदेशप्रत्यययोः।८।३।५५,५७,५९।

आदेश किया हुआ स् आवे और वह पदान्त का न हो, उस स् के स्थान में ष् हो जाता है । जैसे रामे+सु=रामेषु । वने+सु=वनेषु ।

ए+साम्=एषाम् । अन्ये+साम्=अन्येषाम् ।

इसी प्रकार मतिषु, नदीषु, धेनुषु, वधूषु, धातृषु, गोषु, ग्लौषु आदि जानना चाहिए ।

किन्तु राम+स्य=रामस्य; यहाँ ष् नहीं हुआ क्योंकि यह स् के पूर्व 'अ' आया है । इसी प्रकार पेस्+अति=पेसति में षत्व नहीं हुआ; क्योंकि यह स् न तो किसी प्रत्यय का है, न आदेश का ।

(क) यदि स् पद के अन्त में हो तो षत्वविधान न होगा, यथा—हरिः (यहाँ हरि शब्द के बाद आया हुआ 'स्' सु प्रत्यय का अवयव अवश्य है, किन्तु पद के अन्त में है, इस कारण षत्व नहीं हुआ) ।

(ख) ऊपर[१] वर्णित वर्णों में से यदि कोई वर्ण स् के ठीक पहले न हो, किन्तु अनुस्वार (न् के स्थान में आया हुआ), विसर्ग, श्, ष्, स् में से कोई वर्ण स् और पूर्व वर्णित वर्णों के बीच में आ जाय, तब भी षत्वविधि होगी; यथा—धनून्+सि=धनूंषि ।

२५—सम् उपसर्ग के म् के बाद यदि कृधातु का कोई रूप आवे (जो भूषित करने के अर्थ में होने के कारण सुट् अर्थात् पूर्व में स् से युक्त होता है) तो म् के स्थान में र् होता है, और र् के पूर्व का स्वर अनुनासिक हो जाता है । र् विसर्ग होकर फिर स् में परिणत हो जाता है यथा—सम्+स्कर्ता=सँस्+स्कर्ता=सँः+स्कर्ता=सँस्कर्ता । अनुनासिक के विकल्प पक्ष में उस पूर्व स्वर के आगे अनुस्वार जुट जाता है । यथा—संस्कर्ता ।

भाष्यकार के एक विशेष वचन द्वारा सम् के म् का ही लोप हो जाता है, जिससे एक सकार का भी रूप साधु माना जाता है । किन्तु म् का लोप भी अपने

---

१ नुम् विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ।८।३।५८।

पूर्ववर्ती स के स्वर में अनुनासिक तथा अनुस्वार का विकल्प से विधान करके ही होता है।[1]

२६—छ तथा छ के पूर्व वाले ह्रस्व[2] या दीर्घ[3]-स्वर के बीच में च् नित्य आता है; जैसे—(i) शिव+छाया=शिवच्छाया । वृक्ष+छाया=वृक्षच्छाया । (ii) चे+छिद्यते=चेच्छिद्यते ।

(क) किन्तु[4] छ के पूर्व (आङ उपसर्ग को तथा "मा" के आ को छोड़कर) कोई पदान्त दीर्घ स्वर आवे, तो ऊपरवाला नियम (छत्वविधान) विकल्प से लगता है, जैसे—लक्ष्मी+छाया=लक्ष्मीछाया या लक्ष्मीच्छाया ।

(ख) छ के पूर्व आङ और माङ[5] का आ होने पर च् अवश्य (नित्य) आयेगा; जैसे—मा+छिदत्=माच्छिदत् । यहाँ यही एक रूप होगा । माछिदत् न होगा । इसी प्रकार आ+छादयति="आच्छादयति" । यहाँ भी एक रूप होगा, "आछादयति" न होगा ।

विसर्ग सन्धि

२७—(१) पदान्त[6] स् तथा सजुष् शब्द के ष् के स्थान में र् (रु) हो जाता है । इस पदान्त[7] र् के बाद खर् प्रत्याहार (वर्गों के प्रथम और द्वितीय

१ संपरिभ्यां करोतौ भूषणे ।६।१।१३७।, समः सुटि ।८।३।५, अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा ।८।३।२, अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः ।८।३।४, सम्पुंकानां सो वक्तव्यः, . "समो वा लोपमेके" इति भाष्यम् । लोपस्यापि रुप्रकरणस्थत्वादनुस्वारानुनासिकाभ्यामेकसकारं रूपद्वयम् । सि० कौ० ।

२ छे च ।६।१।७३।

३ दीर्घात् ।६।१।७५।

४ पदान्ताद्वा ।६।१।७३।

५ आङ्माङोश्च ।६।१।७४।

६ ससजुषो रुः ।८।२।६६।

७ खरावसानयोर्विसर्जनीयः ।८।३।१५।

वर्ण तथा श्, ष्, स्) का कोई वर्ण हो अथवा कोई भी वर्ण न हो, तो र् के स्थान में विसर्ग हो जाता है; जैसे—रामस्+पठति=रामर्+पठति=रामः पठति। रामस्=रामर्=रामः। सजुष्=सजुर्=सजुः।

२८—यदि विसर्ग[1] के बाद खर् प्रत्याहार के वर्णों में से कोई वर्ण आवे, तो विसर्ग के स्थान में स् हो जाता है; जैसे—

हरिः+चरति=हरिस्+चरति=हरिश्चरति।

रामः+टङ्कारयति=रामस्+टङ्कारयति=रामष्टङ्कारयति।

विष्णुः+त्राता=विष्णुस्त्राता।

(क) और यदि[2] विसर्ग के बाद श्, ष्, स्, आवे, तो विसर्ग के स्थान में स् विकल्प से होता है, जैसे—

हरिः+शेते=हरिस्+शेते=हरिश्शेते या हरिः शेते।

रामः+षष्ठः=रामस्+षष्ठः या रामः षष्ठः।

(ख) परन्तु यदि[3] विसर्ग के बाद क्, ख्, प्, फ् में से कोई वर्ण आवे, तो विसर्ग के स्थान में या तो विसर्ग ही बना रहता है या क् तथा ख् के आगे रहने पर जिह्वामूलीय ≍ तथा प् और फ् के आगे रहने पर उपध्मानीय ≍ हो जाता है; जैसे—

एकः काकः=एकः काकः या एक≍काकः।

सुधियः पाहि=सुधियः पाहि या सुधिय≍पाहि।

(ग) यदि[4] विसर्ग के बाद आने वाले खर् प्रत्याहार के वर्ण के अनन्तर शर् (श्, ष्, स्) प्रत्याहार का कोई वर्ण आवे तो विसर्ग के स्थान में विसर्ग ही होता है, जैसे—

कः+त्सरुः=कःत्सरुः। यहाँ विसर्ग के स्थान में स् नहीं हुआ।

घनाघनःक्षोभणः। यहाँ क्षो के पूर्व के विसर्ग को जिह्वामूलीय न हुआ।

---

१ विसर्जनीयस्य सः।८।३।३४।

२ वा शरि।८।३।३६।

३ कुप्वोः≍क≍पौ च।८।३।३७।

४ शर्परे विसर्जनीयः।८।३।३५।

२९—ककारादि[1], खकारादि, पकारादि, फकारादि धातुओं के पूर्व यदि नमः तथा पुरः शब्द गतिसंज्ञक के रूप में आये हों तो इनके विसर्ग के स्थान में स् हो जाता है। किन्तु नमः को विकल्प से तथा पुरः (आगे अर्थ वाला अव्यय शब्द) को नित्य रूप से गति संज्ञा होने के कारण नमः के विसर्ग के स्थान में विकल्प से तथा पुरः के विसर्ग के स्थान में नित्य रूप से स् होता है; जैसे—

नमः+करोति=नमस्करोति या नमःकरोति।

पुरः+करोति=पुरस्करोति, इसमें अवश्य विसर्ग का स् होगा।

पुरः (नगरियाँ)+प्रवेष्टव्याः=पुरः प्रवेष्टव्याः=यहाँ पर पुरः के विसर्ग के स्थान में स् नहीं हुआ; क्योंकि पुर यहाँ पर अव्यय नहीं है, संज्ञा है।

३०—यदि[2] तिरस् के बाद क्, ख्, प्, फ् आवे तो स् विकल्प से बना रहता है; जैसे—

तिरस्+करोति=तिरस्करोति या तिरःकरोति।

३१—यदि क्रियाभ्यावृत्ति (अनेक बार) वाचक द्विः,[3] त्रिः और चतुः क्रिया-विशेषण अव्ययों के बाद क्, ख् प्, फ् आवे तो विसर्ग के स्थान में विकल्प से ष् हो जाता है; जैसे—

द्विः+करोति=द्विस्+करोति=द्विष्करोति या द्विःकरोति। इसी प्रकार त्रिः+खादति=त्रिष्खादति या त्रिःखादति। चतुः+पठति=चतुष्पठति या चतुःपठति।

किन्तु चतुः+कपालः=चतुष्कपालः (चतुःकपालः नहीं) क्योंक 'चार कपालों में बना हुआ' अन्न—यहाँ चतुः क्रियाविशेषण अव्यय नहीं है। यहाँ "कस्कादिषु च" (वा०) इस नियम से नित्य षत्व होता है।[4]

---

१ नमस्पुरसोर्गत्योः।८।३।४०। साक्षात्प्रभृतित्वात्क्रञो योगे विभाषा गतिसंज्ञा। तदभावे नमः करोति। 'पुरोऽव्ययम्' ।१।४।६७। इति नित्यं गतिसंज्ञा। पुरस्करोति।—सि० कौ०।

२ तिरसोऽन्यतरस्याम् ।८।३।४२।

३ द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे ।८।३।४३।

४ चतुष्कपाल इत्यत्र तु कस्कादेराकृतिगणत्वात् षत्वप्रवृत्तिरित्याहुः——तत्त्वबोधिनी।

३२—स्[1] के स्थान में आदिष्ट र् (द्रष्टव्य नियम २७) के (मौलिक र् के स्थान में किये हुए विसर्ग के नहीं) पूर्व यदि ह्रस्व "अ" आवे और बाद को ह्रस्व "अ" अथवा हश् प्रत्याहार का वर्ण आवे तो र् का "उ" हो जाता (उसको विसर्ग भी नहीं हो पाता) है; जैसे—

शिवस्+अर्च्यः=शिवर्+अर्च्यः=शिव+उ+अर्च्यः=शिवो+अर्च्यः= शिवोऽर्च्यः। इसी प्रकार, सस्+अपि=सोऽपि। रामस् अस्ति= रामोऽस्ति। एषस्+अब्रवीत्=एषोऽब्रवीत्।

देवस् + वन्द्यः=देवो वन्द्यः। वालस्+गच्छति=वालो गच्छति। हरस्+याति=हरो याति। वृक्षस्+वर्धते=वृक्षो वर्धते।

किन्तु प्रातर्+अत्र=प्रातरत्र। यहाँ पर र् का उ नहीं हुआ, क्योंकि र् को स् के स्थान में नहीं किया गया है, इसी प्रकार प्रातर्+गच्छ=प्रातर्गच्छ में भी उ नहीं हुआ।

(क) यदि[2] स् के स्थान में आदिष्ट र् के पूर्व भो, भगो, अघो और ह्रस्व या दीर्घ अ हो और उसके अनन्तर अश् प्रत्याहार का वर्ण (कोई स्वर या हश् प्रत्याहार) हो तो र् को य् आदेश होता है, और आगे स्वर रहने पर इस य् का विकल्प से तथा व्यंजन रहने पर नित्य ही लोप हो जाता है; जैसे— भोस्+देवाः=भोर्+देवाः=भोय् देवाः=भो देवा। इसी प्रकार भो लक्ष्मि, भगो नमस्ते, अघो याहि, वाला गच्छन्ति, भक्ता जपन्ति, अश्वा धावन्ति, कन्या यान्ति।

किन्तु देवास्+इह=देवार्+इह=देवाय् इह=देवाइह या देवायिह। इसी प्रकार,

नरास्+आगच्छन्ति=नरा आगच्छन्ति या नरायागच्छन्ति। रामस्+एति=राम एति या रामयेति। जनस्+इच्छति=जन इच्छति या जनयिच्छति।

---

१ अतो रोरप्लुतादप्लुते।६।१।११३। हशि च।६।१।११४।

२ भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि।८।३।१७। तथा—हलि सर्वेषाम् ।८।३।२२।

शत्रवस्+आपतन्ति=शत्रव आपतन्ति या शत्रवयापतन्ति ।
मुनयस्+आप्नुवन्ति=मुनय आप्नुवन्ति या मुनययाप्नुवन्ति ।
ऋषयस् एते=ऋषय एते या ऋषययेते । कवयम्+ऊहन्ति=कवय ऊहन्ति या कवययूहन्ति ।

(ख) यदि अहन्[1] शब्द के परे विभक्तियों को छोड़कर कोई स्वर या हश् प्रत्याहारी आवे तो न् को र् आदेश होता है—

अहन्+अहः=अहर्+अहः=अहरहः । अहन्+गणः=अहर्गणः ।

किन्तु अहोभ्याम् में न् को र् नहीं हुआ, क्योंकि उसके बाद भ्याम् है जो विभक्ति है । यहाँ 'अहन्' ।८।२।६८। अर्थात् पदसंज्ञक अहन् के न् के स्थान में रु आदेश होता है—इसके अनुसार रु होकर, फिर 'हशि च' से उसके स्थान में उ हुआ और गुण होकर अहोभ्याम् हुआ ।

३३—स् के स्थान में आदिष्ट र् के पूर्व यदि अ और आ को छोड़कर कोई स्वर रहे और बाद को कोई स्वर अथवा हश् प्रत्याहार हो तो उस र् में कोई परिवर्तन नहीं होता है; जैसे—

अलिर्+अयम्=अलिरयम् । भानुर्+उदेति=भानुरुदेति । श्रीर्+एषा=श्रीरेषा । सुधीः+एति=सुधीरेति । गौर्+अयम्=गौरयम् ।
कविर्+वर्णयति=कविर्वर्णयति । गुरुर्+गच्छति=गुरुर्गच्छति ।
नौर्+याति=नौर्याति । लक्ष्मीर्+याति=लक्ष्मीर्याति ।

(क) र्[2] के बाद यदि र् आवे तो र् का लोप हो जाता है, और उसके पूर्व में आये हुए "अ" "इ" "उ" यदि ह्रस्व रहें तो वे दीर्घ हो जाते हैं; जैसे—

पुनर्+रमते=पुना रमते । हरिर्+रम्यः=हरी रम्यः ।
शम्भुर्+राजते=शम्भू राजते ।
कविर्+रचयति=कवी रचयति ।
गुरुर्+रुष्टः=गुरू रुष्टः । शिशुर्+रोदिति=शिशू रोदिति ।

---

१ रोऽसुपि ।८।२।६९।
२ रो रि ।८।३।१४। ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ।६।३।१११।

३४—यदि[1] किसी व्यंजन के पूर्व सस् (सः) अथवा एषस् (एषः) शब्द आवे तो उनके स् का लोप हो जाता है; जैसे—

सस्+शम्भुः=स शम्भुः। एषस्+विष्णुः=एष विष्णुः।

(क) यदि नञ् तत्पुरुष में ये सः और एषः (अर्थात् असः और अनेषः शब्द) आवें अथवा अन्त में क से युक्त होकर आवें (अर्थात् सकः, एषक;) तब विसर्ग-लोप की यह विधि नहीं लगती; यथा—'असः शिवः' का 'अस शिवः' न होगा, और न 'एषकः हरिणः' का 'एषक हरिणः' होगा।

(ख) यदि[2] सस् के सकार के परे स्वर हो और पद्य के पाद की पूर्ति इस लोप के द्वारा ही हो तो स् का लोप (और बाद में स्वरसन्धि कार्य भी) हो जाता है, यथा—सस्+एष दाशरथी रामः=सैष दाशरथी रामः।

---

१ एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ् समासे हलि ।६।१।१३४।

२ सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् ।६।१।१३४।

तृतीय सोपान

संज्ञा-विचार

३५—वाक्य भाषा का आधार है, और शब्द वाक्य का—यह पीछे कह आये हैं। संस्कृत में शब्द दो प्रकार के होते हैं—एक तो ऐसे जिनका रूप वाक्य के और शब्दों के सम्बन्ध से बदलता रहता है, और दूसरे ऐसे जिनका रूप सदा समान ही रहता है। न बदलने वालों में यदा, कदा आदि अव्यय हैं तथा कर्त्तुम्, गत्वा आदि कुछ क्रियाओं के रूप हैं। बदलने वालों में 'नाम' अर्थात् संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण एवं 'आख्यात' अर्थात् क्रिया हैं।

(क) हिन्दी की भाँति संस्कृत में भी तीन पुरुष होते हैं—उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष। अन्य पुरुष को संस्कृत में प्रथम पुरुष कहते हैं। हिन्दी में केवल दो वचन होते हैं—एक वचन, वहुवचन। किन्तु संस्कृत में इनके अतिरिक्त एक द्विवचन भी होता है जिससे दो का बोध कराया जाता है। संज्ञाएँ सब अन्य पुरुष में होती हैं।

(ख) संज्ञा के तीन लिङ्ग होते हैं—पुंल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग। संस्कृत भाषा में यह लिङ्गभेद किसी स्वाभाविक स्थिति पर निर्भर नहीं है; ऐसा नहीं है कि सब नर चेतन पुंल्लिङ्ग शब्दों द्वारा दिखाये जायँ, मादा चेतन स्त्रीलिङ्ग द्वारा और निर्जीव वस्तुएँ नपुंसक लिङ्ग द्वारा। प्रत्युत यह लिङ्गभेद कृत्रिम है। उदाहरणार्थ 'स्त्री' का अर्थ वताने के लिए कई शब्द हैं—स्त्री, महिला, गृहिणी, दार् आदि। उस पर भी 'दार' शब्द पुंल्लिङ्ग है। इसी प्रकार निर्जीव शरीर का बोध कराने के लिए कई शब्द हैं जिनके लिङ्ग भिन्न हैं; जिसे तनु (स्त्री०) देह और शरीर (नपुं०) तथा जल के लिए अप् (स्त्री०) और जल (नपुं०)। कई शब्द ऐसे हैं जिनके रूप एक से अधिक लिङ्गों में चलते हैं, जैसे गो शब्द पुंल्लिङ्ग में 'बैल' का वाचक है, और स्त्रीलिङ्ग में 'गाय' का। किन्हीं-किन्ही पुंल्लिङ्ग शब्दों में प्रत्यय जोड़ने से भी स्त्रीलिङ्ग के शब्द बनते हैं और किन्हीं से नपुंसक

शब्द बन जाते हैं। उदाहरणार्थ, सर्वनाम शब्द 'अन्य' के रूप तीनों लिङ्गों में अलग-अलग होते हैं। पुत्र—पुत्री, नायक—नायिका, ब्राह्मण—ब्राह्मणी आदि जोड़ी वाले शब्द हैं। इनका सविस्तर विचार आगे चलकर होगा। परन्तु अधिकांश ऐसे शब्द हैं जो एक ही हैं जो एक ही लिङ्ग के हैं —या तो पुंल्लिङ्ग या स्त्रीलिङ्ग या नपुंसकलिङ्ग। स्त्रीलिङ्गबोधक प्रत्ययों का विचार आगे किया जायगा।

३६—हिन्दी में कर्त्ता, कर्म आदि सम्बन्ध दिखाने के लिए ने, को, से आदि शब्द संज्ञा के पीछे अथवा सर्वनाम के पीछे जोड़ दिये जाते हैं; जैसे—गोविन्द ने मारा, गोविन्द को मारो, तुमने बिगाड़ा, तुमको डाँटा आदि। किन्तु संस्कृत में यह सम्बन्ध दिखाने के लिए संज्ञा या सर्वनाम आदि का रूप ही बदल देते हैं, यथा 'गोविन्द ने' की जगह 'गोविन्दः', 'गोविन्द को' की जगह 'गोविन्दम्' और 'गोविन्द का' की जगह 'गोविन्दस्य'। इस प्रकार एक ही शब्द के कई रूप हो जाते हैं। प्रथमा, द्वितीया आदि से लेकर सप्तमी तक सात विभक्तियाँ (अथवा भाग) होती हैं।

नोट—[१] जिन शब्दों के आगे ये सातों विभक्तियाँ जुड़ती हैं उन्हें प्रातिपदिक कहते हैं। ये प्रातिपदिक दो प्रकार के होते हैं। एक वे अर्थवान् शब्द जिनका किसी धातु, प्रत्यय, प्रत्ययान्त से सम्बन्ध न हो तथा दूसरे वे जो कृदन्त तद्धितान्त अथवा समस्त हों। इनमें प्रथम प्रकार के अव्युत्पन्न तथा दूसरे प्रकार के व्युत्पन्न प्रातिपदिक कहे जाते हैं।

विभिन्न[२] कारकों को प्रकट करने के लिए प्रातिपदिकों में जो प्रत्यय लगाये या जोड़े जाते हैं, उन्हें सुप् कहते हैं। इसी प्रकार विभिन्न काल की क्रियाओं का अर्थ प्रकट करने के लिए धातुओं में जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं, उन्हें तिङ कहते हैं। इन्हीं सुप् और तिङ को विभक्ति कहते हैं।

---

१ अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् ।१।२।२४।
कृत्तद्धितसमासाश्च ।१।२।४६।

२ विभक्तिश्च ।१।४।१०४। सुप्तिङ विभक्तिसंज्ञौ स्तः।

विभक्ति	अर्थ	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ने	सु	औ	जस्
द्वितीया	को	अम्	औट्	शस्
तृतीया	से, के द्वारा	टा	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	के लिए	ङे	भ्याम्	भ्यस्
पञ्चमी	से	ङसि	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी	का, की, के	ङस्	ओस्	आम्
सप्तमी	में, पै, पर	ङि	ओस्	सुप्

सम्बोधन[1] में भी प्रथमा ही विभक्ति प्रयुक्त होती है। इन विभक्ति-सूचक प्रत्ययों को सुप् कहते हैं। इनके जोड़ने की विधि थोड़ी जटिल है। उदाहरणार्थ "सु" का "उ" उड़ा दिया जाता है क्योंकि वह अनुनासिक है। केवल स् रह जाता है; यथा—राम+सु=रामस्=रामः। कहीं-कहीं यह स् भी बिलकुल उड़ा दिया जाता है; यथा—विद्या+सु=विद्या। टा का ट् लोप कर दिया जाता है क्योंकि प्रत्यय के आदि में चवर्ग टवर्ग लुप्त हो जाते हैं। भगवत्+टा=भगवत्+आ=भगवता। किन्तु कहीं टा का स्थान "इन" ले लेता है; यथा—नर+इन=नरेण। परन्तु यह विधि जटिल होने पर भी इतनी सुव्यवस्थित है कि एक बार समझ लेने पर शब्दों के रूप बनाने में कोई कठिनाई नहीं रह जाती। इन प्रत्ययों के जोड़ने की संक्षिप्त विधि दी जा रही है—

(१) जस् के ज्, शस् के श्, टा के ट्, ङे, ङसि, ङस् और ङि के ङ की 'चूटू' एवं 'लशक्वतद्धिते' नियमों के अनुसार इत्संज्ञा होकर इनका लोप हो जाता है।

(२) (क) [2]ह्रस्व अकारान्त से टा, ङसि और ङस् को क्रम से इन, आत् और स्य आदेश होते हैं।

(ख) ह्रस्व अकारान्त[3] शब्द से भिस् के स्थान पर एस् आदेश होता है।

---

१ सम्बोधने च।२।३।४७।

२ टाङसिङसामिनात्स्याः।७।१।१२।

३ अतो भिस् ऐस्।७।१।९।

(ग) ह्रस्व अकारान्त[1] शब्द से ङ को य आदेश होता है।

(घ)[2] घिसंज्ञक (स्त्रीलिङ्ग शब्दों को छोड़कर) शब्द में टा जुड़ने पर उसे ना आदेश होता है।

(ङ)[3] ङे, ङसि, ङस्, ङि इन प्रत्ययों के परवर्त्ती होने पर घिसंज्ञक शब्दों के अन्त में आने वाले स्वर को गुण होता है, यथा—

हरि+ङे=हरि+ए=हरे+ए=हरये।

(च)[4] एकारान्त तथा ओकारान्त शब्द में आने वाला ङसि तथा ङस् का अपूर्ववर्ती ए अथवा ओ के रूप में मिल जाता है, यथा हरि+ङसि=हरि+अस्=हरे+अस्=हरे+स्=हरेः। विष्णो+ङसि=विष्णो+अस्=विष्णोः।

(छ) इ[5] और उ के पश्चात् ङि की इ को औ आदेश होता है और इ तथा उ के स्थान में अकार हो जाता है। हरि+ङि=हरि+इ=हर+औ=हरौ।

(ज) ऋकारान्त[6] प्रातिपदिक के पश्चात् जब ङसि या ङस् आवें तो ऋ और ङसि या ङस् के अ दोनों को उ आदेश होता है।

(झ) जब आकारान्त[7] (टाप् प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग) शब्द में औङ (औ, औट्) जुड़ता है तो औङ के स्थान में (शी) ई का आदेश होता है।

(ञ) जब आकारान्त[8] (स्त्रीलिङ्ग) शब्द में आङ (टा तृतीया एकवचन) और ओस् जुड़ते हैं तो आ के स्थान पर ए का आदेश होता है।

(ट) आकारान्त[9] (स्त्रीलिङ्ग) शब्द से ङे, ङसि, ङस् और ङि के जुड़ने पर उन विभक्तियों के पूर्व या का आगम होता है।

---

१ ङेर्यः।७।१।१३।

२ आङोनाऽस्त्रियाम्।१।३।१२०।

३ घेर्ङिति।७।३।१११।

४ ङसिङसोश्च।

५ अच्च घेः।७।३।११९।

६ ऋत उत्।६।१।१११।

७ औङ आपः।७।१।१८।

८ आङि चापः।७।३।१०५।

९ याडापः।७।३।११३।

(ठ) आकारान्त[1] टाप् प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग सर्वनाम के पश्चात् ङे, ङसि, ङस् और ङि के जुड़ने पर आकार हो जाता है तथा प्रत्यय के पूर्व स्या का आगम होता है।

(ड) आकारान्त[2] नपुंसकलिङ्ग प्रातिपादिक से सु और अम् को अम् आदेश होता है।

(ढ) नपुंसकलिङ्ग[3] शब्द से औङ जुड़ने पर उसके स्थान में ई (शी) का आदेश होता है।

(ण) नपुंसकलिङ्ग[4] प्रातिपदिक से जस् और शस् जुड़ने पर उनके स्थान पर इ (शि) का आदेश होता है तथा इ के पूर्व न् (नुम्) का आगम होता है।

(त) नपुंसकलिङ्ग[5] (अकारान्त से अतिरिक्त) प्रातिपदिक के पश्चात् सु और अम् का लोप हो जाता है।

(थ) इगन्त[6] नपुंसकलिङ्ग प्रातिपदिक के पश्चात् अजादि प्रत्यय आने पर प्रातिपदिक के अन्त में न् का आगम होता है।

(द) ह्रस्वस्वरान्त[7], नदीसंज्ञक और टाप्प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों से आम् विभक्ति जुड़ने पर विभक्ति के पूर्व न् (नुट्) का आगम होता है।

३७—संस्कृत में प्रातिपदिक पहले दो भागों में विभक्त किये जाते हैं—(१) स्वरान्त, (२) व्यंजनान्त। स्वरान्त में अकारान्त शब्द प्रायः सभी पुंल्लिङ्ग अथवा नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। आकारान्त प्रायः स्त्रीलिङ्ग में होते हैं। थोड़े से ही पुंल्लिङ्ग में होते हैं। इकारान्त शब्द कोई पुंल्लिङ्ग

---

१ सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च ।७।३।११४।

२ अतोऽम् ।७।१।२४।

३ नपुंसकाच्च ।७।१।१९।

४ जश्शसोः शिः ।७।१।२०। नपुंसकस्य झलचः ।७।१।७२।

५ स्वमोर्नपुंसकात् ।७।१।२३।

६ इकोऽचि विभक्तौ ।७।१।७३।

७ ह्रस्वनद्यापो नुट् ।७।१।५४।

में, कोई स्त्रीलिङ्ग में और कोई नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। ईकारान्त प्रायः स्त्रीलिङ्ग में, किन्तु कुछ पुंल्लिङ्ग में भी होते हैं। उकारान्त प्रायः तीनों लिङ्गों में होते हैं। ऊकारान्त बहुधा स्त्रीलिङ्ग और पुंल्लिङ्ग दोनों में होते हैं। ऋकारान्त प्रायः पुंल्लिङ्ग में ह्रस्व ऋकारान्त नपुंसकलिङ्ग में भी होते हैं। ऐकारान्त, ओकारान्त और औकारान्त वहुत कम शब्द हैं, जो हैं भी वे प्रायः पुंल्लिङ्ग या स्त्रीलिङ्ग ही हैं। शेष स्वरों में अन्त होने वाले प्रातिपदिक प्रायः नहीं के वराबर हैं। नपुंसकलिङ्ग में स्वरान्त शब्द सदा ह्रस्वान्त ही होते हैं।[1]

व्यंजनान्त प्रातिपदिक प्रायः ङ, ञ्, म्, य् इन वर्णों को छोड़ कर सभी व्यंजनों में अन्त होने वाले पाये जाते हैं। इनमें भी वहुधा च्, ज्, त्, द्, ध् न्, श्, ष्, स्, और ह्, में अन्त होने वाले अधिक प्रयोग में आते हैं। नीचे क्रमानुसार उनके रूप दिखाये जाते हैं।

स्वरान्त संज्ञाएँ

३८--अकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द

वालक--लड़का

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वालकः	वालकौ	बालकाः
सम्वोधन	हे वालक	हे वालकौ	हे बालकाः
द्वितीया	वालकम्	वालकौ	वालकान्
तृतीया	वालकेन	वालकाभ्याम्	बालकैः
चतुर्थी	वालकाय	वालकाभ्याम्	बालकेभ्यः
पञ्चमी	बालकात्	वालकाभ्याम्	बालकेभ्यः
षष्ठी	वालकस्य	बालकयोः	वालकानाम्
सप्तमी	वालके	वालकयोः	वालकेषु

(क) सम्वोधन[2] में वालक+स् के स् का लोप हो जाता है क्योंकि यह ह्रस्व अ के पश्चात् आ रहा है।[2]

---

१ ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदकस्य ।१।२।४७।

२ एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः ।६।१।६९।

(ख) शस्[1] (अस्) के स् को नकार हो जा जाता है क्योंकि वह प्रातिपदिक के अ और अपने ही आदिम अ के संयोग से बनने वाले पूर्वसवर्णदीर्घ का परवर्ती है । इस प्रकार पुंल्लिङ्ग में सर्वत्र पूर्वसवर्णदीर्घ के पश्चात् आने वाले स् को न् आदेश हो जाता है ।

(ग) ङे[2] के स्थान में होने वाले य तथा तीनों भ्याम् के परवर्ती होने पर अ का दीर्घ हो जाता है ।

(घ) दोनों[3] भ्यस् तथा सुप् (सप्तमी व० व०) के परवर्ती होने पर प्रातिपदिक के अन्तिम अ को ए आदेश होता है, क्योंकि भ्यस् तथा सुप् प्रत्यय झलादि और बहुवचन बोधक हैं ।

(ङ) ओस्[4] परे रहने पर भी अ को ए आदेश होता है ।

राम, वृक्ष, अश्व सूर्य, चन्द्र, नर, पुत्र, सुर, देव, रथ, सुत, गज, रासभ (गदहा), मनुष्य, जन, दन्त, लोक, ईश्वर, पाद, मास, कुक्कुर, वृक (भेड़िया), व्याघ्र, सिंह इत्यादि समस्त अकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों के रूप बालक के समान होते हैं । इसी प्रकार यादृश, भवादृश, मादृश, त्वादृश, एतादृश आदि शब्द भी पुंल्लिङ्ग में चलते हैं । स्पष्टता के लिए तादृश के रूप दिये जाते हैं ।

तादृश—उसकी तरह

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	तादृशः	तादृशौ	तादृशाः
सं०	हे तादृश	हे तादृशौ	हे तादृशाः
द्वि०	तादृशम्	तादृशौ	तादृशान्
तृ०	तादृशेन	तादृशाभ्याम्	तादृशैः
च०	तादृशाय	तादृशाभ्याम्	तादृशेभ्यः
पं०	तादृशात्	तादृशाभ्याम्	तादृशेभ्यः
ष०	तादृशस्य	तादृशयोः	तादृशानाम्
स०	तादृशे	तादृशयोः	तादृशेषु

नोट—ये ही शब्द इसी अर्थ में शकारान्त भी हैं । उनके रूप व्यञ्जनान्त संज्ञाओं में मिलेंगे ।

---

१ तस्माच्छसो नः पुंसि ।६।१।१०३। २ ङेर्यः ७।१।१३। सुपि च ।७।३।१०२।
३ बहुवचने झल्येत् ।७।३।१०३। ४ ओसि च ।७।३।१०४।

३९—आकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द

विश्वपा—संसार का रक्षक

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	विश्वपाः	विश्वपौ	विश्वपाः
सं०	हे विश्वपाः	हे विश्वपौ	हे विश्वपाः
द्वि०	विश्वपाम्	विश्वपौ	विश्वपः
तृ०	विश्वपा	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभिः
च०	विश्वपे	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
पं०	विश्वपः	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
ष०	विश्वपः	विश्वपोः	विश्वपाम्
स०	विश्वपि	विश्वपोः	विश्वपासु

गोपा (गाय का रक्षक), शंखध्मा (शंख बजाने वाला), सोमपा (सोमरस पीने वाला), धूम्रपा (धुआँ पीने वाला), बलदा (बल देने वाला या इन्द्र) तथा और भी दूसरे आकारान्त धातुओं से निकले हुए समस्त पुंल्लिङ्ग संज्ञा शब्दों के रूप विश्वपा के समान होते हैं। अन्य आकारान्त पुं० शब्दों का रूप 'हाहा' (गन्धर्वविशेष) की भाँति चलता है; जैसे—

प्र०	हाहा	हाहौ	हाहाः
स०	हे हाहाः	हे हाहौ	हे हाहाः
द्वि०	हाहाम्	हाहौ	हाहान्
तृ०	हाहा	हाहाभ्याम्	हाहाभिः
च०	हाहै	हाहाभ्याम्	हाहाभ्यः
पं०	हाहाः	हाहाभ्याम्	हाहाभ्यः
ष०	हाहाः	हाहौः	हाहाम्
स०	हाहे	हाहौः	हाहासु

४०--इकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द

(क) कवि

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र०	कविः	कवी	कवयः
सं०	हे कवे	हे कवी	हे कवयः
द्वि०	कविम्	कवी	कवीन्
तृ०	कविना	कविम्याम्	कविभिः
च०	कवये	कविम्याम्	कविम्यः
पं०	कवेः	कविम्याम्	कविम्यः
ष०	कवेः	कव्योः	कवीनाम्
स०	कवौ	कव्योः	कविषु

हरि, मुनि, ऋषि, कपि, यति, विधि (ब्रह्मा), विरञ्चि (ब्रह्मा), जलधि, गिरि (पहाड़), सप्ति (घोड़ा), रवि (सूर्य), वह्नि (आग), अग्नि इत्यादि इकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों के रूप कवि के समान होते हैं।

नोट—विधि (विधान, तरकीब के अर्थ में) हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग है, किन्तु संस्कृत में यही शब्द पुंल्लिङ्ग में है इसका ध्यान रखना चाहिए। विधि, उदधि, जलधि, आधि, व्याधि, समाधि इत्यादि शब्द भी विधि के समान ही इकारान्त पुंल्लिङ्ग होते हैं।

(ख) पति शब्द के रूप बिलकुल भिन्न प्रकार से होते हैं।

पति—स्वामी, मालिक

प्र०	पतिः	पती	पतयः
सं०	हे पते	हे पती	हे पतयः
द्वि०	पतिम्	पती	पतीन्
तृ०	पत्या	पतिम्याम्	पतिभिः
च०	पत्ये	पतिम्याम्	पतिम्यः
पं०	पत्युः	पतिम्याम्	पतिम्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
ष०	पत्यु:	पत्योः	पतीनाम्
स०	पत्यौ	पत्योः	पतिषु।

किन्तु जब पति शब्द किसी शब्द के साथ समास के अन्त में आता है तो उसके रूप कवि के ही समान होते हैं; जैसे—

भूपति—राजा

प्र०	भूपतिः	भूपती	भूपतयः
सं०	हे भूपते	हे भूपती	हे भूपतयः
द्वि०	भूपतिम्	भूपती	भूपतीन्
तृ०	भूपतिना	भूपतिभ्याम्	भूपतिभिः
च०	भूपतये	"	भूपतिभ्यः
पं०	भूपतेः	"	"
ष०	भूपतेः	भूपत्योः	भूपतीनाम्
स०	भूपतौ	"	भूपतिषु

महीपति, गृहपति, नरपति, लोकपति, अधिपति, सुरपति, गजपति, गणपति (गणेश), जगत्पति, बृहस्पति, पृथ्वीपति इत्यादि शब्दों के रूप भूपति के समान कवि शब्द की भाँति होंगे।

(ग) सखि (मित्र) शब्द के भी रूप बिलकुल भिन्न प्रकार के होते हैं, जैसे—

सखि—मित्र

प्र०	सखा	सखायौ	सखायः
सं०	हे सखे	हे सखायौ	हे सखायः
द्वि०	सखायम्	सखायौ	सखीन्
तृ०	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
च०	सख्ये	"	सखिभ्यः
पं०	सख्युः	"	"

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
ष०	सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
स०	सख्यौ	"	सखिषु

४१--ईकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द

(क) प्रधी--अच्छा ध्यान करने वाला

प्र०	प्रधीः	प्रध्यौ	प्रध्यः
सं०	हे प्रधीः	हे प्रध्यौ	हे प्रध्यः
द्वि०	प्रध्यम्	प्रध्यौ	प्रध्यः
तृ०	प्रध्या	प्रधीभ्याम्	प्रधीभिः
च०	प्रध्ये	"	प्रधीभ्यः
पं०	प्रध्यः	"	"
ष०	प्रध्यः	प्रध्योः	प्रध्याम्
स०	प्रध्यि	"	प्रधीषु

उन्नी, ग्रामीणी, सेनानी शब्दों के रूप भी प्रधी के समान होते हैं, केवल सप्तमी के एकवचन में उन्न्याम्, ग्रामण्याम्, सेनान्याम् ऐसे रूप हो जाते हैं।

(ख) सुधी--पण्डित, विद्वान्

प्र०	सुधीः	सुधियौ	सुधियः
सं०	हे सुधीः	हे सुधियौ	हे सुधियः
द्वि०	सुधियम्	सुधियौ	सुधियः
तृ०	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
च०	सुधिये	"	सुधीभ्यः
पं०	सुधियः	"	"
ष०	"	सुधियोः	सुधियाम्
स०	सुधियि	"	सुधीषु

शुष्की, पक्वी, सुश्री, शुद्धधी, परमधी के रूप भी सुधी के समान होते हैं।

(ग) सखी (सखायमिच्छतीति)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सखा	सखायौ	सखाय:
सं०	हे सखी:	हे सखायौ	हे सखाय:
द्वि०	सखायम्	सखायौ	सख्य:
तृ०	सख्या	सखीभ्याम्	सखीभि:
च०	सख्ये	"	"
पं०	सख्यु:	"	"
ष०	"	सख्यो:	सख्याम्
सं०	सख्यि	"	सखीषु

(घ) सखी (खेन सह वर्तते इति सख:, सखमिच्छतीति)

प्र०	सखी:	सख्यौ	सख्य:
सं०	हे सखी:	हे सख्यौ	हे सख्य:
द्वि०	सख्यम्	सख्यौ	सख्य:

शेष रूप पहिले वाले सखी के समान हैं। (सुतमिच्छतीति) सुती, (सुखमिच्छतीति) सुखी, (लूनमिच्छतीति) लूनी, (क्षाममिच्छतीति) क्षामी, (प्रस्तीममिच्छतीति) प्रस्तीमी के रूप भी इसी प्रकार प्रधी के समान होते हैं।

४२--उकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द

भानु--सूर्य

प्र०	भानु:	भानू	भानव:
सं०	हे भानो	हे भानू	हे भानव:
द्वि०	भानुम्	भानू	भानून्
तृ०	भानुना	भानुभ्याम्	भानुभि:
च०	भानवे	भानुभ्याम्	भानुभ्य:

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पं०	भानोः	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
ष०	भानोः	भान्वोः	भानूनाम्
सं०	भानौ	भान्वोः	भानुषु

शत्रु, रिपु, विष्णु, गुरु, जन्तु, प्रभु, शिशु, विधु (चन्द्रमा), पशु, शम्भु, वेणु (बाँस) इत्यादि उकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों के रूप भानु की तरह चलते हैं।

४३—ऊकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द

स्वयम्भू—ब्रह्मा

प्र०	स्वयम्भूः	स्वयम्भुवौ	स्वयम्भुवः
सं०	हे स्वयम्भूः	हे स्वयम्भुवौ	हे स्वयम्भुवः
द्वि०	स्वयम्भुवम्	स्वयम्भुवौ	स्वयम्भुवः
तृ०	स्वयम्भुवा	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभिः
च०	स्वयम्भुवे	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभ्यः
पं०	स्वयम्भुवः	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभ्यः
ष०	स्वयम्भुवः	स्वयम्भुवोः	स्वयम्भुवाम्
स०	स्वयम्भुवि	स्वयम्भुवोः	स्वयम्भुषु

सुभ्रू (सुन्दर भौं वाला), स्वभू (स्वयं पैदा हुआ), प्रतिभू (जामिन) के रूप इसी प्रकार होते हैं। किन्तु वर्षाभू, करभू तथा पुनर्भू के रूप प्रधी की भाँति चलते हैं।

४४—ऋकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द

(क) पितृ—बाप

प्र०	पिता	पितरौ	पितरः
सं०	हे पितः	हे पितरौ	हे पितरः
द्वि०	पितरम्	पितरौ	पितॄन्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृ०	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
च०	पित्रे	,,	पितृभ्यः
पं०	पितुः	,,	,,
ष०	,,	पित्रोः	पितृणाम्
सं०	पितरि	,,	पितृषु

भ्रातृ (भाई), देवृ (देवर), जामातृ (दामाद) इत्यादि सम्बन्ध-सूचक पुंल्लिङ्ग ऋकारान्त शब्दों के रूप पितृ के समान होते हैं ।

(ख) नृ--मनुष्य

प्र०	ना	नरौ	नरः
सं०	हे नः	हे नरौ	हे नरः
द्वि०	नरम्	नरौ	नॄन्
तृ०	न्रा	नृभ्याम्	नृभिः
च०	न्रे	नृभ्याम्	नृभ्यः
पं०	नुः	नृभ्याम्	नृभ्यः
ष०	नुः	न्रोः	{ नृणाम् नॄणाम्
सं०	नरि	न्रोः	नृषु

(ग) दातृ--देने वाला

प्र०	दाता	दातारौ	दातारः
सं०	हे दातः	हे दातारौ	हे दातारः
द्वि०	दातारम्	दातारौ	दातॄन्
तृ०	दात्रा	दातृभ्याम्	दातृभिः
च०	दात्रे	,,	दातृभ्यः
पं०	दातुः	,,	,,

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
ष०	दातुः	दात्रोः	दातॄणाम्
स०	दातरि	"	दातृषु

धातृ (ब्रह्मा), कर्तृ (करने वाला), गन्तृ (जाने वाला), नेतृ (ले जाने वाला) शब्दों के तथा नप्तृ (पोता) के रूप दातृ के समान चलते हैं।

नोट—तृन् और तृच् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों के एवं स्वसृ, नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, क्षत्तृ, होतृ, प्रशास्तृ और पोतृ के आगे यदि प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के प्रत्यय आवें तो ऋ के आदिष्ट रूप अ को दीर्घ हो जाता है।

(क) केवल सम्बोधन के ज्ञापक सु के परवर्त्ती होने पर अ को दीर्घ नहीं होता अतः 'दातः' रूप बनता है न कि 'दाताः'।

४५--ऐकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द

रै--धन

प्र०	राः	रायौ	रायः
सं०	हे राः	हे रायौ	हे रायः
द्वि०	रायम्	रायौ	रायः
तृ०	राया	राभ्याम्	राभिः
च०	राये	राभ्याम्	राभ्यः
पं०	रायः	राभ्याम्	राभ्यः
ष०	रायः	रायोः	रायाम्
स०	रायि	रायोः	रासु

४६--ओकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द

गो--साँड़, बैल

प्र०	गौः	गावौ	गावः
सं०	हे गौः	हे गावौ	हे गावः

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
द्वि०	गाम्	गावौ	गा:
तृ०	गवा	गोभ्याम्	गोभि:
च०	गवे	गोभ्याम्	गोभ्य:
पं०	गो:	गोभ्याम्	गोभ्य:
ष०	गो:	गवो:	गवाम्
स०	गवि	गवो:	गोषु

समस्त ओकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों के रूप गो के समान होते हैं।

४७--औकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द

ग्लौ--चन्द्रमा

प्र०	ग्लौ:	ग्लावौ	ग्लाव:
सं०	हे ग्लौ:	हे ग्लावौ	हे ग्लाव:
द्वि०	ग्लावम्	ग्लावौ	ग्लाव:
तृ०	ग्लावा	ग्लौभ्याम्	ग्लौभि:
च०	ग्लावे	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्य:
पं०	ग्लाव:	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्य:
ष०	ग्लाव:	ग्लावो:	ग्लावाम्
सं०	ग्लावि	ग्लावो:	ग्लौषु

और भी औकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों के रूप ग्लौ के समान होते हैं।

४८--अकारान्त नपुंसकलिङ्ग

फल

प्र०	फलम्	फले	फलानि
सं०	हे फल	हे फले	हे फलानि
द्वि०	फलम	फले	फलानि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृ०	फलेन	फलाभ्याम्	फलैः
च०	फलाय	फलाभ्याम्	फलेभ्यः
पं०	फलात्	फलाभ्याम्	फलेभ्यः
ष०	फलस्य	फलयोः	फलानाम्
स०	फले	फलयोः	फलेषु

(तृतीया से आगे का रूप अकारान्त पुंल्लिङ्ग की भाँति रहता है)

मित्र, वन, अरण्य (जंगल), मुख, कमल, कुसुम, पुष्प, पर्ण (पत्ता), नक्षत्र, पत्र (कागज या पत्ता), बीज, जल, तृण (घास), गगन, शरीर, पुस्तक, ज्ञान इत्यादि समस्त अकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप फल के समान होते हैं।

४९—इकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द

(क) वारि—पानी

प्र०	वारि	वारिणी	वारीणि
सं०	हे वारे, हे वारि	हे वारिणी	हे वारीणि
द्वि०	वारि	वारिणी	वारीणि
तृ०	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
च०	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
पं०	वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
ष०	वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
स०	वारिणि	वारिणोः	वारिषु

अस्थि (हड्डी), दधि (दही), सक्थि (जाँघ), अक्षि (आँख) को छोड़कर समस्त इकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप वारि के समान होते हैं।

(ख) दधि—दही

प्र०	दधि	दधिनी	दधीनि
सं०	हे दधे, हे दधि	हे दधिनी	हे दधीनि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वि०	दधि	दधिनी	दधीनि
तृ०	दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः
च०	दध्ने	दधिभ्याम्	दधिभ्यः
पं०	दध्नः	दधिभ्याम्	दधिभ्यः
ष०	दध्नः	दध्नोः	दध्नाम्
स०	दध्नि, दधनि	दध्नोः	दधिषु

अक्षि--आँख

प्र०	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि
सं०	हे अक्षि, हे अक्षे	हे अक्षिणी	हे अक्षीणि
द्वि०	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि
तृ०	अक्ष्णा	अक्षिभ्याम्	अक्षिभिः
च०	अक्ष्णे	अक्षिभ्याम्	अक्षिभ्यः
पं०	अक्ष्णः	अक्षिभ्याम्	अक्षिभ्यः
ष०	अक्ष्णः	अक्ष्णोः	अक्ष्णाम्
स०	अक्ष्णि, अक्षणि	अक्ष्णोः	अक्षिषु

अस्थि और सक्थि के रूप भी इसी प्रकार होते हैं।

(ग) जब इकारान्त, उकारान्त, ऋकारान्त विशेषण शब्दों का प्रयोग नपुंसकलिङ्ग वाले संज्ञा शब्दों के साथ होता है तो उनके रूप चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी विभक्तियों के एकवचन में और षष्ठी तथा सप्तमी के द्विवचन में विकल्प से इकारान्त, उकारान्त तथा ऋकारान्त पुंलिग शब्दों के समान होते हैं, जैसे—शुचि (पवित्र), गुरु (भारी)।

शुचि (पवित्र)

प्र०	शुचि	शुचिनी	शुचीनि
सं०	हे शुचि, हे शुचे	हे शुचिनी	हे शुचीनि
द्वि०	शुचि	शुचिनी	शुचीनि
तृ०	शुचिना	शुचिभ्याम्	शुचिभिः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
च०	शुचये, शुचिने	शुचिभ्याम्	शुचिभ्यः
पं०	शुचेः, शुचिनः	"	"
ष०	" "	शुच्योः, शुचिनोः	शुचीनाम्
स०	शुचौ, शुचिनि	" "	शुचिषु

५०——उकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द

वस्तु——चीज

प्र०	वस्तु	वस्तुनी	वस्तूनि
सं०	हे वस्तो, हे वस्तु	हे वस्तुनी	हे वस्तूनि
द्वि०	वस्तु	वस्तुनी	वस्तूनि
तृ०	वस्तुना	वस्तुभ्याम्	वस्तुभिः
च०	वस्तुने	वस्तुभ्याम्	वस्तुभ्यः
पं०	वस्तुनः	वस्तुभ्याम्	वस्तुभ्यः
ष०	वस्तुनः	वस्तुनोः	वस्तूनाम्
स०	वस्तुनि	वस्तुनोः	वस्तुषु

दारु (काठ), जानु (घुटना), जतु (लाख), जत्रु (कंधों की संधि), तालु, मधु (शहद), सानु [(पर्वत की चोटी) पुंल्लिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग भी)] इत्यादि के रूप वस्तु के समान होते हैं ।

(क) उकारान्त विशेषण शब्दों के भी रूप चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी विभक्तियों के एकवचन में तथा षष्ठी व सप्तमी के द्विवचन में उकारान्त पुंल्लिङ्ग के समान विकल्प से होते हैं; जैसे—(बहुत) ।

बहु

प्र०	बहु	बहुनी	बहूनि
सं०	हे बहो, हे बहु	हे बहुनी	हे बहूनि
द्वि०	बहु	बहुनी	बहूनि
तृ०	बहुना	बहुभ्याम्	बहुभिः
च०	बहवे, बहुने	बहुभ्याम्	बहुभ्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पं०	बहोः, बहुनः	बहुभ्याम्	बहुभ्यः
ष०	बहोः, बहुनः	बह्वोः, बहुनोः	बहूनाम्
स०	बहौ, बहूनि	बह्वोः, बहुनोः	बहुषु

इसी प्रकार मृदु, कटु, लघु, पटु इत्यादि के रूप होते हैं।

५१—ऋकारान्त नपुंसकलिङ्ग

कर्तृ, नेतृ, धातृ, रक्षितृ इत्यादि शब्द विशेषण हैं, इसलिए इनका प्रयोग तीनों लिंगों में होता है। यहाँ पर नपुंसकलिङ्ग के रूप दिखाये जाते हैं। तृतीया से आगे इनका एक रूप पुंल्लिङ्ग जैसा भी होता है।

कर्तृ—करने वाला

प्र०	कर्तृ	कर्तृणी	कर्तॄणि
सं०	हे कर्तृ / हे कर्तः	हे कर्तृणी	हे कर्तॄणि
द्वि०	कर्तृ	कर्तृणी	कर्तॄणि
तृ०	कर्त्रा / कर्तृणा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः
च०	कर्त्रे / कर्तृणे	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्यः
पं०	कर्तुः / कर्तृणः	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्यः
ष०	कर्तुः / कर्तृणः	कर्त्रोः / कर्तृणोः	कर्तृणाम्
स०	कर्तरि / कर्तृणि	कर्त्रोः / कतृणोः	कर्तृषु

इसी प्रकार धातृ, नेतृ इत्यादि के भी रूप होते हैं।

५२—आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

विद्या

प्र०	विद्या	विद्ये	विद्याः
सं०	हे विद्ये	हे विद्ये	हे विद्याः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वि०	विद्याम्	विद्ये	विद्याः
तृ०	विद्यया	विद्याभ्याम्	विद्याभिः
च०	विद्यायै	विद्याभ्याम्	विद्याभ्यः
पं०	विद्यायाः	विद्याभ्याम्	विद्याभ्यः
ष०	विद्यायाः	विद्ययोः	विद्यानाम्
स०	विद्यायाम्	विद्ययोः	विद्यासु

रमा (लक्ष्मी), बाला (स्त्री), निशा (रात), कन्या, ललना (स्त्री), भार्या (स्त्री), बडवा (घोड़ी), राधा, सुमित्रा, तारा, कौशल्या, कला इत्यादि आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप विद्या के समान होते हैं ।

५३—इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

रुचि

प्र०	रुचिः	रुची	रुचयः
सं०	हे रुचे	हे रुची	हे रुचयः
द्वि०	रुचिम्	रुची	रुचीः
तृ०	रुच्या	रुचिभ्याम्	रुचिभिः
च०	रुच्यै, रुचये	रुचिभ्याम्	रुचिभ्यः
पं०	रुच्याः, रुचेः	रुचिभ्याम्	रुचिभ्यः
ष०	रुच्याः, रुचेः	रुच्योः	रुचीनाम्
स०	रुच्याम्, रुचौ	रुच्योः	रुचिषु

धूलि (धूर), मति, बुद्धि, गति, शुद्धि, भक्ति, शक्ति, श्रुति, स्मृति, शान्ति, नीति, रीति, जाति, रात्रि, पङ्क्ति, गीति इत्यादि सभी इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप रुचि के समान होते हैं ।

५४—ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

नदी

प्र०	नदी	नद्यौ	नद्यः
सं०	हे नदि	हे नद्यौ	हे नद्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वि०	नदीम्	नद्यौ	नदीः
तृ०	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
च०	नद्यै	"	नदीभ्यः
पं०	नद्याः	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
ष०	"	नद्योः	नदीनाम्
स०	नद्याम्	"	नदीषु

"स्त्री" आदि कुछ शब्दों को छोड़कर सभी ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप नदी के समान होते हैं, जैसे—राज्ञी (रानी), गौरी, पार्वती, जानकी, अरुन्धती, नटी, पृथ्वी, नन्दिनी, द्रौपदी, कैकेयी, देवी, पांचाली, त्रिलोकी, पंचवटी, अटवी (जंगल), गान्धारी, कादम्बरी, कौमुदी, (चन्द्रमा की रोशनी), माद्री, कुन्ती, देवकी, सावित्री, गायत्री, कमलिनी, नलिनी इत्यादि ।

(क) केवल अवी (रजस्वला स्त्री), तरी (नाव), तन्त्री, (वीणा), लक्ष्मी, स्तरी (धुआँ) के प्रथमा के एकवचन में भेद होता है; जैसे—

प्रथमा एकवचन—अवीः, तरीः, तन्त्रीः, लक्ष्मीः, स्तरीः ।

लक्ष्मी

प्र०	लक्ष्मीः	लक्ष्म्यौ	लक्ष्म्यः
सं०	हे लक्ष्मि	हे लक्ष्म्यौ	हे लक्ष्म्यः
द्वि०	लक्ष्मीम्	लक्ष्म्यौ	लक्ष्मीः
तृ०	लक्ष्म्या	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभिः
च०	लक्ष्म्यै	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभ्यः
पं०	लक्ष्म्याः	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभ्यः
ष०	लक्ष्म्याः	लक्ष्म्योः	लक्ष्मीणाम्
स०	लक्ष्म्याम्	लक्ष्म्योः	लक्ष्मीषु

स्त्री

प्र०	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः
सं०	हे स्त्रि	हे स्त्रियौ	हे स्त्रियः

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
द्वि०	स्त्रियम्, स्त्रीम्	स्त्रियौ	स्त्रियः, स्त्रीः
तृ०	स्त्रिंया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः
च०	स्त्रियै	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
पं०	स्त्रियाः	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
ष०	"	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्
स०	स्त्रियाम्	"	स्त्रीषु

श्री--लक्ष्मी

प्र०	श्रीः	श्रियौ	श्रियः
सं०	हे श्रीः	हे श्रियौ	हे श्रियः
द्वि०	श्रियम्	श्रियौ	श्रियः
तृ०	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः
च०	श्रियै, श्रिये	"	श्रीभ्यः
पं०	श्रियाः, श्रियः	"	"
ष०	" "	श्रियोः	श्रीणाम्, श्रियाम्
स०	श्रियाम्, श्रियि	"	श्रीषु

भी (डर), ह्री (लज्जा), धी (बुद्धि), सुश्री इत्यादि इत्यादि के रूप श्री के समान होते हैं ।

५५--उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

धेनु--गाय

प्र०	धेनुः	धेनू	धेनवः
सं०	हे धेनो	हे धेनू	हे धेनवः
द्वि०	धेनुम्	धेनू	धेनूः
तृ०	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
च०	धेन्वै, धेनवे	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
पं०	धेन्वाः, धेनोः,	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
ष०	धेन्वाः, धेनोः	धेन्वाः	धेनूनाम्
स०	धेन्वाम्, धेनौ	धेन्वोः	धेनुषु

तनु (शरीर), रेणु [(धूलि) पुंल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग भी], हनु [(ठुड्डी), पुंल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग भी] इत्यादि सभी सकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप धेनु के समान होते हैं।

५६--ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

वधू—बहू

प्र०	वधूः	वध्वौ	वध्वः
सं०	हे वधु	हे वध्वौ	हे वध्वः
द्वि०	वधूम्	वध्वौ	वधूः
तृ०	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
च०	वध्वै	"	वधूभ्यः
पं०	वध्वाः	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
ष०	"	वध्वोः	वधूनाम्
स०	वध्वाम्	"	वधूषु

चमू (सेना), रज्जू (रस्सी), श्वश्रू (सास), कर्कन्धू (बेर) इत्यादि सभी ऊकारात स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप वधू के समान होते हैं।

(क) भू—पृथ्वी

प्र०	भूः	भुवौ	भुवः
सं०	हे भूः	हे भुवौ	हे भुवः
द्वि०	भुवम्	भुवौ	भुवः
तृ०	भुवा	भूभ्याम्	भूभिः
च०	भुवै, भुवे	भूभ्याम्	भूभ्यः
पं०	भुवाः, भुवः	भूभ्याम्	भूभ्यः

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
ष०	भुवाः, भुवः	भुवोः	भुवाम्, भूनाम्
स०	भूवाम्, भुवि	भूवोः	भूषु

भ्रू (भौं) के रूप इसी प्रकार होते हैं।

स्त्रीलिङ्ग वहुव्रीहि समास वाले "सुभ्रू" शव्द के रूप भ्रू रूप से भिन्न होते हैं :—

(ख) सुभ्रू--सुन्दर भौं वाली स्त्री

प्र०	सुभ्रूः	सुभ्रुवौ	सुभ्रुवः
सं०	हे सुभ्रु	हे सुभ्रुवौ	हे सुभ्रुवः
द्वि०	सुभ्रुवम्	सुभ्रुवौ	सुभ्रुवः
तृ०	सुभ्रुवा	सुभ्रूभ्याम्	सुभ्रूभिः
च०	सुभ्रुवे	सुभ्रूभ्याम्	सुभ्रूभ्यः
पं०	सुभ्रुवः	सुभ्रूभ्याम्	सुभ्रूभ्यः
ष०	सुभ्रुवः	सुभ्रुवोः	सुभ्रुवाम्
स०	सुभ्रुवि	सुभ्रुवोः	सुभ्रुषु

५७--ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

मातृ--माता

प्र०	माता	मातरौ	मातरः
सं०	हे मातः	हे मातरौ	हे मातरः
द्वि०	मातरम्	मातरौ	मातॄः
तृ०	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
च०	मात्रे	"	मातृभ्यः
पं०	मातुः	"	"
ष०	"	मात्रोः	मातॄणाम्
स०	मातरि	"	मातृषु

यातृ (देवरानी, जेठानी), दुहितृ (लड़की) के रूप मातृ के समान होते हैं।

स्वसृ--बहिन

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	स्वसा	स्वसारौ	स्वसारः
सं०	हे स्वसः	हे स्वसारौ	हे स्वसारः
द्वि०	स्वसारम्	स्वसारौ	स्वसॄः
तृ०	स्वस्रा	स्वसृभ्याम्	स्वसृभिः
च०	स्वस्रे	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्यः
पं०	स्वसुः	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्यः
ष०	स्वसुः	स्वस्रोः	स्वसॄणाम्
स०	स्वसरि	स्वस्रोः	स्वसृषु

ऐकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के तथा ओकारान्त स्त्रीलिङ्ग गो आदि शब्दों के रूप पुंल्लिङ्ग के समान होते हैं। औकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप भी पुंल्लिङ्ग के समान होते हैं। जैसे नौ—

५८--औकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

नौ--नाव

प्र०	नौः	नावौ	नावः
सं०	हे नौः	हे नावौ	हे नावः
द्वि०	नावम्	नावौ	नावः
तृ०	नावा	नौभ्याम्	नौभिः
च०	नावे	नौभ्याम्	नौभ्यः
पं०	नावः	नौभ्याम्	नौभ्यः
ष०	नावः	नावोः	नावाम्
स०	नावि	नावोः	नौषु

इसी प्रकार और भी औकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के रूप होते हैं।

व्यञ्जनान्त संज्ञाएँ

नोट--ऊपर स्वरान्त प्रातिपदिकों का क्रम सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार पुल्लिङ्ग, नपुंसकलिंग और स्त्रीलिंग आदि लिङ्गानुसार दिया गया है। किन्तु

व्यंजनान्त प्रातिपदिक सभी लिंगों में प्रायः एक से चलते हैं, इसलिए यहाँ पर वर्णक्रम से रक्खे गये हैं।

५९--चकारान्त शब्द

(क) पुंल्लिङ्ग जलमुच्--बादल

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	जलमुक्,ग्	जलमुचौ	जलमुचः
सं०	हे जलमुक्,ग्	हे जलमुचौ	हे जलमुचः
द्वि०	जलमुचम्	जलमुचौ	जलमुचः
तृ०	जलमुचा	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भिः
च०	जलमुचे	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भ्यः
पं०	जलमुचः	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भ्यः
ष०	जलमुचः	जलमुचोः	जलमुचाम्
स०	जलमुचि	जलमुचोः	जलमुक्षु

सत्यवाच् आदि सभी चकारान्त शब्दों के रूप इसी प्रकार होते हैं। सभी चवर्गान्त शब्दों के अन्तिम चवर्ग को कवर्ग आदेश हो जाता है, यदि उसके आगे झल वर्ण हो या वह पदान्त में हो।[1] केवल प्राञ्च्, प्रत्यञ्च्, तिर्यञ्च्, उदञ्च् के रूपों में कुछ भेद होता है। ये शब्द अञ्च् (जाना) धातु से बने हैं।

प्राञ्च् (पूर्वी)

प्र०	प्राङ	प्राञ्चौ	प्राञ्चः
सं०	हे प्राङ	हे प्राञ्चौ	हे प्राञ्चः
द्वि०	प्राञ्चम्	प्राञ्चौ	प्राचः
तृ०	प्राचा	प्राग्भ्याम्	प्राग्भिः
च०	प्राचे	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्यः
पं०	प्राचः	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्यः
ष०	प्राचः	प्राचोः	प्राचाम्
स०	प्राचि	प्राचोः	प्राक्षु

---

१ चोः कुः।८।२।३०। चवर्गस्य कवर्गः स्याज्झलि पदान्ते च।

प्रत्यञ्च् (पश्चिमी)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	प्रत्यङ्	प्रत्यञ्चौ	प्रत्यञ्चः
सं०	हे प्रत्यङ्	हे प्रत्यञ्चौ	हे प्रत्यञ्चः
द्वि०	प्रत्यञ्चम्	प्रत्यञ्चौ	प्रतीचः
तृ०	प्रतीचा	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भिः
च०	प्रतीचे	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भ्यः
पं०	प्रतीचः	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भ्यः
ष०	प्रतीचः	प्रतीचोः	प्रतीचाम्
स०	प्रतीचि	प्रतीचोः	प्रत्यक्षु

तिर्यञ्च् (तिरछा जाने वाला)

प्र०	तिर्यङ्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्चः
सं०	हे तिर्यङ्	हे तिर्यञ्चौ	हे तिर्यञ्चः
द्वि०	तिर्यञ्चम्	तिर्यञ्चौ	तिरश्चः
तृ०	तिरश्चा	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भिः
च०	तिरश्चे	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्यः
पं०	तिरश्चः	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्यः
ष०	तिरश्चः	तिरश्चोः	तिरश्चाम्
स०	तिरश्चि	तिरश्चोः	तिर्यक्षु

उदञ्च् (उत्तरी)

प्र०	उदङ्	उदञ्चौ	उदञ्चः
सं०	हे उदङ्	हे उदञ्चौ	हे उदञ्चः
द्वि०	उदञ्चम्	उदञ्चौ	उदीचः
तृ०	उदीचा	उदग्भ्याम्	उदग्भिः
च०	उदीचे	उदग्भ्याम्	उदग्भ्यः
पं०	उदीचः	उदग्भ्याम्	उदग्भ्यः
ष०	उदीचः	उदीचोः	उदीचाम्
स०	उदीचि	उदीचोः	उदक्षु

(ख) स्त्रीलिङ्ग वाच्—वाणी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	वाक्, वाग्	वाचौ	वाचः
सं०	हे वाक्, हे वाग्	हे वाचौ	हे वाचः
द्वि०	वाचम्	वाचौ	वाचः
तृ०	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः
च०	वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
पं०	वाचः	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
ष०	वाचः	वाचोः	वाचाम्
स०	वाचि	वाचोः	वाक्षु

रुच्, त्वच् (चमड़ा, पेड़ की छाल), शुच् (सोच), ऋच् (ऋग्वेद के मन्त्र) इत्यादि सभी चकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के रूप वाच् की तरह होते हैं।

६०—जकारान्त शब्द

(क) पुं० ऋत्विज् (यज्ञ करने वाला)

प्र०	ऋत्विक्, ऋत्विग्	ऋत्विजौ	ऋत्विजः
सं०	हे ऋत्विक्, हे ऋत्विग्	हे ऋत्विजौ	हे ऋत्विजः
द्वि०	ऋत्विजम्	ऋत्विजौ	ऋत्विजः
तृ०	ऋत्विजा	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विभिः
च०	ऋत्विजे	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भ्यः
पं०	ऋत्विजः	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भ्यः
ष०	ऋत्विजः	ऋत्विजोः	ऋत्विजाम्
स०	ऋत्विजि	ऋत्विजोः	ऋत्विक्षु

भूभुज् (राजा), हुतभुज् (अग्नि), भिषज् (वैद्य), वणिज् (वनिया) के रूप ऋत्विज् के समान होते हैं।

भिषज्—वैद्य

प्र०	भिषक्, भिषग्	भिषजौ	भिषजः
सं०	हे भिषक्, हे भिषग्	हे भिषजौ	हे भिषजः

	एकवचन	द्विचवन	वहुवचन
द्वि०	भिषजम्	भिषजौ	भिषजः
तृ०	भिषजा	भिषग्भ्याम्	भिषग्भिः

इत्यादि ।

वणिज्--बनिया

प्र०	वणिक्, वणिग्	वणिजौ	वणिजः
सं०	हे वणिक्, हे वणिग्	हे वणिजौ	हे वणिजः
द्वि०	वणिजम्	वणिजौ	वणिजः
तृ०	वणिजा	वणिग्भ्याम्	वणिग्भिः

इत्यादि ।

पयोमुच्--बादल

प्र०	पयोमुक्, पयोमुग्	पयोमुचौ	पयोमुचः
सं०	हे पयोमुक्, हे पयोमुग्	हे पयोमुचौ	हे पयोमुचः
द्वि०	पयोमुचम्	पयोमुचौ	पयोमुचः
तृ०	पयोमुचा	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भिः

इत्यादि ।

परिव्राज्--संन्यासी

प्र०	परिव्राट्, परिव्राड्	परिव्राजौ	परिव्राजः
सं०	हे परिव्राट्, हे परिव्राड्	हे परिव्राजौ	हे परिव्राजः
द्वि०	परिव्राजम्	परिव्राजौ	परिव्राजः
तृ०	परिव्राजा	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भिः
च०	परिव्राजे	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भ्यः
पं०	परिव्राजः	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भ्यः
ष०	परिव्राजः	परिव्राजोः	परिव्राजाम्
स०	परिव्राजि	परिव्राजोः	परिव्राट्त्सु, परिव्राट्सु

इसी प्रकार सम्राज् (महाराज), विश्वसृज् (संसार का रचने वाला), विराज् (वड़ा) के रूप होते हैं ।

सम्राज्--सम्राट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सम्राट्, सम्राड्	सम्राजौ	सम्राजः
द्वि०	सम्राजम्	सम्राजौ	सम्राजः
तृ०	सम्राजा	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भिः

इत्यादि परिव्राज् के समान ।

विराज्--विराट्

प्र०	विराट, विराड्	विराजौ	विराजः
द्वि०	विराजम्	विराजौ	विराजः
तृ०	विराजा	विराड्भ्याम्	विराड्भिः

इत्यादि परिव्राज् के समान् ।

(ख) स्त्री० स्रज्--माला

प्र०	स्रक्, स्रग्	स्रजौ	स्रजः
सं०	हे स्रक्, हे स्रग्	हे स्रजौ	हे स्रजः
द्वि०	स्रजम्	स्रजौ	स्रजः
तृ०	स्रजा	स्रग्भ्याम्	स्रग्भिः
च०	स्रजे	स्रग्भ्याम्	स्रग्भ्यः
पं०	स्रजः	स्रग्भ्याम्	स्रग्भ्यः
ष०	स्रजः	स्रजोः	स्रजाम्
स०	स्रजि	स्रजोः	स्रक्षु

रुज् (रोग) के भी रूप स्रज् के समान होते हैं ।

(ग) नपुं० असृज्--लोहू

प्र०	असृक्, असृग्	असृजी	असृञ्जि
सं०	हे असृक्, हे असृग्	हे असृजी	हे असृञ्जि
द्वि०	असृक्	असृजी	असृञ्जि
तृ०	असृजा	असृग्भ्याम्	असृग्भिः
च०	असृजे	असृग्भ्याम्	असृग्भ्यः
पं०	असृजः	असृग्भ्याम्	असृग्भ्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
ष०	असृजः	असृजोः	असृजाम्
स०	असृजि	असृजोः	असृक्षु

सभी जकारान्त नपुंसकलिंग शब्दों के रूप असृज् के समान होते हैं ।

६१--तकारान्त शब्द

(क) पुंल्लिङ्ग भूभृत्--राजा, पहाड़

प्र०	भूभृत्, भूभृद्	भूभृतौ	भूभृतः
सं०	हे भूभृत्, हे भूभृद्	हे भूभृतौ	हे भूभृतः
द्वि०	भूभृतम्	भूभृतौ	भूभृतः
तृ०	भूभृता	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भिः
च०	भूभृते	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्यः
पं०	भूभृतः	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्यः
ष०	भूभृतः	भूभृतोः	भूभृताम्
स०	भूभृति	भूभृतोः	भूभृत्सु

महीभृत् (राजा, पहाड़), दिनकृत् (सूर्य), शशभृत् (चन्द्रमा), परभृत् (कौआ), मरुत् (वायु), विश्वजित् (संसार का जीतने वाला या एक प्रकार का यज्ञ) के रूप भूभृत् के समान होते हैं ।

श्रीमत्--भाग्यवान्

प्र०	श्रीमान्	श्रीमन्तौ	श्रीमन्तः
सं०	हे श्रीमन्	हे श्रीमन्तौ	हे श्रीमन्तः
द्वि०	श्रीमन्तम्	श्रीमन्तौ	श्रीमतः
तृ०	श्रीमता	श्रीमद्भ्याम्	श्रीमद्भिः
च०	श्रीमते	श्रीमद्भ्याम्	श्रीमद्भ्यः
पं०	श्रीमतः	श्रीमद्भ्याम्	श्रीमद्भ्यः
ष०	श्रीमतः	श्रीमतोः	श्रीमताम्
स०	श्रीमति	श्रीमतोः	श्रीमत्सु

धीमत् (बुद्धिमान्), भानुमत् (चमकने वाला), सानुमत् (पहाड़), धनुष्मत् (धनुर्धारी), अंशुमत् (सूर्य), विद्यावत् (विद्या वाला), बलवत्

(बलवान्), भगवत् (पूज्य), भाग्यवत् (भाग्यवान्) आदि मतुप् प्रत्ययान्तों के तथा गतवत् (गया हुआ), उक्तवत् (बोल चुका हुआ), श्रुतवत् (सुन चुका हुआ) आदि क्तवतु प्रत्ययान्तों के रूप श्रीमत् के समान होते हैं। स्त्रीलिंग में इनके जोड़ के प्रातिपदिक-ई प्रत्यय लगाकर श्रीमती, बुद्धिमती आदि बनते हैं और इनके रूप ईकारान्त नदी शब्द के समान चलते हैं।

भवत्—आप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	भवान्	भवन्तौ	भवन्तः
सं०	हे भवन्	हे भवन्तौ	हे भवन्तः
द्वि०	भवन्तम्	भवन्तौ	भवतः
तृ०	भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः
च०	भवते	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः
पं०	भवतः	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः
ष०	भवतः	भवतोः	भवताम्
स०	भवति	भवतोः	भवत्सु

इसी से स्त्रीलिङ्ग भवती शब्द बनता है।

महत्—बड़ा

प्र०	महान्	महान्तौ	महान्तः
सं०	हे महन्	हे महान्तौ	हे महान्तः
द्वि०	महान्तम्	महान्तौ	महतः
तृ०	महता	महद्भ्याम्	महद्भिः
च०	महते	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
पं०	महतः	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
ष०	महतः	महतोः	महताम्
स०	महति	महतोः	महत्सु

इसके जोड़ का स्त्रीलिङ्ग शब्द महती है।

पठत्--पढ़ता हुआ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पठन्	पठन्तौ	पठन्तः
सं०	हे पठन्	हे पठन्तौ	हे पठन्तः
द्वि०	पठन्तम्	पठन्तौ	पठतः
तृ०	पठता	पठद्भ्याम्	पठद्भिः
च०	पठते	पठद्भ्याम्	पठद्भ्यः
पं०	पठतः	पठद्भ्याम्	पठद्भ्यः
ष०	पठतः	पठतोः	पठताम्
स०	पठति	पठतोः	पठत्सु

धावत् (दौड़ता हुआ), गच्छत् (जाता हुआ), वदत् (बोलता हुआ), पश्यत् (देखता हुआ), गृह्णत् (लेता हुआ), पतत् (गिरता हुआ), शोचत् (सोचता हुआ), पिबत् (पीता हुआ), भवत् (होता हुआ) इत्यादि सभी शतृ प्रत्ययान्त पुंलिङ्ग शब्दों के रूप पठत् के समान होते हैं। स्त्रीलिङ्ग में पठती, पठन्ती, धावन्ती आदि होते हैं और रूप नदी के समान चलते हैं।

दत्--दाँत

द्वि०	—	—	दतः
तृ०	दता	दद्भ्याम्	दद्भिः
च०	दते	दद्भ्याम्	दद्भ्यः
पं०	दतः	दद्भ्याम्	दद्भ्यः
ष०	दतः	दतोः	दताम्
स०	दति	दतोः	दत्सु

नोट—इस शब्द के प्रथम पाँच रूप दन्त शब्द के ही होते हैं।[1]

---

१ पद्दन्नोमासहृन्निशसन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु ।६।१।६३। नियम से यहाँ दन्त शब्द के स्थान में, शस् से लेकर बाद की सभी विभक्तियों में विकल्प से दत् आदेश होता है।

(ख) स्त्रीलिङ्ग सरित्—नदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सरित्, सरिद्	सरितौ	सरितः
सं०	हे सरित्, हे सरिद्	हे सरितौ	हे सरितः
द्वि०	सरितम्	सरितौ	सरितः
तृ०	सरिता	सरिद्भ्याम्	सरिद्भिः
च०	सरिते	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्यः
पं०	सरितः	सरिद्भ्याम	सरिद्भ्यः
ष०	सरितः	सरितोः	सरिताम्
स०	सरिति	सरितोः	सरित्सु

विद्युत् (विजली), योषित् (स्त्री) के रूप सरित् के समान चलते हैं ।

(ग) नपुं० जगत्—संसार

प्र०	जगत्, जगद्	जगती	जगन्ति
सं०	हे जगत्, हे जगद्	हे जगती	हे जगन्ति
द्वि०	जगत्, जगद्	जगती	जगन्ति
तृ०	जगता	जगद्भ्याम्	जगद्भिः
च०	जगते	जगद्भ्याम्	जगद्भ्यः
पं०	जगतः	जगद्भ्याम्	जगद्भ्यः
ष०	जगतः	जगतोः	जगताम्
स०	जगति	जगतोः	जगत्सु

श्रीमत्, भवत् (होता हुआ) तथा और भी तकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप जगत् के समान होते हैं ।

नपुं० महत्—बड़ा

प्र०	महत्, महद्	महती	महान्ति
सं०	हे महत्, हे महद्	हे महती	हे महान्ति
द्वि०	महत्	महती	महान्ति

शेष रूप जगत् के समान होते हैं ।

६२—दकारान्त शब्द

(क) पुंल्लिङ्ग सुहृद्—मित्र

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सुहृत्, सुहृद्	सुहृदौ	सुहृदः
सं०	हे सुहृत्, हे सुहृद्	हे सुहृदौ	हे सुहृदः
द्वि०	सुहृदम्	सुहृदौ	सुहृदः
तृ०	सुहृदा	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भिः
च०	सुहृदे	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भ्यः
पं०	सुहृदः	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भ्यः
ष०	सुहृदः	सुहृदोः	सुहृदाम्
स०	सुहृदि	सुहृदोः	सुहृत्सु

हृदयच्छिद् (हृदय को छेदने वाला), मर्मभिद्, सभासद् (सभा में बैठने वाला), तमोनुद् (सूर्य), धर्मविद् (धर्म को जानने वाला), अरुन्तुद् (हृदय को पीड़ा पहुँचाने वाला) इत्यादि दकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों के रूप सुहृद् के समान होते हैं।

पद्—पैर

द्वि०	—	—	पदः
तृ०	पदा	पद्भ्याम्	पद्भिः
च०	पदे	पद्भ्याम्	पद्भ्यः
पं०	पदः	पद्भ्याम्	पद्भ्यः
ष०	पदः	पदोः	पदाम्
स०	पदि	पदोः	पत्सु

नोट—दकारान्त पद् शब्द के प्रथम पाँच रूप अकारान्त पाद के समान होते हैं। (देखिए टिप्पणी पृ० ९८ पर) ।

(क) स्त्री० दृषद्—पत्थर, चट्टान

प्र०	दृषत्, दृषद्	दृषदौ	दृषदः
सं०	हे दृषद्	हे दृषदौ	हे दृषदः

Sai 70-192

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
द्वि०	दृषदम्	दृषदौ	दृषदः
तृ०	दृषदा	दृषद्भ्याम्	दृषद्भिः
च०	दृषदे	दृषद्भ्याम्	दृषद्भ्यः
पं०	दृषदः	दृषद्भ्याम्	दृषद्भ्यः
ष०	दृषदः	दृषदोः	दृषदाम्
स०	दृषदि	दृषदोः	दृषत्सु

शरद्, आपद्, विपद्, सम्पद् (धन), संसद् (सभा) के रूप दृषद् के समान होते हैं ।

(ख) नपुं० हृद्—हृदय

प्र०	हृत्, हृद्	हृदी	हृन्दि
सं०	हे हृत्, हे हृद्	हे हृदी	हे हृन्दि
द्वि०	हृत्, हृद्	हृदी	हृन्दि
तृ०	हृदा	हृद्भ्याम्	हृद्भिः
च०	हृदे	हृद्भ्याम्	हृद्भ्यः
पं०	हृदः	हृद्भ्याम्	हृद्भ्यः
ष०	हृदः	हृदोः	हृदाम्
स०	हृदि	हृदोः	हृत्सु

६३—धकारान्त शब्द

स्त्री० समिध्—यज्ञ की लकड़ी

प्र०	समित्, समिद्	समिधौ	समिधः
सं०	हे समित्, हे समिद्	हे समिधौ	हे समिधः
द्वि०	समिधम्	समिधौ	समिधः
तृ०	समिधा	समिद्भ्याम्	समिद्भिः
च०	समिधे	समिद्भ्याम्	समिद्भ्यः
पं०	समिधः	समिद्भ्याम्	समिद्भ्यः
ष०	समिधः	समिधोः	समिधाम्
स०	समिधि	समिधोः	समित्सु

वीरुध् (लता), क्षुध् (भूख), क्रुध् (क्रोध), युध्, (युद्ध) इत्यादि सभी धकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप समिध् के समान होते हैं ।

६४--नकारान्त शब्द

पुं० आत्मन्--आत्मा

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र०	आत्मा	आत्मानौ	आत्मान:
सं०	हे आत्मन्	हे आत्मानौ	हे आत्मान:
द्वि०	आत्मानम्	आत्मानौ	आत्मन:
तृ०	आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभि:
च०	आत्मने	आत्मभ्याम्	आत्मभ्य:
पं०	आत्मन:	आत्मभ्याम्	आत्मभ्य:
ष०	आत्मन:	आत्मनो:	आत्मनाम्
स०	आत्मनि	आत्मनो:	आत्मसु

अध्वन् (मार्ग), अश्मन् (पत्थर), यज्वन् (यज्ञ करने वाला), ब्रह्मन् (ब्रह्मा), सुशर्मन् (महाभारत की लड़ाई में एक योद्धा का नाम), कृतवर्मन् (एक योद्धा का नाम) के रूप आत्मन् के समान चलते हैं ।

नोट—आत्मा शब्द हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होता है, किन्तु संस्कृत में यह शब्द पुंल्लिङ्ग है, यह ध्यान में रखना चाहिए ।

पुं० राजन्--राजा

प्र०	राजा	राजानौ	राजान:
सं०	हे राजन्	हे राजानौ	हे राजान:
द्वि०	राजानम्	राजानौ	राज्ञ:
तृ०	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभि:
च०	राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्य:
पं०	राज्ञ:	राजभ्याम्	राजभ्य:
ष०	राज्ञ:	राज्ञो:	राज्ञाम्
स०	राज्ञि, राजनि	राज्ञो:	राजसु

इसके जोड़ का स्त्रीलिङ्ग शब्द राज्ञी (ईकारान्त) है, जिसके रूप नदी के समान चलते हैं।

पुं० महिमन्—बड़प्पन

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	महिमा	महिमानौ	महिमानः
सं०	हे महिमन्	हे महिमानौ	हे महिमानः
द्वि०	महिमानम्	महिमानौ	महिम्नः
तृ०	महिम्ना	महिमभ्याम्	महिमभिः
च०	महिम्ने	महिमभ्याम्	महिमभ्यः
पं०	महिम्नः	महिमभ्याम्	महिमभ्यः
ष०	महिम्नः	महिम्नोः	महिम्नाम्
स०	महिम्नि / महिमनि	महिम्नोः	महिमसु

मूर्धन् (सिर), सीमन् [(चौहद्दी) स्त्रीलिङ्ग], गरिमन् (बड़प्पन), लघिमन् (छोटापन), अणिमन् (छोटापन), शुक्लिमन् (सफेदी), कालिमन् (कालापन), द्रढिमन् (मजबूती), अश्वत्थामन् इत्यादि समस्त अन्नन्त पुंल्लिङ्ग शब्दों के रूप महिमन् के समान होते हैं।

नोट—हिन्दी में महिमा, कालिमा आदि शब्द स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त किये जाते हैं, किन्तु संस्कृत में पुंल्लिङ्ग में, इसका ध्यान रखना चाहिए।

पुं० युवन्—जवान

प्र०	युवा	युवानौ	युवानः
सं०	हे युवन्	युवानौ	हे युवानः
द्वि०	युवानम्	युवानौ	यूनः
तृ०	यूना	युवभ्याम्	युवभिः
च०	यूने	युवभ्याम्	युवभ्यः
पं०	यूनः	युवभ्याम्	युवभ्यः
ष०	यूनः	यूनोः	यूनाम्
स०	यूनि	यूनोः	युवसु

इसके जोड़ का स्त्रीलिङ्ग शब्द युवती है, जिसके रूप नदी के समान चलते हैं।

पुं० श्वन्--कुत्ता

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	श्वा	श्वानौ	श्वानः
सं०	हे श्वन्	हे श्वानौ	हे श्वानः
द्वि०	श्वानम्	श्वानौ	शुनः
तृ०	शुना	श्वभ्याम्	श्वभिः
च०	शुने	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
पं०	शुनः	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
ष०	शुनः	शुनोः	शुनाम्
स०	शुनि	शुनोः	श्वसु

पुं० अर्वन्--घोड़ा, इन्द्र

प्र०	अर्वा	अर्वन्तौ	अर्वन्तः
सं०	हे अर्वन्	हे अर्वन्तौ	हे अर्वन्तः
द्वि०	अर्वन्तम्	अर्वन्तौ	अर्वतः
तृ०	अर्वता	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भिः
च०	अर्वते	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भ्यः
पं०	अर्वतः	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भ्यः
ष०	अर्वतः	अर्वतोः	अर्वताम्
स०	अर्वति	अर्वतोः	अर्वत्सु

पुं० मघवन्--इन्द्र

प्र०	मघवा	मघवानौ	मघवानः
सं०	हे मघवन्	हे मघवानौ	हे मघवानः
द्वि०	मघवानम्	मघवानौ	मघोनः
तृ०	मघोना	मघवभ्याम्	मघवभिः
च०	मघोने	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
पं०	मघोनः	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
ष०	मघोनः	मघोनोः	मघोनाम्
स०	मघोनि	मघोनोः	मघवसु

मघवन् का रूप विकल्प से इस प्रकार भी होता है--

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र०	मघवान्	मघवन्तौ	मघवन्तः
सं०	हे मघवन्	हे मघवन्तौ	हे मघवन्तः
द्वि०	मघवन्तम्	मघवन्तौ	मघवतः
तृ०	मघवता	मघवद्भ्याम्	मघवद्भिः
च०	मघवते	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्यः
पं०	मघवतः	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्यः
ष०	मघवतः	मघवतोः	मघवताम्
स०	मघवति	मघवतोः	मघवत्सु

पुं० पूषन्--सूर्य

प्र०	पूषा	पूषणौ	पूषणः
सं०	हे पूषन्	हे पूषणौ	हे पूषणः
द्वि०	पूषणम्	पूषणौ	पूष्णः
तृ०	पूष्णा	पूषभ्याम्	पूषभिः
च०	पूष्णे	पूषभ्याम्	पूषभ्यः
पं०	पूष्णः	पूषभ्याम्	पूषभ्यः
ष०	पूष्णः	पूष्णोः	पूष्णाम्
स०	पूष्णि, पूषणि	पूष्णोः	पूषसु

पुं० हस्तिन्--हाथी

प्र०	हस्ती	हस्तिनौ	हस्तिनः
सं०	हे हस्तिन्	हे हस्तिनौ	हे हस्तिनः
द्वि०	हस्तिनम्	हस्तिनौ	हस्तिनः
तृ०	हस्तिना	हस्तिभ्याम्	हस्तिभिः
च०	हस्तिने	हस्तिभ्याम्	हस्तिभ्यः
पं०	हस्तिनः	हस्तिभ्याम्	हस्तिभ्यः
ष०	हस्तिनः	हस्तिनोः	हस्तिनाम्
स०	हस्तिनि	हस्तिनोः	हस्तिषु

स्वामिन्, करिन् (हाथी), गुणिन् (गुणी), मन्त्रिन् (मन्त्री), शशिन् (चन्द्रमा), पक्षिन् (पक्षी, चिड़िया), धनिन्, वाजिन् (घोड़ा), तपस्विन् (तपस्वी), एकाकिन् (अकेला), वलिन् (वली), सुखिन् (सुखी), सत्यवादिन् (सच बोलने वाला), भाविन् इत्यादि इन् में अन्त होने वाले पुं० शब्दों के रूप हस्तिन् के समान होते हैं।

इन्नन्त शब्दों के जोड़ के स्त्रीलिङ्ग शब्द ईकार जोड़ कर हस्तिनी, एकाकिनी, भाविनी आदि ईकारान्त होते हैं, जिनके रूप नदी के समान चलते हैं।

पथिन् शब्द के रूपों में जो भेद होता है वह नीचे दिखाया जाता है—

पुं० पथिन्––मार्ग

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र०	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः
सं०	हे पन्थाः	हे पन्थानौ	हे पन्थानः
द्वि०	पन्थानम्	पन्थानौ	पथः
तृ०	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः
च०	पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
पं०	पथः	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
ष०	पथः	पथोः	पथाम्
स०	पथि	पथोः	पथिषु

(क) स्त्री० सीमन्––चौहद्दी

सीमन् के रूप महिमन् के समान होते हैं, जैसे––

प्र०	सीमा	सीमानौ	सीमानः
सं०	हे सीमन्	हे सीमानौ	हे सीमानः
द्वि०	सीमानम्	सीमानौ	सीम्नः
तृ०	सीम्ना	सीमभ्याम्	सीमभिः
च०	सीम्ने	सीमभ्याम्	सीमभ्यः
पं०	सीम्नः	सीमभ्याम्	सीमभ्यः
ष०	सीम्नः	सीम्नोः	सीम्नाम्
स०	सीम्नि, सीमनि	सीम्नोः	सीमसु

(ख) नपुं० नामन्—नाम

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि
सं०	हे नाम, हे नामन्	हे नाम्नी, हे नामनी	हे नामानि
द्वि०	नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि
तृ०	नाम्ना	नामभ्याम्	नामभिः
च०	नाम्ने	नामभ्याम्	नामभ्यः
पं०	नाम्नः	नामभ्याम	नामभ्यः
ष०	नाम्नः	नाम्नोः	नाम्नाम्
स०	नाम्नि, नामनि	नाम्नोः	नामसु

धामन् (घर, चमक), व्योमन् (आकाश), सामन् (सामवेद का मन्त्र), प्रेमन् (प्यार), दामन् (रस्सी) के रूप नामन् के समान होते हैं।

नपुं० चर्मन्—चमड़ा

प्र०	चर्म	चर्मणी	चर्माणि
सं०	हे चर्म, हे चर्मन्	हे चर्मणी	हे चर्माणि
द्वि०	चर्म	चर्मणी	चर्माणि
तृ०	चर्मणा	चर्मभ्याम्	चर्मभिः
च०	चर्मणे	चर्मभ्याम्	चर्मभ्यः
पं०	चर्मणः	चर्मभ्याम्	चर्मभ्यः
ष०	चर्मणः	चर्मणोः	चर्मणाम्
स०	चर्मणि	चर्मणोः	चर्मसु

पर्वन् (पौर्णमासी, अमावस्या या त्योहार), ब्रह्मन् (ब्रह्म), वर्मन् (कवच), जन्मन् (जन्म), वर्त्मन् (रास्ता), शर्मन् (सुख) के रूप चर्मन् के समान होते हैं।

नपुं० अहन्—दिन

प्र०	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
सं०	हे अहः	हे अह्नी, हे अहनी	हे अहानि
द्वि०	अहः	अह्नी, अहनी	अहानि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृ०	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः
च०	अह्ने	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
पं०	अह्नः	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
ष०	अह्नः	अह्नोः	अह्नाम्
स०	अह्नि, अहनि	अह्नोः	अहःसु, अहस्सु

नपुं० भाविन्—होने वाला

प्र०	भावि	भाविनी	भावीनि
सं०	हे भावि, हे भाविन्	हे भाविनि	हे भावीनि
द्वि०	भावि	भाविनी	भावीनि
तृ०	भाविना	भाविभ्याम्	भाविभिः
च०	भाविने	भाविभ्याम्	भाविभ्यः
पं०	भाविनः	भाविभ्याम्	भाविभ्यः
ष०	भाविनः	भाविनोः	भाविनाम्
स०	भाविनि	भाविनोः	भाविषु

इसी प्रकार सभी इन्नन्त नपुंसकलिंग शब्दों के रूप होते हैं।

६५—पकारान्त शब्द

स्त्री० अप्—पानी

अप् के रूप केवल बहुवचन में होते हैं—

	बहुवचन
प्र०	आपः
सं०	हे आपः
द्वि०	अपः
तृ०	अद्भिः
च०	अद्भ्यः
पं०	अद्भ्यः
ष०	अपाम्
स०	अप्सु

६६—भकारान्त शब्द

स्त्री० ककुभ्—दिशा

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र०	ककुप्, ककुब्	ककुभौ	ककुभः
सं०	हे ककुप्, हे ककुब्	हे ककुभौ	हे ककुभः
द्वि०	ककुभम्	ककुभौ	ककुभः
तृ०	ककुभा	ककुब्भ्याम्	ककुब्भिः
च०	ककुभे	ककुब्भ्याम्	ककुब्भ्यः
पं०	ककुभः	ककुब्भ्याम्	ककुब्भ्यः
ष०	ककुभः	ककुभोः	ककुभाम्
स०	ककुभि	ककुभोः	ककुप्सु

इसी प्रकार अन्य भकारान्त शब्दों के रूप होते हैं।

६७—रकारान्त शब्द

नपुं० वार्—पानी

प्र०	वाः	वारी	वारि
सं०	हे वाः	हे वारी	हे वारि
द्वि०	वाः	वारी	वारि
तृ०	वारा	वार्भ्याम्	वार्भिः
च०	वारे	वार्भ्याम्	वार्भ्यः
पं०	वारः	वार्भ्याम्	वार्भ्यः
ष०	वारः	वारोः	वाराम्
स०	वारि	वारोः	वार्षु

(क) स्त्री० गिर्—वाणी

प्र०	गीः	गिरौ	गिरः
सं०	हे गीः	हे गिरौ	हे गिरः
द्वि०	गिरम्	गिरौ	गिरः
तृ०	गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः
च०	गिरे	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पं०	गिरः	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
ष०	गिरः	गिरोः	गिराम्
स०	गिरि	गिरोः	गीर्षु

स्त्री० पुर्—नगर

प्र०	पूः	पुरौ	पुरः
सं०	हे पूः	हे पुरौ	हे पुरः
द्वि०	पुरम्	पुरौ	पुरः
तृ०	पुरा	पूर्भ्याम्	पूर्भिः
च०	पुरे	पूर्भ्याम्	पूर्भ्यः
पं०	पुरः	पूर्भ्याम्	पूर्भ्यः
ष०	पुरः	पुरोः	पुराम्
स०	पुरि	पुरोः	पूर्षु

धुर् (धुरा) के रूप भी इसी प्रकार होते हैं।

६८—वकारान्त शब्द

स्त्री० दिव्—आकाश, स्वर्ग

प्र०	द्यौः	दिवौ	दिवः
सं०	हे द्यौः	हे दिवौ	हे दिवः
द्वि०	दिवम्	दिवौ	दिवः
तृ०	दिवा	द्युभ्याम्	द्युभिः
च०	दिवे	द्युभ्याम्	द्युभ्यः
पं०	दिवः	द्युभ्याम्	द्युभ्यः
ष०	दिवः	दिवोः	दिवाम्
स०	दिवि	दिवोः	द्युषु

६९—शकारान्त शब्द

पुं० विश्—बनिया

प्र०	विट्, विड्	विशौ	विशः
सं०	हे विट्, हे विड्	हे विशौ	हे विशः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वि०	विशम्	विशौ	विशः
तृ०	विशा	विड्भ्याम्	विड्भिः
च०	विशे	विड्भ्याम्	विड्भ्यः
पं०	विशः	विड्भ्याम्	विड्भ्यः
ष०	विशः	विशोः	विशाम्
स०	विशि	विशोः	विट्त्सु, विट्सु

नपुं० तादृश्—उसके समान

प्र०	तादृक्, तादृग्	तादृशौ	तादृशः
सं०	हे तादृक्, हे तादृग्	हे तादृशौ	हे तादृशः
द्वि०	तादृशम्	तादृशौ	तादृशः
तृ०	तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भिः
च०	तादृशे	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्यः
पं०	तादृशः	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्यः
ष०	तादृशः	तादृशोः	तादृशाम्
स०	तादृशि	तादृशोः	तादृक्षु

यादृश् (जैसा), मादृश् (मेरे समान), भवादृश् (आप के समान) त्वादृश् (तेरे समान), एतादृश् (इसके समान) इत्यादि के रूप तादृश् के समान होते हैं।

इनके जोड़ वाले स्त्रीलिङ्ग शब्द तादृशी, यादृशी, भवादृशी आदि हैं, जिनके रूप नदी के समान चलते हैं।

नपुंसकलिङ्ग में तादृश्, मादृश् इत्यादि के रूप इस प्रकार होंगे :—

नपुं० तादृश्—उसके समान

प्र०	तादृक्, तादृग्	तादृशी	तादृंशि
सं०	हे तादृक्, हे तादृग्	हे तादृशी	हे तादृंशि
द्वि०	तादृक्, तादृग्	तादृंशि	तादृंशि

तृतीया इत्यादि के रूप पुंल्लिङ्ग के समान होते हैं।

तादृश्, मादृश्, भवादृश्, त्वादृश् इत्यादि के जोड़ के अकारान्त शब्द तादृश, मादृश, भवादृश, त्वादृश आदि हैं, और उनके रूप अकारान्त शब्दों के समान होते हैं जैसा कि पृष्ठ ७१ में पहिले ही दिखा चुके हैं।

(क) स्त्री० दिश्—दिशा

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र०	दिक्, दिग्	दिशौ	दिशः
सं०	हे दिक्, हे दिग्	हे दिशौ	हे दिशः
द्वि०	दिशम्	दिशौ	दिशः
तृ०	दिशा	दिग्भ्याम्	दिग्भिः
च०	दिशे	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः
पं०	दिशः	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः
ष०	दिशः	दिशोः	दिशाम्
स०	दिशि	दिशोः	दिक्षु

स्त्री० निश्—रात

द्वि०			निशः
तृ०	निशा	{ निज्भ्याम्, निड्भ्याम्	{ निज्भिः, निड्भिः
च०	निशे	{ निज्भ्याम्, निड्भ्याम्	{ निज्भ्यः, निड्भ्यः
पं०	निशः	{ निज्भ्याम्, निड्भ्याम्	{ निज्भ्यः, निड्भ्यः
ष०	निशः	निशोः	निशाम्
स०	निशि	निशोः	{ निक्षु, निट्सु, निट्त्सु

इसके पहले पाँच रूप निशा शब्द के होते हैं, शस् से लेकर आगे की विभक्तियों में निशा के स्थान पर निश् आदेश विकल्प से होता है। देखिए टिप्पणी पृ० ६८ पर।

७०—षकारान्त शब्द

पुं० द्विष्—शत्रु

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र०	द्विट्, द्विड्	द्विषौ	द्विषः
सं०	हे द्विट्, हे द्विड्	हे द्विषौ	हे द्विषः
द्वि०	द्विषम्	द्विषौ	द्विषः
तृ०	द्विषा	द्विड्भ्याम्	द्विड्भिः
च०	द्विषे	द्विड्भ्याम्	द्विड्भ्यः
पं०	द्विषः	द्विड्भ्याम्	द्विड्भ्यः
ष०	द्विषः	द्विषोः	द्विषाम्
स०	द्विषि	द्विषोः	द्विट्त्सु, द्विट्सु

स्त्री० प्रावृष्—वर्षा ऋतु

प्र०	प्रावृट्, प्रावृड्	प्रावृषौ	प्रावृषः
सं०	हे प्रावृट्, हे प्रावृड्	हे प्रावृषौ	हे प्रावृषः
द्वि०	प्रावृषम्	प्रावृषौ	प्रावृषः
तृ०	प्रावृषा	प्रावृड्भ्याम्	प्रावृड्भिः
च०	प्रावृषे	प्रावृड्भ्याम	प्रावृड्भ्यः
पं०	प्रावृषः	प्रावृड्भ्याम्	प्रावृड्भ्यः
ष०	प्रावृषः	प्रावृषोः	प्रावृषाम्
स०	प्रावृषि	प्रावृषोः	प्रावृट्त्सु, प्रावृट्सु

७१—सकारान्त शब्द

पुं० चन्द्रमस्—चन्द्रमा

प्र०	चन्द्रमाः	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः
सं०	हे चन्द्रमसः	हे चन्द्रमसौ	हे चन्द्रमसः
द्वि०	चन्द्रमसम्	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः
तृ०	चन्द्रमसा	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभिः
च०	चन्द्रमसे	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभ्यः

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
पं०	चन्द्रमसः	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभ्यः
ष०	चन्द्रमसः	चन्द्रमसोः	चन्द्रमसाम्
स०	चन्द्रमसि	चन्द्रमसोः	चन्द्रमःसु-स्सु

दिवौकस् (देवता), महौजस् (वड़ा तेज वाला), वेधस् (ब्रह्मा), सुमनस् (अच्छा चित्त वाला), महायशस् (वड़ा यशस्वी), महातेजस् (वड़ी कान्ति वाला), विशालवक्षस् (वड़ी छाती वाला), दुर्वासस् (दुर्वासा—बुरे कपड़ों वाला), प्रचेतस् (वरुण) इत्यादि सभी सकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों के रूप चन्द्रमस् के समान होते हैं।

पुं० मास्—महीना

द्वि०			मासः
तृ०	मासा	माभ्याम्	माभिः
च०	मासे	माभ्याम्	माभ्यः
पं०	मासः	माभ्याम्	माभ्यः
ष०	मासः	मासोः	मासाम्
सं०	मासि	मासोः	माःसु / मास्सु

नोट—इस मास् शब्द के प्रथम पाँच विभक्तियों में अकारान्त मास शब्द के रूप प्रयुक्त होते हैं। शस् के आगे की विभक्तियों में मास के स्थान पर मास् का विकल्प से प्रयोग होता है। देखिए टिप्पणी पृ० ९८ पर।

पुं० पुम्स्—पुरुष

प्र०	पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः
सं०	हे पुमन्	हे पुमांसौ	हे पुमांसः
द्वि०	पुमांसम्	पुमांसौ	पुंसः
तृ०	पुंसा	पुम्भ्याम्	पुम्भिः
च०	पुंसे	पुम्भ्याम्	पुम्भ्यः
पं०	पुंसः	पुम्भ्याम्	पुम्भ्यः
ष०	पुंसः	पुंसोः	पुंसाम्
स०	पुंसि	पुंसोः	पुंसु

पुं० विद्वस्—विद्वान्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः
सं०	हे विद्वन्	हे विद्वांसौ	हे विद्वांसः
द्वि०	विद्वांसम्	विद्वांसौ	विदुषः[1]
तृ०	विदुषा	विद्वद्भ्याम्[2]	विद्वद्भिः
च०	विदुषे	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
पं०	विदुषः	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
ष०	विदुषः	विदुषोः	विदुषाम्
स०	विदुषि	विदुषोः	विद्वत्सु

वस् में अन्त में होने वाले शब्दों के रूप इसी प्रकार चलते हैं।

इसके जोड़ का स्त्रीलिङ्ग शब्द "विदुषी" है, जिसके रूप नदी के समान चलते हैं।

पुं० लघीयस्—उससे छोटा

प्र०	लघीयान्	लघीयांसौ	लघीयांसः
सं०	हे लघीयन्	हे लघीयांसौ	हे लघीयांसः
द्वि०	लघीयांसम्	लघीयांसौ	लघीयसः
तृ०	लघीयसा	लघीयोभ्याम्	लघीयोभिः

१ वसोः सम्प्रसारणम् ।६।४।१३१। सूत्र के अनुसार वस् में अन्त होने वाले 'भ' संज्ञक व के स्थान पर उ (सम्प्रसारण) हो जाता है। इस प्रकार विदुषः, विदुषा आदि रूप बनते हैं।

२ भ्याम् इत्यादि के पूर्व विद्वस् के स् के स्थान में द् हो जाता है और इस इस प्रकार विद्वद्भ्याम्, विद्वद्भिः इत्यादि रूप बनते हैं। यह परिवर्तन 'वसु-स्रंसुध्वंसुस्वनडुहां दः' ।८।२।७२। के अनुसार होता है।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
च०	लघीयसे	लघीयोभ्याम्	लघीयोभ्यः
पं०	लघीयसः	लघीयोभ्याम्	लघीयोभ्यः
ष०	लघीयसः	लघीयसोः	लघीयसाम्
स०	लघीयसि	लघीयसोः	लघीयस्सु, लघीयःसु

श्रेयस्, (अधिक प्रशस्त), गरीयस् (अधिक बड़ा), द्रढीयस् (अधिक मजबूत), द्राघीयस् (अधिक लम्बा), प्रथीयस् (अधिक मोटा या बड़ा), इत्यादि इयस् प्रत्यय से बने हुए पुंल्लिङ्ग शब्दों के रूप लघीयस् के समान होते हैं।

इनके जोड़ वाले स्त्रीलिङ्ग शब्द श्रेयसी, गरीयसी, द्रढीयसी, द्राघीयसी इत्यादि "ई" जोड़कर वनते हैं, जिनके रूप नदी के समान चलते है।

पुं० श्रेयस्—अधिक प्रशंसनीय

प्र०	श्रेयान्	श्रेयांसौ	श्रेयांसः
सं०	श्रेयन्	हे श्रेयांसौ	हे श्रेयांसः
द्वि०	श्रेयांसम्	श्रेयांसौ	श्रेयसः
तृ०	श्रेयसा	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभिः
च०	श्रेयसे	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभ्यः
पं०	श्रेयसः	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभ्यः
ष०	श्रेयसः	श्रेयसोः	श्रेयसाम्
स०	श्रेयसि	श्रेयसोः	श्रेयस्सु, श्रेयःसु

पुं० दोस्—भुजा

प्र०	दोः	दोषौ	दोषः
सं०	हे दोः	हे दोषौ	हे दोषः
द्वि०	दोषम्	दोषौ	दोषः, दोष्णः

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
तृ०	दोषा दोष्णा	दोर्भ्याम् दोषभ्याम्	दोर्भिः दोषभिः
च०	दोषे दोष्णे	दोर्भ्याम् दोषभ्याम्	दोर्भ्यः दोषभ्यः
पं०	दोषः दोष्णः	दोर्भ्याम् दोषभ्याम्	दोर्भ्यः दोषभ्यः
ष०	दोषः दोष्णः	दोषोः दोष्णोः	दोषाम् दोष्णाम्
स०	दोषि दोष्णि दोषणि	दोषोः दोष्णोः	दोष्षु दोःषु दोषसु

(क) स्त्री० अप्सरस्—अप्सरा

प्र०	अप्सराः	अप्सरसौ	अप्सरसः
सं०	हे अप्सरः	हे अप्सरसौ	हे अप्सरसः
द्वि०	अप्सरसम्	अप्सरसौ	अप्सरसः
तृ०	अप्सरसा	अप्सरोभ्याम्	अप्सरोभिः
च०	अप्सरसे	"	अप्सरोभ्यः
पं०	अप्सरसः	"	अप्सरोभ्यः
ष०	"	अप्सरसोः	अप्सरसाम्
स०	अप्सरसि	"	अप्सरस्सु, अप्सरःसु

अप्सरस् शब्द का प्रयोग वहुधा वहुवचन में ही होता है ।[1]

स्त्री० आशिस्—आशीर्वाद

प्र०	आशीः	आशिषौ	आशिषः
सं०	हे आशीः	हे आशिषौ	हे आशिषः

१ स्त्रियां वहुष्वप्सरसः स्यादेकत्वेऽप्सरा अपि—शब्दार्णवः ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वि०	आशिषम्	आशिषौ	आशिषः
तृ०	आशिषा	आशीर्भ्याम्	आशीर्भिः
च०	आशिषे	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
पं०	आशिषः	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
ष०	आशिषः	आशिषोः	आशिषाम्
स०	आशिषि	आशिषोः	आशीष्षु, आशीःषु

(ख) नपुं० पयस्—दूध या पानी

प्र०	पयः	पयसी	पयांसि
सं०	हे पयः	हे पयसी	हे पयांसि
द्वि०	पयः	पयसी	पयांसि
तृ०	पयसा	पयोभ्याम्	पयोभिः
च०	पयसे	पयोभ्याम्	पयोभ्यः
पं०	पयसः	पयोभ्याम्	पयोभ्यः
ष०	पयसः	पयसोः	पयसाम्
स०	पयसि	पयसोः	पयस्सु, पयःसु

अम्भस् (पानी), नभस् (आकास), आगस् (पानी), उरस् (छाती), मनस् (मन), वयस् (उम्र), रजस् (धूल), वक्षस् (छाती), तमस् (अँधेरा), अयस् (लोहा), वचस (वचन, बात) यशस् (यश, कीर्ति), सरस् (तालाव), तपस् (तपस्या), शिरस् (शिर) इत्यादि सभी असन्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप पयस् के समान होते हैं ।

नपुं० हविस्—होम की वस्तु

प्र०	हविः	हविषी	हवींषि
सं०	हे हविः	हे हविषी	हे हवींषि
द्वि०	हविः	हविषी	हवींषि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृ०	हविषा	हविर्भ्याम्	हविर्भिः
च०	हविषे	हविर्भ्याम्	हविर्भ्यः
पं०	हविषः	हविर्भ्याम्	हविर्भ्यः
ष०	हविषः	हविषोः	हविषाम्
स०	हविषि	हविषोः	हविष्षु, हविःषु

सभी 'इस्' में अन्त होने वाले नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप हविस् की तरह होते हैं।

नपुं० चक्षुस्—आँख

प्र०	चक्षुः	चक्षुषी	चक्षूंषि
सं०	हे चक्षुः	हे चक्षुषी	हे चक्षूंषि
द्वि०	चक्षुः	चक्षुषी	चक्षूंषि
तृ०	चक्षुषा	चक्षुर्भ्याम्	चक्षुर्भिः
च०	चक्षुषे	चक्षुर्भ्याम्	चक्षुर्भ्यः
पं०	चक्षुषः	चक्षुर्भ्याम्	चक्षुर्भ्यः
ष०	चक्षुषः	चक्षुषोः	चक्षुषाम्
सं०	चक्षुषि	चक्षुषोः	चक्षुष्षु, चक्षुःषु

धनुस् (धनुष), वपुस् (शरीर), आयुस् (उम्र), यजुस् (यजुर्वेद) इत्यादि सब 'उस्' में अन्त होने वाले नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप चक्षुस् के समान होते हैं।

७२—हकारान्त शब्द

पुं० मधुलिह्—शहद की मक्खी, भौंरा

प्र०	मधुलिट्, मधुलिड्	मधुलिहौ	मधुलिहः
सं०	हे मधुलिट्, हे मधुलिड्	हे मधुलिहौ	हे मधुलिहः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वि०	मधुलिहम्	मधुलिहौ	मधुलिहः
तृ०	मधुलिहा	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भिः
च०	मधुलिहे	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भ्यः
पं०	मधुलिहः	मधुलिड्भ्याम	मधुलिड्भ्यः
ष०	मधुलिहः	मधुलिहोः	मधुलिहाम्
स०	मधुलिहि	मधुलिहोः	मधुलिट्त्सु, मधुलिट्सु

पुं० अनडुह्—बैल

प्र०	अनड्वान्	अनड्वाहौ	अनड्वाहः
सं०	हे अनड्वन्	हे अनड्वाहौ	हे अनड्वाहः
द्वि०	अनड्वाहम्	अनड्वाहौ	अनडुहः
तृ०	अनडुहा	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भिः
च०	अनडुहे	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः
पं०	अनडुहः	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः
ष०	अनडुहः	अनडुहोः	अनडुहाम्
स०	अनडुहि	अनडुहोः	अनडुत्सु

स्त्री० उपानह्—जूता

प्र०	उपानत्, उपानद्	उपानहौ	उपानहः
सं०	हे उपानत्, हे उपानद्	हे उपानहौ	हे उपानहः
द्वि०	उपानहम्	उपानहौ	उपानहः
तृ०	उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानद्भिः
च०	उपानहे	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
पं०	उपानहः	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
ष०	उपानहः	उपानहोः	उपानहाम्
स०	उपानहि	उपानहोः	उपानत्सु

चतुर्थ सोपान

सर्वनाम-विचार

७३—हिन्दी में 'सर्वनाम' शव्द का अर्थ 'किसी संज्ञा के स्थान में आया हुआ शव्द' है और यही अर्थ अँग्रेजी के 'प्रोनाउन' शव्द का भी है। किन्तु संस्कृत में सर्वनाम शव्द से ऐसे ३५ शव्दों[1] का बोध होता है जो 'सर्व' शव्द से आरम्भ होते हैं और जिनके रूप प्रायः एक से चलते हैं।

द्वंद्व[2] समास को छोड़कर यदि अन्य किसी समास के अन्त में ये सर्व इत्यादि सर्वनाम शव्द हों तो उनकी भी सर्वनाम ही संज्ञा होती है।

---

१ सर्वादीनि सर्वनामानि।१।१।२७।

"सर्वादि" में निम्नलिखित ३५ शव्द हैं—

१—सर्व, २—विश्व, ३—उभ, ४—उभय, ५—डतर अर्थात् डतर प्रत्ययान्त शव्द यथा कतर, यतर इत्यादि। ६—डतम अर्थात् डतम प्रत्ययान्त शव्द यथा कतम, यतम इत्यादि। ७—अन्य, ८—अन्यतर, ९—इतर, १०—त्वत्, ११—त्व, १२—नेम, १३—सम, १४—सिम, १५—पूर्व, १६—पर, १७—अवर, १८—दक्षिण, १९—उत्तर, २०—अपर, २१—अधर, २२—स्व, २३—अन्तर, २४—त्यद्, २५—तद्, २६—यद् २७—एतद्, २८—इदम्, २९—अदस्, ३०—एक, ३१—द्वि, ३२—युष्मद्, ३३—अस्मद्, ३४—भवत्, ३५—किम्। इनमें 'त्वत्' और 'त्व' दोनों ही 'अन्य' के पर्याय हैं। 'नेम' अर्ध का और 'सम' सर्व का पर्याय है। 'सम' तुल्य का पर्याय होने पर सर्वनाम नहीं होगा। उस अवस्था में उसका रूप नर के समान होगा जैसा पाणिनि के 'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्' इस सूत्र से स्पष्ट है। 'सिम' सम्पूर्ण का पर्याय है। 'स्व' भी निज का वाचक होने पर ही सर्वनाम होता है, 'जाति वाले व्यक्ति' या 'धन' का वाचक होने पर नहीं. (स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् ।१।१।३५।)

२ तदन्तस्यापि इयं संज्ञा। द्वन्द्वे चेति ज्ञापकात्। तेन परमसर्वत्रेति त्रल् परमभवकानित्यत्राकच्च सिध्यति। पूर्व उद्धृत् सूत्र ।१।१।२७। पर भट्टोजि की वृत्ति।

किसी[1] के नाम होने पर तथा समास में गौण स्थानभागी होने पर इन शब्दों की सर्वनाम संज्ञा नहीं होती।

(१) इन सर्वनामों में कुछ तो उस अर्थ में सर्वनाम हैं जिस अर्थ में हिन्दी में सर्वनाम शब्द आता है।

(२) कुछ विशेषण हैं और

(३) कुछ संख्यावाची शब्द हैं।

इस परिच्छेद में केवल प्रथम श्रेणी के शब्दों पर विचार किया जायगा।

७४—उत्तमपुरुषवाची 'अस्मद्' शब्द के रूप तीनों लिङ्गों में इस प्रकार चलते हैं—

अस्मद्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वि०	माम्, मा	आवाम्, नौ	अस्मान्, नः
तृ०	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
च०	मह्यम्, मे	आवाभ्याम्, नौ	अस्मभ्यम्, नः
पं०	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
ष०	मम, मे	आवयोः, नौ	अस्माकम्, नः
स०	मयि	आवयोः	अस्मासु

(क) इनमें से 'मा नौ नः, मे नौ नः, मे नौ नः' वैकल्पिक रूप सब जगह प्रयोग में नहीं लाये जा सकते। वाक्य के आरम्भ में, पद्य के चरण के आदि में, तथा च, वा, ह, हा, अह, एव—इन अव्ययों के साथ तथा सम्बोधन शब्द (हे बालक ! आदि) के ठीक अनन्तर इनका प्रयोग वर्जित है। किन्तु यदि सम्बोधन पद का विशेषण भी सम्बोधन रूप से प्रयुक्त हो तो इसका प्रयोग होता है। "मे गृहम्" कहना संस्कृतव्याकरण के अनुसार निषिद्ध है, क्योंकि 'मे' वाक्य के आरम्भ में है इत्यादि।

१ संज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादयः (वा०)

(ख) 'अस्मद्' शब्द के रूप लिङ्ग के अनुसार नहीं बदलते। वक्ता चाहे पुरुष हो या स्त्री, अपने लिए 'अहम्' का ही प्रयोग करेगा। इसी प्रकार अन्य विभक्तियों में भी समझना चाहिए।

७५—मध्यमपुरुषवाची 'युष्मद्' शब्द के रूप तीनों लिङ्गों में इस प्रकार होते हैं—

युष्मद्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वि०	त्वाम्	युवाम्, वाम्	युष्मान्, वः
तृ०	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
च०	तुभ्यम्, ते	युवाभ्याम्, वाम्	युष्मभ्यम्, वः
पं०	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
ष०	तव, ते	युवयोः, वाम्	युष्माकम्, वः
स०	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

ऊपर—७४ (क) में उल्लिखित नियम युष्मद् शब्द के वैकल्पिक (त्वा वाम्: वः, ते वाम् वः, तः वाम् वः) रूपों पर भी ठीक उसी प्रकार लागू है। ७४ (ख) नियम भी यहाँ लागू है।

नोट— मा नौ नः, मे नौ नः, मे नौ नः,
त्वां वां वः, ते वां वः, ते वां वः,

इनके प्रयोगों को दिखाने के लिए दो श्लोक नीचे दिये जाते हैं—

श्रीशस्त्वावतु मापीह दत्ता ते मेऽपि शर्म सः।
स्वामी ते मेऽपि स हरिः पातु वामपि नौ विभुः॥
सुखं वां नौ ददात्वीशः पतिर्वामपि नौ हरिः।
सुखंऽव्याद्वो नः शिवं वो नो दद्यात्सेव्योऽत्र वः स नः॥

युष्मद्[1] और अस्मद् शब्दों की प्रथमा, द्वितीया तथा चतुर्थी में सभी वचनों में अम् आदेश होता है।

१ ङेप्रथमयोरम् ।७।१।२८।

प्रथमा[1] विभक्ति 'सु' के जुड़ने पर (एकवचन) में युष्मद् और अस्मद् के युष्म और अस्म के स्थान पर 'व' और 'अह' आदेश होते हैं एवं 'टि' का लोप होकर 'त्वं' और 'अहं' रूप बनते हैं।

इसी[2] प्रकार प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में युष्मद् और अस्मद् के युष्म और अस्म के स्थान पर युव और आव का आदेश होता है तथा दोनों के अन्तिम अ का दीर्घ हो जाता है।

जस्[3] प्रत्यय के जुड़ने पर युष्मद् और अस्मद् के स्थान पर यूय और वय आदेश होते हैं।

अन्य[4] विभक्तियों के एकवचन में युष्मद् और अस्मद् के युष्म और अस्म के स्थानों पर त्व और म आदेश होते हैं।

द्वितीया[5] विभक्ति में त्व और म का अकार दीर्घ हो जाता है।

द्वितीया[6] बहुवचन के प्रत्यय को अम् आदेश न होकर 'न्' आदेश होता है और युष्म और अस्म के अ का दीर्घ हो जाता है।

जहाँ[7] युष्मद् और अस्मद् को कोई दूसरा आदेश न हुआ हो और व्यंजन से आरम्भ होने वाली विभक्ति आगे जुड़ती हो वहाँ युष्मद् और अस्मद् के अद् के स्थान पर आकार हो जाता है।

ङे के[8] जुड़ने पर क्रमशः तुभ्य और मह्य आदेश होते हैं।

ङसि[9] और भ्यस् को अत् आदेश होता है।

---

१ त्वाहौ सौ ।७।२।९४।

२ युवावौ द्विवचने ।७।२।९२।

३ यूयवयौ ।७।२।९३।

४ त्वमावेकवचने ।७।२।९७।

५ द्वितीयायां च ।७।२।८७।

६ शसो न ।७।१।२९।

७ युष्मदस्मदोरनादेशे ।७।२।८६।

८ तुभ्यमह्यौ ङयि ।७।२।९५।

९ एकवचनस्य च । पञ्चम्या अत् ।७।१।३२-३१।

युष्मद्[1] और अस्मद् की षष्ठी के एकवचन में तव और मम आदेश होते हैं।

युष्मद्[2] और अस्मद् की षष्ठी के बहुवचन को आकम् आदेश होता है।

७६—संस्कृत के 'भवत्' शब्द का अर्थ 'आप' है। इसके रूप तीनों लिङ्गों और तीनों वचनों में चलते हैं और क्रिया आदि का प्रयोग करने के लिए यह अन्य-पुरुषवाची है। यथा—भवान् आगच्छतु; न कि भवान् आगच्छ। पुंल्लिङ्ग में इसके रूप श्रीमत् (देखिए ६१ के अन्तर्गत श्रीमत् शब्द के रूप) के समान भवान् भवन्तौ भवन्तः इत्यादि चलते हैं; नपुंसक लिङ्ग में जगत् (देखिए ६१ ग) के समान 'भवत्, भवती, भवन्ति' आदि होते हैं। स्त्रीलिङ्ग में यह शब्द 'भवती' ईकारान्त हो जाता है, और नदी (देखिए ५४) के समान भवती, भवत्यौ, भवत्यः आदि इसके रूप होते हैं।

(क) भवत् के पूर्व कभी-कभी 'अत्र' शब्द जोड़ कर 'अत्रभवत्' और 'तत्रभवत्' शब्द होते हैं। इन शब्दों के रूप भी ठीक भवत् के समान चलते हैं, केवल अर्थ में थोड़ा भेद है। 'अत्रभवत्' का प्रयोग निकटवर्ती किसी मान्य पुरुष के सम्बन्ध में होता है और 'तत्रभवत्' का प्रयोग दूरवर्ती तथा परोक्षवर्ती के सम्बन्ध में; यथा—अत्रभवान् आचार्यः अस्मान् आज्ञापयति; तत्रभवान् कालिदासः प्रख्यातः कविरासीत्—इत्यादि। यहाँ अत्र और तत्र में वही विभक्ति समझनी चाहिए, जो भवत् में लगी है। यह त्रल् प्रत्यय उसी विभक्ति के अर्थ में इदम् और तद् से संयुक्त हुआ है। इस प्रकार अत्र भवतः का अर्थ है इमे भवन्तः तथा तत्र भवताम् का तेषां भवताम्।

७७—'यह' शब्द के लिए संस्कृत में दो शब्द हैं—'इदम्' और 'एतद्'। इसी प्रकार 'वह' के लिए भी दो शब्द हैं—'तद्' और 'अदस्'। इनके प्रयोग में कुछ भेद है। वह इस प्रकार है—

इदमस्तु सन्निकृष्टं समीपतरवर्ति चैतदो रूपम्।
अदसस्तु विप्रकृष्टं तदिति परोक्षे विजानीयात्॥

---

१ तवममौ ङसि।७।२।९६।

२ साम आकम्।७।१।३३।

अर्थात् 'इदम्' शब्द के रूपों का प्रयोग तब करना चाहिए जब किसी निकटस्थ वस्तु का बोध कराना हो; यदि किसी बहुत ही निकटस्थ वस्तु का बोध कराना हो तो 'एतद्' शब्द के रूपों का प्रयोग करना चाहिए और यदि दूरस्थ वस्तु का बोध कराना हो तो 'अदस्' शब्द के रूपों को काम में लाना चाहिए। 'तद्' शब्द के रूपों का प्रयोग केवल ऐसी वस्तुओं के विषय में करना चाहिए जो सामने नहीं हैं—परोक्ष हैं। उदाहरणार्थ, यदि मेरे पास दो पुरुष बैठे हैं तो मुझसे जो बहुत निकट बैठा है उसके विषय में 'एतद्' शब्द, और जो जरा दूर है, उसके विषय में 'इदम्' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार यदि कोई पुरुष दूर खड़ा है और उसके विषय में कोई बात कहनी है तो 'अदस्' शब्द का प्रयोग करेंगे। 'तद्' शब्द का प्रयोग ऐसे लोगों के विषय में होगा, जो इस समय दृष्टिगोचर नहीं हैं। इन चारों शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में चलते हैं जो नीचे दिखाये जाते हैं—

इदम् और एतद् के रूपों को देखने से प्रकट होगा कि इनके कुछ वैकल्पिक रूप भी हैं—इदम् के (पुं०) एनम्, एनौ, एनान्; एनेन, एनयोः; एनयोः; (नपुं०) एनत्, एने, एनानि; एनेन, एनयोः, एनयोः और (स्त्री०) एनाम्, एने, एनाः; एनया; एनयोः, एनयोः। एतद् के भी ये ही रूप हैं। जब इदम् शब्द अथवा एतद् शब्द के साधारण रूपों में से किसी का प्रयोग हो चुका होता है और जब फिर उसी वस्तु के विषय में कुछ और बात कहनी रहती है तब इन विशेष रूपों का प्रयोग हो सकता है। इसके लिए इस प्रकार नियम है :—

इदम्[1] और एतद् को द्वितीया में, तृतीया एकवचन में तथा षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन में 'एन' आदेश हो जाता है और ऐसा अन्वादेश में ही होता है। एक बार कही हुई वस्तु का कार्यान्तर के लिए पुनरुल्लेख करना अन्वादेश कहलाता है; जैसे—

एतद् वस्त्रं सुष्ठु धावय मैनत् पाटय—इस कपड़े को अच्छी तरह धोना, इसे फाड़ मत डालना।

---

१ द्वितीयाटौस्स्वेनः ।२।४।३४। द्वितीयायां टौसोश्च परतः इदमेतदोरेनादेशः स्यादन्वादेशे। किञ्चित्कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः। सि० कौ०

यहाँ उसी वस्त्र के लिए पहिले एतद् प्रयुक्त हुआ, बाद में उसी के लिए एनत् आया।

एष पञ्चविंशतिवर्षदेशीयोऽधुना एनम् उद्वाहय—यह पच्चीस वर्ष के लगभग हो गया, इसका अब व्याह कर दो।

यहाँ भी पहले 'एषः' आया, तदनन्तर 'एनम्' आया।

(क) इदम्—यह

पुंल्लिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अयम्	इमौ	इमे
द्वि०	इमम्, एनम्	इमौ, एनौ	इमान्, एनान्
तृ०	अनेन, एनेन	आभ्याम्	एभिः
च०	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
पं०	अस्मात्, द्	आभ्याम्	एभ्यः
ष०	अस्य	अनयोः, एनयोः	एषाम्
स०	अस्मिन्	अनयोः, एनयोः	एषु

इदम्[1] 'शब्द' के 'इद्' का पुंल्लिङ्ग में अय् आदेश हो जाता है।

क[2] रहित इदम् शब्द के 'इद्' का तृतीया से सप्तमी तक 'अन्' हो जाता है। क-युक्त होने पर 'इमकेन' इत्यादि होगा। (आप् प्रत्याहार तृतीया से सप्तमी तक का बोधक है)।

क-रहित[3] इदम् और अदस् शब्द में भिस् (तृतीया बहुवचन) के स्थान में ऐस् (ऐः) नहीं होता। क-युक्त होने पर हो जाता है; यथा, इमकैः।

यदि[4] इदम् के आगे तृतीया से सप्तमी तक की विभक्तियों की कोई ऐसी विभक्ति जुड़े जो व्यंजन से आरम्भ होती हो तो इदम् के 'इद्' का लोप हो

---

१ इदोऽय् पुंसि ।७।२।१११।

२ अनाप्यकः ।७।२।११२।

३ नेदमदसोरकोः ७।१।११।

४ हलि लोपः ।७।२।११३।

जायगा और शेष केवल अ बचेगा, क्योंकि इदम् का म् तो पहिले से ही त्यदादीनामः ।७।२।१०२। से अ होकर इद के अ को भी अतोगुणे ।६।१।९७। में अपने रूप में मिला लेता है । इस प्रकार अस्मै, आभ्याम्, अस्मात्, अस्मिन् इत्यादि पद सिद्ध होते हैं । अभ्याम् इत्यादि में बालकाभ्याम् इत्यादि की भाँति दीर्घ हो जाता है ।

नपुंसकलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	इदम्	इमे	इमानि
द्वि०	इदम्, एनत्	इमे, एने	इमानि, एनानि
तृ०	अनेन, एनेन	आभ्याम्	एभिः
च०	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
पं०	अस्मात्, द्	आभ्याम्	एभ्यः
ष०	अस्य	अनयोः, एनयोः	एषाम्
स०	अस्मिन्	अनयोः, एनयोः	एषु

स्त्रीलिङ्ग

प्र०	इयम्	इमे	इमाः
द्वि०	एमाम्, एनाम्	इमे, एने	इमाः, एनाः
तृ०	अनया, एनया	आभ्याम्	आभिः
च०	अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः
पं०	अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः
ष०	अस्याः	अनयोः, एनयोः	आसाम्
स०	अस्याम्	अनयोः, एनयोः	आसु

(ख) एतद्--यह

पुंल्लिङ्ग

प्र०	एषः	एतौ	एते
द्वि०	एतम्, एनम्	एतौ, एनौ	एतान्, एनान्
तृ०	एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतैः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
च०	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
पं०	एतस्मात्, द्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
ष०	एतस्य	एतयोः, एनयोः	एतेषाम्
स०	एतस्मिन्	एतयोः, एनयोः	एतेषु

नपुंसकलिङ्ग

प्र०	एतत्, द्	एते	एतानि
द्वि०	एतत्, द् एनत्, द्	एते, एने	एतानि, एनानि
तृ०	एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतैः
च०	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
पं०	एतस्मात्, द्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
ष०	एतस्य	एतयोः, एनयोः	एतेषाम्
स०	एतस्मिन्	एतयोः, एनयोः	एतेषु

स्त्रीलिङ्ग

प्र०	एषा	एते	एताः
द्वि०	एताम्, एनाम्	एते, एने	एताः, एनाः
तृ०	एतया, एनया	एताभ्याम्	एताभिः
च०	एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्यः
पं०	एतस्याः	एताभ्याम्	एताभ्यः
ष०	एतस्याः	एतयोः, एनयोः	एतासाम्
स०	एतस्याम्	एतयोः, एनयोः	एतासु

(ग) तद्--वह

पुंल्लिङ्ग

प्र०	सः	तौ	ते
द्वि०	तम्	तौ	तान्
तृ०	तेन	ताभ्याम्	तैः

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
च०	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पं०	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
ष०	तस्य	तयोः	तेषाम्
स०	तस्मिन्	तयोः	तेषु

नपुंसकलिङ्ग

प्र०	तत्, द्	ते	तानि
द्वि०	तत्, द्	ते	तानि
तृ०	तेन	ताभ्याम्	तैः
च०	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पं०	तस्मात्, द्	ताभ्याम्	तेभ्यः
ष०	तस्य	तयोः	तेषाम्
स०	तस्मिन्	तयोः	तेषु

स्त्रीलिङ्ग

प्र०	सा	ते	ताः
द्वि०	ताम्	ते	ताः
तृ०	तया	ताभ्याम्	ताभिः
च०	तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्यः
पं०	तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः
ष०	तस्याः	तयोः	तासाम्
स०	तस्याम्	तयोः	तासु

त्यदादि[1] (त्यद्, तद्, एतद्, यद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि) सर्वनामों के बाद विभक्ति जुड़ने पर अन्तिम वर्ण के स्थान में अ हो जाता है।

त्यद्[2] इत्यादि सर्वनाम शब्दों के आगे सु (प्रथमा एकवचन) विभक्ति जुड़ने पर त् तथा द् के स्थान में स का आदेश हो जाता है। परन्तु अन्त वाले त् या द् के स्थान में नहीं। इस प्रकार तद्+सु=स्+अ (।७।२।१०२। के

१ त्यदादीनामः ।७।२।१०२। (द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः)।

२ तदोः सः सावनन्त्ययोः ।७।२।१०६।

अनुसार अन्तिम द् के स्थान में हो जायगा।) +स्=सः। इसी प्रकार एषः इत्यादि भी बनेगा।

(घ) अदस्--वह

पुंल्लिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	असौ	अमू	अमी
द्वि०	अमुम्	अमू	अमून्
तृ०	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
च०	अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
पं०	अमुष्मात्, द्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
ष०	अमुष्य	अमूयोः	अमीषाम्
स०	अमुष्मिन्	अमूयोः	अमीषु

नपुंसकलिङ्ग

प्र०	अदः	अमू	अमूनि
द्वि०	अदः	अमू	अमूनि
तृ०	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
च०	अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
पं०	अमुष्मात्, द्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
ष०	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
स०	अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु

स्त्रीलिङ्ग

प्र०	असौ	अमू	अमूः
द्वि०	अमुम्	अमू	अमूः
तृ०	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
च०	अमुष्यै	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
पं०	अमुष्याः	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
ष०	अमुष्याः	अमुयोः	अमूषाम्
स०	अमुष्याम्	अमुयोः	अमूषु

७८—सम्वन्धसूचक हिन्दी के 'जो' शब्द के लिए संस्कृत में 'यद्' शब्द है। इसके रूप तीनों लिङ्गों में भिन्न-भिन्न होते हैं जो नीचे दिये जाते हैं। इसके साथ के 'सो' शब्द के लिए 'तद्' शब्द के रूप आवश्यकता के अनुसार प्रयोग में आते हैं, यथा—

यो मद्भक्तः स मे प्रियः—।

बुद्धिर्यस्य वलं तस्य।

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।

तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

(जो मनुष्य आत्महत्या करते हैं वे मर कर ऐसे लोकों में पहुँचते हैं जो असुरों के हैं तथा जिनमें सदा अँधेरा रहता है।)

यद्--जो

पुंल्लिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	यः	यौ	ये
द्वि०	यम्	यौ	यान्
तृ०	येन	याभ्याम्	यैः
च०	यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
पं०	यस्मात्, द्	याभ्याम्	येभ्यः
ष०	यस्य	ययोः	येषाम्
स०	यस्मिन्	ययोः	येषु

नपुंसकलिङ्ग

प्र०	यत्, द्	ये	यानि
द्वि०	यत्, द्	ये	यानि
तृ०	येन	याभ्याम्	यैः
च०	यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
पं०	यस्मात्, द्	याभ्याम्	येभ्यः
ष०	यस्य	ययोः	येषाम्
स०	यस्मिन्	ययोः	येषु

स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र०	या	ये	याः
द्वि०	याम्	ये	याः
तृ०	यया	याभ्याम्	याभिः
च०	यस्मै	याभ्याम्	याभ्यः
पं०	यस्याः	याभ्याम्	याभ्यः
ष०	यस्याः	ययोः	यासाम्
स०	यस्याम्	ययोः	यासु

७९—प्रश्नवाची सर्वनाम 'कौन', क्या' के लिए संस्कृत में 'किम् शब्द है; इसके रूप तीनों लिङ्गों में नीचे लिखे प्रकार से चलते हैं। उदाहरणार्थ, कः आगतः ? (कौन आया है ?); का आगता ? (कौन स्त्री आयी है ?); किमस्ति (क्या है ?) आदि इसके प्रयोग होते हैं।

(क) इसी शब्द के रूपों के साथ 'अपि', 'चित्' अथवा 'चन' जोड़ देने से हिन्दी के किसी, कोई, कुछ आदि अनिश्चयवाचक सर्वनामों का बोध होता है; यथा—

कोऽपि आगतोऽस्ति
कश्चिदागतोऽस्ति } —कोई आया है।
कश्चनागतोऽस्ति

काऽप्यागताऽस्ति
काचिदागताऽस्ति } —कोई आयी है।
काचन आगताऽस्ति

किमप्यस्ति
किञ्चिदस्ति } —कुछ है।
किञ्चनास्ति

किम्—कौन

पुंल्लिङ्ग

प्र०	कः	कौ	के
द्वि०	कम्	कौ	कान्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृ०	केन	काभ्याम्	कैः
च०	कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
पं०	कस्मात्, द्	काभ्याम्	केभ्यः
ष०	कस्य	कयोः	केषाम्
स०	कस्मिन्	कयोः	केषु

नपुंसकलिङ्ग

प्र०	किम्	के	कानि
द्वि०	किम्	के	कानि
तृ०	केन	काभ्याम्	कैः
च०	कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
पं०	कस्मात्, द्	काभ्याम्	केभ्यः
ष०	कस्य	कयोः	केषाम्
स०	कस्मिन्	कयोः	केषु

स्त्रीलिङ्ग

प्र०	का	के	काः
द्वि०	काम्	के	काः
तृ०	कया	काभ्याम्	काभिः
च०	कस्यै	काभ्याम्	काभ्यः
पं०	कस्याः	काभ्याम्	काभ्यः
ष०	कस्याः	कयोः	कासाम्
स०	कस्याम्	कयोः	कासु

८०—हिन्दी के निजवाचक सर्वनाम (Reflexive pronoun) 'अपने आप', 'अपने को' आदि का अर्थ बोध कराने के लिए संस्कृत में तीन शब्दों का प्रयोग होता है—(१) आत्मन्, (२) स्व, (३) स्वयम् । इस अर्थ का बोध कराने के लिए आत्मन् शब्द के रूप केवल पुंल्लिङ्ग एकवचन में चलते हैं और सभी लिङ्गों और वचनों में निजवाचकता का अर्थ देते हैं; जैसे—

सः आत्मानं निन्दितवान्,
सा आत्मानं निन्दितवती,
सर्वाः राजकन्याः आत्मानं मुकुरे अद्राक्षुः,
सा आत्मानमपराधिनममन्यत,
सा आत्मनि कमपि दोषं नाद्राक्षीत,
तच्छरीरमात्मनैव विनष्टम्, इत्यादि ।

'स्व' शब्द के चार अर्थ होते हैं—नातेदार, धन, आत्मीय और अपने आप । इनमें से जब इसका[1] अर्थ 'आत्मीय' या 'अपने आप' होता है, तभी यह सर्वनाम होता है । तब इसके रूप सर्व शब्द (८८) के समान तीनों लिङ्गों में अलग-अलग चलते हैं, केवल पुंल्लिङ्ग प्रथमा बहुवचन तथा पंचमी और सप्तमी के एकवचन में बालक के समान भी रूप होते हैं—स्वे, स्वाः, स्वात्, स्वस्मात्, स्वे, स्वस्मिन् । 'स्वयम्' शब्द अव्यय है । सब लिङ्गों और सब वचनों में यह ऐसा ही प्रयोग में आता है; यथा—

सा स्वयमपराधं कृत्वा दोषं मयि क्षिप्तवती । राजा स्वयमुत्कोचं गृह्णाति मन्त्रिणां का कथा, इत्यादि ।

(क) परस्परवाची सर्वनाम संस्कृत में तीन होते हैं—परस्पर, अन्योन्य और इतरेतर । इनके रूप बालक के समान होते हैं, और एकवचन में ये क्रिया-विशेषण के रूप में ही प्रयुक्त होते हैं ।

परस्परं विवादं कृतवान्,
अन्योन्येन मिलितम्,
इतरेतरस्य सौभाग्यं दूषयति ।

८९—निश्चयवाचक सर्वनाम (यही, वही, उसी ने) का निश्चयात्मक अर्थ बतलाने के लिए सर्वनाम के रूप के साथ 'एवं' शब्द जोड़ कर संस्कृत में निश्चय का बोध कराते हैं; यथा—

---

१ स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् ।१।१।३५।

क आगतः ? स एव पुनः आगतः ।
केनेदं कृतम् ? तेनैव तु कृतम् इत्यादि ।

अनिश्चयात्मक ७६ (क) सर्वनामों को छोड़ कर ऊपर लिखे और सब सर्वनामों के साथ इस प्रकार 'एव' जोड़ कर 'ही' का निश्चयात्मक अर्थ प्रकट किया जा सकता है ।

पञ्चम सोपान

विशेषण-विचार

८२—हिन्दी में कभी-कभी तो विशेष्य के लिङ्ग और वचन के अनुसार विशेषण बदलता है (जैसे, अच्छा लड़का, अच्छे लड़के, अच्छी लड़की, अच्छी लड़कियाँ), किन्तु बहुधा नहीं बदलता (जैसे, लाल घोड़ा, लाल घोड़ी, लाल घोड़े, लाल घोड़ियाँ) । संस्कृत में विशेष्य के लिङ्ग, वचन और विभक्ति के अनुसार विशेषण का रूप बदलता है । जिस लिङ्ग, जिस वचन और जिस विभक्ति का विशेष्य होता है, उसी लिङ्ग, उसी वचन और उसी विभक्ति का विशेषण भी होता है । यहाँ तक कि ऐसे विशेष्यों के साथ भी विशेषण बदलता है, जो लिङ्ग के लिए भिन्न रूप नहीं रखते, किन्तु जिनका प्रकरण आदि से लिङ्ग अवगत हो जाता है; यथा हिन्दी में 'मैं सुन्दर हूँ' इस वाक्य का अनुवाद संस्कृत में 'अहं सुन्दरोऽस्मि' और 'अहं सुन्दरी अस्मि'—इन दोनों वाक्यों से होगा । यदि बोलने वाला पुरुष है तो प्रथम वाक्य प्रयोग में आवेगा और यदि वह स्त्री है तो दूसरा वाक्य । हिन्दी में विशेषणों के साथ अलग विभक्तिसूचक परसर्ग (का, में आदि) नहीं लगाये जाते जैसे—'पढ़े-लिखे मनुष्यों का आदर होता है'—इस वाक्य में 'का' परसर्ग केवल 'मनुष्यों' के पश्चात् लगाया गया है, विशेषण 'पढ़े-लिखे' के पश्चात् नहीं । परन्तु संस्कृत में विशेषण और विशेष्य दोनों में विभक्तियाँ लगती हैं । ऊपर के वाक्य का अनुवाद होगा—शिक्षितानां मनुष्याणामादरः क्रियते (अथवा भवति) । इस प्रकार संज्ञा की तरह संस्कृत में विशेषण के भी लिङ्ग, वचन और विभक्ति के भिन्न-भिन्न रूप होते हैं । कुछ संख्यावाची विशेषण शत, विंशति, त्रिंशत् आदि जिनके लिङ्ग नियत हैं और वचन

भी विशेष अर्थ में ही बदलते हैं, विशेष्य के लिङ्ग और वचन के अनुसार नहीं बदल सकते, किन्तु विभक्ति के अनुसार बदलते ही हैं। (विशेष-विशेष स्थलों पर इसका विस्तृत वर्णन किया गया है)।

अधिकतर विशेषणों के रूप संज्ञाओं के समान ही होते हैं; जैसे अकारान्त विशेषण चतुर, कुशल, सुन्दर आदि के पुंल्लिङ्ग में अकारान्त बालक के समान और नपुंसकलिङ्ग में अकारान्त फल के समान रूप होते हैं। इसी प्रकार ईकारान्त विशेषण सुन्दरी, चन्द्रमुखी आदि के रूप ईकारान्त नदी के समान होते हैं। थोड़े से विशेषण ऐसे भी हैं, जिनके रूप भिन्न होते हैं, उनका विचार इस परिच्छेद में किया गया है।

८३—सार्वनामिक विशेषण—ऊपर लिखे हुए सर्वनामों में से इदम्, एतद्, तद्, अदस् (७७), यद् (७८), किम् (७९) तथा अनिश्चयवाचक (७९ क) और निश्चयवाचक (८१) सर्वनाम, सभी का प्रयोग विशेषण के रूप में भी होता है; जैसे, अयं पुरुषः, एषा नारी, एतच्छरीरं, ते भृत्याः, अमी जनाः, यो विद्यार्थी, का नारी, कस्मिंश्चिन्नगरे, तस्मिन्नेव ग्रामे इत्यादि।

८४—इसका, उसका, मेरा, तेरा, हमारा, तुम्हारा, जिसका आदि सम्बन्ध-सूचक भाव दिखाने के लिए संस्कृत में दो उपाय हैं, एक तो इदम्, तद्, अस्मद्, आदि की षष्ठी विभक्ति के रूपों का प्रयोग करना, जैसे मम पुस्तकं, तवाश्वः, अस्य प्रबन्धः इत्यादि; दूसरे इन शब्दों में कुछ प्रत्यय जोड़ कर इनसे विशेषण बनाकर उनको अन्य विशेषणों के अनुसार प्रयोग में लाना। ये विशेषण छ, अण् तथा खञ् प्रत्ययों को जोड़कर बनाये जाते हैं।

युष्मद्[1] और अस्मद् में विकल्प से खञ् और छ प्रत्यय भी लगते हैं।

छ को ईय आदेश होता है। छ प्रत्यय जुड़ने पर अस्मद् के स्थान में (ए० व० में) मत् और (ब० व० में) अस्मत् तथा युस्मद् के स्थान में (ए० व० में) त्वत् और (ब० व० में) युष्मद् हो जाते हैं।

---

१ युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च।४।३।१।

छ और खञ् प्रत्यय के अतिरिक्त युष्मद् और अस्मद् में अण् भी जुड़ता है। खञ् और अण् लगने पर अस्मद् और युस्मद् के स्थान में एकवचन[1] में यमक और तवक और बहुवचन[2] में अस्माक और युष्माक आदेश होतें हैं। खञ् का ईन हो जाता है।

अस्मद् शब्द से बने हुए विशेषण

१—छ प्रत्यय जोड़कर—मदीय	(मेरा)	और अस्मदीय	(हमारा)
२—अण् प्रत्यय जोड़कर—मामक	(")	और आस्माक	(")
३—खञ् प्रत्यय जोड़कर—मामकीन	(")	और आस्माकीन	(")

स्त्रीलिङ्ग

१—छ प्रत्यय जोड़कर—मदीया	(मेरी)	अस्मदीया	(हमारी)
२—अण् प्रत्यय जोड़कर—मामकी	(")	आस्माकी	(")
३—खञ् प्रत्यय जोड़कर—मामकीना	(")	आस्माकीना	(")

युष्मद् शब्द से बने हुए विशेषण

पुंल्लिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग

१—छ प्रत्यय जोड़कर—त्वदीय	(तेरा)	युष्मदीय	(तुम्हारा)
२—अण् प्रत्यय जोड़कर—तावक	(")	यौष्माक	(")
३—खञ् प्रत्यय जोड़कर—तावकीन	(")	यौष्माकीण	(")
१—छ प्रत्यय जोड़कर—त्वदीया	(तेरी)	युष्मदीया	(तुम्हारी)
२—अण् प्रत्यय जोड़कर—तावकी	(")	यौष्माकी	(")
३—खञ् प्रत्यय जोड़कर—तावकीना	(")	यौष्माकीणा	(")

(ग) तद् शब्द से—

पुं० तथा नपुं०	**स्त्री०**
तदीय (उसका)	तदीया (उसकी)

(घ) एतद् शब्द से—

पुं० तथा नपुं०	**स्त्री०**
एतदीय (इसका)	एतदीया (इसकी)

---

१ तवकममकावेकवचने ।४।३।३।

२ तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ।४।३।२।

(च) यद् शब्द से—

पुं० तथा नपुं०	स्त्री०
यदीय (जिसका)	यदीया (जिसकी)

इनमें जो अकारान्त हैं उनके बालक (पुं०) तथा फल (नपुं०) के समान, और जो आकारान्त व ईकारान्त हैं उनके विद्या और नदी के समान सब विभक्तियों और वचनों में रूप चलते हैं। अन्य विशेषणों की तरह इनके भी लिङ्ग, वचन और विभक्ति विशेष्य के लिङ्ग, वचन और विभक्ति के अनुसार होते हैं; यथा—

त्वदीयानामश्वानां युद्धे नास्ति काऽपि आवश्यकता।

यदीया सम्पत्तिः तदीयं स्वत्वम्।

अस्मद्, युष्मद्, इदम् आदि की षष्ठी के रूपों के विषय में यह नियम नहीं लगता, वे विशेष्य के अनुसार नहीं बदलते, यथा—मम अश्वः, तव गृहम्, अस्य लिपिः इत्यादि।

८५—'ऐसा, जैसा' आदि शब्दों द्वारा बोधित 'प्रकार' के अर्थ के लिए संस्कृत में तद्, अस्मद्, युष्मद् आदि शब्दों में प्रत्यय जोड़कर तादृश आदि शब्द बनते हैं और विशेषण होते हैं। अन्य विशेषणों की भाँति इनकी विभक्ति, लिङ्ग, वचन आदि विशेष्य के अनुसार होते हैं। ये शब्द नीचे लिखे हैं—

(क) अस्मद् शब्द से

पुंल्लिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग

१—क्विन् जोड़कर—मादृश्	(मुझ सा)	अस्मादृश्	(हमारा सा)
२—कञ्* जोड़कर—मादृश	(")	अस्मादृश	(")

स्त्रीलिङ्ग

मादृशी (मुझ सी)	अस्मादृशी (हमारी सी)

*त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च।३।२।६०। अर्थात् यदि त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इत्यादि शब्दों के आगे दृश् धातु हो और उसका देखना अर्थ न हो, तो कञ् और क्विन् प्रत्यय विकल्प से जुड़ते हैं। 'क्सोऽपि वाच्यः' इस वार्त्तिक के द्वारा इसी अर्थ में दृश् धातु के आगे क्स भी लगता है, जैसे अस्मादृक्ष, तादृक्ष, ईदृक्ष, सदृक्ष इत्यादि। 'आ सर्वनाम्नः' ।६।३।९१। इस नियम के अनुसार त्वत्, अस्मत्, मत्, तत् इत्यादि के अन्त में आकार आदेश होता है।

(ख) युष्मद् शब्द से

पुंल्लिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग

१—क्विन् जोड़कर—त्वादृश् (तुझ सा) युष्मादृश (तुम्हारा सा)

२—कञ् जोड़कर—त्वादृश (") युष्मादृश (")

स्त्रीलिङ्ग

त्वादृशी (तुझ सी) युष्मादृशी (तुम्हारी सी)

(ग) तद् शब्द से

पुंल्लिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
तादृश् (वैसा, तैसा)	तादृशी (वैसी, तैसी)
तादृश (" ")	

(घ) इदम् शब्द से

पुं० तथा नपुं०	स्त्री०
ईदृश (ऐसा)	ईदृशी (ऐसी)
ईदृश् (")	

(च) एतद् शब्द से

पुं० तथा नपुं०	स्त्री०
एतादृश् (ऐसा)	एतादृशी (ऐसी)
एतादृश् (")	

(छ) यद् शब्द से

पुं० तथा नपुं०	स्त्री०
यादृश् (जैसा)	यादृशी (जैसी)
यादृश् (")	

(ज) किम् शब्द से

पुं० तथा नपुं०	स्त्री०
कीदृश् (कैसा)	कीदृशी (कैसी)
कीदृश् (")	

(झ) भवत् शब्द से

पुं० तथा नपुं०	स्त्री०
भवादृश् (आप सा)	भवादृशी (आप सी)
भवादृश (")	

इनमें शकारान्त के रूप शकारान्त पुंल्लिङ्ग अथवा नपुंसकलिङ्ग संज्ञाओं के अनुसार तथा ईकारान्त के ईकारान्त संज्ञा (नदी) के अनुसार चलते हैं। जैसा ऊपर कह चुके हैं, उनके लिङ्ग, वचन और विभक्ति विशेष्य के अनुसार रहते हैं।

८६—परिमाणसूचक 'जितना, उतना, कितना' आदि शब्दों का अर्थ दिखाने के लिए संस्कृत में इदम् आदि शब्दों से विशेषण बनते हैं। वे इस प्रकार हैं। इनमें तकारान्त शब्दों के रूप पुंल्लिङ्ग में तकारान्त श्रीमत् (६१) तथा नपुंसकलिङ्ग में जगत् (६१ ग) के अनुसार चलते हैं और ईकारान्त शब्दों के नदी के समान।

यद्[1], तद्, एतद् इत्यादि शब्दों में परिमाण का अर्थ प्रकट करने के लिए वतुप् जोड़ा जाता है, जैसे, यद्+वतुप्=यावत्; इसी प्रकार तावत्, एतावत् इत्यादि। 'आ सर्वनाम्नः', इस सूत्र से यद्, तद्, एतद् इत्यादि का क्रमशः आकार अन्तादेश होकर उसके रूप या, ता, एता हो जाते हैं।

(क) यद् शब्द से

यावत् (जितना)	यावती (जितनी)

(ख) तद् शब्द से

तावत् (उतना)	तावती (उतनी)

(ग) एतद् शब्द से

एतावत् (इतना)	एतावती (इतनी)

किम्[2] तथा इदम् शब्दों में भी वतुप् जुड़ता है और वतुप् का 'व' घ य में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार कियत् और इयत् बनते हैं।

(घ) किम् शब्द से

कियत् (कितना)	कियती (कितनी)

(ङ) इदम् शब्द से

इयत् (इतना)	इयती (इतनी)

---

१ यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ।५।२।३९।

२ किमिदंभ्यां वो घः ।५।२।४०।

परिमाण के अर्थ में इन शब्दों का प्रयोग प्रायः केवल एकवचन में ही होता है, यथा—

कियानध्वाऽधुनावशिष्टः ?

तावानेव यावान् भवता लङ्घितः ।

तेन कियती सम्पत्तिः गुरवे समर्पिता ?

तावती यावती गुरुणा याचिता ।

संख्यासूचक होने पर तो सभी वचनों का प्रयोग होता है ।

८७—संख्यासूचक 'इतने, कितने' आदि शब्दों का अर्थ दिखाने के लिए संस्कृत में दो उपाय हैं—

(१) ऊपर ८६ के शब्दों को बहुवचन में प्रयोग करना; इस दशा में विशेष्य के लिङ्ग और विभक्ति के अनुसार उनमें भी परिवर्तन होगा; यथाः—

कियन्तः पुरुषाः आगताः, कियत्यः स्त्रियः ?

तावन्तः पुरुषाः यावन्तः ह्यः आगताः, तावत्यः एव स्त्रियः इत्यादि ।

किम्[1] शब्द से संख्या-परिमाण अर्थ में एक और प्रत्यय लगता है डति, जिससे रूप बनता है कति ।

जब किसी वस्तु की निश्चित संख्या के विषय में प्रश्न करना अभीष्ट हो, तब किम् में यह 'डति' प्रत्यय लगता है । सूत्र में 'च' रखने का प्रयोजन यह है कि 'डति' के अतिरिक्त इसी अर्थ में 'वतुप्' भी लगता है । इसी कारण कियत् इत्यादि की संख्या के अर्थ में भी प्रयोग सम्भव होता है ।

कति शब्द सब लिङ्गों में प्रयुक्त होता है; नित्य बहुवचन होता है और इसके रूप प्रथमा और द्वितीया विभक्ति में एक-से तथा अविकृत-से रहते हैं, शेष विभक्तियों में भिन्न होते हैं—

---

१ किमः संख्यापरिमाणे डति च ।५।२४।१। संख्यायाः परिमाणं परिच्छेदः, तस्मिन् कर्त्तव्यः यः प्रश्नस्तस्मिन् वर्तमानात्किमः प्रथमासामर्थ्यादस्यति षष्ठ्यर्थे डतिः स्यात् । तत्त्वबोधिनी ।

	बहुवचन
प्र०	कति
द्वि०	,,
तृ०	कतिभिः
च०	कतिभ्यः
पं०	,,
ष०	कतीनाम्
स०	कतिषु

८८—'सर्व' शब्द के रूप तीनों लिङ्गों में चलते हैं और इस प्रकार होते हैं—

सर्व—सब

पुंल्लिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सर्वः	सर्वौ	सर्वे[1]
द्वि०	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृ०	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
च०	सर्वस्मै[2]	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पं०	सर्वस्मात्, द्[3]	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
ष०	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्[4]
स०	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु

सर्व इत्यादि अकारान्त सर्वनाम शब्दों के जस् (अर्थात् प्रथमा बहुवचन) को 'ई' आदेश हो जाता है। इस प्रकार सर्व+जस्=सर्व+ई=सर्वे।

अकारान्त सर्वनाम शब्दों के चतुर्थी एकवचन के प्रत्यय ङे को स्मै आदेश हो जाता है।

---

१ जसः शी ।७।१।१७।

२ सर्वनाम्नः स्मै ।७।१।१४।

३ ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ ।७।७।१५।

४ आमि सर्वनाम्नः सुट् ।७।१।५२।

अकारान्त सर्वनाम शब्दों की पंचमी तथा सप्तमी के एकवचन में ङसि और ङि के स्थान में क्रमशः स्मात् और स्मिन् हो जाता है।

आम् (षष्ठी बहुवचन) को स् का आगम हो जाता है। इस प्रकार सर्व+आम=सर्व+स्+आम्=सर्वेषाम्।

नपुंसकलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
द्वि०	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि

आगे पुंल्लिङ्ग के समान रूप होते हैं।

स्त्रीलिङ्ग

प्र०	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
द्वि०	सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः
तृ०	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
च०	सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
पं०	सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
ष०	सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
स०	सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु

सर्व शब्द के द्विवचन के रूप प्रायः प्रयोग में नहीं मिलते, किन्तु यदि किन्हीं दो वस्तुओं के साथ सव का अर्थ लाना हो तो द्विवचन का प्रयोग कर सकते हैं।

८९—परिमाणवाची[1] अल्प (थोड़ा), अर्ध (आधा), नेम (आधा) तथा सम (बराबर) तीनों लिङ्गों में अलग-अलग रूप रखते हैं—पुंल्लिङ्ग में बालक के समान, नपुंसकलिङ्ग में फल के समान और स्त्रीलिङ्ग में विद्या के समान। केवल अल्प, अर्ध और नेम के पुंल्लिङ्ग में प्रथमा के बहुवचन में दो रूप होते हैं—अल्पे अल्पाः, अर्धे अर्धाः, नेमे नेमाः।

(क) पूरकसंख्यावाची 'प्रथम' और 'चरम' शब्द के रूप भी तीनों

१ प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च ।१।१।३३। एते जसः कार्यं प्रत्युक्तसंज्ञाः वा स्युः। सि० कौ०।

लिङ्गों में चलते हैं, जैसे परिमाणवाची 'अल्प' आदि के। इनके भी पुंल्लिङ्ग प्रथमा के बहुवचन में दो रूप होते हैं—प्रथमे प्रथमाः, चरमे चरमाः।

(ख) संख्यावाची 'कतिपय' (कुछ) शब्द के रूपों के विषय में भी ऊपर लिखा हुआ नियम लगता है; यथा—कतिपये, कतिपयाः।

(ग) 'तीय'[1] प्रत्ययान्त 'द्वितीय' और 'तृतीय' शब्दों की केवल ङित्[2] (ङे, ङसि, ङस् तथा ङि) विभक्तियों में विकल्प से सर्वनाम संज्ञा मानी जाती है। शेष में इनके रूप बालक की भाँति होते हैं। उदाहरण के लिए द्वितीय के रूप पुंल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में दिये जाते हैं—

द्वितीयः

पुंल्लिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	द्वितीयः	द्वितीयौ	द्वितीयाः
द्वि०	द्वितीयम्	द्वितीयौ	द्वितीयान्
तृ०	द्वितीयेन	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयैः
च०	द्वितीयस्मै द्वितीयाय	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयेभ्यः
पं०	द्वितीयस्मात्, द् द्वितीयात्, द्	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयेभ्यः
ष०	द्वितीयस्य	द्वितीययोः	द्वितीयानाम्
स०	द्वितीयस्मिन् द्वितीये	द्वितीययोः	द्वितीयेषु

---

१ द्वेस्तीयः ।५।२।५४। यह सूत्र 'तस्य पूरणे डट्' ।५।२।४८। का अपवाद है। द्वि के साथ पूरणी संख्या के अर्थ में तीन प्रत्यय लगता है। इस प्रकार 'द्वयोः पूरणः' इस अर्थ में 'द्वितीय' शब्द बना। 'त्रेः सम्प्रसारणं च' ।५।२।५५। सूत्र से त्रि शब्द में भी 'तीय' प्रत्यय लगता है और त्रि के रेफ का ऋकार हो जाता है। इस प्रकार 'तृतीय' बनता है।

२ विभाषाप्रकरणे तीयस्य ङित्सूपसंख्यानम् (वा०)

स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र०	द्वितीया	द्वितीये	द्वितीयाः
द्वि०	द्वितीयाम्	द्वितीये	द्वितीयाः
तृ०	द्वितीयया	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभिः
च०	द्वितीयस्यै / द्वितीयायै	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभ्यः
पं०	द्वितीयस्याः / द्वितीयायाः	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभ्यः
ष०	द्वितीयस्याः / द्वितीयायाः	द्वितीययोः	द्वितीयानाम्
स०	द्वितीयस्याम् / द्वितीयायाम्	द्वितीययोः	द्वितीयासु

६०—उभ (दोनों) शब्द के रूप केवल द्विवचन में होते हैं और तीनों लिङ्गों में अलग-अलग। विशेष्य के अनुसार इसकी विभक्तियाँ होती हैं और लिङ्ग भी।

	पुंल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
प्र०	उभौ	उभे	उभे
द्वि०	उभौ	उभे	उभे
तृ०	उभाभ्याम्	उभाभ्याम्	उभाभ्याम्
च०	उभाभ्याम्	उभाभ्याम्	उभाभ्याम्
पं०	उभाभ्याम्	उभाभ्याम्	उभाभ्याम्
ष०	उभयोः	उभयोः	उभयोः
स०	उभयोः	उभयोः	उभयोः

(क) 'उभय' शब्द के[1] द्विवचन के रूप नहीं होते, केवल एकवचन तथा बहुवचन के ही होते हैं। जस् विभक्ति में भी इसकी सर्वादीनि सर्वनामानि।१।१।२७। से नित्य सर्वनाम संज्ञा होती है। प्रथमचरम।१।१।३३। आदि नियम

१ उभयशब्दस्य द्विवचनं नास्तीति कैयटः। तस्माज्जस्य यजादेशस्य स्थानिवद्भावेन तयप्प्रत्ययान्ततया 'प्रथमचरम्' इति विकल्पे प्राप्ते विभक्ति-निरपेक्षत्वेनान्तरङ्गत्वान्नित्यैव संज्ञा भवति उभये—सि० कौ०।

से विकल्प से होने वाली सर्वनाम संज्ञा यहाँ नहीं लागू होती। क्योंकि 'प्रथमचरम' से होने वाली वैकल्पिक संज्ञा जस् विभक्ति की अपेक्षा रखने से बहिरङ्ग है और अतएव, विभक्तिनिरपेक्ष रूप से होने वाली सर्वादीनि सर्वनामानि से होने वाली अन्तरंग सर्वनाम संज्ञा कमजोर पड़ती है।

उभ[1] शब्द में तयप् के स्थान में अयच् हो जाता है और वह आदि उदात्त होगा। इस प्रकार—उभ+अयच्=उभय।

उभय

पुंल्लिङ्ग

	एकवचन	बहुवचन
प्र०	उभयः	उभये
द्वि०	उभयम्	उभयान्
तृ०	उभयेन	उभयैः
च०	उभयस्मै	उभयेभ्यः
पं०	उभयस्मात्, द्	उभयेभ्यः
ष०	उभयस्य	उभयेषाम्
स०	उभयस्मिन्	उभयेषु

नपुंसकलिङ्ग

प्र०	उभयम्	उभयानि
द्वि०	उभयम्	उभयानि

शेष विभक्तियों में पुंल्लिङ्ग के समान रूप होते हैं।

स्त्रीलिङ्ग उभयी शब्द

प्र०	उभयी	उभय्यः

इत्यादि नदी के समान।

(ख) 'दो का समूह', 'तीन का समूह' इत्यादि समूहवाचक संख्या शब्द संस्कृत में कई प्रकार से बनते हैं। मुख्य ये हैं—

---

१ उभादुदात्ता नित्यम् ।५।२।४४। उभयशब्दात्तयपोऽयच् स्यात् स चाद्युदात्तः (भट्टोजिकृत वृत्ति)।

(१) तयप्[1] प्रत्यय से—द्वितय, त्रितय, चतुष्टय, पञ्चतय पुं० तथा नपुं० में; द्वितयी, त्रितयी, चतुष्टयी, पञ्चतयी स्त्रीलिङ्ग में। इनके रूप तीनों वचनों में स्वरान्त संज्ञाओं के समान होते हैं। वर्णानां चतुष्टयी, वेदानां त्रितयी, संख्यावाचकशब्दानां द्वितयम्, द्वितये, द्वितयानि।

(२) द्वि०[2] और त्रि शब्दों के आगे तयप् के स्थान में विकल्प से अयच् होने से द्वय और त्रय पुं० तथा नपुं० में एवं द्वयी और त्रयी स्त्री० में बनते हैं। इनके रूप भी द्वितय आदि के अनुसार होते हैं—

वेदत्रयी, विद्याद्वयम् इत्यादि।

९१—संस्कृत की गिनती नीचे दी जाती है—

संख्या	**पूरणी क्रम संख्या** **पुं० तथा नपुं०**	**पूरणी संख्या**
१ एक	प्रथम	प्रथमा
२ द्वि	द्वितीय[3]	द्वितीया
३ त्रि	तृतीय[4]	तृतीया
४ चतुर्	चतुर्थ,[5] तुरीय, तुर्य	चतुर्थी, तुरीया, तुर्या

---

१ संख्याया अवयवे तयप् ।५।२।४२। अवयव का अर्थ देने के लिए संख्याओं में तयप् जोड़ा जाता है। इस प्रकार 'पञ्चावयवा अस्य' इस अर्थ में 'पञ्चतयं' (दारु) शब्द पञ्च में तयप् जोड़कर बनेगा। इस अर्थ का पर्यवसान समूह में ही होता है। 'पञ्चतयं' का अर्थ होगा 'पाँच का समूह'।

२ द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ।५।२।४३। द्वि और त्रि शब्दों में तयप् के स्थान में विकल्प से अयच् हो जाता है। इस प्रकार द्वितय एवं त्रितय के अतिरिक्त द्वय और त्रयी भी होंगे।

३, ४ द्रष्टव्य पृष्ठ १४६ पर नीचे दी गयी टिप्पणी।

४ षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् ।५।२।५१। पूरण के अर्थ में षट्, कतिपय तथा चतुर शब्दों में डट् प्रत्यय लगने पर उन्हें 'थुक्' का आगम होता है। चतुश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च' (वार्त्तिक) इस विधान से चतुर् शब्द में पूरण अर्थ में छ और यत् प्रत्यय भी जुड़ते हैं और इन दो प्रत्ययों के जुटने पर आद्य अक्षर 'च' का लोप हो जाता है। इस प्रकार तुरीय और तुर्य रूप भी बनेंगे।

५ पञ्चन्	पञ्चम[1]	पञ्चमी
६ षष्	षष्ठ	षष्ठी
७ सप्तन्	सप्तम	सप्तमी
८ अष्टन्	अष्टम	अष्टमी
९ नवन्	नवम	नवमी
१० दशन्	दशम	दशमी
११ एकादशन्	एकादश	एकादशी
१२ द्वादशन्	द्वादश	द्वादशी
१३ त्रयोदशन्	त्रयोदश	त्रयोदशी
१४ चतुर्दशन्	चतुर्दश	चतुर्दशी
१५ पञ्चदशन्	पञ्चदश	पञ्चदशी
१६ षोडशन्	षोडश	षोडशी
१७ सप्तदशन्	सप्तदश	सप्तदशी
१८ अष्टादशन्	अष्टादश	अष्टादशी
१९ नवदशन् या	नवदश	नवदशी
एकोनविंशति (स्त्री०)	एकोनविंश	एकोनविंशी
या	एकोनविंशतितम	एकोनविंशतितमी
ऊनविंशति	ऊनविंश, ऊनविंशतितम	ऊनविंशी
या		ऊनविंशतितमी
एकान्नविंशति	एकान्नविंश, एकान्नविंशतितम	एकान्नविंशी
		एकान्नविंशतितमी
२० विंशति	विंश[2] विंशतितम	विंशी, विंशतितमी

१ नान्तदसंख्यादेर्मट् ।५।२।४९। नान्तसंख्यावाची शब्दों में पूरण अर्थ में डट् प्रत्यय लगने पर उसे मट् आगम होता है।

२ विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् ।५।२।५६। विंशति आदि से ऊपर होने वाले पूरण अर्थ के डट् प्रत्यय को विकल्प से तमट का आगम होता है।

२१	एकविंशति	एकविंश, एकविंशतितम	एकविंशी एकविंशतितमी
२२	द्वाविंशति	द्वाविंश, द्वाविंशतितम	द्वाविंशी द्वाविंशतितमी
२३	त्रयोविंशति	त्रयोविंश, त्रयोविंशतितम	त्रयोविंशी त्रयोविंशतितमी
२४	चतुर्विंशति	चतुर्विंश, चतुर्विंशतितम	चतुर्विंशी चतुर्विंशतितमी
२५	पञ्चविंशति	पञ्चविंश, पञ्चविंशतितम	पञ्चविंशी पञ्चविंशतितमी
२६	षड्विंशति	षड्विंश, षड्विंशतितम	षड्विंशी षड्विंशतितमी
२७	सप्तविंशति	सप्तविंश, सप्तविंशतितम	सप्तविंशी सप्तविंशतितमी
२८	अष्टाविंशति	अष्टाविंश अष्टाविंशतितम	अष्टाविंशी अष्टाविंशतितमी
२९	नवविंशति या	नवविंश नवविंशतितम	नवविंशी नवविंशतितमी
	एकोनत्रिंशत् या	एकोनत्रिंश, एकोनत्रिंशत्तम	एकोनत्रिंशी एकोनत्रिंशत्तमी
	ऊनत्रिंशत् या	ऊनत्रिंश, ऊनत्रिंशत्तम	ऊनत्रिंशी ऊनत्रिंशत्तमी
	एकान्नत्रिंशत्	एकान्नत्रिंश, एकान्नत्रिंशत्तम	एकान्नत्रिंशी एकान्नत्रिंशत्तमी
३०	त्रिंशत्	त्रिंश, त्रिंशत्तम	त्रिंशी, त्रिंशत्तमी
३१	एकत्रिंशत्	एकत्रिंश एकत्रिंशत्तम	एकत्रिंशी एकत्रिंशत्तमी
३२	द्वात्रिंशत्	द्वात्रिंश द्वात्रिंशत्तम	द्वात्रिंशी द्वात्रिंशत्तमी

३३ त्रयस्त्रिंशत्	त्रयस्त्रिंश	त्रयस्त्रिंशी
	त्रयस्त्रिंशत्तम	त्रयस्त्रिंशत्तमी
३४ चतुस्त्रिंशत्	चतुस्त्रिंश	चतुस्त्रिंशी
	चतुस्त्रिंशत्तम	चतुस्त्रिंशत्तमी
३५ पञ्चत्रिंशत्	पंचत्रिंश	पंचत्रिंशी
	पंचत्रिंशत्तम	पचत्रिंशत्तमी
३६ षट्त्रिंशत्	षट्त्रिंश	षट्त्रिंशी
	षट्त्रिंशत्तम	षट्त्रिंशत्तमी
३७ सप्तत्रिंशत्	सप्तत्रिंश	सप्तत्रिंशी
	सप्तत्रिंशतम	सप्तत्रिंशत्तमी
३८ अष्टात्रिंशत्	अष्टात्रिंश	अष्टात्रिंशी
	अष्टात्रिंशत्तम	अष्टात्रिंशत्तमी
३९ नवत्रिंशत्	नवत्रिंश	नवत्रिंशी
या	नवत्रिंशत्तम	नवत्रिंशत्तमी
एकोनचत्वारिंशत्	एकोनचत्वारिंश	एकोनचत्वारिंशी
या	एकोनचत्वारिंशत्तम	एकोनचत्वारिंशत्तमी
ऊनचत्वारिंशत्	ऊनचत्वारिंश	ऊनचत्वारिंशी
या	ऊनचत्वारिंशत्तम	ऊनचत्वारिंशत्तमी
एकान्नचत्वारिंशत्	एकान्नचत्वारिंश	एकान्नचत्वारिंशी
	एकान्नचत्वारिशत्तम	एकान्नचत्वारिंशत्तमी
४० चत्वारिंशत्	चत्वारिंश	चत्वारिंशी
	चत्वारिंशत्तम	चत्वारिंशत्तमी
४१ एकचत्वारिंशत्	एकचत्वारिंश	एकचत्वारिंशी
	एकचत्वारिंशत्तम	एकचत्वारिंशत्तमी
४२ द्वाचत्वारिंशत्	द्वाचत्वारिंश	द्वाचत्वारिंशी
या	द्वाचत्वारिंशत्तम	द्वाचत्वारिंशत्तमी
द्विचत्वारिंशत्	द्विचत्वारिंश	द्विचत्वारिंशी
	द्विचत्वारिंशत्तम	द्विचत्वारिंशत्तमी

४३ त्रयश्चत्वारिंशत्	त्रयश्चत्वारिंश	त्रयश्चत्वारिंशी
या	त्रयश्चत्वारिंशत्तम	त्रयश्चत्वारिंशत्तमी
त्रिचत्वारिंशत्	त्रिचत्वारिंश	त्रिचत्वारिंशी
	त्रिचत्वारिंशत्तम	त्रिचत्वारिंशत्तमी
४४ चतुश्चत्वारिंशत्	चतुश्चत्वारिंश	चतुश्चत्वारिंशी
	चतुश्चत्वारिंशत्तम	चतुश्चत्वारिंशत्तमी
४५ पञ्चचत्वारिंशत्	पञ्चचत्वारिंश	पञ्चचत्वारिंशी
	पञ्चचत्वारिंशत्तम	पञ्चचत्वारिंशत्तमी
४६ षट्चत्वारिंशत्	षट्चत्वारिंश	षट्चत्वारिंशी
	षट्चत्वारिंशत्तम	षट्चत्वारिंशत्तमी
४७ सप्तचत्वारिंशत्	सप्तचत्वारिंश	सप्तचत्वारिंशी
	सप्तचत्वारिंशत्तम	सप्तचत्वारिंशत्तमी
४८ अष्टाचत्वारिंशत्	अष्टाचत्वारिंश	अष्टाचत्वारिंशी
या	अष्टाचत्वारिंशत्तम	अष्टाचत्वारिंशत्तमी
अष्टचत्वारिंशत्	अष्टचत्वारिंश	अष्टचत्वारिंशी
	अष्टचत्वारिंशत्तम	अष्टचत्वारिंशत्तमी
४९ नवचत्वारिंशत्	नवचत्वारिंश	नवचत्वारिंशी
या	नवचत्वारिंशत्तम	नवचत्वारिंशत्तमी
एकोनपञ्चाशत्	एकोनपञ्चाश	एकोनपञ्चाशी
या	एकोनपञ्चाशत्तम	एकोनपञ्चाशत्तमी
ऊनपञ्चाशत्	ऊनपञ्चाश	ऊनपञ्चाशी
या	ऊनपञ्चाशत्तम	ऊनपञ्चाशत्तमी
एकान्नपञ्चाशत्	एकान्नपञ्चाश	एकान्नपञ्चाशी
	एकान्नपञ्चाशत्तम	एकान्नपञ्चाशत्तमी
५० पञ्चाशत्	पञ्चाश	पञ्चाशी
	पञ्चाशत्तम	पञ्चाशत्तमी
५१ एकपञ्चाशत्	एकपञ्चाश	एकपञ्चाशी
	एकपञ्चाशत्तम	एकपञ्चाशत्तमी

५२ द्वापञ्चाशत्	द्वापञ्चाश	द्वापञ्चाशी
या	द्वापञ्चाशत्तम	द्वापञ्चाशत्तमी
द्विपञ्चाशत्	द्विपञ्चाश	द्विपञ्चाशी
	द्विपञ्चाशत्तम	द्विपञ्चाशत्तमी
५३ त्रयःपञ्चाशत्	त्रयःपञ्चाश	त्रयःपञ्चाशी
या	त्रयःपञ्चाशत्तम	त्रयःपञ्चाशत्तमी
त्रिपञ्चाशत्	त्रिपञ्चाश	त्रिपञ्चाशी
	त्रिपञ्चाशत्तम	त्रिपञ्चाशत्तमी
५४ चतुःपञ्चाशत्	चतुःपञ्चाश	चतुःपञ्चाशी
	चतुःपञ्चाशत्तम	चतुःपञ्चाशत्तमी
५५ पञ्चपञ्चाशत्	पञ्चपञ्चाश	पञ्चपञ्चाशी
	पञ्चपञ्चाशत्तम	पञ्चपञ्चाशत्तमी
५६ षट्पञ्चाशत्	षट्पञ्चाश	षट्पञ्चाशी
	षट्पञ्चाशत्तम	षट्पञ्चाशत्तमी
५७ सप्तपञ्चाशत्	सप्तपञ्चाश	सप्तपञ्चाशी
	सप्तपञ्चाशत्तम	सप्तपञ्चाशत्तमी
५८ अष्टापञ्चाशत्	अष्टापञ्चाश	अष्टापञ्चाशी
या	अष्टापञ्चाशत्तम	अष्टापञ्चाशत्तमी
अष्टपञ्चाशत्	अष्टपञ्चाश	अष्टपञ्चाशी
	अष्टपञ्चाशत्तम	अष्टपञ्चाशत्तमी
५९ नवपञ्चाशत्	नवपञ्चाश	नवपञ्चाशी
या	नवपञ्चाशत्तम	नवपञ्चाशत्तमी
एकोनषष्टि	एकोनषष्ट	एकोनषष्टी
या	एकोनषष्टितम	एकोनषष्टितमी
ऊनषष्टि	ऊनषष्ट	ऊनषष्टी
या	ऊनषष्टितम	ऊनषष्टितमी
एकान्नषष्टि	एकान्नषष्ट	एकान्नषष्टी
	एकान्नषष्टितम	एकान्नषष्टितमी
६० षष्टि	षष्टितम	षष्टितमी

६१ एकषष्टि	एकषष्ट	एकषष्टी
	एकषष्टितम	एकषष्टितमी
६२ द्वाषष्टि	द्वाषष्ट	द्वाषष्टी
या	द्वाषष्टितम	द्वाषष्टितमी
द्विषष्टि	द्विषष्ट	द्विषष्टी
	द्विषष्टितम	द्विषष्टितमी
६३ त्रयष्षष्टि	त्रयष्षष्ट	त्रयष्षष्टी
या	त्रयष्षष्टितम	त्रयष्षष्टितमी
त्रिषष्टि	त्रिषष्ट	त्रिषष्टी
	त्रिषष्टितम	त्रिषष्टितमी
६४ चतुष्षष्टि	चतुष्षष्ट	चतुष्षष्टी
	चतुष्षष्टितम	चतुष्षष्टितमी
६५ पञ्चषष्टि	पञ्चषष्ट	पञ्चषष्टी
	पञ्चषष्टितम	पञ्चषष्टितमी
६६ षट्षष्टि	षट्षष्ट	षट्षष्टी
	षट्षष्टितम	षट्षष्टितमी
६७ सप्तषष्टि	सप्तषष्ट	सप्तषष्टी
	सप्तषष्टितम	सप्तषष्टितमी
६८ अष्टाषष्टि	अष्टाषष्ट	अष्टाषष्टी
या	अष्टाषष्टितम	अष्टाषष्टितमी
अष्टषष्टि	अष्टषष्ट	अष्टषष्टी
	अष्टषष्टितम	अष्टषष्टितमी
६९ नवषष्टि	नवषष्ट	नवषष्टी
या	नवषष्टितम	नवषष्टितमी
एकोनसप्तति	एकोनसप्तत	एकोनसप्तती
ऊनसप्तति	ऊनसप्तत	ऊनसप्तती
या	ऊनसप्ततितम	ऊनसप्ततितमी
एकान्नसप्तति	एकान्नसप्तत	एकान्नसप्तती
	एकान्नसप्ततितम	एकान्नसप्ततितमी

७० सप्तति	सप्तत	सप्तती
	सप्ततितम	सप्ततितमी
७१ एकसप्तति	एकसप्तत	एकसप्तती
	एकसप्ततितम	एकसप्ततितमी
७२ द्वासप्तति	द्वासप्तत	द्वासप्तती
या	द्वासप्ततितम	द्वासप्ततितमी
द्विसप्तति	द्विसप्तत	द्विसप्तती
	द्विसप्ततितम	द्विसप्ततितमी
७३ त्रयस्सप्तति	त्रयस्सप्तत	त्रयस्सप्तती
या	त्रयस्सप्ततितम	त्रयस्सप्ततितमी
त्रिसप्तति	त्रिसप्तत	त्रिसप्तती
	त्रिसप्ततितम	त्रिसप्ततितमी
७४ चतुस्सप्तति	चतुस्सप्तत	चतुस्सप्तती
	चतुस्सप्ततितम	चतुस्सप्तततमी
७५ पञ्चसप्तति	पञ्चसप्तत	पञ्चसप्तती
	पञ्चसप्ततितम	पञ्चसप्ततितमी
७६ षट्सप्तति	षट्सप्तत	षट्सप्तती
	षट्सप्ततितम	षट्सप्ततितमी
७७ सप्तसप्तति	सप्तसप्तत	सप्तसप्तती
	सप्तसप्ततितम	सप्तसप्ततितमी
७८ अष्टासप्तति	अष्टासप्तत	अष्टासप्तती
या	अष्टासप्ततितम	अष्टासप्ततितमी
अष्टसप्तति	अष्टसप्तत	अष्टसप्तती
	अष्टसप्ततितम	अष्टसप्ततितमी
७९ नवसप्तति	नवसप्तत	नवसप्तती
या	नवसप्ततितम	नवसप्ततितमी
एकोनाशीति	एकोनाशीत	एकोनाशीती
या	एकोनाशीतितम	एकोनाशीतितमी
ऊनाशीति	ऊनाशीत	ऊनाशीती

या	ऊनाशीतितम	ऊनाशीतितमी
एकोन्नाशीति	एकान्नाशीत	एकान्नाशीती
	एकान्नाशीतितम	एकान्नाशीतितमी
८० अशीति	अशीतितम	अशीतितमी
८१ एकाशीति	एकाशीत	एकाशीती
	एकाशीतितम	एकाशीतितमी
८२ द्व्यशीति	द्व्यशीति	द्व्यशीती
	द्व्यशीतितम	द्व्यशीतितमी
८३ त्र्यशीति	त्र्यशीत	त्र्यशीती
	त्र्यशीतितम	त्र्यशीतितमी
८४ चतुरशीति	चतुरशीत	चतुरशीती
	चतुरशीतितम	चतुरशीतितमी
८५ पञ्चाशीति	पञ्चाशीत	पञ्चाशीती
	पञ्चाशीतितम	पञ्चाशीतितमी
८६ षडशीति	षडशीत	षडशीती
	षडशीतितम	षडशीतितमी
८७ सप्ताशीति	सप्तशीत	सप्ताशीती
	सप्तशीतितम	सप्ताशीतितमी
८८ अष्टाशीति	अष्टाशीत	अष्टाशीती
	अष्टाशीतितम	अष्टाशीतितमी
८९ नवाशीति	नवाशीत	नवाशीती
या	नवाशीतितम	नवाशीतितमी
एकोननवति	एकोननवत	एकोननवती
या	एकोननवतितम	एकोननवतितमी
ऊननवति	ऊननवत	ऊननवती
या	ऊननवतितम	ऊननवतितमी
एकान्ननवति	एकान्ननवत	एकान्ननवती
	एकान्ननवतितम	एकान्ननवतितमी
९० नवति	नवतितम	नवतितमी

९१	एकनवति	एकनवत	एकनवती
		एकनवतितम	एकनवतितमी
९२	द्वानवति	द्वानवत	द्वानवती
	या	द्वानवतितम	द्वानवतितमी
	द्विनवति	द्विनवत	द्विनवती
		द्विनवतितम	द्विनवतितमी
९३	त्रयोनवति	त्रयोनवत	त्रयोनवती
	या	त्रयोनवतितम	त्रयोनवतितमी
	त्रिनवति	त्रिनवत	त्रिनवती
		त्रिनवतितम	त्रिनवतितमी
९४	चतुर्नवति	चतुर्नवत	चतुर्नवती
		चतुर्नवतितम	चतुर्नवतितमी
९५	पञ्चनवति	पञ्चनवत	पञ्चनवती
		पञ्चनवतितम	पञ्चनवतितमी
९६	षण्णवति	षण्णवत	षण्णवती
		षण्णवतितम	षण्णवतितमी
९७	सप्तनवति	सप्तनवत	सप्तनवती
		सप्तनवतितम	सप्तनवतितमी
९८	अष्टानवति	अष्टानवत	अष्टानवती
	या	अष्टानवतितम	अष्टानवतितमी
	अष्टनवति	अष्टनवत	अष्टनवती
		अष्टनवतितम	अष्टनवतितमी
९९	नवनवति	नवनवत	नवनवती
	या	नवनवतितम	नवनवतितमी
	एकोनशत (नपुं०)	एकोनशततम	एकोनशततमी
१००	शत	शततम	शततमी
२००	द्विशत	द्विशततम	द्विशततमी
३००	त्रिशत	त्रिशततम	त्रिशततमी
४००	चतुश्शत	चतुश्शततम	चतुश्शततमी

५००	पञ्चशत	पञ्चशततम	पञ्चशततमी
१,०००	सहस्र	सहस्रतम	सहस्रतमी

१०,०००अयुत (नपुं०)

१,००,००० लक्ष (नपुं ०) या लक्षा (स्त्री०)

दस लाख—'प्रयुत' (नपुं०)
करोड़—'कोटि' (स्त्री०)
दस करोड़—'अर्बुद' (नपुं०)
अरब—'अब्ज' (नपुं०)
दश अरब—'खर्व' (पुं०, नपुं०)
खर्व—'निखर्व' (पुं०, नपुं०)
दस खर्व—'महापद्म' (नपुं०)
नील—'शङ्कु' (पुं०)
दस नील—'जलधि' (पुं०)
पद्म—'अन्त्य' (नपुं०)
दस पद्म—'मध्य' (नपुं०)
शङ्ख—'परार्ध' (नपुं०)

५०१	एकाधिकपञ्चशतम्	एकोत्तरपञ्चशतम्
	एकाधिकं पञ्चशतम्	एकोत्तरं पञ्चशतम्
५०२	द्व्यधिकपञ्चशतम्	द्व्युत्तरपञ्चशतम्
	द्व्यधिकं पञ्चशतम्	द्व्युत्तरं पञ्चशतम्
५०३	त्र्यधिकपञ्चशतम्	त्र्युत्तरपञ्चशतम्
	त्र्यधिकं पञ्चशतम्	त्र्युत्तरं पञ्चशतम्
५०४	चतुरधिकपञ्चशतम्	चतुरुत्तरपञ्चशतम्
	चतुरधिकं पञ्चशतम्	चतुरुत्तरं पञ्चशतम्
५०५	पञ्चाधिकपञ्चशतम्	पञ्चोत्तरपञ्चशतम्
	पञ्चाधिकं पञ्चशतम्	पञ्चोत्तरं पञ्चशतम्
५०६	षडधिकपञ्चशतम्	षडुत्तरपञ्चशतम्
	षडधिकं पञ्चशतम्	षडुत्तरं पञ्चशतम्

५०७	सप्ताधिकपञ्चशतम्	सप्तोत्तरपञ्चशतम्
	सप्ताधिकं पञ्चशतम्	सप्तोत्तरं पञ्चशतम्
५०८	अष्टाधिकपञ्चशतम्	अष्टोत्तरपञ्चशतम्
	अष्टाधिकं पञ्चशतम्	अष्टोत्तरं पञ्चशतम्
५०९	नवाधिकपञ्चशतम्	नवोत्तरपञ्चशतम्
	नवाधिकं पञ्चशतम्	नवोत्तरं पञ्चशतम्
५१०	दशाधिकपञ्चशतम्	दशोत्तरपञ्चशतम्
	दशाधिकं पञ्चशतम्	दशोत्तरं पञ्चशतम्
५१७	सप्तदशाधिकपञ्चशतम्	सप्तदशोत्तरपञ्चशतम्
	सप्तदशाधिकं पञ्चशतम्	सप्तदशोत्तरं पञ्चशतम्
६००	षटशतम्	
६२५	पञ्चविंशत्यधिकषट्शतम्	पञ्चविंशत्यधिकं षट्शतम्
	पञ्चविंशत्युत्तरषट्शतम्	पञ्चविंशत्युत्तरं षट्शतम्
६३७	सप्तत्रिंशदधिकषट्शतम्	सप्तत्रिंशदधिकं षट्शतम्
	सप्तत्रिंशदुत्तरषट्शतम्	सप्तत्रिंशदुत्तरं षट्शतम्
६४६	षट्चत्वारिंशदधिकषट्शतम्	षट्चत्वारिंशदधिकं षट्शतम्
	षट्चत्वारिंशदुत्तरषट्शतम्	षट्चत्वारिंशदुत्तरं षट्शतम्
६५५	पञ्चपञ्चाशदधिकषट्शतम्	पञ्चपञ्चाशदधिकं षट्शतम्
	पञ्चपञ्चाशदुत्तरषट्शतम्	पञ्चपञ्चाशदुत्तरं षट्शतम्
६६६	षट्षष्ट्यधिकषट्शतम्	षट्षष्ट्यधिकं षट्शतम्
	षट्षष्ट्युत्तरषट्शतम्	षट्षष्ट्युत्तरं षट्शतम्
६७३	त्रिसप्तत्यधिकषट्शतम्	त्रिसप्तत्यधिकं षट्शतम्
	त्रिसप्तत्युत्तरषट्शतम्	त्रिसप्तत्युत्तरं षट्शतम्
६८४	चतुरशीत्यधिकषट्शतम्	चतुरशीत्यधिकं षट्शतम्
	चतुरशीत्युत्तरषट्शतम्	चतुरशीत्युत्तरं षट्शतम्
६९५	पञ्चनवत्यधिकषट्शतम्	पञ्चनवत्यधिकं षट्शतम्
	पञ्चनवत्युत्तरषट्शतम्	पञ्चनवत्युत्तरं षट्शतम्
१३२५	पञ्चविंशत्यधिकत्रयोदशशतम् या पञ्चविंशत्यधिकत्रिशताधिकसहस्रम्	

१९२८ अष्टविंशत्यधिकैकोनविंशतिशतम्

या

अष्टाविंशत्यधिकनवशताधिकसहस्रम्

१९३९ एकोनचत्वारिंशदधिकैकोनविंशतिशतम्

या

एकोनचत्वारिंशदधिकनवशताधिकसहस्रम्

५९६३७ सप्तत्रिंशदधिकषट्शताधिकनवसहस्राधिकपञ्चायुतम्

९२—संख्यावाचक शब्दों के रूपों में जो भेद है, वह नीचे दिखाया जाता है—

(क) जब 'एक' शब्द का अर्थ संख्यावाचक 'एक' होता है, तो इसका रूप केवल एकवचन में होता है; इसके अतिरिक्त अर्थों[1] में इसके रूप तीनों वचनों में होते हैं।

एक

	पुंल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
	एकवचन	एकवचन	एकवचन
प्र०	एक:	एकम्	एका
द्वि०	एकम्	एकम्	एकाम्
तृ०	एकेन	एकेन	एकया
च०	एकस्मै	एकस्मै	एकस्यै
पं०	एकस्मात्,द्	एकस्मात्, द्	एकस्या:
ष०	एकस्य	एकस्य	एकस्या:
स०	एकस्मिन्	एकस्मिन्	एकस्याम

१ 'एक' शब्द के इतने अर्थ होते हैं—

एकोऽल्पार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा।
साधारणे समानेऽपि संख्यायां च प्रयुज्यते॥

अर्थात्, अल्प (थोड़ा, कुछ), प्रधान, प्रथम, केवल, साधारण, समान और एक इतने अर्थों में एक शब्द का प्रयोग होता है।

वहुवचन में इसका अर्थ होता है—'कुछ लोग', 'कोई-कोई', यथा 'एके पुरुषा:', 'एका:,' 'एकानि फलानि' इत्यादि।

(ख) द्वि शब्द के रूप केवल द्विवचन में तथा तीनों लिङ्गों में अलग-अलग होते हैं ।

द्वि--दो

	पुंल्लिङ्ग द्विवचन	नपुंसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग द्विवचन
प्र०	द्वौ	द्वे
द्वि०	द्वौ	द्वे
तृ०	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
च०	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
पं०	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
ष०	द्वयोः	द्वयोः
स०	द्वयोः	द्वयोः

त्रि--तीन

(ग) 'त्रि' शब्द के रूप केवल बहुवचन में होते हैं—

	बहुवचन	बहुवचन	बहुवचन
प्र०	त्रयः	त्रीणि	तिस्रः[1]
द्वि०	त्रीन्	त्रीणि	"
तृ०	त्रिभिः	त्रिभिः	तिसृभिः
च०	त्रिभ्यः	त्रिभ्यः	तिसृभ्यः
पं०	त्रिभ्यः	त्रिभ्यः	तिसृभ्यः
ष०	त्रयाणाम्[2]	त्रयाणाम्	तिसृणाम
स०	त्रिषु	त्रिषु	तिसृषु

१ त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ ।७।२।९९। त्रि तथा चतुर् शब्दों के स्थान में स्त्रीलिङ्ग में तिसृ और चतसृ आदेश हो जाते हैं ।

२ त्रेस्त्रयः ।७।१।५३। अर्थात् आम् (षष्ठी बहु० के विभक्ति प्रत्यय) के जुड़ने पर 'त्रि' शब्द के स्थान में 'त्रय' हो जाता है । इस प्रकार त्रीणाम् न होकर 'त्रयाणाम्' रूप बन जाता है ।

चतुर्--चार

(घ) चतुर् (चार) शब्द के रूप भी तीनों लिङ्गों में अलग-अलग और केवल बहुवचन में होते हैं—

	पुंल्लिङ्ग बहुवचन	नपुंसकलिङ्ग बहुवचन	स्त्रीलिङ्ग बहुवचन
प्र०	चत्वारः	चत्वारि	चतस्रः
द्वि०	चतुरः	चत्वारि	चतस्रः
तृ०	चतुर्भिः	चतुर्भिः	चतसृभिः
च०	चतुर्भ्यः	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः
पं०	चतुर्भ्यः	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः
ष०	चतुर्णाम्[1], चतुर्ण्णाम्	चतुर्णाम्, चतुर्ण्णाम्	चतसृणाम्
स०	चतुर्षु	चतुर्षु	चतसृषु

पञ्चन्--पाँच

(च) पञ्चन् और इसके आगे के संख्यावाची शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में समान होते हैं और केवल बहुवचन में होते हैं—

	पुंल्लिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग
प्र०	पञ्च
द्वि०	पञ्च
तृ०	पञ्चभिः
च०	पञ्चभ्यः
पं०	पञ्चभ्यः
ष०	पञ्चानाम्
स०	पञ्चसु

---

१ षट्चतुर्भ्यश्च ।७।१।५५। अर्थात् 'षट्' संज्ञा वाले संख्यावाची शब्दों तथा चतुर् शब्द में आम् (षष्ठी वहुवचन की विभक्ति) के पूर्व न् का आगम हो जाता है। फिर 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' के अनुसार न् का ण् हो जायगा। पुनश्च अचो रहाभ्यां द्वे ।८।४।४७। अर्थात् 'स्वर के वाद र् और ह हो तो उस र् या ह् के वाद आने वाले (ह् को छोड़कर) किसी भी व्यञ्जन-वर्ण का विकल्प से द्वित्व हो जाता है, इसके अनुसार 'चतुर्ण्णाम्' भी होगा।

(छ) **षष्--छः**

पुंल्लिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग
केवल बहुवचन में

प्र०	षट्
द्वि०	षट
तृ०	षड्भिः
च०	षड्भ्यः
पं०	षड्भ्यः
ष०	षण्णाम्
स०	षट्त्सु, षट्सु

(ज) **सप्तन्--सात**

पुंल्लिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग
केवल बहुवचन में

प्र०	सप्त
द्वि०	सप्त
तृ०	सप्तभिः
च०	सप्तभ्यः
पं०	सप्तभ्यः
ष०	सप्तानाम्
स०	सप्तसु

(झ) **अष्टन्[1]--आठ**

पुंल्लिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग
केवल बहुवचन में

प्र०	[2]अष्टौ, अष्ट

---

१ अष्टन् आ विभक्तौ ।७।२।८४। यदि अष्टन् शब्द के बाद व्यञ्जनवर्ण से आरम्भ होने वाले विभक्ति-प्रत्यय जुड़े हों तो 'न्' के स्थान में 'आ' हो जाता है। परन्तु 'न्' के स्थान में 'आ' का होना वैकल्पिक है।

२ अष्टाभ्य औश् ।७।१।२१। 'अष्टा' के बाद प्रथमा तथा द्वितीया बहुवचन के विभक्ति-प्रत्ययों के जुड़ने पर उनके स्थान में 'औ' का आदेश हो जाता है। इस प्रकार 'अष्टौ' रूप बन जाता है। 'न्' के स्थान में 'आ' न होने पर 'अष्ट' रूप बनता है।

द्वि०	अष्टौ, अष्ट
तृ०	अष्टाभिः, अष्टभिः
च०	अष्टाभ्यः, अष्टभ्यः
पं०	अष्टाभ्यः, अष्टभ्यः
ष०	अष्टानाम्
स०	अष्टासु, अष्टसु

(ट) नवन् (नौ), दशन् (दस) तथा सभी नकारान्त संख्यावाची (एकादशन्, द्वादशन्, त्रयोदशन्, पञ्चदशन्, षोडशन् आदि) शब्दों के रूप पञ्चन् के समान तीनों लिङ्गों में एक ही समान होते हैं। अष्टन् में जो भेद होता है, वह दिखा दिया गया।

(ठ) नित्य स्त्रीलिङ्ग ऊनविंशति से लेकर जितने संख्यावाची शब्द हैं, उन सब के रूप केवल एकवचन[1] ही में होते हैं तथा कभी-कभी संख्यावाचक विशेषण के रूप में नहीं, अपितु संज्ञा-शब्द की भाँति प्रयुक्त किया जाता है। जैसे—विंशतिः स्त्रीणाम्। मुनीनां दशसाहस्रम् इत्यादि।

(ड) ह्रस्व इकारान्त नित्यस्त्रीलिङ्ग संख्यावाचक ऊनविंशति, विंशति, एकविंशति आदि 'विंशति' में अन्त होने वाले शब्दों के रूप 'रुचि' शब्द के समान होते हैं।

एकवचन

प्र० विंशतिः
द्वि० विंशतिम्
तृ० विंशत्या
च० विंशत्यै, विंशतये
पं० विंशत्याः, विंशतेः
ष० विंशत्याः, विंशतेः
स० विंशत्याम्, विंशतौ

---

१ पर दो बीस, तीन बीस इत्यादि अर्थ में द्विविंशती, तिस्रः विंशतयः इत्यादि ही प्रयोग होते हैं।

(ढ) नित्यस्त्रीलिङ्ग संख्यावाचक त्रिंशत् (तीस), चत्वारिंशत् (चालीस), पञ्चाशत् (पचास) तथा शत् में अन्त होने वाले अन्य संख्यावाची शब्दों के रूप 'सरित्' के समान होते हैं, जैसे—

	त्रिंशत्	**चत्वारिंशत्**
प्र०	त्रिंशत्	चत्वारिंशत्
द्वि०	त्रिंशतम्	चत्वारिंशतम्
तृ०	त्रिंशता	चत्वारिंशता
च०	त्रिंशते	चत्वारिंशते
पं०	त्रिंशतः	चत्वारिंशतः
ष०	त्रिंशतः	चत्वारिंशतः
स०	त्रिंशति	चत्वारिंशति

इसी प्रकार पञ्चाशत् के भी रूप होते हैं।

(त) नित्य स्त्रीलिङ्ग षष्टि (साठ), सप्तति (सत्तर), अशीति (अस्सी), नवति (नब्बे) इत्यादि सभी इकारान्त संख्यावाची शब्दों के रूप 'विंशति' के अनुसार 'रुचि' के समान होते हैं, जैसे—

	षष्टि	**सप्तति**
	एकवचन	एकवचन
प्र०	षष्टिः	सप्ततिः
द्वि०	षष्टिम्	सप्ततिम्
तृ०	षष्ट्या	सप्तत्या
च०	षष्ट्यै, षष्टये	सप्तत्यै, सप्ततये
पं०	षष्ट्याः, षष्टेः	सप्तत्याः, सप्ततेः
ष०	षष्ट्याः, षष्टेः	सप्तत्याः, सप्ततेः
स०	षष्ट्याम्, षष्टौ	सप्तत्याम्, सप्ततौ

इसी प्रकार अशीति, नवति के भी रूप होते हैं।

(थ) शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, अर्बुद, अब्ज, महापद्म, अन्त्य, मध्य, परार्ध शब्द केवल नपुंसकलिङ्ग में होते हैं और इनके रूप फल के अनुसार तीनों वचनों में चलते हैं।

(द) 'लक्षा' (स्त्री०) के रूप 'विद्या' के समान और 'कोटि' के 'रुचि' के समान होते हैं।

(ध) 'खर्व' और 'निखर्व' पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग दोनों होते हैं। पुं० के रूप 'बालक' के समान तथा नपुं० के रूप 'फल' के समान होते हैं। 'जलधि' (पुं०) के रूप 'कवि' के समान तथा 'शङ्कु' के रूप 'भानु' के समान चलते हैं—

९३—पूरकसंख्यावाची (Ordinal numeral adjectives) शब्दों के रूप इस प्रकार चलते हैं—

(क) 'प्रथम' शब्द के रूप ८९ (क) में उल्लिखित हैं; 'अग्रिम' और 'आदिम' के रूप लिङ्गानुसार बालक, फल और विद्या के समान होते हैं।

(ख) 'द्वितीय' और 'तृतीय' शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में ८९ (ग) में उदाहृत हैं।

(ग) 'चतुर्थ' और इसके आगे के पूरकसंख्यावाची शब्दों के रूप यदि अकारान्त पुं० हों तो बालक के समान, अकारान्त नपुं० हों तो फल के समान, आकारान्त स्त्रीलिङ्ग हों तो विद्या के समान और ईकारान्त स्त्री० हों तो नदी के समान चलते हैं।

(घ) 'शत' और इसके आगे की संख्याओं के पूरकसंख्यावाची शब्द पुं० तथा नपुंसक० में 'तम' जोड़ कर और स्त्रीलिङ्ग में 'तमी' जोड़ कर बनते हैं; जैसे—सहस्रतमः, सहस्रतमं, सहस्रतमी आदि।

९४—ऊपर संख्यावाची शब्द एक से लेकर सौ तक तथा सहस्र, दश सहस्र लक्ष दश लक्ष आदि के लिए दिये गये हैं। जो संख्याएँ बीच की हैं, जैसे १३५, ११०६, १०५१५ आदि, उनके लिए विशेष उपाय से काम लिया जाता है जो नीचे दिखाया जाता है—

(१) सौ या सहस्र या लक्ष के पूर्व 'अधिक' शब्द या 'उत्तर' शब्द जोड़ देना, यथा—

एक सौ पैंतीस मनुष्य उपस्थित हैं—पञ्चत्रिंशदधिकं शतं मनुष्याणामुपस्थितम्। अथवा पञ्चत्रिंशदुत्तरं शतम्........

दो सौ इकतालीस आदमियों के ऊपर जुर्माना लगाया गया और तीन सौ उन्सठ को सजा हुई—मनुष्याणामेकचत्वारिंशदधिकयोः शतयोः (एकचत्वारिंशदुत्तरयोः शतयोः वा) उपरि अर्थदण्डः आदिष्टः, एकोनषष्ट्यधिकानां त्रयाणां शतानामुपरि कायदण्डः।

एक लाख पन्द्रह हजार तीन सौ बत्तीस—द्वात्रिंशदधिकत्रिंशतोत्तरपञ्चदशसहस्राणि एकं लक्षञ्च।

इसी प्रकार 'अधिक' और 'उत्तर' शब्द के योग से और भी संख्याएँ बनायी जा सकती हैं।

कभी-कभी 'च' जोड़ते जाते हैं; जैसे, २३५—द्वे शते पञ्चत्रिंशच्च।

(२) कभी-कभी संख्याओं के बोलने में हम लोग दो कम दो सौ, चार कम पाँच सौ इत्यादि में 'कम' शब्द का प्रयोग करते हैं। संस्कृत में इस 'कम' शब्द का बोधक 'ऊन' शब्द जोड़ा जाता है; यथा—दो कम दो सौ—द्व्यूने शते, द्व्यूनं शतद्वयं, द्व्यूनशतद्वयी इत्यादि। चार कम पाँच सौ—चतुरूनपञ्चशतानि, चतुरूनं शतपञ्चतम् इत्यादि। उदाहरण के लिए कुछ ऐसी संख्याएँ ऊपर दे दी गयी हैं।

६५—क्रम का भेद बतलाने के लिए संस्कृत के शब्द बहुधा 'सर्वनाम' में सम्मिलित किये जाते हैं। वस्तुतः ये क्रमवाची विशेषण हैं; इसलिए यहाँ दिये जाते हैं। मुख्य २ ये हैं—

(क) अन्य (दूसरा), अन्यतर (जब दो में से एक के विषय में कुछ व्यवहार हो चुका हो तो दूसरे के लिए यह शब्द प्रयोग में आता है) इतर (दूसरा) तथा किम्, यद् और तद् सर्वनामों में डतर और डतम प्रत्यय जोड़ कर बने हुए कतर (दो में से कौन सा), कतम (दो से अधिक में से कौन सा), यतर (दो में से जो सा), यतम् (दो से अधिक में से जो सा), ततर (दो में से वह सा), ततम (दो से अधिक में से वह सा), शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में चलते हैं और एक समान होते हैं। उदाहरण के लिए 'अन्य' शब्द के रूप दिखाये जाते हैं—

अन्य—दूसरा

पुंल्लिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अन्यः	अन्यौ	अन्ये
द्वि०	अन्यम्	अन्यौ	अन्यान्
तृ०	अन्येन	अन्याभ्याम्	अन्यैः
च०	अन्यस्मै	अन्याभ्याम्	अन्येभ्यः
पं०	अन्यस्मात्, द्	अन्याभ्याम्	अन्येभ्यः
ष०	अन्यस्य	अन्ययोः	अन्येषाम्
स०	अन्यस्मिन	अन्ययोः	अन्येषु

नपुंसकलिङ्ग

प्र०	अन्यत्, द्	अन्ये	अन्यानि
द्वि०	अन्यत्, द्	अन्ये	अन्यानि
तृ०	अन्येन	अन्याभ्याम्	अन्यैः
च०	अन्यस्मै	अन्याभ्याम्	अन्येभ्यः
पं०	अन्यस्मात्, द्	अन्याभ्याम्	अन्येभ्यः
ष०	अन्यस्य	अन्ययोः	अन्येषाम्
स०	अन्यस्मिन्	अन्ययोः	अन्येषु

स्त्रीलिङ्ग

प्र०	अन्या	अन्ये	अन्याः
द्वि०	अन्याम्	अन्ये	अन्याः
तृ०	अन्यया	अन्याभ्याम्	अन्याभिः
च०	अन्यस्यै	अन्याभ्याम्	अन्याभ्यः
पं०	अन्यस्याः	अन्याभ्याम्	अन्याभ्यः
ष०	अन्यस्याः	अन्ययोः	अन्यासाम्
स०	अन्यस्याम्	अन्ययोः	अन्यासु

(ख) पूर्व (पहला अथवा पूर्वी), अवर (बाद वाला अथवा पश्चिमी), दक्षिण (दक्खिनी), उत्तर (उत्तरी), पर (दूसरा), अपर (दूसरा) और अधर (नीच वाला) शब्दों के रूप एक समान चलते हैं और तीनों लिङ्गों में होते हैं। उदाहरण के लिए 'पूर्व' शब्द के रूप दिये जाते हैं।

पूर्व (पहला अथवा पूर्वी)

पुंल्लिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पूर्वः	पूर्वौ	पूर्वे, पूर्वाः
द्वि०	पूर्वम्	पूर्वौ	पूर्वान्
तृ०	पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वैः
च०	पूर्वस्मै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
पं०	पूर्वस्मात्, द्, पूर्वात्, द्	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
ष०	पूर्वस्य	पूर्वयोः	पूर्वेषाम्
स०	पूर्वस्मिन्, पूर्वे	पूर्वयोः	पूर्वेषु

नपुंसकलिङ्ग

प्र०	पूर्वम्	पूर्वे	पूर्वाणि
द्वि०	पूर्वम्	पूर्वे	पूर्वाणि

तृतीया से सप्तमी तक पुंल्लिङ्ग जैसा ही रूप होता है।

स्त्रीलिङ्ग

प्र०	पूर्वा	पूर्वे	पूर्वाः
द्वि०	पूर्वाम्	पूर्वे	पूर्वाः
तृ०	पूर्वया	पूर्वाभ्याम्	पूर्वाभिः
च०	पूर्वस्यै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वाभ्यः
पं०	पूर्वस्याः	पूर्वाभ्याम्	पूर्वाभ्यः
ष०	पूर्वस्याः	पूर्वयोः	पूर्वासाम्
स०	पूर्वस्याम्	पूर्वयोः	पूर्वासु

९६—विशेषणों की तुलना के लिए हिन्दी में विशेषण का रूपान्तर नहीं होता, केवल आवश्यकतानुसार अधिक, ज्यादा, कम आदि शब्द विशेषण के साथ जोड़ दिये जाते हैं; जैसे—श्याम से गोपाल अधिक सुन्दर है, मुझसे वह अच्छा है अथवा ज्यादा अच्छा है, गोपाल से श्याम सुन्दर है, इत्यादि। परन्तु संस्कृत में बहुधा अधिक आदि शब्द जोड़ कर तुलना नहीं की जाती; जैसे, 'गोपालः श्यामादधिकसुन्दरोऽस्ति'—यह वाक्य व्याकरण की दृष्टि से चाहे गलत न हो तब भी उसमें हिन्दीपन की गन्ध आती है। संस्कृत में विशेषणों की तुलना करने के लिए उनमें प्रत्यय जोड़े जाते हैं।

(क) तुलना द्वारा दो[1] में से एक अतिशय दिखाने के लिए विशेषण में तरप् (तर) या ईयसुन् और दो से अधिक[2] में से एक का अतिशय दिखाने के लिए तमप् (तम) या इष्ठन् प्रत्यय जोड़े जाते हैं, परन्तु ईयसुन् और इष्ठन् गुणवाचक[3] विशेषणों के अनन्तर ही जोड़े जाते हैं, तरप् तथा तमप् इनके अतिरिक्त अन्य विशेषणों में भी। तरप् और तमप् के कुछ उदाहरण ये हैं—

कुशल	कुशलतर	कुशलतम
चतुर	चतुरतर	चतुरतम
विद्वस्	विद्वत्तर	विद्वत्तम
धनिन्	धनितर	धनितम
महत्	महत्तर	महत्तम
गुरु	गुरुतर	गुरुतम
लघु	लघुतर	लघुतम
पाचक	पाचकतर	पाचकतम

इन परिवर्त्तित विशेषणों के रूप विशेष्य के अनुसार होते हैं।

जहाँ तरप् अथवा ईयसुन् एवं तमप् अथवा इष्ठन् दोनों जोड़ने की अनुमति है, वहाँ ईयसुन् और इष्ठन् जोड़ना अधिक मुहावरेदार समझा जाता है।

१ द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ।५।३।५७।

२ अतिशायने तमबिष्ठनौ।५।३।५५।

३ अत्रादी गुणवचनादेव।५।३।५८।

इन दो प्रत्ययों के पूर्व, विशेषण के अन्तिम स्वर और उसके उपरान्त यदि कोई व्यंजन हो तो तो उसका भी लोप हो जाता है[1] (यथा—पटु का केवल पट् रह जाता है, लघु का लघ्, धनिन् का धन्) । कहीं-कहीं और भी अन्तर हो जाता है । उदाहरणार्थ—

पटु	—	पटीयस्,	पटिष्ठ
लघु	—	लघीयस्,	लघिष्ठ
धनिन्	—	धनीयस्,	धनिष्ठ
अन्तिक	—	नेदीयस्,	नेदिष्ठ
अल्प[2]	—	{ अल्पीयस्, कनीयस्,	{ अल्पिष्ठ कनिष्ठ
युवन्[3]		{ यवीयस् कनीयस्,	{ यविष्ठ कनिष्ठ
ह्रस्व[4]	—	ह्रसीयस्,	ह्रसिष्ठ
क्षिप्र	—	क्षेपीयस्,	क्षेपिष्ठ
क्षुद्र	—	क्षोदीयस्,	क्षोदिष्ठ
स्थूल	—	स्थवीयस्,	स्थविष्ठ
दूर	—	दवीयस्,	दविष्ठ
दीर्घ	—	द्राघीयस्,	द्राघिष्ठ
गुरु	—	गरीयस्,	गरिष्ठ

१ टेः ।६।१५५। भस्य टेर्लोपः स्यादिष्ठेमेयस्सु । सि० कौ० ।

२ अन्तिकबाढयोर्नेसाधौ ।५।३।६३। ईष्ठन् तथा इयसुन् प्रत्यय के जुटने पर अन्तिक (निकट) के स्थान पर नेद तथा बाढ (भला) के स्थान पर साध आदेश होता है ।

३ युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम् ।५।३।६४। युवन् तथा अल्प शब्दों के स्थान में विकल्प से कन् आदेश हो जाता है ।

४ स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः ।६।४।१५६। सूत्रोक्त शब्दों में परवर्ती य, र, ल, व (यण् प्रत्याहार के वर्णों) का लोप हो जाता है और पूर्व के स्वर का गुण हो जाता है । इस प्रकार क्षिप्र के र का लोप हो जायगा तथा क्षिप् को क्षेप् हो जायगा ।

उरु	—	वरीयस्	वरिष्ठ
प्रिय[1]	—	प्रेयस्,	प्रेष्ठ
बहुल	—	बंहीयस्,	बंहिष्ठ
कृश*	—	क्रशीयस्,	क्रशिष्ठ
प्रशस्य[2]	—	श्रेयस्, ज्यायस्,	श्रेष्ठ, ज्येष्ठ
वृद्ध[3]	—	ज्यायस्, वर्षीयस्	ज्येष्ठ, वर्षिष्ठ
स्थिर	—	स्थेयस्,	स्थेष्ठ
स्फिर	—	स्फेयस्,	स्फेष्ठ
तृप्र*		त्रपीयस्,	त्रपिष्ठ
दृढ*	—	द्रढीयस्,	द्रढिष्ठ

१ प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्तदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रप्द्राघिवृन्दाः ।६।४।१५७। प्रिय के स्थान में प्र, स्थिर के स्थान में स्थ, स्फिर के स्फ, उरु के वर्, बहुल के बंहि, गुरु के गर्, वृद्ध के वर्षि, तृप्त के त्रप्, दीर्घ के द्राघि तथा वृन्दारक के स्थान में वृन्द हो जाता है ।

*र ऋतो हलादेर्लघोः ।६।४।१६१। लघु ऋकार के स्थान में र् आदेश हो जाता है, इष्ठन्, इमनिच् तथा ईयसुन् प्रत्यय के जुटने पर, किन्तु उस ऋकार के पूर्व कोई व्यञ्जन वर्ण अवश्य रहना चाहिए ।

२ प्रशस्यस्य श्रः ।५।३।६०। ईयसुन् और इष्ठन् जुड़ने पर प्रशस्य को 'श्र' आदेश हो जाता है । इस प्रकार श्रेयस् और श्रेष्ठ रूप होते हैं । फिर 'ज्य च' ।५।३।६१। के अनुसार 'ज्य' भी आदेश होता है । अतएव ज्यायस और ज्येष्ठ भी रूप बनेंगे ।

३ वृद्धस्य च ।५।३।६२। ईयसुन् और इष्ठन् जुड़ने पर वृद्ध शब्द के स्थान में भी 'ज्य' हो जाता है । फिर ज्यादादीयसः ।६।४।१६०। के अनुसार 'ज्य' के अनन्तर ईयसुन् के ईकार का आकार हो जाता है । इस प्रकार वृद्ध+ईयस्= =ज्य+ईयस्=ज्य+आयस्=ज्यायस् शब्द बना, जिसके ज्यायान् इत्यादि रूप होंगे । उपर्युक्त नोट (१) के अनुसार वृद्ध को 'वर्षि' भी आदेश होता है । इस प्रकार वर्षीयस् और वर्षिष्ठ भी रूप सिद्ध होंगे ।

मृदु	—	म्रदीयस्,	म्रदिष्ठ
बहु[1]	—	भूयस्,	भूयिष्ठ

---

१ बहोर्लोपो भू च बहोः ।६।४।१५८। ईयसुन् और इष्ठन् जुड़ने पर बहु को 'भू' आदेश हो जाता है और उसके बाद आने वाले ईयसुन् के ईकार का लोप हो जाता है । इसी प्रकार 'इष्ठस्य यिट् च' ।६।४।१५९। के अनुसार बहु के बाद आने वाले इष्ठन् के इकार का भी लोप हो जाता है और उसके स्थान में 'यि' का आगम हो जाता है ।

षष्ठ सोपान

कारक-विचार

६७—पहले कह चुके हैं कि संस्कृत में प्रातिपदिकों (क्रिया से इतर) की सात विभक्तियाँ होती हैं। इन विभक्तियों का किन अर्थों में प्रयोग होता है, यह इस परिच्छेद में दिखाया जायगा।

'कारक' का अर्थ है ऐसी वस्तु, जिसका क्रिया के सम्पादन में उपयोग हो। उदाहरण के लिए 'अयोध्या में रघु ने अपने हाथ से लाखों रुपये ब्राह्मणों को दान दिये', इस वाक्य में दान क्रिया के सम्पादन के लिए जिन-जिन वस्तुओं का उपयोग हुआ वे 'कारक' कहलाएँगी। दान की क्रिया किसी स्थान पर हो सकती है; यहाँ अयोध्या में हुई, इसलिए 'अयोध्या' कारक हुई; इस क्रिया के करने वाले रघु थे, इसलिए 'रघु' कारक हुए, यह क्रिया हाथ से सम्पादित हुई, इसलिए 'हाथ' कारक हुआ; रुपये दिये गये, इसलिए 'रुपये' कारक हुए और ब्राह्मणों को दिये गये, इसलिए 'ब्राह्मण' कारक हुए। क्रिया के सम्पादन के लिए इस प्रकार छः सम्बन्ध स्थापित होते हैं—

क्रिया का सम्पादक—कर्त्ता
क्रिया का कर्म—कर्म
क्रिया का सम्पादन जिसकी सहायता से हो—करण
क्रिया जिसके लिए हो—सम्प्रदान
क्रिया जिससे निकले या जिससे दूर हो—अपादान
क्रिया जिस स्थान पर हो—अधिकरण

इस प्रकार कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण य छः कारक[1] हुए। इन्हीं कारकों के व्यवहार में विभक्तियाँ आती हैं।

---

१ कर्त्ता कर्म च करणं सम्प्रदानं तथैव च।
अपादानाधिकरणे इत्याहुः कारकाणि षट्॥

क्रिया से जिसका सीधा सम्बन्ध होता हो वही कारक कहला सकता है। 'गोविन्द के लड़के गोपाल को श्याम ने पीटा'—ऐसे वाक्यों में पीटने की क्रिया से सीधा सम्बन्ध गोपाल (जिसको पीटा) और श्याम (जिसने पीटा) का है, गोविन्द का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। इसलिए "गोविन्द के" को कारक नहीं कह सकते। गोविन्द का सम्बन्ध गोपाल से है, किन्तु पीटने की क्रिया के सम्पादन में उसका (गोविन्द का) कोई उपयोग नहीं होता। अतः सम्बन्ध में की गयी षष्ठी विभक्ति कारक विभक्ति नहीं मानी जाती।

अब क्रमानुसार प्रथमा आदि विभक्तियों के प्रयोग पर विचार होगा।

६८—प्रथमा

(क) प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा।२।३।४६।

प्रथमा विभक्ति का उपयोग केवल (प्रातिपदिक अवस्था में) शब्द का अर्थ बतलाने के लिए केवल अथवा लिङ्ग[1] बतलाने के लिए, अथवा परिमाण अथवा वचन बतलाने के लिए किया जाता है। उदाहरणार्थ :—

(१) केवल[2] प्रातिपदिकार्थ—प्रातिपदिक का अर्थ है, शब्द, जिसको अँग्रेजी में बेस् (Base) या क्रूड् फार्म (Crude form) कहते हैं। प्रत्येक शब्द

---

१ यद्यपि सूत्र का अक्षरार्थ तो केवल प्रातिपदिकार्थ, केवल लिङ्ग, केवल परिमाण तथा केवल वचन को प्रकट करने के लिए प्रथमा का विधान करता है, परन्तु चूंकि प्रातिपदिकार्थ के बिना लिङ्गादि की प्रतीति असंभव है, अतएव प्रातिपदिक के लिङ्गादि अधिक अर्थ का बोध कराने के लिए प्रथमा का प्रयोग होता है, ऐसा अर्थ समझना चाहिए।

२ 'केवल प्रातिपदिक का अर्थ प्रकट करने के लिए प्रथमा का प्रयोग होता है'—इसके उदाहरण वे ही शब्द हो सकते हैं, जो या तो अलिङ्ग हैं अर्थात् किसी लिङ्ग का बोध नहीं कराते, जैसे उच्चैः, नीचैः इत्यादि; अथवा नियत (निश्चित) लिङ्ग वाले हैं, जैसे कृष्णः, श्रीः, ज्ञानम् इत्यादि। जो अनियत-लिङ्ग होते हैं, उनमें लिङ्गमात्र अधिक अर्थ का बोध कराने के लिए प्रथमा होती है, जैसे तटः, तटम् इत्यादि (अलिङ्गा नियतलिङ्गाश्च प्रातिपदिकार्थमात्र इत्यस्योदाहरणम्। अनियतलिङ्गास्तु लिङ्गमात्राधिक्यस्य— सि० कौ०)।

का कुछ नियत अर्थ होता है, परन्तु संस्कृत के वैयाकरणों के हिसाब से किसी शब्द में जब तक प्रत्यय लगाकर पद (सुप्तिङन्तं पदम्) न बना लिया जाय, तब तक उसका अर्थ नहीं समझा जा सकता। अतएव यदि किसी शब्द के केवल अर्थ का बोध कराना हो तो प्रथमा विभक्ति लगाते हैं; जैसे यदि केवल 'राम' उच्चारण करें तो संस्कृत में यह शब्द निरर्थक होगा, यदि "रामः" कहें तब राम शब्द के अर्थ का बोध होगा। इसीलिए संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण ही में नहीं, प्रत्युत अव्ययों तक में भी संस्कृत वैयाकरण प्रथमा लगाते हैं, जैसे नीचैः, उच्चैः आदि। यदि न लगाएँ तो उन अव्ययों का अर्थ ही न निकले।

(२) प्रातिपदिकार्थ के अतिरिक्त लिङ्ग—ऐसे शब्द जिनमें लिङ्ग नहीं होता (जैसे उच्चैः आदि अव्यय) और ऐसे शब्द जिनका लिङ्ग नियत है अर्थात् मालूम है कि यह शब्द केवल पुंल्लिङ्ग में होता है (जैसे वृक्षः) अथवा केवल नपुंसकलिङ्ग में होता है (जैसे फलम्) अथवा केवल स्त्रीलिङ्ग में होता है (जैसे कन्या)—इनको छोड़कर बाकी शब्दों के अर्थ और लिङ्ग दोनों प्रथमा विभक्ति के द्वारा ही जान पड़ते हैं, जैसे तटः, तटी, तटम्। इन शब्दों में 'तटः' से यह ज्ञात होता है कि यह शब्द पुंल्लिङ्ग में है और इसका अर्थ किनारा है, 'तटी' स्त्रीलिङ्ग है और इसका अर्थ किनारा है, 'तटम्' नपुंसकलिङ्ग है और इसका भी अर्थ किनारा है।

(३) केवल परिमाण जैसे—प्रस्थो व्रीहिः यहाँ प्रथमा विभक्ति से प्रस्थ अर्थात् आधसेर का परिमाण विदित होता है। कितना चावल? आध सेर चावल—इस अर्थ के लिए यहाँ प्रथमा विभक्ति है।

(४) केवल वचन (संख्या)—जैसे एकः, द्वौ, बहवः।

(ख) सम्बोधने च ।२।३।४७।

प्रथमा विभक्ति का उपयोग सम्बोधन करने में भी होता है; जैसे—हे बालकाः! (हे बालको), हे कन्याः! (हे कन्याओ) आदि। इसलिए सम्बोधन को अलग विभक्ति नहीं मानते। ऊपर संज्ञाओं के रूप देते समय सम्बोधन के भी रूप कहीं-कहीं दिये गये हैं, इससे यह नहीं समझना चाहिए कि सम्बोधन की भी आठवीं विभक्ति होती है। रूप केवल आसानी के लिए दिये गये हैं, क्योंकि सम्बोधन करते समय प्रथमा के एकवचन में कुछ अन्तर पड़ जाता है।

(ग) संस्कृत-व्याकरणों में ऊपर (क) और (ख) में लिखे हुए दो ही सूत्र प्रथमा विभक्ति के उपयोग के लिए मिलते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि सारे संस्कृत-साहित्य में कर्तृवाच्य के कर्त्ता (बालकः गच्छति, कन्या फलमश्नुते लुब्धकाः वृक्षमारोहन्ति) और कर्मवाच्य के कर्म (हरिः सेव्यते, पित्रा पुत्रः ताड्यते, भ्रात्रा भगिनी पाठ्यते, भोजनं स्वाद्यते) में जो प्रथमा विभक्ति मिलती है, वह किस नियम अथवा सूत्र से सिद्ध होनी चाहिए। इसका समाधान इस प्रकार है। संस्कृत भाषा में क्रिया अथवा व्यापार को ही वाक्य में प्रधानत्व दिया गया है। क्या करना है, इसके बारे में सबसे पहले पूर्ण निश्चय हो जाना चाहिए; फिर कर्त्ता, कर्म आदि आवेंगे। ऊपर कारक (६७) का व्याख्यान करते समय कह आये हैं कि क्रिया से सम्बन्ध रखने पर ही कारक हो सकता है। अन्य भाषाओं में किसी में कर्म को प्रधानत्व दिया गया है और किसी में कर्त्ता को, जैसे अँग्रेजी में कर्त्ता को। अँग्रेजी में कर्त्ता निश्चित हो जाता है, फिर उसके अनुसार क्रिया, कर्म आदि आते हैं। परन्तु संस्कृत में क्रिया का निश्चय हो जाना मुख्य है और उसका निश्चय हो जाने पर उसी के सम्बन्ध में अन्य कारक शब्द आते हैं। क्रिया बतला दी जाने पर उसके साथ जिस शब्द का जैसा अन्वय हो, उस शब्द का वैसा कारक समझना चाहिए। उदाहरणार्थ कोई क्रिया जैसे 'गच्छति' ले लीजिए; अब 'गच्छति' से इन बातों का बोध होता है—

(१) क्रिया वर्तमान काल में हो रही है।

(२) इस क्रिया का सम्पादक कोई अन्यपुरुष एकवचन है। अब कोई ऐसा वाक्य ले लीजिए जिसमें "गच्छति" शब्द आता हो, जैसे—

रामः ग्रामं गच्छति।

इस वाक्य में दो शब्द हैं, जो अन्यपुरुष और एकवचन में हैं, अर्थात् 'रामः' और 'ग्रामम्'। 'ग्रामम्' कर्मस्थानीय है—यह आगे द्वितीया के प्रयोग वाले सूत्रों से व्यक्त हो जायगा इसलिए यह कर्त्ता हो नहीं सकता; बाकी बचा 'रामः' शब्द, यही कर्त्ता हो सकता है। इसी प्रकार कर्मवाच्य के कर्म के विषय में भी क्रिया के साथ जिस शब्द का अन्वय लग जायगा, वही कर्म होगा; जैसे—'सेव्यते' से यह पता चल जाता है कि कोई अन्यपुरुष एकवचन की संज्ञा कर्म हो सकती है। अब

जिस वाक्य में 'सेव्यते' क्रिया आवे जिसका सम्बन्ध कर्म रूप ही से सिद्ध हो अन्य से नहीं, वही कर्म होगा; जैसे—हरिः सेव्यते इत्यादि में 'हरिः'।

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि कर्तृवाच्य में क्रिया का कर्त्ता और कर्मवाच्य में क्रिया का कर्म यह भी प्रथमा विभक्ति में होते हैं।

६६–द्वितीया

(क) कर्तुरीप्सिततमं कर्म ।१।४।४९।

"किसी वाक्य में प्रयोग किये गये पदार्थों में से जिसको कर्त्ता सब से अधिक चाहता है उसे कर्म कहते हैं," पाणिनि ने कर्म कारक की इस प्रकार परिभाषा दी है।

"जिस वस्तु या पुरुष के ऊपर क्रिया का फल समाप्त होता है, उसे कर्म कहते हैं" यह हिन्दी तथा अँग्रेजी में कर्मकारक का लक्षण बतलाया जाता है; किन्तु साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण आते हैं जिन पर क्रिया का फल समाप्त तो होता है, किन्तु वे कर्मकारक नहीं माने जाते जैसे—'वह घर जाता है'। यहाँ यद्यपि 'जाने' का कार्य 'घर' पर समाप्त होता है तथापि 'घर' साधारणतः कर्म नहीं माना जाता। संस्कृत में भी 'घर' को साधारण नियमों के अनुसार कर्म नहीं मानते, न 'जाना' को सकर्मक क्रिया मानते हैं। घर को कर्म मानने के लिए साधारण नियमों के अतिरिक्त विशेष नियम है। इसी प्रकार और भी स्थल दिखाये जायँगे जो कर्म के साधारण लक्षण के अनुसार कर्म के अन्तर्गत नहीं होते और जिन्हें कर्म-संज्ञा देने के लिए विशेष सूत्रों की रचना करनी पड़ी।

कर्त्ता जिस क्रियान्वयी पदार्थ को अपने व्यापार से प्राप्त करने के लिए सब से अधिक चाह या इच्छा रखता है, उसे कर्म कहते हैं।

(१) कर्त्ता की चाह का अभिप्राय यह है कि यदि कोई पदार्थ कर्मादि को अभीष्टतम हो परन्तु कर्त्ता को उसकी प्राप्ति अभीष्ट न हो तो उसकी कर्म-संज्ञा नहीं होगी, जैसे 'माषेस्वश्वं बध्नाति' (उड़द के खेत में घोड़े को बाँधता है)—इस वाक्य में बाँधने वाला अपनी बाँधने की क्रिया के द्वारा अश्व ही को वशंगत करना चाहता है। अतएव बन्धनव्यापार द्वारा अश्व ही कर्त्ता का अभीष्ट है,

उड़द नहीं। उड़द की चाह अश्व को हो सकती है और उसके प्रलोभन से अश्व का बाँधना सुगमतर भी हो सकता है, परन्तु कर्त्ता को यहाँ उसकी चाह नहीं है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कर्त्ता की इच्छा का ही प्राधान्य कर्मनिर्धारण में निर्णायक होता है, न कि कर्त्ता से अतिरिक्त अन्य किसी की इच्छा का प्राधान्य।

(२) जिसे कर्म संज्ञा दी जायगी, वह पदार्थ कर्त्ता की क्रिया द्वारा उस (कर्त्ता) को अभीष्टतम होना चाहिए, अर्थात् यदि उसी क्रिया से कोई पदार्थ ऐसे सम्बद्ध हों जिन सभी की सामान्य चाहना कर्त्ता रखता है तो उन सबों में जो सब से अधिक ईप्सित होगा, वही कर्मसंज्ञा प्राप्त करेगा, दूसरे नहीं। जैसे 'पयसा ओदनं भुंक्ते' (दूध से भात खाता है)—इस वाक्य में दूध भी भात ही की तरह कर्त्ता को प्रिय है, पर कर्त्ता अपने भोजनव्यापार द्वारा जिसको सबसे अधिक पाना चाहता है, वह भात है, न कि दूध। क्योंकि दूध पेय है, भोज्य नहीं, वह तो केवल भोजन-क्रिया के सम्पादन में सहायक है।

(३) इसी कारण 'ब्राह्मणस्य पुत्रं पन्थानं पृच्छति'—इस वाक्य में यद्यपि पूछने वाला कर्त्ता पुत्र की अपेक्षा विज्ञ ब्राह्मण से ही रास्ता पूछना अधिक पसन्द करेगा, तथापि ब्राह्मण की कर्मसंज्ञा नहीं हो सकती, क्योंकि ब्राह्मण का 'पृच्छति' क्रिया के साथ कोई सम्बन्ध न होकर पुत्र के साथ विशेष सम्बन्ध है।

(ख) कर्मणि द्वितीया ।२।३।२।

कर्म को बतलाने के लिए द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है, जैसे—

भक्त हरि को भजता है। इसमें 'हरि को' कर्म है, इसलिए हरि शब्द में द्वितीया करनी होगी—भक्तो हरिं भजति। ब्रह्मचारी वेदमधीते।

तथायुक्तं चानीप्सितम् ।१।४।५०।

(क) कुछ पदार्थ ऐसे भी होते हैं जो कि कर्त्ता द्वारा अनीप्सित होते हुए भी ईप्सित ही की तरह क्रिया से सटे रहते हैं। उनकी भी कर्मसंज्ञा होती है। जैसे, 'ओदनं भुञ्जानो विषं भुंक्ते' इस वाक्य में 'विष' अत्यन्त अनीप्सित है, परन्तु 'ओदन' (जो भोजन क्रिया द्वारा कर्त्ता का ईप्सिततम है) की ही तरह वह भी उस क्रिया से सटा हुआ है और ओदन भोजन के साथ उसके भोजन का भी रहना अनिवार्य है। अतः 'विष' भी कर्मसंज्ञक हो जायगा। इस प्रकार 'ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति'—इस वाक्य में भी 'तृण' कर्मसंज्ञक होगा।

(ग) अकथितं च ।१।४।५१।

(ख) अपादान इत्यादि के द्वारा अविवक्षित कारक 'अकथित' कर्म कहलाता है।

वहुत से ऐसे पदार्थ हैं जो कई एक धातुओं के कर्मों के साथ नियत रूप से सम्बद्ध रहते हैं और वस्तुतः वे कर्म के अतिरिक्त अन्य कारकों के अर्थ को द्योतित करते हैं। वे ही गौण कर्म के रूप में स्वीकार कर लिये जाते हैं। अतः इनके लिए द्वितीया विभक्ति का ही विधान होता है। यह नियम—

(घ) दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथमुषाम् । कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम् ॥

इस कारिका में गिनायी गयी धातुओं के ही लिए है। इनमें इन धातुओं की पर्यायवाची धातुएँ भी सम्मिलित समझनी चाहिए।

(१) 'गां दोग्धि पयः'—यहाँ पर 'गाय से दूध दुहता है' ऐसा अर्थ निकलने के कारण 'गाय' सामान्यतः अपादान कारक है, इसलिए उसमें पञ्चमी विभक्ति होनी चाहिए। परन्तु यहाँ पर 'गाय' दूध के निमित्तमात्र के रूप में गृहीत है, अवधि-रूप में नहीं। अतएव उपर्युक्त नियम के अनुसार 'गाय' की कर्मसंज्ञा हुई। इस वाक्य से अभिप्राय यह निकला कि पयःकर्मक गोसम्बन्धी दोहनव्यापार हुआ। अपादान की विशेष विवक्षा होने पर 'गोर्दोग्धि पयः' ऐसा ही प्रयोग होगा।

(२) 'बलिं याचते वसुधाम्'—यहाँ 'बलि' गौण कर्म है। अपादान की विशेष विवक्षा होने पर 'बलेर्याचते वसुधाम्'—यह प्रयोग होगा।

(३) 'तण्डुलानोदनं पचति'—यहाँ 'तण्डुल' वस्तुतः करणार्थक है, परन्तु वक्ता की इच्छा उसे करण कहने की नहीं, अतएव वह गौण कर्म के रूप में अवस्थित हो गया है।

(४) गर्गान् शतं दण्डयति।

(५) 'व्रजमवरुणद्धि गाम्'—यहाँ सामान्यतः 'व्रज' आधार होता, परन्तु आधार की विवक्षा न होने के कारण उपर्युक्त नियम के अनुसार अकथित कर्म हुआ। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिए।

(६) माणवकं पन्थानं पृच्छति ।
(७) वृक्षमवचिनोति फलानि ।
(८) माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा ।
(९) शतं जयति देवदत्तम् ।
(१०) सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति ।
(११) देवदत्तं शतं मुष्णाति ।
(१२) ग्राममजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा ।

इन धातुओं की समानार्थक[1] धातुएँ भी द्विकर्मक होती हैं; जैसे—माणवकं धर्मं भाषते वक्ति वा, बलिं वसुधां भिक्षते इत्यादि ।

ऊपर कही हुई 'दुहादि' धातुओं के प्रधान कर्म से जिनका सम्बन्ध होता है, वे अकथित अर्थात् अप्रधान या गौण कर्म कहे जाते हैं; जैसे—दुह् का प्रधान कर्म 'दूध' है, दूध से सम्बन्ध रखने वाली है गाय; 'गाय' अकथित अथवा अप्रधान कर्म है । इसी प्रकार "अवरुणद्धि" का प्रधान कर्म "गाय" है, गाय से सम्बन्ध रखने वाला "वाड़ा" है, "वाड़ा" अकथित कर्म है । 'कर्मणि द्वितीया' सूत्र के अनुसार इस अकथित कर्म में द्वितीया विभक्ति हुई है ।

पयः, वसुधां, ओदनं इसलिए प्रधान कर्म कहे जाते हैं क्योंकि वे कर्ता के इष्टतम हैं और कर्म छोड़कर दूसरे कारक हो ही नहीं सकते । गाम्, व्रजम्, माणवकम् इत्यादि अप्रधान कर्म हैं क्योंकि वे कर्म के अतिरिक्त दूसरे कारक भी हो सकते हैं; जैसे—

"गां दोग्धि पयः" के वदले गोः (पञ्चमी) दोग्धि पयः ।
"व्रजम् अवरुणद्धि गाम्" " " व्रजे अवरुणद्धि गाम् ।
"माणवकं पन्थानं पृच्छति" " " माणवकात् पन्थानं पृच्छति ।

(ङ) अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम् (वार्त्तिक)—अकर्मक धातुओं के योग में देश, काल, भाव तथा गन्तव्य पथ भी कर्म समझे जाते हैं; जैसे—

(१) कुरून् स्वपिति—कुरुदेश में सोता है ('कुरून्' देशव्यञ्जक है) ।

---

१ अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा । बलिं भिक्षते वसुधाम् । माणवकं धर्मं भाषते, अभिधत्ते, वक्तीत्यादि ।—'अकथितञ्च' ।१।४।५१। पर सि० कौ० ।

(२) मासमास्ते—महीने भर रहता है ('मासम्' कालव्यञ्जक है)

(३) गोदोहमास्ते—गाय दुहने की क्रिया जितनी देर होती है उतनी देर तक रहता है ('गोदोहम्' भावव्यंजक है)।

(४) क्रोशमास्ते—कोस भर में रहता है ('क्रोशम्' मार्गव्यञ्जक है)।

(च) अधिशीङ्स्थासां कर्म ।१।४।४६।

शी, स्था तथा आस् धातुओं के पूर्व यदि 'अधि' उपसर्ग लगा हो तो इन क्रियाओं का आधार कर्म कहलाता है; अर्थात् जिस स्थान पर इन धातुओं की क्रियाएँ होती हैं, वह कर्म होता है; जैसे—

चन्द्रापीडः मुक्ताशिलापट्टम् अधिशिश्ये—चन्द्रापीड मुक्ताशिला की पटरी पर लेट गया।

अर्धासनं गोत्रभिदोऽधितस्थौ—इन्द्र के आधे आसन पर बैठता था।

भूपतिः सिंहासनम् अध्यास्ते—राजा सिंहासन पर बैठा है।

यहाँ ये क्रियाएँ पटरी, आसन और सिंहासन पर, जो आधार हैं, हुई हैं। इसलिए इन शब्दों को कर्म कहेंगे और इनमें द्वितीया विभक्ति होगी। यदि 'अधि' उपसर्ग न लगा होता तो आधार के अधिकरण होने के कारण उसमें सप्तमी होती—शिलापट्टे शिश्ये, अर्धासने तस्थौ, सिंहासने आस्ते।

(छ) अभिनिविशश्च ।१।४।४७।

अभि तथा नि उपसर्ग जब एक साथ विश् धातु के पहिले आते हैं तो विश् का आधार कर्म कारक होता है; जैसे—

सन्मार्गम् अभिनिविशते—वह अच्छे मार्ग का अनुसरण करता है।

धन्या सा कामिनी याम् भवन्मनोऽभिनिविशते—वह स्त्री धन्य है, जिसके ऊपर आपका मन लगा है।

यदि 'अभि-नि' साथ-साथ न आकर केवल एक ही आवे तो द्वितीया न होगी; जैसे—

'निविशते यदि शूकशिखा पदे' (नैषध)

(ज) उपान्वध्याङ्वसः ।१।४।४८।

यदि वस् धातु के पूर्व उप, अनु, अधि, आ में से कोई उपसर्ग लगा हो तो क्रिया का आधार कर्म होता है; जैसे—

हरिः वैकुण्ठम्[1] उपवशति हरिः वैकुण्ठम्[2] अनुवसति हरिः वैकुण्ठम्[3] अधिवसति हरिः वैकुण्ठम्[4] आवसति	हरि वैकुण्ठ में वास करते हैं ।

परन्तु हरिः वैकुण्ठे वसति ।

अन्तिम वाक्य में 'वसति' का आधार "वैकुण्ठ" कर्म नहीं हुआ क्योंकि "वसति" के पूर्व उप, अनु, अधि, आ में से कोई उपसर्ग नहीं लगा है ।

(झ) अभुक्त्यर्थस्यतु न (वार्त्तिक)

जब "उपवस्" का अर्थ "उपवास करना, न खाना" होता है, तब "उपवस्" का आधार कर्म नहीं होता, अधिकरण ही रहता है; जैसे—वने उपवसति—वन में उपवास करता है ।

(ञ) अकर्मक क्रिया

धातोरर्थान्तरे वृत्तेर्धात्वर्थेनोपसंग्रहात् ।
प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिका क्रिया ।।

(१) जब धातु का अर्थ बदल जाय जैसे 'वह्' धातु का अर्थ है 'ढोना' (ले जाना), पर 'नदी वहति' इस प्रयोग में 'वह्' का अर्थ स्यन्दन करना है,

(२) जब धातु के अर्थ में ही कर्म समाविष्ट हो जैसे 'जीवति' इस प्रयोग में 'जीवनं जीवति' इस प्रकार का अर्थ गम्य होने के कारण जीवन की कर्मता छिपी हुई है,

(३) जब धातु का कर्म अत्यन्त प्रख्यात हो, जैसे 'मेघो वर्षति' यहाँ 'वर्षति' का कर्म 'जलम्' अत्यन्त लोकविख्यात है,

(४) और जब कर्म का कथन अभीष्ट न हो जैसे 'हितान्न यः संश्रृणुते स किं प्रभुः' इस प्रयोग में 'हित' कर्म है, पर उसे कर्म बतलाना वक्ता को अभीष्ट नहीं ।

१, २, ३, ४ ये सभी वास्तव में अधिकरण हैं, किन्तु नियमविशेष से कर्म हो गये हैं ।

सब सकर्मक धातुएँ भी अकर्मक हो जाती हैं। इसके विपरीत अकर्मक धातुएँ भी उपसर्गपूर्वक होने पर प्रायः सकर्मक हो जाती हैं; जैसे, 'प्रभुचित्तमेव जनोऽनुवर्तते' 'अचलतुङ्गशिखरमारुरोह', 'नोत्पतति वा दिवम्', 'ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति' इत्यादि।

(ट) उभसर्वतसोः कार्याधिगुपर्यादिषु[1] त्रिषु। द्वितीयाम्रेडितान्तेषु, ततोऽन्यत्रापि[2] दृश्यते॥

उभयः, सर्वतः, धिक्, उपर्युपरि, अधोऽधः तथा अध्यधि शब्दों का जिससे संयोग हो उसमें द्वितीया होती है; जैसे—

उभयतः कृष्णं गोपाः—कृष्ण के दोनों ओर ग्वाले हैं।
सर्वतः कृष्णं गोपाः—कृष्ण के सभी ओर ग्वाले हैं।
धिक् पिशुनम्—चुगुलखोर को धिक्कार है।
धिक् त्वां पापिनम्—तुझ पापी को धिक्कार है।
उपर्युपरि लोकं हरिः—हरि लोक के ठीक ऊपर हैं।
अधोऽधो लोकं पातालः—पाताल लोक के ठीक नीचे हैं।
नवान् मेघान् अधोऽधः—नये बादलों के ठीक नीचे।
अध्यधि लोकम्—संसार के ठीक ऊपर।

नोट—ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि 'दोनों ओर', 'सभी ओर', 'ठीक ऊपर', 'ठीक नीचे' के साथ हिन्दी में 'का' परसर्ग लगता है, किन्तु संस्कृत में 'का' की स्थानीय षष्ठी न लगकर द्वितीया लगती है। अनुवाद के समय इसका ध्यान रखना चाहिए।

---

१ धिक् के साथ कभी-कभी प्रथमा और सम्बोधन भी होते हैं, जैसे—धिगियं दरिद्रता, धिगर्थाः कष्टसंश्रयाः; धिङ् मूढ।

२ उपर्यध्यधसः सामीप्ये ।८।१।७। अर्थात् 'सामीप्य' के अर्थ में उपरि, अधि तथा अधः आम्रेडित (द्विरुक्त) होते हैं। परन्तु यदि सामीप्य अर्थ न हो तो षष्ठी ही होती है; जैसे—'उपर्युपरि सर्वेषामादित्य इव तेजसा' (महाभारत)

(ठ) अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि (वार्त्तिक)

अभितः (चारों ओर या सब ओर), परितः (सब ओर), समया (समीप), निकषा (समीप), हा, प्रति (ओर, तरफ) शब्द जिस शब्द के सम्बन्ध में प्रयुक्त हों, उसमें द्वितीया होती है; जैसे—

परिजनः राजानम् अभितः तस्थौ—नौकर राजा के चारों ओर खड़े थे।

रक्षांसि वेदीं परितो निरास्थत्—राक्षसों को वेदी के चारों ओर से निकाल दिया।

ग्रामं समया निकषा वा—ग्राम के समीप।

हा[1] शठम्—हाय शठ !

मातुः हृदयं कन्यां प्रति स्निग्धं भवति—माता का हृदय कन्या की ओर (कन्या के प्रति) कोमल होता है।

नोट—यहाँ भी हिन्दी और संस्कृत दोनों के प्रयोगों में विभिन्नता है। प्रति के साथ हिन्दी में षष्ठी लगती है, संस्कृत में द्वितीया। इसी प्रकार अभितः, परितः, समया, निकषा के साथ भी होता है।

(ड) अन्तराऽन्तरेण युक्ते।२।३।४।

अन्तरा (बीच में), अन्तरेण (विषय में, विना, छोड़ कर) शब्द जिस शब्द के सम्बन्ध में प्रयुक्त हों, उसमें द्वितीया होती है; जैसे—

अन्तरा त्वां मां हरिः—तुम्हारे हमारे बीच में हरि हैं।

रामम् अन्तरेण न किञ्चिद् जानामि—राम के बारे में कुछ नहीं जानता हूँ।

त्वामन्तरेण कोऽन्यः प्रतिकर्तुं समर्थः—तुम्हारे विना दूसरा कौन बदला लेने में समर्थ है।

नोट—यहाँ भी हिन्दी में षष्ठी होती है और संस्कृत में द्वितीया।

---

१ हा के साथ कभी-कभी सम्बोधन भी होता है; जैसे—हा भगवत्यरुन्धति !

(ढ) कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे ।२।३।५।

जब कोई क्रिया लगातार कुछ समय तक होती रहे या कोई वस्तु कुछ दूरी तक लगातार हो तो समय और मार्गवाचक शब्द में द्वितीया होती है; जैसे—

चत्वारि वर्षाणि वेदम् अधिजगे—चार वर्ष तक वेद पढ़ता रहा।

सहस्रं वर्षाणि राक्षसः तपस्तप्तवान्—राक्षस हजार वर्ष तक लगातार तप करता रहा।

क्रोशं कुटिला नदी—नदी कोस भर तक टेढ़ी है।

सभा वैश्रवणी राजन् शतयोजनमायता—हे राजन्, कुबेर की सभा सौ योजन लम्बी है।

दशयोजनविस्तीर्णा त्रिंशद्योजनमायता।
छाया वानरसिंहस्य जले चारुतराऽभवत् ॥

वानरश्रेष्ठ (हनुमान् जी) की परछाई जो कि दस योजन चौड़ी और तीस योजन लम्बी थी, जल में अधिक सुन्दर लगती थी।

(ण) एनपा द्वितीया ।२।३।३१।

एनप् प्रत्ययान्त शब्द का जिस शब्द से सम्बन्ध होता है, उसमें द्वितीया या षष्ठी होती है; जैसे—

ग्रामं ग्रामस्य वा दक्षिणेन—गाँव के दक्षिण की ओर।

तत्रागारं धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीयम्—वहाँ पर कुबेर के महल के उत्तर मेरा घर है।

यहाँ दक्षिणेन, उत्तरेण इन दोनों शब्दों में एनप् प्रत्यय है। इन्हें तृतीयान्त नहीं समझना चाहिए। एनप् प्रत्यय के (अमुक दिशा में समीप में इस अर्थ में) लगने पर शब्द अव्यय-सा ही रहता है—उसका रूप नहीं चलता।

(त) गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि ।२।३।१२।

जब गत्यर्थक धातुओं (ऐसी धातुएँ जिनका अर्थ 'जाना' हो, जैसे, या, गम्, चल्, इण् आदि) का कर्म मार्ग नहीं रहता है और क्रियानिष्पादन में शरीर से व्यापार करना पड़ता है, तो उस कर्म में द्वितीया या चतुर्थी होती है; जैसे—

गृहं गृहाय वा गच्छति।

यहाँ पर 'गृह' मार्ग नहीं है, वल्कि स्थान है और घर जाने में हाथ, पैर तथा शरीर के और अङ्गों को हिलाना-डुलाना पड़ता है; इसलिए गृहं, गृहाय दोनों होता है। यदि गत्यर्थक धातु का कर्म "मार्ग" हो तो केवल द्वितीया होती है; जैसे—पन्थानं गच्छति।

जहाँ शरीर से व्यापार नहीं करना पड़ता, वहाँ केवल द्वितीया होती है; जैसे—मनसा हरिं व्रजति। यहाँ पर हरि के पास मन के द्वारा जाता है, जिसमें जाने वाले को हाथ, पैर अथवा शरीर का और कोई अङ्ग नहीं हिलाना-डुलाना पड़ता एवं इसमें शरीर-व्यापार नहीं होता; इसलिए चतुर्थी नहीं हो सकती। इसी प्रकार—

नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके।
तदाननं मृत्सुरभि क्षितीश्वरो रस्युपाघ्राय न तृप्तिमाययौ।
विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रताम्।
अश्वत्थामा किं न यातः स्मृतिं ते।
पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम।

(थ) दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च।२।३।३५।

दूर, अन्तिक (निकट) तथा इनके समान अर्थ रखने वाले शब्दों में द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी अथवा सप्तमी होती है; जैसे—ग्रामात्, ग्रामस्य वा दूरं, दूरेण, दूरात्, दूरे वा।

वनस्य, वनाद् वा अन्तिकं, अन्तिकेन, अन्तिकात्, अन्तिके वा।
गृहस्य निकटं, निकटेन, निकटात्, निकटे वा।

(द) गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम्।
विभक्तिः प्रथमा ज्ञेया द्वितीया च तदन्यतः॥

पूर्व कही हुई द्विकर्मक धातुओं के कर्मवाच्य वनाने में दुह् से लेकर मुष् तक के गौण कर्म में और नी, हृ, कृष्, वह् के प्रधान कर्म में प्रथमा लगाते हैं; शेष कर्म में अर्थात् दुह् से मुष् तक के प्रधान कर्म में और नी, हृ, कृष्, वह् के गौण कर्म में द्वितीया होती है; जैसे—

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
गोपः धेनुं पयो दोग्धि	गोपेन धेनुः पयो दुह्यते
देवाः समुद्रं सुधां ममन्थुः	देवैः समुद्रः सुधां ममन्थे
सोऽजां ग्रामं नयति, हरति कर्षति, वहति वा	तेन अजा ग्रामं नीयते, ह्रियते, कृष्यते, उह्यते वा ।

(ध) गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्त्ता स णौ (कर्म)[1] ।१।४।५२।

(१) ऐसी धातुएँ जिनका अर्थ जाना हो, जैसे—गम्, या, इण् आदि;

(२) ऐसी धातुएँ जिनका अर्थ कुछ समझना या ज्ञान प्राप्त करना हो, जैसे—बुध् (जानना), ज्ञा (जानना), विद् (जानना) आदि;

(३) ऐसी धातुएँ जिनका अर्थ खाना हो, जैसे—भक्ष्, भुज् आदि;

(४) ऐसी धातुएँ जिनका कर्म कोई शब्द हो जैसे—पठ् (पढ़ना), उच्चर् (बोलना) आदि; और

(५) ऐसी धातुएँ जिनका कोई कर्म न हो, जैसे—उत्तिष्ठ (उठना), आस् (बैठना) आदि;

इनका साधारण दशा (अणिजन्त) में जो कर्त्ता रहता है, वह णिजन्त अथवा प्रेरणार्थक में कर्म हो जाता है; जैसे—

शत्रूनगमयत् स्वर्गं, वेदार्थं स्वानवेदयत् ।
आशयच्चामृतं देवान्, वेदमध्यापयद् विधिम् ।
आशयत् सलिले पृथ्वीं, यः स मे श्रीहरिर्गतिः ॥

अर्थात् जिन श्रीहरि ने शत्रुओं को स्वर्ग भेजा, आत्मीयों को वेद का अर्थ समझाया, देवताओं को अमृत खिलाया, ब्रह्मा को वेद पढ़ाया, पृथ्वी को जल में बिठाया, वही मेरे शरणदाता हैं ।

---

१ सामान्यतः प्रकृतदशा का कर्त्ता णिजन्त या प्रेरणार्थक क्रियाओं में करण होता है और तृतीया में रखा जाता है, जैसे 'रामो भार्यां त्यजति' का प्रेरणार्थक 'रामेण भार्या त्याजयति' होता है ।

साधारण रूप	प्रेरणार्थक रूप
शत्रव: स्वर्गमगच्छन्	शत्रून् स्वर्गमगमयत् ।
स्वे वेदार्थम् अविदु:	स्वान् वेदार्थम् अवेदयत् ।
देवा अमृतम् आश्नन्	देवान् अमृतम् आशयत् ।
विधि: वेदम् अध्यैत	विधिं वेदमध्यापयत् ।
पृथ्वी सलिले आस्त	पृथ्वीं सलिले आसयत् ।

(i) सूत्र में अकर्मक धातुओं का तात्पर्य उन्हीं धातुओं से है जिनका देश, काल इत्यादि से भिन्न कर्म सम्भव नहीं है, उन धातुओं से नहीं जो कर्म के अविवक्षित होने के कारण अकर्मक रूप में प्रयुक्त होती हैं । अतएव 'मासम् आस्ते देवदत्त:' का प्रेरणार्थक प्रयोग होने पर 'देवदत्त:' कर्म हो जायगा जैसे, 'मासमासयति देवदत्तम्' परन्तु 'पचति देवदत्त:' का 'पाचयति देवदत्तेन' ही होगा, 'पाचयति देवदत्तम्' नहीं ।

(ii) सूत्र में 'अणि' अर्थात् अणिजन्त का ग्रहण करने का तात्पर्य यह है कि यदि णिजन्त का कर्त्ता भी किसी अन्य से प्रेरित होकर प्रेरित करता है तो वह कर्म अर्थात् द्वितीयान्त नहीं होगा, अपितु तृतीयान्त ही प्रयुक्त होगा; जैसे, 'गच्छति यज्ञदत्त:' यदि इस वाक्य का कर्त्ता 'यज्ञदत्त:' देवदत्त से प्रेरित होता है तो वह कर्म होकर द्वितीया में रखा जायगा—गमयति यज्ञदत्तं देवदत्त: । अब यदि 'देवदत्त' स्वयं विष्णुदत्त से प्रेरित होकर यज्ञदत्त को जाने के लिए प्रेरित करता है तो 'देवदत्त' कर्म नहीं होगा क्योंकि यह अणिजन्त अर्थात् साधारण क्रिया का कर्त्ता नहीं अपितु णिजन्त या प्रेरणार्थक क्रिया का कर्त्ता है । उस दशा में वाक्य-रचना इस प्रकार होगी—गमयति यज्ञदत्तं देवदत्तेन विष्णुदत्त: ।

(न) हृक्रोरन्यतरस्याम् ।१।४।५३।

हृ एवं कृ धातुओं के अणिजन्त रूपों का कर्त्ता णिजन्त रूपों में विकल्प से कर्म होता है; जैसे, 'हरति कटं भृत्य:' का णिजन्त में 'हारयति कटं भृत्यं भृत्येन वा' हो जायगा ।

(प) अभिवादिदृशोरात्मने पदे वेति वाच्यम् (वार्त्तिक)

इस वार्त्तिक के अनुसार अभिपूर्वक वद् धातु तथा दृश् धातु जब प्रेरणार्थक होने पर आत्मनेपद में प्रयुक्त होती हैं, तब उनका भी प्रकृत दशा का कर्त्ता विकल्प

से कर्म होता है; जैसे 'अभिवदति देवं भक्तः' या 'पश्यति देवं भक्तः' के प्रेरणार्थ रूप 'अभिवादयते देवं भक्तं भक्तेन वा' एवं 'दर्शयते देवं भक्तं भक्तेन वा' होंगे। आत्मनेपद में न होने पर 'दृशेश्च' वार्त्तिक के अनुसार 'दर्शयति देवं भक्तम्'—ऐसा ही प्रयोग में होगा। 'अभिवद्' के आत्मनेपदी न होने पर 'अभिवादयति देवं भक्तेन' ही प्रयोग होगा।

(फ) जल्पतिप्रभृतीनामुपसंख्यानम् (वार्त्तिक)

इस वार्त्तिक के अनुसार जल्प्, भाष् इत्यादि के भी प्रकृत दशा के कर्त्ता प्रेरणार्थक में कर्म हो जाते हैं, जैसे, 'पुत्रो धर्मं जल्पति भाषते वा' का 'पुत्रं धर्मं जल्पयति भाषयति वा' होगा।

अपवाद

(i) **नीवह्योर्न**—इस वार्त्तिक के अनुसार 'नी' और 'वह्' धातुओं के प्रेरणार्थक रूपों के प्रयोग में प्रकृत दशा का कर्त्ता कर्म न होकर करण ही होता है; जैसे, 'भृत्यो भारं नयति वहति वा' का 'भृत्येन भारं नाययति वाह्यति वा' ही होगा, 'भृत्यं भारं नाययति वाहयति वा' नहीं। किन्तु यदि प्रेरणार्थक 'वह्' का कर्त्ता नियन्ता अर्थात् हाँकने वाला हो तो 'नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः' वार्त्तिक के अनुसार प्रकृत दशा का कर्त्ता कर्म ही होगा; जैसे, 'वाहा रथं वहन्ति' का (सूतः) 'वाहान् रथं वाहयति' ही होगा।

(ii) **आदिखाद्योर्न**—इस वार्त्तिक के अनुसार अद् और खाद् धातुओं के कर्त्ता उनके प्रेरणार्थक रूपों में कर्म न होकर करण ही होंगे; जैसे 'वटुरन्नमत्ति खादति' का प्रेरणार्थक प्रयोग 'वटुनान्नमादयति खादयति' होगा।

(iii) **भक्षेरहिंसार्थस्य न**—इस वार्त्तिक के अनुसार अहिंसार्थक भक्ष् धातु का प्रकृत दशा का कर्त्ता प्रेरणार्थक में कर्म न होकर करण ही होगा, जैसे 'भक्षयति अन्नं वटुः' का प्रेरणार्थक रूप 'भक्षयति अन्नं वटुना (देवदत्तः)' होगा। परन्तु हिंसार्थक—'भक्षयन्ति सस्यं वलीवर्दाः'—होने पर प्रेरणार्थक रूप 'भक्षयति सस्यं वलीवर्दान् (देवदत्तः)' ही होगा।[1]

---

१. यहाँ हिंसा का विचार दो प्रकार से किया जा सकता है—

(१) खेत में खड़े जौ के पौदों का खाना उनकी हिंसा है—क्षेत्रस्थानां यवानां भक्ष्यमाणानां हिंसा ज्ञेया तस्यामवस्थायां तेषां चेतनत्वात्—त० बो०।

(२) दूसरे की खेती चरी जाने से उसकी हिंसा होती है—परकीयसस्यभक्षणे परो हिंसितो भवति इति तत्स्वामिनो हिंसा द्रष्टव्या।—टिप्पणी

(iv) 'दृशेश्च'—वार्त्तिक के व्याख्यान में भट्टोजि ने लिखा है कि 'सूत्रे ज्ञानसामान्यानामेव ग्रहणं नतु तद्विशेषार्थानामित्यनेन ज्ञाप्यते, तेन स्मरति-जिघ्रतीत्यादीनां न'। अर्थात् 'गतिबुद्धि०' सूत्र में ज्ञानसामान्य की वाचक बुध् आदि धातुओं का ग्रहण होना है, अतः ज्ञानविशेष (स्मरण, घ्राण आदि) की वाचक स्मृ, घ्रा इत्यादि धातुओं के कर्त्ता प्रेरणार्थक में कर्म नहीं होंगे जैसे, स्मारयति घ्रापयति वा देवदत्तेन।

(ब) कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया ।२।३।८।

कर्मप्रवचनीय—कर्मप्रवचनीय संज्ञा उन पदों को दी जाती है, जो यद्यपि न तो किसी विशेष क्रिया के द्योतक हों, न किसी षष्ठीसदृश सम्वन्ध के वाचक हों और न अन्य किसी क्रियापद को लक्षित करने वाले हों तथापि विभक्ति के विधायक हो जाते हों—

क्रियाया द्योतको नायं, सम्बन्धस्य न वाचकः।
नापि क्रियापदाक्षेपी सम्वन्धस्य तु भेदकः॥

—वाक्यपदीय

इन कर्मप्रवचनीयों को कुछ-कुछ अँग्रेजी के (Prepositions—अव्ययों) के तुल्य समझना चाहिए। उन्हीं की भाँति ये भी शासन करते हुए बहुत विशेष अर्थ लक्षित करते हैं। इनके योग में भी प्रायः कर्म कारक का ही विधान होता है। इनमें से कुछ दिये जाते हैं—

१—अनुर्लक्षणे ।१।४।८४।

जव किसी विशेष हेतु को लक्षित करना होता है, तव 'अनु' कर्मप्रवचनीय वन जाता है और 'जपमनु प्रावर्षत्' इस प्रकार के प्रयोग में हेतु को शासित करता हुआ द्वितीया विभक्ति का विधायक वन जाता है।

'जपमनु प्रावर्षत्' का अभिप्राय यह है कि जप समाप्त होते ही वृष्टि हो गयी (वृष्टि जप के ही कारण हुई क्योंकि जव तक जप नहीं किया था, तव तक वृष्टि नहीं हुई थी)।

२—तृतीयार्थे ।१।४।८५।

जव 'अनु' से तृतीया का अर्थ द्योतित हो, तव उसकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है; 'नदीमन्ववसिता सेना' (नद्या सह सम्वद्धा इत्यर्थः।)

३——हीने ।१।४।८६।

'अनु' से जब 'हीन' अर्थ द्योतित हो तब भी वह कर्मप्रवचनीय कहलाता है; जैसे, 'अनु हरिं सुराः'=देवता हरि के बाद ही आते हैं। (हरि से और सभी देवता कुछ उन्नीस ही पड़ते हैं।)

४——उपोऽधिके च ।१।४।८७।

'अधिक' तथा 'हीन' अर्थ का वाचक होने पर 'उप' भी कर्मप्रवचनीय कहलाता है। किन्तु जब वह 'हीन' अर्थ का द्योतक होता है, तब द्वितीया होगी और जब अधिक अर्थ का द्योतक होगा तो सप्तमी होगी[1], जैसे—'उप हरिं सुराः' अर्थात् देवता हरि से उन्नीस पड़ते हैं और अधिक अर्थ में 'उपपरार्धे हरेर्गुणाः—ऐसा प्रयोग होगा, न कि 'उप परार्धम्।' इसका अर्थ होगा—परार्ध से अधिक (ऊपर) ही हरि के गुण होंगे।

५——लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः १।४।९०।

जब किसी ओर अंगुलि-निर्देश करना हो अथवा जब 'ये इस प्रकार के हैं' यह बतलाना हो अथवा जब 'यह उनके हिस्से में पड़ा या पड़ता है' यह प्रकट करना हो अथवा पुनरुक्ति दिखलानी हो, तब प्रति, परि और अनु कर्मप्रवचनीय कहे जाते हैं और द्वितीया विभक्ति का विधान करते हैं; यथा—

(१) वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत् (पेड़ पर बिजली चमक रही है)।
(२) भक्तो विष्णुं प्रति पर्यनु वा (विष्णु के ये भक्त हैं)।
(३) लक्ष्मीः हरिं प्रति (लक्ष्मी विष्णु के हिस्से में पड़ीं)।
(४) वृक्षं वृक्षं प्रति सिञ्चति (प्रत्येक वृक्ष सींचता है)।

६——अभिरभागे ।१।४।९१।

भाग को छोड़कर अन्य सभी उपर्युक्त अर्थों में 'अभि' कर्मप्रवचनीय कहलाता है। जैसे, १—हरिमभिवर्तते। २—भक्तो हरिमभि। ३—देवं देवमभिषिञ्चति।

---

१ यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी २।३।९। इस नियम से यहाँ सप्तमी होगी।

७—अतिरतिक्रमणे च ।१।४।९५।

अतिक्रमण तथा पूजा अर्थ में अति कर्मप्रवचनीय कहलाता है। जैसे—अति देवान् कृष्णः।

१००—तृतीया

(क) साधकतमं करणम् ।१।४।४२।

अपने कार्य की सिद्धि में कर्त्ता जिसकी सबसे अधिक सहायता लेता है, उसे करण कहते हैं; जैसे, 'राम पानी से मुँह धोता है'—यहाँ पर साधारण रूप से तो मुँह धोने में राम अपने हाथ तथा जलपात्र दोनों की सहायता लेता है; यदि हाथ न लगावेगा तो मुँह किस प्रकार धो सकेगा और यदि जलपात्र न होगा तो जल किस में रक्खेगा। अस्तु, यह सिद्ध हो गया कि राम अपने हाथ तथा जलपात्र दोनों की सहायता लेता है; किन्तु देखना यह है कि मुँह धोने में सबसे अधिक आवश्यकता किसकी पड़ती है। इस वाक्य में जितने शब्दों का प्रयोग किया गया है, उनके देखने से यह स्पष्ट है कि मुँह धोने में सबसे अधिक सहायता "पानी" की है; इसलिए "पानी" करण कारक है और "से" करण कारक का चिह्न है।

नोट—किसी वाक्य में जो सबसे अधिक आवश्यक या सहायक हो उसी को करण कहेंगे। वाक्य से बाहर उससे अधिक भी सहायक हो सकते हैं, किन्तु उनका विचार नहीं किया जाता, जैसे—राम "हाथ से" मुँह धोता है। यहाँ "हाथ से" करण कारक है। यद्यपि 'जल' हाथ से भी अधिक आवश्यक है, किन्तु यह वाक्य में न होने के कारण कारक नहीं है।

(ख) कर्तृकरणयोस्तृतीया ।२।३।१८।

अनुक्त कर्त्ता (कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में कर्त्ता अनुक्त होता है) तथा करण कारक में तृतीया विभक्ति होती है।

'अनुक्ते कर्तरि तृतीया' का उदाहरण—

रामेण रावणः अहन्यत हतो वा—कर्मवाच्य

रामेण सुप्यते, **मया** जीव्यते—भाववाच्य

'करणे तृतीया' का उदाहरण—

रामः जलेन मुखं प्रक्षालयति ।

रामः रावणं बाणेन हतवान् ।

(ग) दिवः कर्म च ।१।४।४३।

दिव् धातु के साधकतम कारक की विकल्प से कर्मसंज्ञा भी होती है, जैसे—अक्षैः अक्षान् वा दीव्यति ।

(घ) संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि ।२।३।२२।

सम् पूर्वक ज्ञा धातु के कर्म की विकल्प से करण संज्ञा होती है, जैसे—पित्रा पितरं वा संजानीते=पिता के मेल में रहता है ।

(ङ) प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् (वार्त्तिक)

प्रकृति आदि (स्वाभावादि) शब्दों के योग में तृतीया होती है; जैसे—प्रकृत्या दयालुः—स्वभाव से दयालु;

नाम्ना सुतीक्ष्णः चरितेन शान्तः—नाम से सुतीक्ष्ण (सुतीक्ष्ण नाम वाले) किन्तु चरित से शान्त ।

सुखेन जीवति—सुख से अर्थात् सुखपूर्वक जीता है;

शिशुः क्लेशेन स्थातुं शक्नोति—बच्चा कठिनता से खड़ा हो पाता है;

अर्जुनः सरलतया पठति—अर्जुन आसानी से पढ़ लेता है ।

इसी प्रकार 'गोत्रेण गार्ग्यः', 'समेनैति', 'विषमेणैति', 'द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति' इत्यादि प्रयोग भी होंगे ।

नोट—इन सब उदाहरणों के देखने से यह स्पष्ट है कि यह सूत्र प्रायः उन स्थलों में लगता है, जो अँग्रेजी में क्रियाविशेषण या क्रियाविशेषणवाक्यांश कहलाते हैं । उदाहरणार्थ, ऊपर के वाक्यों में आये तृतीयान्त प्रकृत्या—Naturally (adverb) या By nature (adverbial phrase) से, नाम्ना—By name (adverbial phrase) से, सुखेन—Happily अथवा In happiness (adverbial phrase) से, क्लेशेन—With difficulty (adverbial phrase) से, सरलता—Easily (adv.) या With ease (adverbial phrase) से अनूदित होते हैं ।

(च) अपवर्गे तृतीया ।२।३।६।—इस सूत्र का पूर्ण अर्थ वस्तुतः **कालाध्वनो०** के साथ पढ़ने से निकलता है ।

फलप्राप्ति अथवा कार्यसिद्धि को "अपवर्ग" कहते हैं; और अपवर्ग के अर्थ का बोध कराने के लिए काल-सातत्यवाची तथा मार्ग-सातत्यवाची शब्दों में तृतीया होती है; अर्थात् जितने "समय" में या जितना "मार्ग" चलते-चलते कोई कार्य सिद्ध हो जाता है, उस "समय" और "मार्ग" में तृतीया होती है; जैसे—

मासेन व्याकरणम् अधीतवान्—महीने भर में व्याकरण पढ़ लिया, अर्थात् महीने भर व्याकरण पढ़ा और व्याकरण उसको भली भाँति आ गया एवं पढ़ने का कार्य महीने में सिद्ध हो गया । यदि मास भर पढ़ने पर भी व्याकरण का अध्ययन समाप्त न होता तो 'मासं' व्याकरणमधीतवान् (किन्तु नायातः)—ऐसा ही प्रयोग होता क्योंकि उस अवस्था में 'मास' में 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे द्वितीया' के अनुसार द्वितीया ही होती । इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए ।

क्रोशेन पुस्तकं पठितवान्—कोस भर में पुस्तक पढ़ डाली; अर्थात् एक कोस चलते-चलते पुस्तक पढ़ डाली । इसी प्रकार 'चतुर्भिः वर्षैर्गृहं निर्मापितवान्' —चार वर्ष में घर बनवा लिया । 'पञ्चविंशत्या दिवसैः अयमिमं ग्रन्थं लिखितवान्'—पचीस दिन में इसने यह ग्रन्थ लिख डाला ।

सप्तभिः दिनैः नीरोगो जातः—सात दिन में नीरोग हो गया ।

योजनाभ्यां कथां समाप्तवान्—दो योजन भर में कहानी खतम कर दी ।

(छ) सहयुक्तेऽप्रधाने ।२।३।१९।

सह के योग में अप्रधान [अर्थात् जो प्रधान (क्रिया के कर्त्ता) का साथ देता है] में तृतीया होती है, जैसे—पुत्रेण सह पिता गच्छति । यहाँ 'पुत्रेण' में तृतीया इसलिए लगी है कि गमन क्रिया के साथ पिता का ही मुख्य सम्बन्ध है । इसी प्रकार 'पित्रा सह पुत्रः गच्छति' में पुत्र प्रधान है और पिता अप्रधान रूप से उसका साथ देता है अतः उसमें तृतीया हुई ? इसी[1] प्रकार 'साथ' अर्थ वाले साकम्, सार्धम् और समम् के योग में भी अप्रधान में तृतीया होती है, जैसे—

१ एवं साकंसार्धंसमंयोगेऽपि ।—पा० सू० ।२।३।१९। पर सि० कौ०

रामः जानक्या साकं गच्छति—राम जानकी के साथ जाते हैं।

हनुमान् वानरैः सार्धं जानकीं मार्गयामास—हनुमान् ने बन्दरों के साथ जानकी को खोजा।

उपाध्यायः छात्रैः समं स्नाति—उपाध्याय विद्यार्थियों के साथ नहाता है।

नोट—'साथ', 'सङ्ग' आदि के साथ जो शब्द आता है, उसमें हिन्दी में 'का'—जो षष्ठी का स्थानीय है—लगाया जाता है, किन्तु संस्कृत में तृतीया लगाई जाती है।

(ज) पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् ।२।३।३२।

पृथक् (अलग) विना, नाना शब्दों के साथ तृतीया, द्वितीया तथा पञ्चमी विभक्तियों में से कोई एक हो सकती है: जैसे—

उर्मिला चतुर्दश वर्षाणि लक्ष्मणं लक्ष्मणेन लक्ष्मणाद् वा पृथगुवास—उर्मिला चौदह वर्ष तक लक्ष्मण से अलग रहीं।

रामेण, रामं, रामाद् विना दशरथो नाजीवत्—राम के विना दशरथ नहीं जिये।

जलं, जलेन, जलाद् विना कमलं स्थातुं न शक्नोति—जल के विना कमल ठहर नहीं सकता।

कौरवाः पाण्डवेभ्यः पृथगवसन्—कौरव लोग पाण्डवों से अलग रहते थे।

विना या वर्जन अर्थ का वाचक होने पर ही 'नाना' के योग में द्वितीया, तृतीया या पञ्चमी होती है; जैसे—'नाना नारीं निष्फला लोकयात्रा' अर्थात् स्त्री के विना लोकयात्रा या जीवन निष्फल है।

(झ) येनाङ्गविकारः ।२।३।२०।

जिस विकृत अङ्ग के द्वारा अङ्गी का विकार लक्षित हो, उस (अङ्ग) में तृतीया विभक्ति होती है; जैसे—

अक्ष्णा काणः—एक आँख का काना।

देवदत्तः शिरसा खल्वाटोऽस्ति—देवदत्त सिर का गंजा है।

गिरिधरः कर्णेन बधिरः—गिरिधर कान का बहरा है।

रमेशः पादेन खञ्जः—रमेश पैर का लँगड़ा है।

सुरेशः कट्या कुब्जः—सुरेश कमर का कुबड़ा है।

यहाँ भी हिन्दी के 'का' के स्थान में संस्कृत में तृतीया का प्रयोग होता है।

नोट—विकार का आरोप होने पर ही तृतीया होगी अन्यथा नहीं; जैसे, यदि साधारणतः उसकी आँख कानी है—ऐसा अर्थ प्रकट हो तो 'अक्षि काणमस्य' —ऐसा ही प्रयोग होगा।

(ञ) तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् ।२।३।७२।

"तुला" तथा "उपमा" इन दो शब्दों को छोड़कर शेष सब तुल्य (समान, बराबर) का अर्थ बताने वाले शब्दों के साथ तृतीया अथवा षष्ठी होती है; जैसे—

कृष्णस्य, कृष्णेन वा तुल्यः, सदृशः समो वा—कृष्ण के बराबर या समान।

दुर्योधनो भीमेन भीमस्य वा तुल्यो बलवान् नासीत्—दुर्योधन भीम के बराबर बली नहीं थे।

नायं मया मम वा पराक्रमं बिभर्ति—यह मेरे समान पराक्रम नहीं रखता।

मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत् सदृशं कुलस्य।

किन्तु तुला और उपमा के साथ षष्ठी होती है—"तुला उपमा वा कृष्णस्य नास्ति"।

(ट) हेतौ ।२।३।२३।

जिस कारण या प्रयोजन से कोई कार्य किया जाता है, या होता है, उसमें तृतीया होती है; जैसे—

पुण्येन दृष्टो हरिः—पुण्य के कारण हरि दिखाई पड़े।

अध्ययनेन वसति—अध्ययन के प्रयोजन से रहता है।

धनं परिश्रमेण भवति—धन परिश्रम से होता है।

तेनापराधेन दण्ड्योऽसि—उस अपराध के कारण तुम दण्डनीय हो।

वृद्धिः विद्यया वर्धते—बुद्धि विद्या से बढ़ती है।

हेतु में पञ्चमी भी होती है; यथा—

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्।।
प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः।।

सर्वद्रव्येषु विद्येव द्रव्यमाहुरनुत्तमम् ।
अहार्यत्वादनर्घ्यत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा ।।
यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा ।
तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात् ।।

टिप्पणी—'गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका' अर्थात् वाक्य में प्रयुक्त न होने पर भी यदि अर्थ-मात्र से क्रिया समझ ली जाय तो भी वह कारक-विधान में प्रयोजिका बन जाती है; जैसे—

(१) 'अलं (कृतं वा) श्रमेण'। इसका अर्थ होगा—'श्रमेण साध्यं नास्ति'। यहाँ पर 'साधन' क्रिया गम्यमान है, श्रूयमाण नहीं। उस 'साधन' क्रिया के प्रति 'श्रम' करण कारक है। अतएव 'श्रम' में तृतीया हुई।

(२) शतेन शतेन वत्सान्पाययति—अर्थात् शतेन परिच्छिद्य। इसका अर्थ होगा—सौ-सौ करके बछड़ों को दूध पिलाता है। 'परिच्छिद्य' (या करके) गम्यमान क्रिया है।

(ठ) इत्थंभूतलक्षणे ।२।३।२१।

जब कोई किसी विशेष चिह्न से ज्ञापित हो, तब जिस चिह्न से वह ज्ञापित हो उसमें तृतीया विभक्ति लगती है; जैसे, जटाभिस्तापसः—जटाओं से तपस्वी जान पड़ता है।

(ड) 'बढ़ जाना', 'सदृश होना' अर्थ में प्रयुक्त होने वाली क्रियाओं में जिस गुण में बढ़ जाने या सदृश होने की बात कही जाती है, उसमें तृतीया होती है; जैसे—

(१) रामः स्वाग्रजं गुणैः अतिशेते—राम अपने बड़े भाई से गुणों में बढ़कर है।

(२) स्वरेण रामभद्रमनुहरति—स्वर में राम के सदृश है। पर कहीं-कहीं इसी अर्थ में सप्तमी भी होती है, जैसे—

धनदेन समस्त्यागे—त्याग में कुबेर के समान है।

(ढ) कार्य, अर्थ, प्रयोजन, गुण तथा इसी प्रकार उपयोग या प्रयोजन प्रकट करने वाले अन्य शब्दों के भी योग में उपयोज्य या आवश्यक वस्तु तृतीया में रखी जाती है; जैसे—देवपादानां सेवकैर्न प्रयोजनम्, तृणेन कार्यं भवती-

श्वराणाम्, सानुरागेणापि मूढेन भृत्येन को गुणः । कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न भक्तिमान् ।

(ण) यजेः कर्मणः करणसंज्ञा सम्प्रदानस्य च कर्मसंज्ञा (वार्त्तिक) यज् धातु के कर्म की करण संज्ञा होती है और सम्प्रदान की कर्मसंज्ञा होती है, जैसे—

पशुना रुद्रं यजते—रुद्र को पशु देता या चढ़ाता है ।

१०१—चतुर्थी

(क) कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् ।१।४।३२।

दान के कर्म के द्वारा जिसे कर्त्ता सन्तुष्ट करना चाहता है, वह पदार्थ सम्प्रदान कहा जाता है ।

जैसे 'विप्राय गां ददाति' । यहाँ गोदान कर्म के द्वारा विप्र को ही संतुष्ट करना कर्त्ता को अभिप्रेत है, अतः वह सम्प्रदान है ।

(ख) क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम् (वार्त्तिक)

न केवल दान के कर्म के द्वारा जो अभिप्रेत हो वह सम्प्रदान कहा जाय बल्कि किसी विशेष क्रिया के द्वारा भी जो अभिप्रेत हो वह भी सम्प्रदान समझा जाय; जैसे, 'पत्ये शेते' । यहाँ पति को अनुकूल बनाने के लिए की गयी शयन-क्रिया का अभिप्रेत पति ही है, अतएव 'पति' सम्प्रदान होगा ।

(ग) चतुर्थी सम्प्रदाने ।२।३।३१।

अर्थात् सम्प्रदान में चतुर्थी होती है । इस नियम के अनुसार ऊपर के उदाहरण में "ब्राह्मण" चतुर्थी में होगा; जैसे—"ब्राह्मणाय गां ददाति ।" इसी प्रकार, मह्यं पुस्तकं देहि—मुझे पुस्तक दो ।

परन्तु 'अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया' (वार्त्तिक) के अनुसार अशिष्ट व्यवहार में दान का पात्र सम्प्रदान नहीं होगा । उसमें चतुर्थी का अर्थ होने पर भी तृतीया होगी; जैसे—'दास्या संयच्छते कामुकः' । शिष्ट व्यवहार में 'भार्यायै संयच्छति' ऐसा ही प्रयोग होगा ।

(घ) रुच्यर्थानां प्रीयमाणः ।१।४।३३।

रुच् धातु तथा रुच् के समान अर्थवाली धातुओं के योग में प्रसन्न होने वाला सम्प्रदान कहलाता है; जैसे—

(१) विष्णवे रोचते भक्तिः—विष्णु को भक्ति अच्छी लगती है।

(२) बालकाय मोदका रोचन्ते—लड़के को लड्डू अच्छे लगते हैं।

(३) सम्यक् भुक्तवते पुरुषाय भोजनं न स्वदते—अच्छी तरह खाये हुए पुरुष को भोजन स्वादिष्ठ नहीं लगता।

यहाँ पर उदाहरण नं० १ में भक्ति से प्रसन्न होने वाले "विष्णु" हैं; उदाहरण नं० २ में लड्डुओं से प्रसन्न होने वाला "बालक" है और उदाहरण नं० ३ में भोजन से प्रसन्न होने वाला "पुरुष" है; इसलिए विष्णवे, बालकाय और पुरुषाय में चतुर्थी हुई।

(ङ) धारेरुत्तमर्णः ।१।४।६५।

णिजन्त धृ (उधार लेना, कर्ज लेना) धातु के योग में महाजन—'कर्ज देने वाले' की सम्प्रदान संज्ञा होती है; जैसे—

श्यामः अश्वपतये शतं धारयति—श्याम ने अश्वपति से एक सौ कर्ज लिया है।

गोविन्दो रामाय लक्षं धारयति—गोविन्द ने राम से एक लाख उधार लिया है।

(च) क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः ।१।४।३७।

क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्य तथा असूय् धातुओं के योग में तथा इन धातुओं के समान अर्थ रखने वाली धातुओं के योग में जिसके ऊपर क्रोध किया जाता है, वह सम्प्रदान समझा जाता है, जैसे—

स्वामी भृत्याय क्रुध्यति—मालिक नौकर पर क्रोध करता है।

शठाः सर्वेभ्यो द्रुह्यन्ति—शठ लोग सब से द्रोह करते हैं।

दुर्योधनः पाण्डवेभ्य ईर्ष्यति स्म—दुर्योधन पाण्डवों से ईर्ष्या करता था।

खलाः सज्जनेभ्यः असूयन्ति—दुष्ट लोग सज्जनों में ऐब निकाला करते हैं।

इसी प्रकार सीता रावणाय अकुप्यत्—सीता जी ने रावण के ऊपर कोप किया।

(छ) क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म ।१।४।३८।

इस सूत्र के अनुसार जब क्रुध् तथा द्रुह् सोपसर्ग (उपसर्गसहित) होती हैं, तब जिसके प्रति क्रोध या द्रोह किया जाता है, वह कर्मसंज्ञा वाला होता है, सम्प्रदान नहीं; जैसे—क्रूरमभिक्रुध्यति—संद्रुह्यति । पिता पुत्रं संक्रुध्यति ।

(ज) प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्त्ता ।१।४।४०।

प्रति और आ पूर्वक श्रु धातु के योग में प्रतिज्ञा को प्रवर्त्तित करने वाले याचन इत्यादि व्यापार के कर्त्ता की सम्प्रदान संज्ञा होती है; जैसे—

कृष्णो विप्राय गां प्रतिश्शृणोति आश्शृणोति वा (इसमें यह अर्थ लक्षित होता है कि ब्राह्मण ने ही पहिले 'मुझे गाय दो' यह कहा होगा, तब कृष्ण ने प्रतिज्ञा की होगी । इस प्रकार प्रतिज्ञा को प्रवर्त्तित करने वाले याचना व्यापार का कर्त्ता होने के कारण ब्राह्मण सम्प्रदान होगा ।)

(झ) परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम् ।१।४।४४।

निश्चित काल के लिए वेतन इत्यादि पर किसी को रखना या लगाना उसका 'परिक्रयण' कहलाता है । उस 'परिक्रयण' में जो करण होता है, वह विकल्प से सम्प्रदान होता है, जैसे—शतेन शताय वा परिक्रीतः ।

(ञ) तुमर्थाच्च भाववचनात् ।२।३।१६।

किसी धातु में तुमुन् प्रत्यय जोड़ने से जो अर्थ निकलता है (जैसे अत्तुम्—खाने के लिए, पातुम्—पीने के लिए आदि), उसको प्रकट करने के लिए उसी धातु से बनी हुई भाववाचक संज्ञा का प्रयोग करने पर उसमें चतुर्थी होती है; जैसे—

यागाय याति (यष्टुं याति)—यज्ञ करने के लिए जाता है ।

इसमें "याग", "यज्" धातु से बना हुआ भाववाचक शब्द है । यज् धातु में तुमुन् जोड़ने से "यष्टुं" बनता है, जिसका अर्थ "यज्ञ करने के लिए" होता है । इसी अर्थ (यज्ञ करने के लिए) को प्रकट करने के लिए इस भाववाचक 'याग' शब्द में चतुर्थी कर दी गयी है । इसी प्रकार—

शयनाय इच्छति (शयितुम् इच्छति)—सोना चाहता है ।

उत्थानाय यतते (उत्थातुं यतते)—उठने की कोशिश करता है ।

मरणाय गङ्गातटं गच्छति (मर्तुं गङ्गातटं गच्छति)—मरने के लिए गङ्गातट को जाता है ।

दानाय धनमर्जयति (दातुं धनमर्जयति)—देने के लिए धन कमाता है ।

(ट) स्पृहेरीप्सितः ।१।४।३६।

स्पृह् धातु के प्रयोग में जिसे चाहा जाय, वह सम्प्रदानसंज्ञक होता है; जैसे—पुष्पेभ्यः स्पृहयति=फूलों की चाहना करता है ।

टिप्पणी—स्पृह् धातु से बने हुए शब्दों के योग में भी 'ईप्सित' का कभी-कभी सम्प्रदान-रूप से प्रयोग देखा जाता है; जैसे भोगेभ्यः स्पृहयालवः (वैराग्य-शतक, ६४) अर्थात् भोगों के इच्छुक; कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहाम् (वेणी सं० अ० ३) अर्थात् फिर दूसरे गृहस्थ पुत्रों की इच्छा कैसे करेंगे ? परन्तु प्रायः सप्तमी में ही होता है; जैसे स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी (रघु० ३, श्लो० ५) ।

(ठ) तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या (वार्त्तिक)

(१) जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाता है, उस (प्रयोजन) में चतुर्थी होती है; जैसे—

मुक्तये हरिं भजति—मुक्ति के लिए हरि को भजता है ।

धनाय प्रयतते—धन के लिए प्रयत्न करता है ।

शिशुः मोदकाय रोदिति—बच्चा लड्डू के लिए रोता है ।

काव्यं यशसे (भवति)—काव्य यश के लिए (होता है ।)

(२) अथवा जिस वस्तु के बनाने के लिए किसी दूसरी वस्तु का अस्तित्व रहता है, उसमें चतुर्थी होती है; जैसे—

शकटाय दारु—गाड़ी (बनाने) के लिए लकड़ी ।

आभूषणाय सुवर्णम्—जेवर (बनाने) के लिए सोना ।

(ड) क्लृपिसंपद्यमाने च (वार्त्तिक)

यदि कोई कार्य किसी अन्य परिणाम की प्राप्ति के लिए किया जाय तो उस परिणाम में चतुर्थी होती है; जैसे—

भक्तिः ज्ञानाय कल्पते, सम्पद्यते, जायते=भक्ति ज्ञान के लिए होती है अर्थात् भक्ति से ज्ञान होता है।

(ढ) उत्पातेन ज्ञापिते च (वार्त्तिक)

भौतिक उत्पातों से सूचित वस्तु में चतुर्थी विभक्ति होती है, जैसे—

वाताय कपिला विद्युत्=रक्ताभ विद्युत् आँधी की सूचना देती है।

(ण) हितयोगे च (वार्त्तिक)

हित और सुख के योग में भी चतुर्थी विभक्ति होती है; जैसे—

ब्राह्मणाय हितं सुखं वा।

(त) क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः।२।३।१४।

जब तुमुन् प्रत्ययान्त धातु का प्रयोग परोक्ष रहे, तो उसके "कर्म" में चतुर्थी होती है; जैसे—

फलेभ्यो याति (फलानि आनेतुं याति)—फलों को लाने के लिए जाता है।

इस वाक्य का यथार्थ अर्थ "फलानि आनेतुं याति" है, किन्तु "फलेभ्यो याति" में तुमुनन्त "आनेतुम्" का प्रयोग परोक्ष है और "आनेतुम्" का कर्म "फलानि" है इसलिए "फल" शब्द में चतुर्थी हुई। इसी प्रकार—

नमस्कुर्मो नृसिंहाय (नृसिंहमनुकूलयितुं नमस्कुर्मः)—नृसिंह को अनुकूल करने के लिए हम लोग नमस्कार करते हैं।

स्वयम्भुवे नमस्कृत्य (स्वयम्भुवं प्रीणयितुं नमस्कृत्य)—ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए नमस्कार करके।

वनाय गां मुमोच (वनं गन्तुं)—वन जाने के लिए गाय छोड़ दी।

(थ) नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च।२।३।१६।

नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलं तथा वषट् शब्दों के योग में चतुर्थी होती है; जैसे—

तस्मै श्रीगुरुवे नमः—उन गुरु जी को नमस्कार।

रामाय नमः, तुभ्यं नमः।

स्वस्ति भवते—आपका कल्याण हो।

प्रजाभ्यः स्वस्ति—प्रजाओं का कल्याण हो।
अग्नये स्वाहा—अग्नि को यह आहुति है।
पितृभ्यः स्वधा।
इन्द्राय वषट्।
दैत्यभ्यो हरिः अलम्—हरि दैत्यों के लिए काफी हैं।
अलं मल्लो मल्लाय—पहलवान पहलवान के लिए काफी है।
यहाँ अलम् का अर्थ पर्याप्त है, निषेध नहीं।

टिप्पणी—(i) **'उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी'** अर्थात् पद के सम्बन्ध से होने वाली विभक्ति से क्रिया के सम्बन्ध से होने वाली विभक्ति वलवती होती है—इस नियम से 'नमस्करोति' इत्यादि क्रियापदों के योग में चतुर्थी न होकर द्वितीया विभक्ति ही होती है; जैसे—गुरुं, देवं, परमेश्वरं वा नमस्करोति। 'गणेशाय नमस्कुरु' इत्यादि प्रयोग "क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः" ।२।३।१४। नियम के भीतर आ जाते हैं। परन्तु नमस्कार अर्थ वाली प्रणिपत्, प्रणम् इत्यादि धातुओं के साथ नमस्कार्य का द्वितीया या चतुर्थी दोनों में प्रयोग करते हैं; जैसे—

धातारं प्रणिपत्य (कुमार० द्वि०, श्लो० ३)
तस्मै प्रणिपत्य नन्दी (कुमार० तृ०, श्लो० ६०)
तां भक्तिप्रवणेन चेतसा प्रणनाम (कादम्बरी)
प्रणम्य त्रिलोचनाय (कादम्बरी)

इन धातुओं से वने हुए प्रणाम इत्यादि शब्दों के योग में चतुर्थी का ही प्रयोग होता है; जैसे—अस्मै प्रणाममकरवम् (कादम्बरी)।

(ii) अलं[1] से पर्याप्त अर्थ के वाचक प्रभु (प्रपूर्वक भू धातु से बने क्रियापद भी), समर्थ, शक्त इत्यादि पदों का भी ग्रहण होता है। इसलिए इनके

---

१ अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्। तेन दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः, समर्थः, शक्त इत्यादि। प्रभ्वादियोगे षष्ठ्यपि साधुः। 'तस्मै प्रवभति सन्तापादिभ्यः' ।५।१।१०१। 'स एषां ग्रामणीः' ।५।२।७८। इति निर्देशात्। 'प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्येति' सिद्धम्—नमः स्वस्ति० सूत्र पर सि० कौ०।

योग में भी चतुर्थी विभक्ति होती है; जैसे—दैत्येभ्यो हरिः प्रभुः, शक्तः, समर्थो वा। विधिरपि न येभ्यः प्रभवति (नीतिशतक, श्लो० ६४)। 'प्रभो' इत्यादि शब्दों के योग में षष्ठी का भी प्रयोग होता है; जैसे—

प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य (माघ० प्रथम०, श्लो० ४६)

(द) कथन अर्थ वाली कथ्, ख्या, शंस् एवं चक्ष् धातुओं के अकथित कारक तथा निपूर्वक प्रेरणार्थक विद् धातु के प्रकृत दशा के कर्त्ता का कर्मरूप में प्रयोग न होकर सम्प्रदान-रूप में प्रयोग होता है; जैसे—

आर्ये कथयामि ते भूतार्थम् (शाकु०, अंक १)—देवि ! तुमसे सत्य कहता हूँ।

यस्मै ब्रह्मपारायणं जगौ (उत्तररामचरित)—जिसे वेद पढ़ाया।

एहि, इमां वनस्पतिसेवां काश्यपाय निवेदयावहे (शाकु० अंक ४)—आओ, वृक्षों की यह सेवा कण्व ऋषि को निवेदित कर दें।

(ध) 'भेजना' अर्थ वाली धातुओं के प्रयोग में जिस व्यक्ति के पास कोई भेजा जाता है, वह चतुर्थी में तथा जिस स्थान पर भेजा जाता है, वह द्वितीया में रक्खा जाता है; जैसे—

भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः (रघु०, सर्ग ५, श्लो० ३९)—महाराज भोज ने रघु के पास दूत भेजा।

माधवं पद्मावतीं प्रहिण्वता (मालतीमा०, अंक १)

(न) मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु ।२।३।१७।

जब अनादर दिखाया जाता है तो 'मन्' (समझना, दिवादिगणी) धातु के कर्म में, यदि वह प्राणी न हो तो, विकल्प से चतुर्थी भी होती है; जैसे—

न त्वां तृणं तृणाय वा मन्ये—मैं तुम्हें तिनके के बराबर भी नहीं समझता। जहाँ अनादर न दिखाकर समता या तुलना मात्र प्रकट की जाती है, वहाँ केवल द्वितीया ही होती है; जैसे—

त्वां तृणं मन्ये—मैं तुम्हें तृणवत् समझता हूँ।

(प) राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः ।१।४।३९।

"शुभाशुभकथन' अर्थ में विद्यमान राध् और ईक्ष् धातुओं के प्रयोग में जिसके विषय में प्रश्न किया जाता है, उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है;

जैसे—कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा गर्गः।

१०२—पञ्चमी

(क) ध्रुवमपायेऽपादानम् ।१।४।२४।

अपाय विश्लेष (अलग होना) को कहते हैं। उसमें जो ध्रुव या अवधि-भूत (अर्थात् जहाँ से विश्लेष हो) होता है, वह अपादान कहलाता है। जैसे—"वह कोठे से गिर पड़ा"। यहाँ पर वह कोठे से अलग हो रहा है, इसलिए "कोठे से" अपादान है; इसी प्रकार "पेड़ से पत्ते गिरते हैं" में "पेड़" और "राम गाँव से चला गया" में "गाँव" अपादान है।

(ख) अपादाने पञ्चमी ।२।३।२८।

अपादान में पञ्चमी होती है। इस सूत्र के अनुसार ऊपर के वाक्यों का स्वरूप इस प्रकार होगा—

स प्रासादात् अपतत्,
वृक्षात् पर्णानि पतन्ति,
रामो ग्रामाद् जगाम।

(ग) जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् (वार्त्तिक)

जुगुप्सा (घृणा), विराम (वन्द हो जाना, अलग हो जाना, छोड़ देना, हटना), प्रमाद (भूल या असावधानी करना) के समानार्थक शब्दों के साथ पञ्चमी होती है (अर्थात् जिस वस्तु से घृणा करे, जिससे हटे या जिसे दूर कर दे, जिस काम में भूल करे, इन सव में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग होता है)। धैर्यवान् पुरुष अपने **निश्चय** से नहीं हटते; राजा **कर्म** से नहीं टला, **पाप** से घृणा करता है, **धर्म** में भूल करता है, अपना **कर्तव्य** भूल गया। इन वाक्यों में निश्चय आदि शब्दों में संस्कृत में पञ्चमी होगी, जैसे—न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः।

न नवः प्रभुराफलयोदयात् स्थिरकर्मा विरराम कर्मणः—वह नया राजा तब तक कर्म से न हटा जब तक कि उसे फल न मिल गया।

वत्सैतस्माद्विरम विरमातः परं न क्षमोऽस्मि।

प्रत्यावृत्तः पुनरिव स मे जानकीविप्रयोगः ।। (उत्तररामचरित, अंक १)

पापाज्जुगुप्सते । धर्मात्प्रमाद्यति ।

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः । (मेघदूत, श्लो० १)

टिप्पणी--जिसके विषय में भूल या असावधानी होती है, उसमें सप्तमी का प्रयोग भी होता है; जैसे--

न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः (मनु०-२-२१३)

(घ) भीत्रार्थानां भयहेतुः ।१।४।२५।

जिससे डर मालूम हो अथवा जिसके डर के कारण रक्षा करनी हो, उस कारक को अपादान कहते हैं; जैसे—

चौराद् बिभेति—चोर से डरता है ।

सर्पाद् भयम्—साँप से डर है ।

इनमें भय के कारण "चोर" और "साँप" हैं, इसलिए ये अपादान हैं ।

रक्ष मां नरकपातात्--नरक में गिरने से मुझे बचाओ ।

भीमाद् दुःशासनं त्रातुम्—भीम से दुःशासन को बचाने के लिए ।

यहाँ भी "नरकपात" तथा "भीम" भय के कारण हैं, इसलिए अपादान हैं ।

(ङ) पराजेरसोढः ।१।४।२६।

परा पूर्वंज जि धातु के प्रयोग में जो असह्य होता है, उसकी अपादान संज्ञा होती है । जैसे--

अध्ययनात् पराजयते—वह अध्ययन से भागता है (अध्ययन उसके लिए असह्य या कष्टप्रद है) । परन्तु हराने के अर्थ में द्वितीया ही होती है, जैसे—'शत्रून् पराज्यते' अर्थात् शत्रुओं को पराजित करता है ।

(च) वारणार्थानामीप्सितः ।१।४।२७।

जिससे कोई वस्तु या पुरुष दूर किया जाता है या मना किया जाता है, वह अपादान होता है; जैसे—

यवेभ्यो गां वारयति—जौ से गाय को रोकता है ।

मित्रं पापात् निवारयति—मित्र को पाप से दूर रखता है ।

यहाँ पर रोकने वाले की इच्छा जौ बचाने की और पाप से हटाने की है; गाय को जौ से दूर करता है और मित्र को पाप से इसलिए 'जौ' और 'पाप' में अपादान कारक होने के कारण पञ्चमी का प्रयोग हुआ।

(छ) अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति ।१।४।२८।

जब कोई अपने को किसी से छिपाता है तो जिससे छिपाता है वह अपादान होता है; जैसे—

मातुर्निलीयते कृष्णः—कृष्ण अपनी माता से छिपता है।

यहाँ पर कृष्ण अपने को "माता से" छिपाता है, इसलिए "माता से" अपादान कारक हुआ।

(ज) आख्यातोपयोगे ।१।४।२८।

(नियमपूर्वकविद्यास्वीकारे वक्ता प्राक्संज्ञः स्यात्)।

जिस गुरु या अध्यापक या मनुष्य से कोई चीज नियमपूर्वक पढ़ी जाती है, अथवा मालूम की जाती है, वह गुरु या अध्यापक या अन्य मनुष्य अपादान होता है, जैसे—

उपाध्यायाद् अधीते—उपाध्याय से पढ़ता है।

कौशिकाद् विदितशापया—विश्वामित्र से शाप जान करके उसने।

मया तीर्थादभिनयविद्या शिक्षिता—मैंने अध्यापक से अभिनय-कला सीखी (मालविका०)।

अध्यापकाद् गणितं पठति—अध्यापक से गणित पढ़ता है।

तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि (उत्तर०) —उन लोगों से वेदान्त पढ़ने के लिए मैं वाल्मीकि के यहाँ से इस स्थान पर चली आई हूँ।

'नियमपूर्वक' न होने पर षष्ठी होगी; जैसे—'नटस्य गाथां शृणोति'।

(झ) जनकर्तुः प्रकृतिः ।१।४।३०।

जन् धातु के कर्ता का आदि कारण अपादान होता है; जैसे—

कामात्क्रोधोऽभिजायते—काम से क्रोध पैदा होता है।

यहाँ "अभिजायते" का कर्ता "क्रोध" है, और इस कर्ता (क्रोध) का "आदि कारण" "काम" है, इसलिए 'काम' अपादान कारक है। इसी प्रकार ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते—ब्रह्मा जी से सारी प्रजा उत्पन्न होती है।

टिप्पणी—जिससे कोई उत्पन्न होता है, उसमें प्रायः सप्तमी भी होती है; जैसे—परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ (मनु० अ० ३-१७४ श्लो०); शुकनासस्यापि रेणुकायां तनयो जातः (कादम्बरी); सः स्वभार्यायां कन्या-रत्नमजीजनत।

(ञ) भुवः प्रभवश्च ।१।४।३१।

उत्पन्न होनेवाले का जो 'प्रभव' अर्थात् उत्पत्तिस्थान होता है, वह अपादान कहलाता है; जैसे—हिमवतो गङ्गा प्रभवति।

(ट) ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च (वार्त्तिक)

जब ल्यप् (प्रेक्ष्य, आनीय आदि) अथवा क्त्वा प्रत्ययान्त (दृष्ट्वा, गत्वा आदि) क्रिया वाक्य में प्रकट नहीं की जाती किन्तु छिपी रहती है, तो उस क्रिया के कर्म और आधार पञ्चमी में होते हैं; जैसे—

श्वशुराज्जिह्रेति—ससुर से लज्जा करती है।

वास्तव में इस वाक्य को पूर्णरूप से प्रकट करने पर इसका रूप यों होगा—

"श्वशुरं वीक्ष्य दृट्वा वा जिह्रेति;" अर्थात् ससुर को देखकर लज्जा करती है, 'श्वशुराज्जिह्रेति' में 'दृष्ट्वा' या 'वीक्ष्य' प्रकट नहीं किया गया है, इसलिए 'दृष्ट्वा' का कर्म 'श्वशुर' पञ्चमी में हो गया।

आसनात्प्रेक्षते—आसन से देखता है।

इसका वास्तविक आकार पूर्णरूप से प्रकट करने पर यों होगा—

"आसने उपविश्य स्थित्वा वा प्रेक्षते" अर्थात् आसन पर बैठ कर देखता है। "आसानात्प्रेक्षे" में "उपविश्य' या 'स्थित्वा' प्रकट नहीं किया गया है, इसलिए "उपविश्य" का आधार 'आसन' सप्तमी में न होकर पञ्चमी में हो गया।

(ठ) यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पञ्चमी (वार्त्तिक)

जिस स्थान या समय से किसी दूसरे स्थान या समय की दूरी दिखलाई जाती है, वह स्थान या समय पञ्चमी विभक्ति में रक्खा जाता है।

तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ (वार्त्तिक)

(१) और जो स्थान की दूरी दिखाई जाती है, उसका वाचक शब्द प्रथमा या सप्तमी विभक्ति में रक्खा जाता है; जैसे—

मम गृहात् प्रयागः योजनत्रयमस्ति, अथवा मम गृहात् प्रयागः योजनत्रये अस्ति।

यहाँ जिस स्थान से दूरी दिखाई गई है वह "घर" है, इसलिए घर पञ्चमी विभक्ति में रक्खा गया है; और जितनी दूरी दिखाई गई है वह "तीन योजन" है, इसलिए 'तीन योजन' प्रथमा में अथवा सप्तमी में रखा गया है। इसी प्रकार उदाहरण हो सकते हैं—

कर्णपुरात् प्रयागः अष्टादशयोजनानि अष्टादशयोजनेषु वा।

भरद्वाजाश्रमात् गङ्गायमुनयोः सङ्गमः क्रोशः क्रोशे वा इत्यादि।

कालात् सप्तमी च वक्तव्या (वार्त्तिक)

(२) और जो समय की दूरी दिखाई जाती है, उसका वाचक शब्द सप्तमी विभक्ति में रखा जाता है; जैसे—

कार्त्तिक्या आग्रहायणी मासे—कार्त्तिकी पूर्णिमा से अगहन की पूर्णिमा एक महीने पर होती है।

यहाँ कार्त्तिकी पूर्णिमा से समय की दूरी दिखाई गई है, इसलिए उसमें पञ्चमी हुई और एक महीने की दूरी दिखाई गई है, इसलिए "महीने" में सप्तमी हुई। इसी प्रकार अन्य उदाहरण हो सकते हैं—

अस्मात् दिवसात् गुरुपूर्णिमा दशसु दिवसेषु।

आश्विनमासस्य प्रथमदिवसात् विजयदशमी पञ्चविंशतिदिवसेषु, इत्यादि।

(ड) पञ्चमी विभक्ते ।२।३।४२। (विभक्त का अर्थ इस स्थल में विभाग या भेद है।)

ईयसुन् अथवा तरप् प्रत्ययान्त विशेषण (देखिए नं० ९६) के द्वारा अथवा साधारण विशेषण या क्रिया के द्वारा जिससे किसी वस्तु का तुलनात्मक तारतम्य दिखाया जाता है, उसमें पञ्चमी होती है; किन्तु वे दोनों वस्तुएँ भिन्न जाति, गुण, क्रिया तथा संज्ञा वाली होनी चाहिए; जैसे—

प्रजां संरक्षति नृपः सा वर्द्धयति पार्थिवम् ।
वर्धनाद्रक्षणं श्रेयः तदभावे सदप्यसत् ।।
माता गुरुतरा **भूमेः** **खात्पितोच्चरस्तथा** ।
श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः **परधर्मात्स्वनुष्ठितात्** ।।
एकाक्षरं परं ब्रह्म, प्राणायामः परं तपः ।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति, **मौनात्** सत्यं विशिष्यते ।।

यहाँ वर्धन रक्षण; माता भूमि; स्वधर्म परधर्म आदि उदाहरणों में दो विभिन्न वस्तुओं में तारतम्य बताया गया है ।

(ढ) अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते ।२।३।२।

अन्य, आरात्, इतर, ऋते, दिग्वाचक पूर्व दक्षिण आदि तथा अञ्च् धातु से युक्त दिग्वाचक प्रत्यक्, उदक् प्रभृति दक्षिणा, उत्तरा प्रभृति एवं दक्षिणाहि, उत्तराहि प्रभृति शब्दों के योग में पञ्चमी होती है; जैसे—

(१) अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात् ।
(२) आराद्वनात् ।
(३) ऋते कृष्णात् ।
(४) चैत्रात् पूर्वः फाल्गुनः ।
(५) प्राक् प्रत्यग्वा ग्रामात् ।
(६) दक्षिणा ग्रामात् ।
(७) दक्षिणाहि ग्रामात् ।

टिप्पणी—(i) यद्यपि सूत्र के 'अन्य'[1] शब्द से उस अर्थ के बोधक भिन्न, इतर, पर, अपर इत्यादि समस्त शब्दों का ग्रहण होता है तथापि दिग्दर्शन मात्र के लिए 'इतर' का पृथक् ग्रहण हुआ है ।

---

१ अन्य इत्यर्थग्रहणम् । इतरग्रहणं प्रपञ्चार्थम् ।—सि० कौ०

(ii) यद्यपि[1] सूत्र में आया हुआ 'अञ्चूत्तरपद' भी 'दिक्शब्द' ही है और इसी से उसका भी ग्रहण हो जाता है, तथापि उसका पृथक् ग्रहण 'षष्ठ्यतसर्थ-प्रत्ययेन' ।२।३।३०। सूत्र से दिग्वाची शब्दों के योग में होने वाली षष्ठी का बोध करने के लिए किया गया है, अन्यथा 'ग्रामस्य पुरः' की तरह 'ग्रामस्य प्राक्' प्रयोग होता, 'ग्रामात् प्राक्' न होता।

(iii)[2] 'अपादाने पञ्चमी' सूत्र पर व्याख्यान लिखते हुए महाभाष्यकार ने 'कार्त्तिक्याः प्रभृति' प्रयोग किया है। इससे सूचित होता है कि 'प्रभृति' तथा इसके अर्थ में प्रयुक्त होने वाले 'आरभ्य' इत्यादि अन्य शब्दों के योग में भी पञ्चमी होती है; जैसे—

(१) शैशवात् प्रभृति पोषितां प्रियाम् (उत्तररामचरित)।

(२) भवात् प्रभृति आरभ्य वा सेव्यो हरिः (सि० कौ०)।

इसी प्रकार 'अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या ।२।१।१२। सूत्र में आये हुए 'बहिः' के योग में पञ्चमी समास होने के कारण बहिः के योग में पञ्चमी विभक्ति ज्ञापक सिद्ध होती है;—'ग्रामाद् बहिः' अर्थात् गाँव से बाहर।

इसी प्रकार (iv) ऊर्ध्वं, परं, अनन्तर के योग में भी पञ्चमी होती है; जैसे—

(१) तस्मात् परम् अनन्तरं वा।

(२) मुहूर्त्तादूर्ध्वं म्रियेे।

(ण) पञ्चम्यपाङ्परिभिः ।२।३।१०।

कर्मप्रवचनीय-संज्ञक अप, आङ् और परि के योग में पञ्चमी होती है, (अपपरी वर्जने। आङ् मर्यादावचने ।१।४।८८,८९। अर्थात् वर्जन अर्थ में

---

१ अञ्चूत्तरपदस्य तु दिक्शब्दत्वेऽपि 'षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन' इति षष्ठी बाधितुं पृथग्ग्रहणम्।

२ 'अपादाने पञ्चमी' इति सूत्रे 'कार्त्तिक्याः प्रभृति' इति भाष्यप्रयोगात् प्रभृत्यर्थयोगे पञ्चमी।......'अपपरिबहि०' इति समासविधानाज्ज्ञापकात् बहिर्योगे पञ्चमी।—सि० कौ०

'अप' तथा परि' और मर्यादा तथा अभिविधि अर्थ में 'आङ' कर्मप्रवचनीय कहलाते हैं); जसे—

(१) अप परि वा हरेः संसारः—भगवान् को छोड़कर अन्यत्र संसार रहता है।

(२) आ जन्मनः आ मरणात् स्वकर्त्तव्यं पालयेन्नरः—मनुष्य को जन्म से लेकर (अभिविधि अर्थ में) मृत्यु तक (मर्यादा अर्थ में) अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए।

(त) प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् ।२।३।११।

प्रतिनिधि एवं प्रतिदान (विनिमय) के अर्थ में कर्मप्रवचनीय संज्ञा प्राप्त करने वाले 'प्रति' के योग में पञ्चमी होती है, जैसे—

(१) प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति—प्रद्युम्न कृष्ण के प्रतिनिधि हैं।

(२) तिलेभ्यः प्रति यच्छति माषान्—तिलों के बदले में उड़द देता है (अर्थात् तिल से उड़द बदलता है)।

(थ) बिभाषागुणेऽस्त्रियाम् ।२।३।२५।

हेतु या कारण प्रकट करने वाले गुणवाचक अस्त्रीलिङ्ग शब्द विकल्प से तृतीया या पञ्चमी म रक्खे जाते हैं; जैसे—

जाड्येन जाड्यात् वा वद्धः (सि० कौ०)—वह अपनी मूर्खता के कारण पकड़ा गया।

गुणवाचक के होने पर अस्त्रीलिङ्ग होते हुए भी तृतीया ही होगी; जैसे, घनेन कुलम्।

इसी प्रकार गुणवाचक होते हुए भी स्त्रीलिङ्ग होने पर तृतीया ही होगी; जैसे—

बुद्ध्या मुक्तः—वह अपनी बुद्धि के कारण छोड़ दिया गया।

टिप्पणी—प्रस्तुत सूत्र में विभाषा न केवल विभक्ति (तृतीया और पञ्चमी) के सम्वन्ध में ही गृहीत है अपितु गुण और अस्त्रियाम् के विषय में भी। अतएव 'धूम' के गुण-वाचक न होने पर भी 'धूमात् वह्निमान्' तथा 'अनुपलब्धि' के स्त्रीलिङ्ग होने पर भी 'नास्ति घटोऽनुपलब्धेः' प्रयोग सही हैं।

१०३—सप्तमी

(क) आधारोऽधिकरणम् ।१।४।४५। सप्तम्यधिकरणे च ।२।३।३६।

कर्त्ता और कर्म के द्वारा किसी भी क्रिया का आधार 'अधिकरण' कहलाता है। 'अधिकरण' में सप्तमी का प्रयोग होता है।

औपश्लेषिक, वैषयिक तथा अभिव्यापक रूप से आधार तीन प्रकार का होता है—

(१) औपश्लेषिक आधार—जिसके साथ आधेय का भौतिक संश्लेष हो; जैसे, 'कटे आस्ते'—यहाँ 'चटाई' से बैठने वाले का भौतिक संश्लेष प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है।

(२) वैषयिक आधार—जिसके साथ आधेय का बौद्धिक संश्लेष हो; जैसे, 'मोक्षे इच्छास्ति'—इसमें इच्छा का 'मोक्ष' में अधिष्ठित होना पाया जाता है।

(३) अभिव्यापक आधार—जिसके साथ आधेय का व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध हो; जैसे, 'तिलेषु तैलम्'—यहाँ तेल तिल में एक जगह अलग नहीं दिखाई पड़ सकता पर निश्चयात्मक रूप से वह सभी तिलों में व्याप्त है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। **ये त्रिविध आधार अधिकरण कहलाते हैं और इनमें सप्तमी का विधान होता है।**

दूर एवं अन्तिक अर्थ वाले शब्दों में भी सप्तमी का प्रयोग होता है—जैसे—

(४) ग्रामस्य दूरे अन्तिके वा—गाँव से दूर या समीप।

टिप्पणी—क्रिया के आधार की भाँति उसका समय भी सप्तमी में रक्खा जाता है, जैसे—

आषाढस्य प्रथमदिवसे (मेघ०) आषाढ़ के पहले ही दिन।

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानाम् (रघु०)—बाल्यकाल में विद्याभ्यास करने वाले रघुवंशियों का।

(ख) क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम् (वार्त्तिक)

क्त प्रत्ययान्त शब्द में इन् प्रत्यय लगकर बने हुए शब्द के योग में उसके कर्म में सप्तमी विभक्ति होती है; जैसे, अधीती व्याकरणे ।

(ग) साध्वसाधुप्रयोगे च (वार्त्तिक)

साधु और असाधु के प्रयोग में भी सप्तमी विभक्ति होती है; जैसे—'साधुः कृष्णो मातरि' (कृष्ण अपनी माँ के लिए बहुत अच्छे थे), 'असाधुर्मातुले' (पर अपने मामा के लिए बहुत बुरे) ।

(घ) निमित्तात्कर्मयोगे (वार्त्तिक)

जिस निमित्त से अर्थात् जिस फल की प्राप्ति के लिए कोई क्रिया की जाती है, वह निमित्त या फल यदि उस क्रिया के कर्म से युक्त अथवा समवेत हो तो उसमें सप्तमी विभक्ति होती है; जैसे,

'चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम् ।
केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः' ।।

यहाँ पर 'द्वीपी' कर्म के साथ उसका चर्म समवेत है और फलभूत चर्म की प्राप्ति के ही लिए वध-व्यापार होता है । इसलिए 'चर्म' में सप्तमी हुई है । इसी प्रकार दन्तयोः, केशेषु तथा सीम्नि में भी सप्तमी हुई है ।

टिप्पणी—'हेतौ' इस सूत्र के द्वारा 'अध्ययनेन वसति' इत्यादि प्रयोगों की भाँति यहाँ भी तृतीया होनी चाहिए थी, परन्तु 'निमित्तात् कर्मयोगे' के द्वारा उसका निवारण हो जाता है और तृतीया के स्थान में सप्तमी होती है ।

(ङ) यतश्चनिर्धारणम् ।२।३।४१।

यदि किसी वस्तु का अपने समुदाय की अन्य वस्तुओं से किसी विशेषण द्वारा कोई विशेष निर्देश किया जाता है, अर्थात् विशिष्टता दिखाई जाती है तो वह समुदायवाचक शब्द सप्तमी अथवा षष्ठी में रखा जाता है ; जैसे—

कविषु कालिदासः श्रेष्ठः
या
कवीनां कालिदासः श्रेष्ठः
} कवियों में कालिदास सब से बड़े हैं ।

गोषु कृष्णा बहुक्षीरा या गवां कृष्णा बहुक्षीरा	गायों में काली गाय बहुत दूध देनेवाली होती है ।
छात्रेषु मैत्रः पटुः, या छात्राणां मैत्रः पटुः,	विद्यार्थियों में मैत्र तेज है ।

इन उदाहरणों में यह दिखाया गया है काली गाय में कुछ विशिष्टता है, कालिदास और मैत्र में कुछ विशिष्टता है । ये तीनों विशेष कारण से अपने-अपने समुदाय में (गायों, कवियों और छात्रों में) विशिष्ट हैं ।

(च) सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये ।२।३।७।

दो कारक शक्तियों के बीच के काल और स्थान के वाचक शब्द सप्तमी या पञ्चमी विभक्ति में रक्खे जाते हैं; जैसे—

अद्य भुक्त्वाऽयं त्र्यहे त्र्यहाद्वा भोक्ता—आज खाकर फिर तीन दिन में (या तीन दिनों के बाद) खाएगा ।

इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्यं विध्येत्—यहाँ स्थित होकर यह एक कोश पर स्थित लक्ष्य को वेध देगा ।

(छ) प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च ।२।३।४४।

प्रसित (इच्छुक या अभिलाषुक) तथा उत्सुक शब्दों के योग में सप्तमी या तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है; जैसे—

निद्रायां निद्रया वा प्रसित उत्सुको वा—नींद का इच्छुक ।

(ज) कोषग्रन्थों में 'के अर्थ में'—इस अर्थ को प्रकट करने के लिए सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है; जैसे, वाणी बलिसुते शरे (अमरकोष)—बलि के पुत्र तथा शर के अर्थ में 'वाण' शब्द प्रयुक्त होता है ।

(झ) 'व्यवहार' या 'आचरण' अर्थ वाले शब्दों के योग में भी सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है; जैसे—

आर्योऽस्मिन् विनयेन वर्तताम्—श्रीमान् इसके साथ विनयपूर्वक व्यवहार करें ।

कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने (शकुन्तला)—सपत्नियों (सौतों) के साथ प्रिय सखी का व्यवहार करना ।

गुरुषु शिष्टो व्यवहारस्तस्य—गुरुजनों के साथ उसका व्यवहार बड़ा शिष्ट है।

(ञ) स्नेह, आदर, अनुराग तथा इनका अर्थ देने वाले अन्य शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति आती है; जैसे—

अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु (शकुन्तला)—इन पर मेरा सगे भाई का सा स्नेह भी है।

स्वयोषिति रतिः—अपनी स्त्री पर प्रेम।

देवे चन्द्रगुप्ते दृढमनुरक्ताः प्रकृतयः (मुद्राराक्षस)—महाराज चन्द्रगुप्त में प्रजा का बड़ा अनुराग है।

दण्डनीत्यां नात्यादृतोऽभूत् (दशकुमार)—दण्डनीति के प्रति उसका बहुत आदरभाव नहीं था।

न तापसकन्यकायां ममाभिलाषः (शकुन्तला)—तपस्वी कण्व की कन्या पर मेरा प्रेम नहीं है।

टिप्पणी—परन्तु अनुपूर्वक रञ्ज् धातु से बने हुए शब्दों का द्वितीयान्त के साथ भी प्रयोग पाया जाता है; जैसे एषा भवन्तमनुक्ता (शकुन्तला), अपि वृषलमनुरक्ताः प्रकृतयः (मुद्राराक्षस)। किन्तु ऐसे प्रयोगों में 'अनु' को 'कर्मप्रवचनीय' तथा उसके योग में द्वितीया का प्रयोग समझना चाहिए।

(ट) 'कारण' अर्थ के वाचक शब्दों के प्रयोग में 'कार्य' के वाचक शब्द में प्रायः सप्तमी आती है; जैसे—

दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम् (नीति०, ८४)—मनुष्य की वृद्धि और उसके विनाश में भाग्य ही एक-मात्र कारण है।

(ठ) युज् धातु तथा उससे बने हुए अन्य शब्दों के योग में सप्तमी का प्रयोग होता है; जैसे—

असाधुदर्शी तत्रभवान् काश्यपो य इमा**माश्रमधर्मे** नियुङ्क्ते (शकु०)—पूज्य काश्यप (कण्व) ने जो इसे आश्रम के कर्मों में लगा रक्खा है, यह ठीक नहीं किया।

त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्वं **तस्मिन्** युज्यते—त्रिभुवन का भी राज्य उसके लिए उचित ही है।

टिप्पणी—युज् धातु के वाद वाले 'उचित' अर्थ में विद्यमान उपपूर्वक 'पद्' इत्यादि धातुओं तथा उनसे वने शब्दों के योग में भी सप्तमी आती है, षष्ठी भी प्रायः प्रयुक्त होती है, जैसे—

अथवोपपन्नमेतदृषिकल्पेऽस्मिन् **राजनि** (शकु०, द्वि० अं०)—अथवा इस ऋषिकल्प महाराज के लिए यह उचित ही है।

उपपन्नमिदं विशेषणं **वायोः**—वायु के लिए यह विशेषण ठीक (उचित) ही है।

(ड) क्षिप्, मुच्, अस्, पत् (णिजन्त) इत्यादि धातुओं तथा इनसे वने हुए शब्दों के प्रयोग में जिस पर कोई वस्तु रखी या छोड़ी जाती है, उसमें सप्तमी होती है; जैसे—

मृगेषु शरान् मुमुक्षुः—हिरणों पर वाण छोड़ने को इच्छुक।

योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भरः (रत्नावली)—समस्त राज्यभार योग्य मन्त्री पर छोड़ दिया गया है।

न खलु न खलु वाणः सन्निपात्योऽयम**स्मिन्** (शकु०)—इस (सुकुमार हिरणशरीर) पर वाण न छोड़ो न छोड़ो।

शुकनासनाम्नि **मन्त्रिणि** राज्यभारमारोप्य—शुकनास नामक मन्त्री पर राज्यभार सौंप (छोड़) कर।

(ढ) व्यापृत, आसक्त, व्यग्र, तत्पर, कुशल, निपुण, शौण्ड, पर, प्रवीण इत्यादि शब्दों के योग में भी सप्तमी प्रयुक्त होती है; जैसे—

गृहकर्मणि व्यापृता, व्यग्रा, तत्परा वा—घर के कामों में तत्पर।

अक्षेषु निपुणः, शौण्डः, प्रवीणः वा—जुए में दक्ष।

(ण) अप पूर्वक राध् तथा उससे वने शब्दों के प्रयोग में जिसके प्रति अपराध होता है, उसमें चतुर्थी ('क्रुधद्रुहे०' सूत्र के अनुसार) के अतिरिक्त प्रायः सप्तमी और कभी-कभी षष्ठी भी होती है; जैसे, कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शकुन्तला (शकु०, अं० ६)—किसी गुरुजन के प्रति शकुन्तला अपराध कर वैठी है।

अपराद्धोऽस्मि तत्रभवतः **कण्वस्य** (शकु०, ७)—मैंने पूज्य कण्व के प्रति अपराध किया है।

(त) यस्य च भावेन भावलक्षणम् ।२।२।३७।

जब किसी कार्य के हो जाने पर दूसरे कार्य का होना प्रतीत होता है, तो जो कार्य हो चुकता है उसको सप्तमी में रखते हैं, जैसे—

सूर्ये अस्तं गते गोपाः गृहम् अगच्छन्—सूर्य के अस्त हो जाने पर ग्वाले अपने घर चले गये ।

रामे वनं गते दशरथः प्राणान् तत्याज—राम के वन चले जाने पर दशरथ जी ने अपना प्राण त्याग दिया ।

सुरेशे गायति सर्वे जहसुः—सुरेश के गाने पर सब हँस पड़े ।

सर्वेषु शयानेषु श्यामा रोदिति—सब के सो जाने पर श्यामा रोती है ।

यहाँ पर सूर्य के अस्त होने पर ग्वालों का घर जाना, राम के वन जाने पर दशरथ का प्राण त्याग करना, सुरेश के गाने पर सब का हँसना तथा सब के सो जाने पर श्यामा का रोना प्रतीत होता है, इसलिए सूर्ये, रामे, सुरेशे, सर्वेषु—ये सब के सब सप्तमी में हैं ।

टिप्पणी—अँग्रेजी में जिसे Nominative absolute कहते हैं, वही संस्कृत में यह 'सतिसप्तमी' अथवा 'भावे सप्तमी' (Locative absolute) है ।

१०४—ऊपर के सूत्रों से यह विदित हुआ कि—

प्रथमा विभक्ति	कर्तृवाच्य के कर्त्ता तथा सम्बोधन के लिए,
द्वितीया विभक्ति	कर्म के लिए,
तृतीया विभक्ति	करण के लिए,
चतुर्थी विभक्ति	सम्प्रदान के लिए,
पञ्चमी विभक्ति	अपादान के लिए,

सप्तमी विभक्ति अधिकरण के लिए प्रधान रूप से प्रयोग में आती है। अर्थात् ये छः विभक्तियाँ एक-एक करके छहों कारकों का बोध कराती हैं। शेष रही षष्ठी विभक्ति; इसका क्या प्रयोग है ? ऊपर (९७) में कह आये हैं कि केवल ऐसे शब्द (संज्ञा अथवा सर्वनाम) जिनका क्रिया से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो सकता है, कारक कहे जाते हैं । इन कारकों का सम्बन्ध क्रिया से स्थापित करने के लिए षष्ठी को छोड़कर और सारी विभक्तियाँ आती हैं । वाक्य

की क्रिया से षष्ठी का कोई सम्बन्ध नहीं रहता, वह तो संज्ञा का संज्ञा से अथवा संज्ञा का सर्वनाम से सम्बन्ध स्थापित करती है; जैसे—

श्यामः गोविन्दस्य पुत्रं ताडितवान् ।

यहाँ मारने की क्रिया से गोविन्द का कोई सम्बन्ध नहीं, सम्बन्ध है तो गोविन्द के पुत्र का और श्याम का । हाँ, गोविन्द का पुत्र से सम्बन्ध है, किन्तु गोविन्द और पुत्र दोनों संज्ञाएँ हैं । "श्यामः मम पुत्रं ताडितवान्' यहाँ 'मेरा' का 'पुत्र' से सम्बन्ध है, क्रिया से नहीं; और 'मेरा' सर्वनाम है और 'पुत्र' संज्ञा है । इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि षष्ठी किसी कारक का बोध नहीं कराती । उसका क्या उपयोग है, यह नीचे के सूत्रों से प्रकट होगा ।

१०५—षष्ठी

(क) षष्ठी शेषे ।२।३।५०।

इस सूत्र का अर्थ यह है कि जो बात और विक्तियों से नहीं बतलाई जा सकतीं, उनको बतलाने के लिए षष्ठी होती है । वे बातें सम्बन्धविशेष है । जहाँ स्वामी तथा भृत्य, जन्य तथा जनक, कार्य तथा कारण इत्यादि सम्बन्ध दिखाये जाते हैं, वहाँ षष्ठी होती है; जैसे—

राज्ञः पुरुषः—राजा का पुरुष ।

यहाँ पर 'राजा' स्वामी है, 'पुरुष' भृत्य है । इस "स्वामी तथा भृत्य" का सम्बन्ध दिखाने के लिए "राज्ञः" में षष्ठी हुई है ।

वालकस्य माता—वालक की माँ ।

यहाँ पर 'वालक' जन्य अर्थात् "पैदा होने वाला" है और 'माता' जननी अर्थात् "पैदा करने वाली" है, एवं इसमें "जन्य-जनक" सम्बन्ध है और इसी को दिखलाने के लिए "वालकस्य" में षष्ठी हुई है ।

मृत्तिकायाः घटः—मिट्टी का घड़ा ।

यहाँ पर 'मिट्टी' कारण है और 'घड़ा' कार्य है । एवं इसमें "कार्यकारण" सम्बन्ध है और इसी को दिखाने के लिए 'मृत्तिकायाः' में षष्ठी हुई है ।

(ख) षष्ठी हेतुप्रयोगे ।२।३।२६।

जब 'हेतु' शब्द का प्रयोग होता है, तो जो शब्द कारण या प्रयोजन रहता है, वह और 'हेतु' शब्द—दोनों षष्ठी में रक्खे जाते हैं, जैसे—

अन्नस्य हेतोः वसति—वह अन्न के वास्ते रहता है, अर्थात् अन्न पाने के प्रयोजन से रहता है।

यहाँ रहने का कारण या प्रयोजन "अन्न" है, इसलिए "अन्नस्य" और "हेतोः" दोनों में षष्ठी हुई है।

अध्ययनस्य हेतोः काश्यां तिष्ठति—अध्ययन के लिए काशी में टिका है।

यहाँ पर टिकने का प्रयोजन या कारण "अध्ययन" है, इसलिए "अध्ययनस्य" और "हेतोः" दोनों में षष्ठी हुई है।

(ग) सर्वनाम्नस्तृतीया च ।२।३।२७।

जब हेतु शब्द के साथ किसी सर्वनाम का प्रयोग होता है, तो सर्वनाम और हेतु शब्द—दोनों में तृतीया, पञ्चमी या षष्ठी होती है; जैसे—

कस्य हेतोः अत्र वसति
या
कस्मात् हेतोः अत्र वसति
या
केन हेतुना अत्र वसति

—किस लिए यहाँ टिका है?

यहाँ पर "किम्" शब्द सर्वनाम है, इसलिए "कस्य" में षष्ठी, "केन" में तृतीया और "कस्मात्" में पञ्चमी हुई है। इसी प्रकार—

तेन	हेतुना	—उस कारण से।
तस्माद्	हेतोः	
तस्य	हेतोः	

येन	हेतुना	—जिस कारण से।
यस्मात्	हेतोः	
यस्य	हेतोः	

(घ) निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम् (वार्त्तिक)

"निमित्त" शब्द का अर्थ रखने वाले (कारण, हेतु, प्रयोजन आदि) शब्दों का प्रयोग होने पर सर्वनाम में तथा निमित्त का अर्थ रखने वाले शब्दों में प्रायः सभी विभक्तियाँ होती हैं; जैसे—

किं	निमित्तम्	को	हेतुः	तत्	प्रयोजनम्
"	"	कं	हेतुं	"	"

केन	निमित्तेन	केन	हेतुना	तेन	प्रयोजनेन
कस्मै	निमित्ताय	कस्मै	हेतवे	तस्मै	प्रयोजनाय
कस्मात्	निमित्तात्	कस्मात्	हेतोः	तस्मात्	प्रयोजनात्
कस्य	निमित्तस्य	कस्य	हेतोः	तस्य	प्रयोजनस्य
कस्मिन्	निमित्ते	कस्मिम्	हेतौ	तस्मिन्	प्रयोजने

वार्त्तिक में हुए 'प्राय' का तात्पर्य यह है कि जब सर्वनाम का प्रयोग नहीं रहता तब प्रथमा, द्वितीया नहीं होती, शेष सब विभक्तियाँ होती हैं; जैसे—

ज्ञानेन निमित्तेन
ज्ञानाय निमित्ताय
ज्ञानात् निमित्तात् } —ज्ञान के वास्ते ।
ज्ञानस्य निमित्तस्य
ज्ञाने निमित्ते

टिप्पणी—यद्यपि उपर्युक्त 'वार्त्तिक से सभी विभक्तियों का प्रयोग विहित है, तथापि प्राचीन काव्यकारों के काव्यग्रन्थों में तृतीया, पञ्चमी तथा षष्ठी का ही प्रयोग पाया जाता है । इसके अतिरिक्त 'किं निमित्तं, प्रयोजनं, कारणम्, अर्थम्' इत्यादि द्वितीयान्त प्रयोग भी कम नहीं पाये जाते ।

(ङ) षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन ।२।३।३०।

अतसुच् (तस्) प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्दों (दक्षिणतः, उत्तरतः आदि) तथा इस प्रत्यय का अर्थ रखने वाले प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों (उपरि, अधः, अग्रे, आदौ, पुरः आदि) का जिस शब्द के साथ योग हो उसमें षष्ठी होती है; जैसे—

ग्रामस्य दक्षिणतः ।
रथस्योपरि, रथस्य उपरिष्टात् ।
पतिव्रतानाम् अग्रे कीर्तनीया सुदक्षिणा ।
वृक्षस्य अधः, वृक्षस्य अधस्तात् ।
तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतोः ।

टिप्पणी—उपरि, अधि, अधः जब दोहरा कर आते हैं, तब षष्ठी का प्रयोग नहीं होता किन्तु द्वितीया का (देखिये ६८ ट)

(च) दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् ।२।३।३४।

दूर, अन्तिक (समीप) तथा इनके समान अर्थं रखने वाले शब्दों का प्रयोग होने पर षष्ठी तथा पञ्चमी होती है; जैसे—

वनं ग्रामस्य ग्रामाद् वा दूरम्—जङ्गल गाँव से दूर है।

प्रत्यासन्नो माधवीमण्डपस्य—माधवी लता के कुञ्ज के समीप।

कर्णपुरं प्रयागस्य प्रयागाद् वा समीपम्—कानपुर प्रयाग से (के) समीप है।

टिप्पणी—जिससे दूरी दिखाई जाती है, उसमें षष्ठी या पञ्चमी होती है; किन्तु दूर-वाची या निकट-वाची शब्दों में द्वितीया आदि (देखिए ६६ थ)

(छ) अधीगर्थदयेशां कर्मणि ।२।३।५२।

अधि पूर्वक "इ" धातु (स्मरण करना), दय् (दया करना), ईश् (समर्थ होना) तथा इन्हीं अर्थ वाली अन्य धातुओं के कर्म में षष्ठी होती है; जैसे—

मातुः स्मरति—माता की याद करता है।

स्मरन् राघवबाणानां विव्यथे राक्षसेश्वरः—रामचन्द्रजी के बाणों की याद करता हुआ रावण दुःखी हुआ।

प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य महाराजः—महाराज अपनी पुत्री के ऊपर समर्थ हैं।

गात्राणामनीशोऽस्मि संवृत्तः—मैं अपने अङ्गों का मालिक न रहा।

कथञ्चिदीशा मनसां बभूवुः—उन लोगों ने बड़ी कठिनाई से अपने मन को अपने वश में रक्खा।

शौवस्तिकत्वं विभवा न येषां व्रजन्ति तेषां दयसे न कस्मात्—जिनका धन प्रातःकाल तक भी नहीं टिकता, उनके ऊपर तू क्यों नहीं दया करता।

रामस्य दयमानः—राम के ऊपर दया करता हुआ।

टिप्पणी (i) सामान्यतः स्मृ के कर्म में द्वितीया ही होती है; जैसे, स्मरसि गोदावरीम् (उत्तररामचरित्)। इसी प्रकार प्रपूर्वक भू धातु तथा उससे बने शब्दों के योग में चतुर्थी भी होती है (द्रष्टव्य पृ० २०५, टिप्पणी ii)

(ii) उपर्युक्त वाक्यों में षष्ठी का प्रयोग कर्म कारक को व्यक्त करने के लिए किया गया है। अगले सूत्र में भी कर्ता और कर्म में षष्ठी विभक्ति कही जायगी। यह षष्ठी 'षष्ठी शेषे' सूत्र में 'शेष' अर्थात् संज्ञाओं और सर्वनामों के पारस्परिक सम्वन्ध-सामान्य को प्रकट करने के लिए बताई गई षष्ठी से भिन्न है। इसे कारक-षष्ठी कहते हैं। इस षष्ठी को नियम १०४ का अपवाद समझना चाहिए।

(ज) कर्तृकर्मणोः कृति ।२।३।६५।

जव कोई क्रिया कृदन्त रूप से प्रकट की जाती है (जैसे जाने की क्रिया "गतिः" से, याद करने की "स्मृतिः" से) तो उस क्रिया का जो कर्त्ता या कर्म होता है, वह कृदन्त शब्द के साथ षष्ठी में रक्खा जाता है; उदाहरणार्थ—

कृष्णस्य कृतिः—कृष्ण का कार्य।

यहाँ पर करना क्रिया का वोधक 'कृति' शब्द है जो कि कृ धातु में कृत् क्तिन् प्रत्यय जोड़ने से वना है और इसका कर्त्ता 'कृष्ण' है इसलिए कृत्प्रत्ययान्त 'कृतिः' शब्द के साथ कर्ता 'कृष्ण' में षष्ठी हुई है। इसी प्रकार—

रामस्य गतिः—राम की गति (चाल)।

वालकानां रोदनम्—वालकों का रोना।

क्रतूनामाहर्ता—यज्ञों का करने वाला।

वेदस्य अध्येता—वेद का अध्ययन करने वाला।

यहाँ पर "अध्येता" अधि उपसर्ग पूर्वक "इङ" धातु तथा तृच् प्रत्यय से बना है; इसका कर्म 'वेद' है। इसलिए कृदन्त "अध्येता" शब्द के साथ कर्म "वेद" में षष्ठी हुई। इसी प्रकार 'क्रतूनाम्' में भी तृजन्त 'आहर्ता' के योग में षष्ठी हुई है।

इसी प्रकार —

विषस्य भोजनम्—विष का खाना।

राक्षसानां घातः—राक्षसों का वध।

राज्यस्य प्राप्तिः—राज्य की प्राप्ति।

टिप्पणी—'गुणकर्मणि वेष्यते' (वार्तिक)—कृदन्त के गौण कर्म में विकल्प से षष्ठी होती है; जैसे—नेता अश्वस्य स्रुघ्नस्य वा।

(झ) उभयप्राप्तौ कर्मणि ।२।३।६६।

जहाँ कर्त्ता और कर्म दोनों आये हों, वहाँ कृदन्त के योग में कर्म में ही षष्ठी होगी, कर्त्ता में नहीं; जैसे—

आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन ।

टिप्पणी—स्त्री प्रत्यययोरकाकारयोर्नायं नियमः (वार्त्तिक)—किन्तु जब स्त्रीलिङ्ग कृत् प्रत्यय 'अक' (ण्वुच्) या 'अ' हो तो कर्ता में भी षष्ठी होती है; जैसे, 'भेदिका विभित्वा वा रुद्रस्य जगतः'—यहाँ भेदन क्रिया के कर्त्ता 'रुद्र' में भी षष्ठी हुई है। 'शेषे विभाषा' वार्त्तिक से अन्य स्त्रीलिङ्ग कृत् प्रत्ययों के प्रयोग में कर्त्ता में विकल्प से षष्ठी होती है; जैसे, 'विचित्रा जगतः कृतिर्हरेर्हरिणा वा'—इस वाक्य में कर्त्ता 'हरि' में विकल्प से षष्ठी हुई है। किन्तु[1] कुछ लोगों के मतानुसार यह विकल्प स्त्रीलिङ्ग कृत्प्रत्ययों के ही कर्ता के विषय में नहीं अपितु लिङ्गों के कृत्प्रत्ययों के कर्ता के विषय में भी है; जैसे—शब्दानामनुशासनमाचार्येण आचार्यस्य वा, आचार्य के द्वारा शब्दों का उपदेश ।

(ञ) न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् ।२।२।६९।

'कर्तृकर्मणोः कृति' सूत्र से सभी कृदन्त प्रत्ययों के योग में कर्ता तथा कर्म में षष्ठी का विधान किया गया था; किन्तु 'नलोकाव्यय'—सूत्र 'कर्तृकर्मणोः कृति' के क्षेत्र को छोटा कर देने वाला है । इसका अर्थ है—

लकार के अर्थ में प्रयोग किये जाने वाले प्रयत्यों में अन्त होने वाले शब्दों के योग में; उ, उक में होने वाले कृदन्त शब्दों के योग में; कृदन्त अव्यय के योग में; निष्ठा (क्त, क्तवतु) में अन्त होने वाले शब्दों के योग में; खल् तथा खल् के समान अर्थ रखने वाले प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के योग में तथा तृन्[2] प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के योग में षष्ठी नहीं होती ।

जो प्रत्यय जिस लकार में प्रयुक्त होता है, वह नीचे दिखाया जाता है—

---

१ स्त्रीप्रत्यय इत्येके । केचिदविशेषेण विभाषामिच्छन्ति—सि० कौ० ।

२ तृन्निति प्रत्याहारः । शतृशानचाविति तृशब्दादारभ्य आतृनो नकरात्' —सि० कौ०

शतृ तथा शानच्—लट् लकार के अर्थ में।

क्वसु तथा कानच्—लिट् लकार के अर्थ में।

शतृ (स्यत्) तथा शानच् (स्यमान)—लृट् लकार के अर्थ में।

शतृ तथा शानच् 'तृन्' प्रत्याहार के अन्तर्गत भी हैं, इसलिए उनका उदाहरण यहाँ न दिया जाकर उसी जगह पर दिया जायगा; यहाँ पर क्वसु, कानच्, स्यत् स्यमान के उदाहरण दिये जायँगे—

क्वसु—काशीं जग्मिवान् पुरुषः स्वर्गं लभते=काशी गया हुआ पुरुष स्वर्ग पाता है।

कानच्—परोपकारं चक्राणाः जनाः ख्यातिं गच्छन्ति=परोपकार कर चुके हुए लोग विख्यात हो जाते हैं।

स्यत्—वन्यान् विनेष्यन् इव दुष्टसत्वान्=जङ्गल के दुष्ट जीवों को सिखाता हुआ-सा।

स्यमान्—अक्षयवटं पूजयिष्यमाणा यात्रिणः गङ्गातीरे एव स्थास्यन्ति =जो यात्री अक्षयवट की पूजा करना चाहेंगे, वे गङ्गा के तीर ही टिक जायँगे।

'उ' तथा 'उक' प्रत्यय के उदाहरण—

उ—हरिं दिदृक्षुः=हरि को देखने का इच्छुक।

उक—दैत्यान् घातुको हरिः=हरि दैत्यों के हन्ता हैं।

कृदन्त अव्यय प्रधानतया णमुल्, क्त्वा, ल्यप्, तुमुन् इत्यादि लगाकर बनाये जाते हैं; उनके उदाहरण—

णमुल्—स्मारं स्वगृहचरितं दारुभूतो मुरारिः=अपने घर का चरित याद कर-कर के मुरारि काष्ठ हो गये।

क्त्वा—संसारं सृष्ट्वा=संसार को रचकर।

ल्यप्—सीतां परित्यज्य लक्ष्मणोऽयासीत्=सीता को त्याग कर लक्ष्मण जी चले गये।

तुमुन्—यशोऽधिगन्तुं सुखमीहितुं वा मनुष्यसंख्यामतिवर्तितुं वा=यश पाने के लिए या सुख चाहने के लिए या मनुष्यों से बढ़ जाने के लिए।

क्त तथा क्तवतु 'निष्ठा' कहलाते हैं; उनके उदाहरण—

क्त—विष्णुना हता दैत्याः=दैत्य लोग विष्णु से मार डाले गये ।

क्तवतु—दैत्यान् हतवान् विष्णुः=विष्णु ने दैत्यों को मार डाला ।

खल्—सुकरः प्रपञ्चो हरिणा=हरि संसार-प्रपञ्च आराम से कर डालते हैं ।

तृन् प्रत्याहार के अन्तर्गत ये प्रत्यय हैं—शतृ, शानच्, शानन्, चानस्, तृन् । इनके उदाहरण ये हैं—

शतृ—बालकं पश्यन्=लड़के को देखता हुआ ।

शानच्—क्लेशं सहमानः=दुःख सहता हुआ ।

शानन्—सोमं पवमानः=सोमरस को छानता (परिष्कृत करता) हुआ ।

चानस्—आत्मानं मण्डयमानः=अपने को अलंकृत करता हुआ ।

तृन्—कर्ता कटान्=चटाइयों को बनाने वाला ।

नोट—इन सब प्रत्ययों का व्याख्यान "कृदन्त-विचार" में आगे मिलेगा ।

(ट) क्तस्य च वर्त्तमाने ।२।३।६७।

जब क्तप्रत्ययान्त शब्द (जो कि भूतकाल का बोधक होता है; जैसे—स गतः=वह गया) वर्त्तमान के अर्थ में प्रयुक्त होता है, तो षष्ठी होती है; जैसे—

अहं राज्ञो मतो बुद्धः पूजितो वा—मुझे राजा मानते हैं, जानते हैं अथवा पूजते हैं ।

यहाँ पर मत, बुद्ध तथा पूजित में जो क्त प्रत्यय का प्रयोग किया गया है, वह वर्त्तमान के अर्थ में है; इस वाक्य की व्याख्या यों होगी—

मां राजा मन्यते, बुध्यते, पूजयति वा ।

विदितं तप्यमानं च तेन मे भुवनत्रयम् (रघुवंश, १०।३९)—मैं जानता हूँ कि उससे तीनों भुवन पीड़ित होते हैं ।

यहाँ पर भी 'विदित' का क्त प्रत्यय वर्तमान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । वर्त्तमानकाल के स्वरूप में लाने पर इस वाक्य का आकार यों होगा— तेन तप्यमानं भुवनत्रयम् अहं वेद्मि ।

टिप्पणी—(i) यह सूत्र 'न लोकाव्यय०' सूत्र में निष्ठा प्रत्ययों के योग में निर्दिष्ट षष्ठी-निषेध का अपवाद है।

(ii) 'नपुंसके भावे क्तः ।३।३।११४।' सूत्र के अनुसार 'भाव' (क्रिया से सूचित होने वाला कार्य) के अर्थ में 'क्त' प्रत्यय लगकर बने हुए नपुंसक-लिङ्ग शब्दों के योग में भी 'कर्तृकर्मणोः कृतिः' के अनुसार षष्ठी ही होती है; जैसे—

मयूरस्य नृत्तम्=मयूर का नर्तन।

छात्रस्य हसितम्=छात्र का हँसना।

(ठ) कृत्यानां[1] कर्त्तरि वा ।२।३।७१।

जिन शब्दों के अन्त में कृत्य प्रत्यय लगे रहते हैं, उनका प्रयोग होने पर कर्ता में तृतीया या षष्ठी होती है; जैसे—

गुरुः मया पूज्यः या गुरुः मम पूज्यः	गुरुजी मेरे पूज्य हैं।

न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः—भृत्यों को अपने स्वामियों को न ठगना चाहिए।

यहाँ स्पष्ट है कि "अहं" तथा "अनुजीविनः" जो कि यथार्थ कर्त्ता हैं, कृत्य-क्रियाओं के साथ तृतीया या षष्ठी में हो जाते हैं।

(ड) षष्ठी चानादरे ।२।३।३८।

जिसका अनादर या तिरस्कार करके कोई कार्य किया जाता है, उसमें षष्ठी वा सप्तमी होती है; जैसे—

पश्यतोऽपि राज्ञः पश्यत्यपि राज्ञि वा द्विगुणमपहरन्ति धूर्ताः—राजा के देखते रहने पर भी धूर्त लोग दुगुना चुरा लेते हैं।

रुदतः पुत्रस्य रुदति पुत्रे वा वनं प्राव्राजीत्—रोते हुए पुत्र का तिरस्कार करके वह संन्यासी हो गया।

निवारयतोऽपि पितुः निवारत्यपि पितरि वा अध्ययनं परित्यक्तवान्—पिता के मना करने पर भी उनका तिरस्कार करके उसने अध्ययन त्याग दिया।

---

१ कृत्य प्रत्यय ये हैं—तव्यत्, तव्य, अनीयर्, यत्, ण्यत् क्यप् और केलिमर्।

दवदहनजटालज्वालजालाहतानाम्,
परिगलितलतानां म्लायतां भूरुहाणाम् ।
अयि जलधर ! शैलश्रेणिशृङ्गेषु तोयं
वितरति बहु कोऽयं श्रीमदस्तावकीनः ।।

(ऐ बादल ! तेरा यह कैसा भारी गर्व है कि जंगल की आग की ज्वालाओं से भस्म होते हुए, गलित लताओं वाले, मुरझाते हुए वृक्षों का अनादर करके तू पर्वतों के शिखरों पर तमाम पानी देता है ।)

यहाँ पर 'वृक्षों' का अनादर किया गया है, इसीलिए 'भूरुहाणाम्' में षष्ठी हुई है ।

(ढ) जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम् ।२।३।५६।

हिंसार्थक-जस् (णिजन्त), नि तथा प्र पूर्वक हन्, क्रथ (णिजन्त), नट (णिजन्त) तथा पिष्-धातुओं के कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है; जैसे—

निजौजसोज्जासयितुं जगद्द्रुहाम् (माघ० १-३७);—जगत् के द्रोहियों को अपने तेज (बल) से मारने के लिए ।

चौरस्य निहन्तुं, प्रहन्तुं प्रणिहन्तुं वा—चोर को मारने के लिए ।

अपराधिनः नाटयितुं क्राथयितुं वा—अपराधियों का वध करने के लिए ।

क्रमेण पेष्टुं भुवनद्विषामपि (माघ० १-४०)—क्रमशः लोक-द्रोहियों का विनाश करने के लिए ।

(ण) व्यहृपणोः समर्थयोः ।२।३।५७।

समान अर्थ वाली व्यय (वि+अव) पूर्वक हृ तथा पण् धातुओं के कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है (जुआ तथा क्रय-विक्रय-व्यवहार अर्थ में ये धातुयें समानार्थक होती हैं); जैसे—

शतस्य व्यवहारणं वा—सौ का व्यवहार या जुआ ।

टिप्पणी—परन्तु इसी अर्थ में द्वितीया का भी प्रायेण प्रयोग दीख पड़ता है; जैसे—

पणस्य कृष्णां पाञ्चालीम् (महाभारत)—पंचालराज की कन्या द्रौपदी को दाँव पर रख दो ।

(त) दिवस्तदर्थस्य ।२।३।५८।

'उसी' अर्थात् द्यूत एवं क्रयविक्रय-व्यवहार अर्थ में दिव् धातु के कर्म में भी षष्ठी विभक्ति होती है; जैसे—

शतस्य दीव्यति—सौ का जुआ खेलता है ।

परन्तु दिव् उपर्युक्त अर्थ न होने पर कर्म में द्वितीया ही होती है, जैसे—ब्राह्मणं दीव्यति—ब्राह्मण की स्तुति करता है ।

(थ) चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः २।३।३७।

आशीर्वाद अभिप्रेत होने पर आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ, हित तथा इनके अर्थ वाले अन्य शब्दों के योग में चतुर्थी या षष्ठी होती है; जैसे—

आयुष्यं चिरजीवितं वा कृष्णाय कृष्णस्य वा स्यात्—कृष्ण चिरञ्जीवी हों ।

वत्साय वत्सस्य वा भद्रं, मद्रं, कुशलं, निरामयं, सुखं, शं, हितं, पथ्यं वा स्यात्—पुत्र सुखी हो ।

टिप्पणी—'हितयोगे च' वार्त्तिक में हित के योग में चतुर्थी ही बताई गई है, षष्ठी नहीं । आशीर्वाद अभिप्रेत न होने पर केवल चतुर्थी होगी—वार्त्तिक का यह अभिप्राय समझना चाहिए, जैसा कि उपर्युक्त सूत्र के व्याख्यान में तत्त्व-बोधिनीकार ने स्पष्ट किया है—"हितयोगे च' इत्यनाशिषि चरितार्थमित्याशिष्ययं विकल्पः ।

(द) अनुकरण करने या सदृश होने के अर्थ में अनु-पूर्वक कृ धातु के कर्म में षष्ठी भी होती है; जैसे—

ततोऽनुकुर्यात्तस्याः स्मितस्य (कुमार० १-४४)—तब शायद उसके स्मित (मुस्कान) की समता कर सके ।

श्यामतया भगवतो हरेरिवानुकुर्वतीम् (कादम्बरी)—अपनी श्यामता द्वारा भगवान् विष्णु की समता करती हुई ।

द्वितीया जैसे—

सर्वाभिरन्याभिः कलाभिरनुचकार तं वैशम्पायनः (कादम्बरी)—वैशम्पायन भी सभी कलाओं में उस (चन्द्रापीड) के समान हो गया ।

(ध) अनुरूप, योग्य, सदृश तथा इसी अर्थ वाले अन्य शब्दों के योग में सप्तमी के अतिरिक्त षष्ठी भी प्रायः प्रयुक्त होती है; जैसे—

सखे पुण्डरीक! नैतदनुरूपं भवतः (कादम्बरी)—मित्र पुण्डरीक! यह आप को उचित नहीं।

सदृशमेवैतत्स्नेहस्यानवलेपस्य (शकुन्तला)—यह अभिमान-विहीन प्रेम के सर्वथा उचित ही है।

(न) कृते, मध्ये, समक्ष आदि के योग में भी षष्ठी विभक्ति प्रयुक्त होती है; जैसे—

एषां मध्ये केचिदेव विद्यार्थिनः अपरे तु धनार्थिन एव—इनमें कुछ ही विद्या प्राप्त करना चाहते हैं, अन्य लोग तो धन ही चाहते हैं।

अमीषां प्राणानां कृते (भर्तृहरि का वैराग्य०)—इन प्राणों के लिए।

राज्ञः समक्षमेव—महाराज के समक्ष ही।

(प) अंशांशिभाव या अवयवावयविभाव होने पर अंशी या अवयवी में षष्ठी विभक्ति होती है; जैसे—

जलस्य बिन्दुः—जल की बूंद।

अयुतं शरदां ययौ (रघु०, १०-१)—दस सहस्र वर्ष बीत गये।

रात्रेः पूर्वम्—रात्रि का प्रथम भाग।

दिनस्य उत्तरम्—दिन का उत्तरवर्ती भाग।

(फ) प्रिय, वल्लभ तथा इसी अर्थ में प्रयुक्त होने वाले अन्य शब्दों के योग में षष्ठी होती है; जैसे—

प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीत् (उत्तररामचरित, ६)—सीता स्वभावतया राम को प्रिय थी।

कायः कस्य न वल्लभः—शरीर किसे प्रिय नहीं होता?

(ब) विशेष, अन्तर इत्यादि शब्दों के प्रयोग में, जिनमें विशेष या अन्तर दिखाया जाता है, वे षष्ठी में होती हैं, जैसे—

एतावानेवायुष्मतः शतक्रतोश्च विशेषः (शकु०)—आयुष्मान् (आप) और इन्द्र में इतना ही अन्तर है।

भवतो मम च समुद्रपल्वलयोरिवान्तरम्—श्रीमान् और मुझ में समुद्र और सरोवर का सा अन्तर है।

(भ) जब किसी कार्य या घटना के हुए कुछ काल बीता हुआ बताया जाता है, तो बीती हुई घटना के वाचक शब्द षष्ठी में प्रयुक्त होते हैं; जैसे—

अद्य दशमो मासस्तातस्योपरतस्य (मुद्रा०, अं० ६)—पिता को मरे हुए आज दश महीने हो रहे हैं।

कतिपये संवत्सरास्तस्य तपस्तप्यमानस्य (उत्तररामचरित, ४)—तप करते हुए उन्हें कई वर्ष हो गये हैं।

सप्तम सोपान

१०६—समास-विचार

(क) छठे सोपान में विभक्तियों का प्रयोग बताया गया है। किन्तु कहीं-कहीं शब्दों की विभक्तियों का लोप करके शब्द छोटे कर लिये जाते हैं। यह तब सम्भव होता है, जब दो से अधिक शब्द एक साथ जोड़ दिये जाते हैं। इस साथ में जोड़ने को ही 'समास' कहते हैं।

'समास' शब्द 'सम्' (भलीप्रकार) उपसर्ग लगा कर अस् (फेंकना) धातु से बना है और इसका प्रायः वही अर्थ है जो 'संक्षेप' शब्द का, अर्थात् दो या अधिक शब्दों को इस प्रकार साथ रख देना कि उनके आकार में कुछ कमी भी हो जाये और अर्थ भी पूर्ण विदित हो; जैसे—

सभायाः पतिः=सभापतिः।

यहाँ 'सभापतिः' का वही अर्थ है जो 'सभायाः पतिः' का, किन्तु दोनों को साथ कर देने से "सभायाः" शब्द के विभक्तिसूचक प्रत्यय (—याः) का लोप हो गया और इस कारण शब्द 'सभापतिः' 'सभायाः पतिः' से छोटा हो गया।

जैसे दो शब्दों को जोड़ कर समास करते हैं, वैसे दो या अधिक समास (समस्त शब्द) भी जोड़े जा सकते हैं; जैसे—

राज्ञः पुरुषः=राजपुरुषः, धनस्य वार्ता=धनवार्ता, इस प्रकार दो समस्त शब्द हुए। अब यदि ये दोनों जोड़ दिये जायँ तो राजपुरुषस्य धनवार्ता="राजपुरुषधनवार्ता"—यह एक समस्त पद बना। इस प्रकार कितने ही शब्दों को जोड़कर लम्बे-लम्बे समास बनाये जा सकते हैं। संस्कृत-साहित्य में किसी-किसी ग्रन्थ में ऐसे-ऐसे समास हैं जो कई पंक्तियों के हैं। इनका अर्थ निकालना कठिन हो जाता है और ग्रंथ जटिल हो जाता है।

(ख) किसी समस्त शब्द को तोड़ कर उसका पूर्वकाल का रूप दे देना "विग्रह" कहलाता है। विग्रह का अर्थ है—टुकड़े-टुकड़े करना, समस्त शब्द

के टुकड़े करके ही पूर्व रूप दिखाया जा सकता है, इसलिए वह विग्रह है। उदाहरणार्थ 'धनवार्ता' का विग्रह 'धनस्य वार्ता' हुआ।

किन शब्दों को कैसे और किन के साथ जोड़ सकते हैं, इसके सूक्ष्म से भी सूक्ष्म नियम संस्कृतव्याकरणकारों ने नियत कर रक्खे हैं। ऐसा नहीं है कि जिस शब्द को जब चाहा तब दूसरे के साथ जोड़ दिया।

उदाहरणार्थ—

'रघुवंश का लेखक कालिदास प्रसिद्ध कवि था' इस वाक्य का अनुवाद हुआ 'रघुवंशस्य लेखकः कालिदासः प्रसिद्धः कविः आसीत्'। इसे संस्कृत वाक्य में यदि समास करें तो इस प्रकार होगा 'रघुवंशलेखककालिदासः प्रसिद्धकविः आसीत्'। "कविः" और "आसीत्" में समास नहीं हुआ, "कालिदासः" और "प्रसिद्धः" में नहीं हुआ।

कब किन दशाओं में समास हो सकता है, इसके मुख्य-मुख्य नियम इस सोपान में दिये जाएँगे।

१०७ (क)—समास के मुख्य चार भेद हैं—

(१) अव्ययीभाव।
(२) तत्पुरुष।
(३) द्वन्द्व और
(४) बहुव्रीहि।

तत्पुरुष के अन्तर्गत दो प्रसिद्ध समास और हैं—(१) कर्मधारय और (२) द्विगु; इसलिए कभी-कभी समास के छः भेद पाये जाते हैं। इन छः भेदों के नाम इस श्लोक में आते हैं:—

द्वन्द्वो द्विगुरपि चाहं मद्गेहे नित्यमव्ययीभावः।
तत्पुरुष कर्मधारय येनाहं स्याम्बहुव्रीहिः॥

(ख) समास के चार भेद समास में आये हुए दोनों शब्दों की प्रधानता अथवा अप्रधानता पर किये गये हैं।

अव्ययीभाव समास में समास का प्रथम शब्द प्रायः प्रधान रहता है, तत्पुरुष में प्रायः दूसरा, द्वन्द्व में प्रायः दोनों प्रधान रहते हैं और बहुव्रीहि में दोनों में से

एक भी प्रधान नहीं रहता, दोनों मिल कर एक तीसरे शब्द के ही विशेषण होते हैं।

१०८--अव्ययीभाव समास

(क) 'अव्ययीभाव' शब्द का यौगिक अर्थ है--जो अव्यय नहीं था, उसका अव्यय हो जाना। यह अर्थ ही इस समास की एक प्रकार से कुंजी है। अव्ययीभाव समास में प्रायः दो पद रहते हैं--इनमें से प्रथम प्रायः अव्यय रहता है और दूसरा संज्ञा शब्द। दोनों मिलकर अव्यय हो जाते हैं। किसी अव्ययीभाव शब्द के रूप नहीं चलते। अन्तिम शब्द का नपुंसकलिङ्ग[1] के एकवचन में जैसा रूप होता है, वही रूप अव्ययीभाव समास का हो जाता है और वही नित्य रहता है। जैसे—

यथाकामम्=काममनतिक्रम्य इति यथाकामम् (इच्छानुसार)।

"यथाकामम्" में दो शब्द आये (१) यथा और (२) काम, इनमें 'यथा' शब्द प्रधान है, दोनों मिल कर एक अव्यय हुए (यथाकाम के रूप नहीं चलेंगे) और अन्तिम शब्द 'काम' ने पुंल्लिङ्ग होते हुए भी, वह रूप धारण किया जो वह तब धारण करता जब नपुंसकलिङ्ग के एकवचन में होता। इसी प्रकार 'यथाशक्ति' (शक्तिमनतिक्रम्य इति), 'अन्तर्गिरि' (गिरिषु इति), उपगङ्गम् (गङ्गायाः समीपे), प्रत्यहम् (अहः अहः)।

(ख) अव्ययीभाव समास बनाते समय इन नियमों को ध्यान में रखना चाहिए।

(१) दूसरे[2] शब्द का अन्तिम वर्ण दीर्घ रहे तो ह्रस्व कर दिया जाता है। यदि अन्त में "ए" अथवा "ऐ" हो तो उसके स्थान में "इ" और यदि "ओ" अथवा "औ" हो तो उसके स्थान में "उ" हो जाता है, जैसे—

उप+गङ्गा (गङ्गायाः समीपे)=उपगङ्ग (और इसको नपुं० एकवचन में नित्य रखते हैं, इसलिए)=उपगङ्गम्।

---

१ अव्ययीभावश्च ।२।४।१८।—इस सूत्र के अनुसार अव्ययीभाव नपुंसकलिङ्ग में होता है।

२ ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य ।१।२।४७।

उप+नदी (नद्याः समीपे)=उपनदि ।

उप+वधू (वध्वाः समीपे)=उपवधु ।

उप+गो (गोः समीपे)=उपगु ।

उप+नौ (नावः समीपे)=उपनु ।

(२) अन्[1] में अन्त होने वाली संज्ञाओं में समासान्त टच् प्रत्यय (पुंल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में नित्य ही और नपुंसकलिङ्ग[2] में विकल्प से) जुड़ने से 'अन्' का लोप हो जाता है और टच् का 'अ' जुड़ जाता है, जैसे—

उप+राजन् (राज्ञः समीपे)+टच्=उपराज=उपराजम्; इसी प्रकार अध्यात्मम् ।

उप+सीमन् (सीम्नः समीपे)+टच्=उपसीम=उपसीमम् ।

(नपुं०) उप+चर्मन् (चर्मणः समीपे)+टच्=उपचर्म अथवा उपचर्मम् (उपचर्मम् यदि अन् निकाल दिया जाय, अथवा उपचर्म यदि 'अन्' न निकाला जाये तो) ।

(३) यदि अव्ययीभाव समास के अन्त में झय्[3] प्रत्याहार का कोई वर्ण आवे, तो विकल्प से समासान्त टच् प्रत्यय जुड़ता है; जैसे—

उप+समिध्+टच्=उपसमिधम्; टच् के अभाव में, उपसमित् ।

उप+सरित् (सरितः समीपे)+टच्=उपसरितम्; टच् के अभाव में, उपसरित् ।

---

१ अनश्च ।५।४।१०८।—अर्थात् अन्नन्त अव्ययीभाव समास में टच् (तद्धित) प्रत्यय लगता है । 'नस्तद्धिते' ।६।४।१४४। के अनुसार 'टि' अर्थात् 'अन्' का लोप होगा और फिर टच् का अ आगे जुड़ जायगा ।

२ नपुंसकादन्यतरस्याम् ।५।४।१०९।—अन्नत नपुंसकलिङ्ग शब्द अव्ययीभाव समास के अन्त में आवे तो विकल्प से टच् प्रत्यय लगेगा । टच् लगने पर 'नस्तद्धिते' के अनुसार प्रथम तो अन् का लोप हो जायगा । फिर टच् का अ जुड़ने पर नपुंसकलिङ्ग में 'उपचर्मम्' बनेगा । टच् न लगने पर उपचर्मन् बन कर और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से 'न' का लोप होकर 'उपचर्म' बनेगा ।

३ झयः ।५।४।१११।

(४) शरद्[1], विपाश्, अनस्, मनस्, उपानह्, अनडुह्, दिव्, हिमवत्, दिश्, दृश्, विश्, चेतस्, चतुर्, तद्, यद्, कियत्, जरस्—इनमें अकार अवश्य जोड़ दिया जाता है; जैसे—

उपशरदम्, अधिमनसम्, उपदिशम् ।

(५) नदी[2], पौर्णमासी तथा आग्रहायणी शब्दों के अव्ययीभाव समास के अन्त में आने पर विकल्प से टच् प्रत्यय लगता है। इस प्रकार के शब्दों के साथ अव्ययीभाव समास बनने पर दो-दो रूप सिद्ध होंगे। उप+नदी =उपनदि, उपनदम् । उप+पौर्णमासी=उपपौर्णमासि, उपपौर्णमासम् । उप +आग्रहायणी=उपाग्रहायणि, उपाग्रहायणम् ।

गिरि[3] शब्द के भी अव्ययीभाव के अन्त में आने पर विकल्प से टच् लगता है। इस प्रकार, उप+गिरिः=उपगिरि, उपगिरम् ।

(ग) अव्ययीभाव[4] में जो अव्यय आते हैं उनके प्रायः ये अर्थ होते हैं :—

(१) किसी विभक्ति का अर्थ, यथा—अधि+हरि (हरौ इति)= अधिहरि (हरि के विषय में)।

(२) समीप का अर्थ, यथा—उप+गङ्गा अर्थात् (गङ्गायाः समीपमिति)=उपगङ्गम् (गङ्गा के समीप) ।

(३) समृद्धि का अर्थ, यथा—सु+मद्र (मद्राणां समृद्धिः)=सुमद्रम् (मद्र देश की समृद्धि) ।

(४) व्यृद्धि (नाश, दरिद्रता) का अर्थ, यथा—दुर् + यवन (यवनानां व्यृद्धिः)=दुर्यवनम् ।

---

१ अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः ।५।४।१०७। जरायाजरश्च (वार्तिक) —अव्ययीभाव समास के अन्त में आने पर शरद् इत्यादि शब्द 'टच्' प्रत्यय जुड़ने से अवश्य ही अकारान्त हो जाता हैं ।

२ नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः ।५।४।११०।

३ गिरेश्च सेनकस्य ।५।४।११२।

४ अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिवृद्धयर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथाऽऽनुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु ।२।१।६।

(५) अभाव, यथा—निर्+मशक (मशकानामभावः)=निर्मशकम् (मच्छरों से विमुक्त) ।

(६) अत्यन्त (नाश), यथा—अति+हिम (हिमस्यात्ययः)=अतिहिमम् (जाड़े की समाप्ति) ।

(७) असम्प्रति (अनौचित्य), यथा—अति+निद्रा (निद्रा सम्प्रति न युज्यते)—अतिनिद्रम् (निद्रा के अनुपयुक्त काल में) ।

(८) शब्द-प्रादुर्भाव (शब्द का प्रकाश), यथा—इति+हरि (हरि-शब्दस्य प्रकाशः)=इतिहरि (हरि शब्द का उच्चारण) ।

(९) पश्चात्, यथा—अनु+विष्णु (विष्णोः पश्चात्) =अनुविष्णु (विष्णु के पीछे) ।

(१०) 'यथा'[1] का भाव (योग्यता), यथा—अनु+रूप (रूपस्य योग्यम्)=अनुरूपम् (योग्य या उचित) ।

" (वीप्सा), यथा—प्रति+अर्थ (अर्थमर्थं प्रति)=प्रत्यर्थम् (प्रत्येक अर्थ में) ।

" (अनतिक्रम), यथा—यथा+शक्ति (शक्तिमनतिक्रम्य) =यथाशक्ति (शक्ति के अनुसार) ।

" (सादृश्य), यथा—सह+हरि (हरेः सादृश्यम्)=सहरि (हरि के सदृश) ।

(११) आनुपूर्व्य (अर्थात् क्रम), यथा—अनु+ज्येष्ठ (ज्येष्ठस्यानु-पूर्व्येण)=अनुज्येष्ठम् (ज्येष्ठ के अनुसार) ।

(१२) यौगपद्य (एक साथ होना), यथा—सह[2]+चक्र (चक्रेण युगपत्) =सचक्रम् अर्थात् चक्र के साथ ही (अव्ययीभाव समास में काल से भिन्न अर्थ में सह का 'स' हो जाता है) ।

(१३) सादृश्य का उदाहरण ऊपर (१०) के अन्तर्गत आ चुका है ।

---

१ योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थाः (भट्टोजिकृत वृत्ति से)

२ अव्ययीभावे चाकाले ।६।३।८१।

(१४) सम्पत्ति (योग्यतानुसार सम्पत्ति को 'सम्पत्ति' कहते हैं, योग्यता से अधिक किसी देवता आदि के प्रसाद से प्राप्त हो तो उसे 'समृद्धि' या ऋद्धि कहते हैं । इसी कारण ऊपर 'समृद्धि' के आ चुकने पर भी यहाँ 'सम्पत्ति' शब्द आया), यथा—स+क्षत्र (क्षत्राणां सम्पत्तिः)=सक्षत्रम् ।

(१५) साकल्य (सब को शामिल कर लेना), यथा—सह+तृणम् (तृणमपि अपरित्यज्य)=सतृणम् (सब कुछ) ।

(१६) अन्त ('तक' के अर्थ में), यथा—सह+अग्नि (अग्निग्रन्थपर्य्यन्तम्)=साग्नि (अग्निकाण्डपर्यन्त) ।

काल[1] से अतिरिक्त अर्थ में अव्ययीभाव समास में 'सह' का स हो जाता है । कालवाचक शब्द के साथ समास किये जाने पर 'सह' ही रहता है; यथा—सह+पूर्वाह्ण=सहपूर्वाह्णम् होगा ।

अवधारण[2] अर्थ में 'यावद्' के साथ भी अव्ययीभाव समास बनता है; जैसे 'यावन्तः श्लोकास्तावन्तोऽच्युतप्रणामाः'—इस अर्थ में यावच्छ्लोकम् समासपद बनेगा ।

मर्यादा[3] और अभिविधि के अर्थ में आङ् के साथ विकल्प से अव्ययीभाव समास बनते हैं । समास न करने पर पञ्चमी विभक्ति करनी पड़ती है; जैसे आ मुक्तेः इति आमुक्ति अर्थात् मुक्ति-पर्यन्त । 'आमुक्ति (आ मुक्तेर्वा) संसारः' । इसी प्रकार अभिविधि में 'आबालम् (आ बालेभ्यो वा) हरिभक्तिः' ।

आभिमुख्यद्योतक[4] "अभि" और "प्रति" लक्षण अर्थात् चिह्नवाची पद के साथ अव्ययीभाव समास बनाते हैं; जैसे—अग्निमभि इति अभ्यग्नि, अग्निं प्रति इति प्रत्यग्नि । अभ्यग्नि प्रत्यग्नि (अग्नि की ओर) शलभाः पतन्ति ।

---

१ द्रष्टव्य पिछले पृष्ठ का नोट नं० २ ।

२ यावदवधारणे ।२।१।८।

३ आङ् मर्यादाभिविध्योः ।२।१।१३।

४ लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये ।२।१।१४।

जिस[1] पदार्थ से किसी का सामीप्य दिखाया जाता है, उस लक्षणभूत पदार्थ के साथ सामीप्यसूचक "अनु" अव्ययीभाव बनता है; ; जैसे अनुवनमशनिर्गतः (वनस्य समीपमित्यर्थः) ।

"पारे"[2] और "मध्ये" (सप्तम्यन्त) शब्द षष्ठचन्त पद के साथ अव्ययीभाव समास बनाते हैं, और विकल्प से षष्ठी तत्पुरुष भी; जैसे गङ्गायाः पारे इति पारेगङ्गम् गङ्गापारे । इसी प्रकार मध्येगङ्गम् या गङ्गामध्ये ।

१०६––तत्पुरुष समास

(क) तत्पुरुष उस समास को कहते हैं, जिसमें प्रथम शब्द द्वितीय शब्द की विशेषता बताये ।

चूंकि तत्पुरुष का प्रथमपद वैशिष्ट्यबोधक होता है अथवा विशेषण का कार्य करता है और उत्तर पद विशेष होता है, और चूंकि विशेष्य प्रधान होता है, इसीलिए तत्पुरुष की प्रायेण, 'उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः'—ऐसी व्याख्या की गई है ।

जैसे—राज्ञः पुरुषः=राजपुरुषः—यहाँ "राज्ञः" एक प्रकार से "पुरुषः" का विशेषण है, अथवा कृष्णः सर्पः=कृष्णसर्पः—"कृष्णः" शब्द "सर्पः" शब्द का विशेषण है। (किन्तु नित्य-समास वाले कृष्णसर्प का विग्रह नहीं होगा) ।

(ख) तत्पुरुष शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं—(१) तस्य पुरुषः= तत्पुरुषः (२) सः पुरुषः=तत्पुरुषः । इन दो अर्थों के अनुसार ही तत्पुरुष समास के दो मुख्य भेद हैं । (१) व्यधिकरण अर्थात् जिसमें समास का प्रथम शब्द किसी दूसरी विभक्ति में हो, (२) समानाधिकरण अर्थात् जिसमें प्रथम शब्द की विभक्ति और दूसरे शब्द की विभक्ति एक ही हो । ऊपर के उदाहरणों में "राजपुरुषः" व्यधिकरण तत्पुरुष का उदाहरण है और "कृष्णसर्पः" समानाधिकरण का ।

११०––व्यधिकरणतत्पुरुष समास

व्यधिकरण तत्पुरुष समास के छः भेद होते हैं—

(१) द्वितीया तत्पुरुष ।

(२) तृतीया तत्पुरुष ।

---

१ अनुर्यत्समया ।२।१।१५।

२ पारे मध्ये षष्ठ्या वा ।२।१।१८।

(३) चतुर्थी तत्पुरुष ।
(४) पञ्चमी तत्पुरुष ।
(५) षष्ठी तत्पुरुष ।
(६) सप्तमी तत्पुरुष ।

यदि समास का प्रथम शब्द द्वितीया विभक्ति में रहा हो, तो वह "द्वितीया तत्पुरुष" होगा । इसी प्रकार जिस विभक्ति में प्रथम शब्द रहेगा, उसी के नाम पर इस समास का नाम होगा ।

सात विभक्तियों में केवल प्रथमा विभक्ति शेष रही । यदि प्रथम शब्द प्रथमा विभक्ति में रहे तो व्यधिकरण तत्पुरुष हो ही नहीं सकता, समानाधिकरण हो जायगा । इस कारण ये छः ही भेद व्यधिकरण के होते हैं ।

(क) **द्वितीया तत्पुरुष**—यह समास थोड़े से ही शब्दों में होता है । मुख्य ये हैं—

(१) द्वितीया[1] जब श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यन्त, प्राप्त, आपन्न शब्दों के संयोग में आती है, तब द्वितीया तत्पुरुष समास होता है;

यथा—

कृष्णं श्रितः=कृष्णाश्रितः (कृष्ण पर आश्रित हुआ) ।
दुःखमतीतः=दुःखातीतः (दुःख के पार गया हुआ) ।
अग्नि पतितः=अग्निपतितः (अग्नि में गिरा हुआ) ।
प्रलयं गतः=प्रलयगतः (विनाश को प्राप्त) ।
मेघम् अत्यस्तः=मेघात्यस्तः (मेघ के पार पहुँचा हुआ) ।
जीवनं प्राप्तः=जीवनप्राप्तः (जीवन पाया हुआ) ।
कष्टम् आपन्नः=कष्टापन्नः (कष्ट पाया हुआ) इत्यादि ।

आपन्न[2] और प्राप्त शब्द द्वितीयान्त के साथ समास बनाने पर प्रथम भी प्रयुक्त होते हैं जैसे प्राप्तजीवनः और आपन्नकष्टः ।

---

१ द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः ।२।१।२४।

२ प्राप्तापन्ने च द्वितीयया ।२।२।४।

गमी[1] आदि शब्दों के साथ भी द्वितीया तत्पुरुष होता है; जैसे, ग्रामं गमी इति ग्रामगमी । अन्नं बुभुक्षुः इति अन्नबुभुक्षुः (अन्न का भूखा) ।

कालवाची[2] द्वितीयान्त शब्द क्तान्त कृदन्त शब्दों के साथ द्वितीया तत्पुरुष समास बनाते हैं । जैसे मासं प्रमितः (परिच्छेत्तुमारब्धवानित्यर्थः) इति 'मासप्रमितः' प्रतिपच्चन्द्रः ।

अत्यन्त संयोग[3] या सातत्य व्यक्त करने वाले कालवाची द्वितीयान्तशब्द भी द्वितीया तत्पुरुष समास बनाते हैं, जैसे, मुहूर्तम् सुखमिति मुहूर्तसुखम् । इसी प्रकार मुहूर्तव्यापि, क्षणस्थायि इत्यादि ।

टिप्पणी—इस बात को ध्यान में रखना चहिए कि पहिला नियम केवल कालवाचक शब्दों के विषय में है और दूसरा अत्यन्तसंयोग प्रकट करने वाले कालवाचक शब्दों के विषय में है । पहले में कालवाचक शब्द केवल क्तान्त कृदन्तों के साथ द्वितीया तत्पुरुष बनाते हैं, परन्तु दूसरे में उत्तरपद क्तान्त नहीं नहीं होता ।

(ख) **तृतीया तत्पुरुष**—जब तत्पुरुष समास का प्रथम शब्द तृतीया विभक्ति में हो तब उसे तृतीया तत्पुरुष कहते हैं । यह समास अधिकतर इन दशाओं में होता है—

(१) जब[4] तृतीययान्त कर्त्ता या करण कारक हो और साथ वाला शब्द कृदन्त हो; यथा—

हरिणा त्रातः=हरित्रातः (इस उदाहरण में "हरिणा" तृतीयान्त है और कर्त्ता है, और "त्रातः" कृदन्त है जो 'क्त' प्रत्यय से बना है) ।

नखैर्भिन्नः=नखभिन्नः (यहाँ "नखैः" तृतीयान्त है और करण है और "भिन्नः" कृदन्त है जो 'भिद्' धातु से क्त प्रत्यय जोड़कर बना है)।

---

१ गम्यादीनामुपसंख्यानम् ।

२ कालाः ।२।१।२८।

३ अत्यन्तसंयोगे च ।२।१।२९।

४ कर्तृकरणे कृता बहुलम् ।२।१।३२।

जब[1] तृतीयान्त शब्द के साथ पूर्व, सदृश, सम, शब्दों में से कोई आवे अथवा ऊन (कम), कलह (लड़ाई), निपुण (चतुर), मिश्र (मिला हुआ), श्लक्ष्ण (चिकना) शब्दों में से अथवा इनके समान अर्थ रखने वालों में से कोई शब्द आवे; यथा—

मासेन पूर्वः=मासपूर्वः, मात्रा सदृशः=मातृसदृशः, पित्रा समः= पितृसमः, धान्येन ऊनम्=धान्योनम्, धान्येन विकलम्=धान्यविकलम्, वाचा कलहः= वाक्कलहः, वाचा युद्धं=वाग्युद्धं, आचारेण निपुणः=आचारनिपुणः, आचारेण कुशलः=आचारकुशलः, गुडेन मिश्रं=गुडमिश्रम्, गुडेन युक्तम्= गुडयुक्तम्, घर्षणेन श्लक्ष्णम्=घर्षणश्लक्ष्णम्, कुट्टनेन श्लक्षणग्=कुट्टनश्लक्षणम् अर्थात् कूटने से चिकना।

अवर[2] शब्द की भी गणना इन्हीं शब्दों के साथ करनी चाहिए। अर्थात् अवर के साथ भी तृतीया तत्पुरुष समास बनेगा; जैसे मासेन अवरः=मासावरः, अर्थात् एक माह छोटा।

संस्कार[3] करने वाले द्रव्य का वाचक तृतीयान्त शब्द अन्न-वाचक शब्द के साथ तृतीया तत्पुरुष समास बनाता है, जैसे दध्ना ओदनः इति दध्योदनः।

(घ) **चतुर्थी तत्पुरुष**—जब तत्पुरुष समास का शब्द चतुर्थी विभक्ति में रहे, तब उसे चतुर्थी तत्पुरुष कहते हैं। मुख्यतया यह तब होता है, जब कोई वस्तु (जो किसी से बनी हो या बनती हो) चतुर्थी में आवे और जिससे वह बनी हो वह उसके अनन्तर आवे; जैसे—

यूपाय दारु=यूपदारु, कुम्भाय मृत्तिका=कुम्भमृत्तिका।

चतुर्थ्यन्त[4] शब्द तदर्थ, बलि, हित, सुख तथा रक्षित के साथ भी चतुर्थी तत्पुरुष बनाते हैं; जैसे, द्विजाय अयमिति द्विजार्थः। भूतेभ्यो बलिः इति भूत-बलिः। ब्राह्मणाय हितम् इति ब्राह्मणहितम्। इसी प्रकार गोहितम्, गोसुखम्, गोरक्षितम् इत्यादि

---

१ पूर्वसदृशसमानार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः।२।१।३१।

२ अवरस्योपसंख्यानम् (वार्त्तिक)।

३ अन्नेन व्यञ्जनम्।२।१।३४।

४ चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः।२।१।३६।

नोट—अर्थ[1] शब्द के साथ जो समास बनते हैं, वे वस्तुतः चतुर्थी तत्पुरुष होते हुए भी नित्य समास कहाते हैं, क्योंकि उनका अपने पदों से विग्रह हो ही नहीं सकता। उन समस्त पदों के लिङ्ग विशेष्य के अनुसार होते हैं।

(च) **पञ्चमी तत्पुरुष**—जब तत्पुरुष समास का प्रथम शब्द पञ्चमी विभक्ति में आवे, तब उस तत्पुरुष समास को पञ्चमी तत्पुरुष कहते हैं।

मुख्यरूप[2] से यह समास तब होता है, जब पञ्चम्यन्त शब्द 'भय, भीति और भी' के साथ आवे; जैसे—

चौराद् भयं=चौरभयं, स्तेनाद् भीतः=स्तेनभीतः, वृकाद् भीतिः=वृकभीतिः, अयशसः भीः=अयशोभीः, इत्यादि।

(छ) स्तोक[3], अन्तिक, दूर तथा इनके वाचक अन्य शब्द एवं कृच्छ्र, शब्द पञ्चम्यन्त के साथ समास बनाते हैं परन्तु पञ्चमी का लोप नहीं होता; जैसे—

स्तोकात् मुक्तः=स्तोकान्मुक्तः,
अन्तिकात् आगतः=अन्तिकादागतः,
दूरात् आगतः=दूरादागतः,
कृच्छ्रात् आगतः=कृच्छ्रादागतः,

(ज) **षष्ठी तत्पुरुष**[4] समास उसे कहते हैं जिसमें प्रथम शब्द षष्ठी विभक्ति में हो। यह समास प्रायः सभी षष्ठ्यन्त शब्दों के साथ होता है। जैसे—राज्ञः पुरुषः=राजपुरुषः।

इसके कुछ अपवाद हैं, उनमें से मुख्य-मुख्य यहाँ दिये जाते हैं—

(१) जब[5] षष्ठी तृच् प्रत्यय में अन्त होने वाले कर्त्ता, भर्त्ता, स्रष्टा

---

१ अर्थेन नित्यसमासो विशेषलिङ्गता चेति वक्तव्यम्। (वार्त्तिक)

२ पञ्चमी भयेन।२।१।३७। भयभीतभीतिभीभिरिति वाच्यम्। (वार्त्तिक)

३ स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन।२।१।३९।

४ षष्ठी।२।२।८।

५ तृजकाभ्यां कर्तरि।२।२।१५। (और जहाँ 'त्रिभुवनविधातुः' आदि में षष्ठी समास दिखाई पड़े उसे शेषे षष्ठी वाली समझनी चाहिए, कर्त्तरि षष्ठी नहीं)।

आदि अथवा अक् प्रत्यय में अन्त होने वाले पाचक, याचक, सेवक आति कर्तृ-वाचक शब्दों के साथ आवे; जैसे—

घटस्य कर्त्ता, जगतः स्रष्टा, धनस्य हर्ता, अन्नस्य पाचकः ।

किन्तु याजक[1] इत्यादि शब्दों के साथ षष्ठी समास होता है; जैसे—ब्राह्मणयाजकः । "इत्यादि" शब्द से पूजक, परिचारक, परिवेषक, स्नातक, अध्यापक, उत्पादक, होतृ, पोतृ, भर्तृ (पति), रथगणक तथा पत्तिगणक शब्दों को समझना चाहिए । इनके साथ षष्ठी-समास बनता है ।

(२) निर्धारण[2] (किसी वस्तु की दूसरों से विशिष्टता दिखाने) के अर्थ में प्रयोग में आई हुई षष्ठी का समास नहीं होता; जैसे—

'नृणां द्विजः श्रेष्ठः', 'गवां कृष्णा बहुक्षीरा' इत्यादि में समास नहीं होगा ।

किन्तु[3] यदि तरप् प्रत्यय में अन्त होने वाले गुणवाची शब्द के साथ षष्ठी आवे तो वहाँ समास हो जायगा और साथ ही साथ तरप् प्रत्यय का लोप भी हो जायगा; जैसे—

सर्वेषां श्वेततरः सर्वश्वेतः, सर्वेषां महत्तरः सर्वमहान् ।

पूरणार्थक[4] प्रत्ययों से बने हुए शब्दों के साथ, गुणवाचक शब्दों के साथ, सुहित अर्थात् तृप्ति अर्थ वाले शब्दों के साथ, शतृ एवं शानच् प्रत्ययान्त शब्दों के साथ, कृदन्त अव्ययों के साथ, तव्य प्रत्यय से बने शब्दों के साथ तथा समा-नाधिकरण शब्दों के साथ षष्ठी तत्पुरुष समास नहीं होता । जैसे—सतां षष्ठः, काकस्य कार्ष्ण्यम्, फलानां सुहितः, द्विजस्य कुर्वन् कुर्वाणो वा, ब्राह्मणस्य कृत्वा ब्राह्मणस्य कर्त्तव्यम्, तक्षकस्य, सर्पस्य ।

टिप्पणी—तव्यत् से बने शब्दों के साथ षष्ठी समास होता है । वस्तुतः तव्य और तव्यत् में कोई अन्तर नहीं । तत् से केवल इतना सूचित होता है कि

---

१ याजकादिभिश्च ।२।२।९।

२ न निर्धारणे ।२।२।१०।

३ गुणात्तरेण तरलोपश्चेति वक्तव्यम् । (वार्त्तिक)

४ पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन ।२।२।११।

तव्यत् से बने शब्द स्वरित स्वर वाले होते हैं। 'स्वकर्त्तव्यम्' समस्त पद तो बनेगा ही और उसमें अन्तस्वरित होगा। समानाधिकरण के भी सम्बन्ध में इतना जानना आवश्यक है कि विशेषणपूर्वपदकर्मधारय (जो समानाधिकरण तत्पुरुष का एक भेद है और जिसमें दोनों पद समानाधिकरण अर्थात् समान लिङ्ग और विभक्ति वाले होते हैं) के अतिरिक्त समानाधिकरण शब्दों में ही समास का निषेध इस स्थल में किया गया है।

पूजार्थवाची[1] क्त प्रत्ययान्त शब्दों के साथ भी षष्ठी तत्पुरुष समास नहीं होता; जैसे राज्ञां मतो वुद्धः पूजितो वा। 'राजमतः' इत्यादि पद नहीं वन सकते।

सप्तमी तत्पुरुष समास उसे कहते हैं, जिसका प्रथम शब्द सप्तमी विभक्ति में रहा हो। यह समास भी विशेष दशाओं में ही होता है। कुछ ये हैं—

(१) जव[2] सप्तम्यन्त शब्द शौण्ड (चतुर), धूर्त, कितव (शठ), प्रवीण, संवीत (भूषित), अन्तर, अधि, पट, पण्डित, कुशल, चपल, निपुण, सिद्ध[3], शुष्क, पक्व और वन्ध इन शब्दों में से किसी के साथ आवे; जैसे—

अक्षेषु शौण्डः = अक्षशौण्डः, प्रेम्णि धूर्तः=प्रेमधूर्तः, द्यूते कितवः =द्यूतकितवः, सभायां पण्डितः=सभापण्डितः, आतपे शुष्कः=आतपशुष्कः, कटाहे पक्वः=कटाह पक्वः, चक्रे वन्धः+चक्रवन्धः।

(२) जव[4] ध्वाङक्ष (कौवा) शब्द अथवा इसके समान अर्थ रखने वाले शब्दों के साथ, निन्दा करने के लिए सप्तमी आवे; जैसे—

तीर्थे ध्वाङक्षः=तीर्थध्वाङक्षः (तीर्थ का कौवा अर्थात् लोलुप), श्राद्धे काकः=श्राद्धकाकः इत्यादि।

समानाधिकरण तत्पुरुष समास

१११ (क)—समानाधिकरण का अर्थ है ऐसी वस्तुएँ जिनका अधिकरण समान अर्थात् एक हो, जैसे—यदि गोविन्द और श्याम एक ही आसन पर बैठे

---

१ क्तेन च पूजायाम् ।२।२।१२।

२ सप्तमी शौण्डैः ।२।१।४०।

३ सिद्धशष्कपक्ववन्धैश्च ।२।१।४१।

४ ध्वाङक्षेण क्षेपे ।२।१।४२। ध्वाङक्षेणेत्यर्थग्रहणम् (वार्त्तिक)।

हों तो वह आसन उन दोनों का समानाधिकरण हुआ, किन्तु यदि दोनों अलग-अलग आसनों पर बैठे हों तो अलग-अलग अधिकरण हुआ, अर्थात् "व्यधिकरण" हुआ। इसी प्रकार यदि एक ही समय में दो मनुष्य उपस्थित हों तो उनकी उपस्थिति समानाधिकरण हुई और यदि भिन्न-भिन्न समय में हों तो उपस्थिति व्यधिकरण हुई। इसी प्रकार शब्दों के विषय में भी; जैसे——

राज्ञः+पुरुषः—इसमें यह आवश्यक नहीं कि राजा और उसका पुरुष दोनों एक स्थान और एक समय में हों, इसलिए यहाँ समानाधिकरण नहीं है, किन्तु कृष्णः+सर्पः यहाँ कालापन साँप के साथ-साथ है, वह साँप जहाँ-जहाँ और जिस-जिस समय में रहेगा, कालापन भी उसके साथ-साथ रहेगा, नहीं तो उसको कृष्णः सर्पः नहीं कह सकेंगे, इसलिए इस उदाहरण में समानाधिकरण है।

(ख) तत्पुरुष[1] समास का लक्षण ऊपर बता आये हैं कि ऐसा समास जिसका प्रथम शब्द दूसरे का विशेषण-स्वरूप हो। ऐसा तत्पुरुष समास जिसमें (समास में आये हुए) दोनों शब्दों का समानाधिकरण हो, समानाधिकरण तत्पुरुष अथवा कर्मधारय तत्पुरुष कहलाता है। कर्मधारय समास की क्रिया समास के दोनों शब्दों को धारण कर सकती है, इसलिए यह नाम पड़ा है; जैसे—'कृष्णसर्पः अपसर्पति' इस वाक्य में सर्प जब-जब क्रिया करता है, तो कृष्णत्व उसके साथ रहता है। "राज्ञः पुरुषः अपसर्पति" में राजा पुरुष के साथ नहीं है।

(ग) व्यधिकरण तत्पुरुष और समानाधिकरण तत्पुरुष में मोटे तौर से यह भेद है कि पहले में समास शब्द प्रथमा को छोड़कर और किसी विभक्ति में होता है, दूसरे में प्रथमा में होता है।

(घ) कर्मधारय समास में प्रथम शब्द या तो द्वितीया का विशेषण होना चाहिए और द्वितीया शब्द संज्ञा होना चाहिए, अथवा दोनों संज्ञा हों, किन्तु प्रथम विशेषण स्थानीय हो अथवा दोनों विशेषण हों जिसमें समय पड़ने पर किसी तीसरे शब्द का संयुक्त विशेषण रहे। नीच कई प्रकार के कर्मधारय समास दिये जाते हैं।

११२ (क)——जब[2] प्रथम शब्द विशेषण हो और दूसरा विशेष्य, तो उस कर्मधारय समास को 'विशेषणपूर्वपद कर्मधारय' कहते हैं, जैसे—कृष्णः

---

१ तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः।१।२।४२।

२ विशेषणं विशेष्येण बहुलम्।२।१।५७।

सर्पः=कृष्णसर्पः। नीलम् उत्पलम्=नीलोत्पलम्। रक्तं कमलम्=रक्त-कमलम्।

(१) 'किम्' शब्द[1] का अर्थ जब 'खराब', 'बुरा' होता है, तब इस पद का समास किसी संज्ञा से होकर पूरा कर्मधारय समास हो जाता है; जैसे—

कुत्सितः पुरुषः=किम्पुरुषः, कुत्सितः देशः=किंदेशः, कुत्सितः सखा=किंसखा, कुत्सितः प्रभुः=किम्प्रभुः।

(ख) उपमानपूर्वपदकर्मधारय

जब[2] किसी वस्तु से उपमा दी जाय तो वह वस्तु जिससे उपमा दी जाय और वह गुण जिसकी उपमा हो, मिल कर कर्मधारय समास होंगे और इस समास का नाम 'उपमानपूर्वपद कर्मधारय' होगा। जैसे घनः इव श्यामः=घनश्यामः। चन्द्रः इव आह्लादकः=चन्द्राह्लादकः।

प्रथम उदाहरण में किसी वस्तु की बादल से उपमा दी गई है और यह बतलाया गया है कि वह वस्तु ऐसी श्याम है जैसे बादल। यहाँ 'बादल' उपमान और 'श्याम' सामान्य गुण है। इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में 'चन्द्र' उपमान और 'आह्लादक' सामान्य गुण है। इस समास में उपमान प्रथम आता है, इसीलिए इसको 'उपमानपूर्वपद' कहते हैं।

(ग) उपमानोत्तरपदकर्मधारय

जब[3] उपमित (जिस वस्तु की उपमा दी जाय) और उपमान (जिससे उपमा दी जाये)—दोनों साथ-साथ आवें, तब उस कर्मधारय समास को 'उपमानोत्तरपद कर्मधारय' कहते हैं, क्योंकि यहाँ उपमान प्रथम शब्द न होकर द्वितीय होता है; जैसे—मुखं कमलमिव=मुखकमलम्। पुरुषः व्याघ्रः इव=पुरुषव्याघ्रः।

नोट—(ख) के अन्तर्गत समासों में वह गुण कर दिया गया है जिसके कारण उपमा होती है, यहाँ (ग) के अन्तर्गत समासों में वह गुण प्रकट नहीं किया जाता; केवल यह बता दिया जाता है कि उपमेय और उपमान समान हैं।

१ किं क्षेपे।२।१।६४।

२ उपमानानि सामान्यवचनैः।२।१।५५।

३ उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे।२।१।५६।

मुखकमलम्, पुरुषव्याघ्रः आदि इस श्रेणी के समासों का दो प्रकार से विग्रह कर सकते हैं। (१) मुखमेव कमलम् और पुरुषः एव व्याघ्रः और (२) मुखं कमलमिव और पुरुषः व्याघ्र इव।

पहले को रूपक समास कहेंगे क्योंकि एक पर दूसरे को आरोप किया गया है। (काव्यों के प्राचीन टीकाकारों ने ऐसे रूपक समास के स्थलों पर मयूर-व्यंसकादि समास माना है।) और दूसरे को उपमितसमास कहेंगे; क्योंकि इसमें उपमा है।

(घ) विशेषणोभयपदकर्मधारय

दो समानाधिकरण विशेषणों के समास को 'विशेषणोभयपद कर्मधारय' कहते हैं; जैसे—कृष्णश्च श्वेतश्च=कृष्णश्वेतः (अश्वः)।

इसी प्रकार दो क्त प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द जो वस्तुतः विशेषण ही होते हैं, इसी प्रकार समास बनाते हैं, जैसे—स्नातश्च अनुलिप्तश्च=स्नातानुलिप्तः।

दो विशेषणों में से एक दूसरे का प्रतिवादी भी हो सकता है; जैसे—चरञ्च अचरञ्च=चराचरम् (जगत)। कृतञ्च अकृतञ्च=कृताकृतम् (कर्म)।

द्विगु समास

११३—जब[1] कर्मधारय समास में प्रथम शब्द संख्यावाची हो और दूसरा कोई संज्ञा, तो उस समास को 'द्विगु समास' कहते हैं।

'द्विगु' शब्द में स्वयं प्रथम शब्द 'द्वि' संख्यावाची और दूसरा 'गु' (गो) संज्ञा है।

(क) द्विगु[2] समास तभी होता है, जब या तो उसके अनन्तर कोई तद्धित प्रत्यय लगता हो; जैसे—

---

१ संख्यापूर्वो द्विगुः।२।१।३२।

२ तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च।२।१।५१।

(१) षष्+मातृ=षण्मातृ+अ (तद्धित प्रत्यय)=षाण्मातुरः (षण्णां मातॄणामपत्यं पुमान्);

या उसको किसी और शब्द के समास में आना हो; जैसे—

(२) पञ्चगावः धनं यस्य सः=पञ्चगवधनः।

यहाँ 'पञ्चगव' यह द्विगु समास न बनता यदि उसको 'धन' के साथ फिर समास में न आना होता। उपर्युक्त समास साधारण द्विगु (सामान्य द्विगु) के उदाहरण समझे जाने चाहिए।

(ख) या द्विगु[1] समास किसी समूह (समाहार) का द्योतक हो। इस दशा में वह सदा नपुंसकलिङ्ग[2] एकवचन में रहेगा; जैसे—

पञ्चानां गवां समाहारः=पञ्चगवम्।

पञ्चानां ग्रामाणां समाहारः=पञ्चग्रामम्।

पञ्चानां पात्राणाम् समाहारः=पञ्चपात्रम्।

चतुर्णां युगानां समाहारः=चतुर्युगम्।

त्रयाणां भुवनानां समाहारः=त्रिभुवनम् इत्यादि।

(३) वट, लोक तथा मूल इत्यादि अकारान्त शब्दों के साथ समाहार द्विगु समास होने पर समस्त पद ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग हो जाता है। परन्तु पात्र, भुवन, युग इत्यादि में अन्त होने वाले द्विगु समास नहीं।

पञ्चानां मूलानां समाहारः=पञ्चमूली।[3]

पञ्चानां वटानां समाहारः=पञ्चवटी।

त्रयाणां लोकानां समाहारः=त्रिलोकी।

(४) यदि[4] समाहार द्विगु का उत्तरपद आकारान्त हो तो समस्तपद विकल्प से स्त्रीलिङ्ग होता है।

पञ्चानां खट्वानां समाहारः=पञ्चखट्वा।

---

१ द्विगुरेकवचनम्।२।४।१।

२ स नपुंसकम्।२।४।१७। अर्थात् समाहार में द्विगु और द्वन्द्व नपुंसकलिङ्ग में होते हैं।

३ अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः। पात्रान्तस्य न। (वार्तिक)

४ आबन्तो वा (वार्तिक)

११४––अन्यतत्पुरुष समास

ऊपर तत्पुरुष समास के जो मुख्य दो भेद व्यधिकरण और समानाधिकरण हैं, उनका विचार किया गया है। यहाँ कुछ ऐसे तत्पुरुष समासों का विचार किया जायगा जो वस्तुतः तत्पुरुष होते हुए भी कुछ वैशिष्ट्य रखते हैं।

(क) नञ् तत्पुरुष समास

जब तत्पुरुष में प्रथम शब्द 'न' (नञ्) रहे और दूसरा कोई संज्ञा या विशेषण रहे तो उसे यह नाम दिया जाता है।[1] यह 'न' व्यञ्जन के पूर्व 'अ' में और स्वर के पूर्व 'अन्' में बदल जाता है[2] यथा––

न ब्राह्मणः=अब्राह्मणः (ऐसा मनुष्य जो ब्राह्मण न हो), न गर्दभः= अगर्दभः (ऐसा जानवर जो गदहा न हो); न अब्जम्=अनब्जम् (जो कमल न हो); न सत्यम्=असत्यम्; न चरम्=अचरम्; न कृतम्=अकृतम्; न आगतम्=अनागतम्।

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि 'न' शब्द भी एक प्रकार से विशेषण का कार्य करता है, इसलिए तत्पुरुष का मुख्य भाव कि समास का प्रथम शब्द विशेषण अथवा विशेषणस्थानीय होना चाहिए, विद्यमान है।

(ख) प्रादि तत्पुरुष समास

जब तत्पुरुष में प्रथम शब्द कु शब्द हो अथवा 'प्र' आदि उपसर्गों में से कोई हो, अथवा गतिसंज्ञक कोई पद हो, तब उसे 'प्रादि' तत्पुरुष कहते हैं।[3]

इन प्र आदि उपसर्गों से विशेष विशेषण का अर्थ निकलता है, इसीलिये यह एक प्रकार से कर्मधारय समास है। उदाहरणार्थ––

कुत्सितः पुरुषः=कुपुरुषः।

प्रगतः[4] (बहुत विद्वान्) आचार्यः=प्राचार्यः,

---

१ नञ्। २।२।६।

२ नलोपो नञः। ६।३।३। तस्मान्नुडचि। ६।३।७४।

३ कुगतिप्रादयः। २।२।१८।

४ प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया।

प्रगतः (वड़े) पितामहः=प्रपितामहः,

अतिक्रान्तः[1] मर्यादाम्=अतिमर्यादः (जिसने हद पार कर दी हो),

उद्गतः (ऊपर पहुँचा हुआ) वेलाम् (किनारा)=उद्वेलः,

अवक्रुष्टः[2] कोकिलया=अवकोकिलः (कोकिला से उच्चारण किया हुआ—मुग्ध)

परिग्लानोऽध्ययनाय[3] =पर्यध्ययनः (पढ़ने से थका हुआ),

निर्गतः[4] गृहात्=निर्गृहः (घर से निकला हुआ) इत्यादि ।

(ग) गति· तत्पुरुष समास

कुछ कृत् प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के साथ कुछ विशेष शब्दों (ऊरी आदि) का समास होता है, तब उस समास को गति तत्पुरुष कहते हैं ।

ऊरी[5] आदि निपात क्रिया के योग में गति कहलाते हैं । इसी से यह समास गति-समास कहलाता है । च्वि तथा डाच् प्रत्ययों से युक्त शब्द भी गति कहलाते हैं । दो एक उदाहरण ये हैं—

ऊरी कृत्वा=ऊरीकृत्य । शुक्लीभूय (सफेद होकर) । नीलीकृत्य (नीला करके) । इसी प्रकार स्वीकृत्य, पटपटाकृत्य ।

'भूषण'[6] अर्थवाची होने पर 'अलम्' की भी गति संज्ञा होती है । अलं (भूषितं) कृत्वा—अलंकृत्य (भूषित करके) ।

आदर[7] तथा अनादर अर्थ में 'सत्' और 'असत्' भी क्रमशः गति कहलाते हैं, जैसे, सत्कृत्य (आदर करके) ।

---

१ अत्यादयः क्रान्त्याद्यर्थे द्वितीयया ।

२ अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया ।

३ पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या ।

४ निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या ।

५ ऊर्यादिच्विडाचश्च ।१।४।६१।

६ भूषणेऽलम् ।१।५।६४।

७ आदरानादरयोः सदसती ।१।४।६३।

अपरिग्रह[1] से भिन्न (अर्थात् मध्य) अर्थ में "अन्तर्" भी गति कहलाता है; जैसे, अन्तर्हत्य—मध्ये हत्वा इत्यर्थः ।

साक्षात्[2] इत्यादि भी कृधातु के साथ विकल्प से गति कहलाते हैं । गति-संज्ञक होने पर 'साक्षात्कृत्य' बनेगा, अन्यथा 'साक्षात्कृत्वा' ।

पुरः[3] नित्य गति कहलाता है । समास होने पर "पुरस्कृत्य" बनेगा ।

"अस्तम्"[4] शब्द मान्त अव्यय है और गति-संज्ञक होता है । समास होने पर "अस्तंगत्य" रूप होगा ।

"तिरः"[5] शब्द अन्तर्धान के अर्थ में नित्य गति-संज्ञक होता है—तिरोभूय ।

तिरः[6] कृ के साथ विकल्प से गति होता है—तिरस्कृत्य और तिरःकृत्य या तिरःकृत्वा ।

(घ) उपपद तत्पुरुष समास

जब तत्पुरुष का प्रथम शब्द कोई ऐसा पद हो जिसके कर्म आदि रूप से रहने पर ही उस समास के द्वितीय शब्द का वह रूप सिद्ध हो सकता है, तब उसे उपपद तत्पुरुष समास कहते हैं । द्वितीय शब्द का कोई रूप क्रिया न होना चाहिए बल्कि कृदन्त का होना चाहिए, किन्तु ऐसा हो जो प्रथम शब्द के न रहने पर असम्भव हो जाए[7] । प्रथम शब्द को उपपद[8] कहते हैं, इसी से इस समास का नाम उपपद समास पड़ा । उदाहरणार्थ—

कुम्भं करोति इति=कुम्भकारः ।

---

१ अन्तर परिग्रहे ।२।४।६५।

२ साक्षात्प्रभृतीनि च ।१।४।७४।

३ पुरोऽव्ययम् ।१।४।६७।

४ अस्तं च ।१।४।६८।

५ तिरोऽन्तर्धौ ।१।४।७१।

६ विभाषा कृञि ।१।५।७९।

७ उपपदमतिङ् ।२।२।१९।

८ तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ।३।१।९२।

यहाँ समास में 'कुम्भ' और 'कार' दो शब्द हैं। 'कुम्भ' कर्म रूप से उपपद है। 'कार' क्रिया का रूप नहीं, कृदन्त का है, किन्तु यदि पूर्व में उपपद न हो तो 'कारः' अपने आप नहीं ठहर सकता। 'कारः' उपपद से स्वाधीन कोई शब्द नहीं है, हम 'कारः' का प्रयोग अकेले नहीं कर सकते, केवल 'कुम्भ' या किसी और उपपद के साथ ही कर सकते हैं, जैसे—चर्मकारः, स्वर्णकारः। इसी प्रकार—सामगायतीति सामगः। यहाँ 'साम' उपपद रहने के कारण 'ग': शब्द है, 'गः' का प्रयोग अकेले नहीं हो सकता, कोई उपपद अवश्य रहना चाहिए। इसी प्रकार—धनं ददातीति धनदः, कम्बलं ददातीति कम्बलदः, गाः ददातीति गोदः आदि होगा।

जिन तृतीयान्त[1] आदि पदों के रहने पर क्त्वा और णमुल् प्रत्ययों का विधान किया जाता है, वे विकल्प से समास बनाते हैं; जैसे उच्चैःकृत्य, एकधाभूय आदि। समास न होने पर उच्चैःकृत्वा होगा।

(च) अलुक् तत्पुरुष समास

समास में प्रथम शब्द की विभक्ति के प्रत्यय का लोप हो जाता है यह ऊपर बता चुके हैं; जैसे—कुम्भ+कारः=कुम्भकारः। चरणयो-+सेवकः=चरणसेवकः। किन्तु कुछ ऐसे समास हैं जिनमें पूर्व पद की विभक्ति का लोप नहीं होता, उनको अलुक् समास कहते हैं। अलुक् समास के केवल ऐसे उदाहरण हैं जो साहित्य में पूर्व ग्रन्थकारों के ग्रंथों में मिलते हैं। उनके अतिरिक्त किसी समास में विभक्ति (प्रत्यय) का लोप न करने का हम लोगों को अधिकार नहीं है। अलुक् समास के कुछ उदाहरण ये हैं—

मनसागप्ता (किसी स्त्री का नाम), जनुषान्धः (जन्मान्ध), परस्मैपदम्, आत्मनेपदम्, दूरादागतः, देवानांप्रियः (मूर्ख), [देवप्रियः (देवताओं को प्रिय) षष्ठी तत्पुरुष समास भी बनता है, पर भिन्न अर्थ में] पश्यतोहरः (देखते-देखते चुराने वाला, अर्थात् सुनार या डाकू), युधिष्ठिरः, (युद्ध में डटा रहने वाला), अन्तेवासी (शिष्य), सरसिजम् (कमल), खेचरः (पक्षी, देव, सिद्ध आदि आकाश में चलने वाले) इत्यादि।

---

१ क्त्वा च ।१।२।२२।

(छ) मध्यमपदलोपी तत्पुरुष समास

ऐसे तत्पुरुष समास जिनमें पूर्वपद का उत्तर भाग गायब हो गया हो, जिसे साधारण दशा में रहना चाहिए था, "मध्यमपदलोपी समास" के नाम से बोले जाते हैं। ऐसे 'शाकपार्थिव' आदि समस्त शब्द प्रसिद्ध हैं। उदाहरणार्थ—

शाकप्रियः पार्थिवः=शाकपार्थिवः। देवपूजकः ब्राह्मणः=देवब्राह्मणः।

इन उदाहरणों में 'प्रिय' और 'पूजक' शब्द जो मध्य में आते हैं, रहने चाहिए थे, किन्तु नहीं रहे।

टिप्पणी—इसका नाम वार्तिककार के 'शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तर-पदलोपस्योपसंख्यानम्' वार्तिक के अनुसार शाकपार्थिव समास या उत्तरपद-लोपी समास रखना ही ठीक है। पर प्राचीन टीकाकारों की टीकाओं में इन समासों का मध्यमपदलोपी नाम भी मिलता है। इसी से ऊपर मध्यमपदलोपी शीर्षक दिया गया।

(ज) मयूरव्यंसकादि तत्पुरुष समास

कुछ ऐसे तत्पुरुष समास हैं जिनमें नियमों का प्रत्यक्ष उल्लङ्घन है, उनको पाणिनि ने मयूरव्यंसकादि नाम देकर अलग कर दिया है; जैसे—

व्यंसकः मयूरः=मयूरव्यंसकः (चालाक मोर)।

यहाँ व्यंसक शब्द विषशेण होने के कारण, प्रथम होना चाहिए था और मयूर दूसरा।

अन्यो राजा=राजान्तरम्। अन्यो ग्रामः=ग्रामान्तरम्। इसी प्रकार अन्य 'अन्तर' शब्द वाले उदाहरण होते हैं।

उदक् च अवाक् चेति उच्चावचम्। निश्चितं च प्रचितं चेति निश्चप्रचम्। चिदेव इति चिन्मात्रम्।

टिप्पणी—राजान्तरम्, चिदेव इत्यादि समास 'द्विजार्थ' की भाँति ही नित्य-समास हैं, क्योंकि इनका अपने पदों से विग्रह नहीं होता। इन्हें संस्कृत वैयाकरणों ने मयूरव्यंसकादि समास के अन्तर्गत रक्खा है। इनके अतिरिक्त जिनका विग्रह होता ही नहीं, वे भी नित्य समास कहलाते हैं; जैसे, जीमूतस्येव[1]।

---

१ इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च (वा०)

द्वन्द्व समास

११५—जब[1] ऐसे दो या अधिक पद रक्खे जाते हैं, जो 'च' शब्द से जुड़े हुए थे, तब उस समास को द्वन्द्व समास कहते हैं।

इस[2] समास में दोनों पद प्रधान रहते हैं अथवा उनके समूह का प्रधानत्व रहता है। द्वन्द्व समास तीन प्रकार का होता है—

(१) इतरेतर द्वन्द्व।
(२) समाहार द्वन्द्व।
(३) एकशेष द्वन्द्व।

टिप्पणी—एकशेष वस्तुतः समास है ही नहीं, द्वन्द्व समास की तो बात ही क्या? सिद्धान्तकौमुदी के 'सर्वसमासशेष' प्रकरण (२२) में भट्टोजिदीक्षित ने एक शेष को एक पृथक् वृत्ति ही मानी है। वृत्तियाँ इस प्रकार हैं—

'कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्च वृत्तयः। परार्थाभिधानं वृत्तिः। अर्थात् कृत्, तद्धित, समास, एकशेष तथा सन् इत्यादि प्रत्ययों से बन धातुरूप—ये पाँच प्रकार की 'वृत्तियाँ' हैं। 'वृत्ति' परार्थाभिधान को कहते हैं अर्थात् दूसरे पद के अर्थ में अन्तर्भूत जो विशेष अर्थ होता है, उसे परार्थ कहते हैं और उस परार्थ का कथन जिसके द्वारा हो, उसे वृत्ति कहते हैं। इस प्रकार एक शेष तो समास की ही भाँति एक स्वतन्त्र 'वृत्ति' है—दूसरे पद के अर्थ में अन्तर्भूत किसी विशिष्ट अर्थ को प्रकट करने का स्वतन्त्र ढंग है। परन्तु आधुनिक व्याकरण-पुस्तकों के लेखक सरलता के लिए उसे द्वन्द्व के अन्तर्गत ही रखते हैं और उसी का एक प्रकार मानते हैं। हाँ, इन आधुनिक वैयाकरणों के मत के पक्ष में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इतरेतर द्वन्द्वसमास और एकशेष और वृत्ति के विग्रह में कुछ साम्य अवश्य है और वह यह कि दोनों प्रायः एक ही प्रकार से किये जाते हैं।

(क) इतरेतर द्वन्द्व

जब समास में आये हुए दोनों पद अपना प्रधानत्व और व्यक्तित्व रखते हैं, तब उसे इतरेतर द्वन्द्व कहते हैं; जैसे—रामश्च कृष्णश्च=रामकृष्णौ।

---

१ चार्थे द्वन्द्वः।२।२।२९।

२ उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः (सि० कौ०)।

यदि दोनों मिलकर दो हों, तो द्विवचन में समास रक्खा जाता है और यदि दो से अधिक हों, तो बहुवचन में; जैसे—

रामश्च लक्ष्मणश्च=रामलक्ष्मणौ। रामश्च भरतश्च लक्ष्मणश्च=रामभरतलक्ष्मणाः, रामश्च भरतश्च लक्ष्मणश्च शत्रुघ्नश्च=रामभरतलक्ष्मणशत्रुघ्नाः।

ऋकार[1] में अन्त होने वाले (विद्या-सम्बन्ध तथा योनि-सम्बन्ध के वाचक) पद या पदों के साथ जब द्वन्द्व समास होता है, तब अन्तिम पद के पूर्व स्थित ऋकारान्त पद के स्थान में आकार हो जाता है; उदाहरणार्थ—होता च पोता चेति होतापोतारौ; माता च पिता च=मातापितरौ; होता च पोता च उद्गाता च=होतृपोतोद्गातारः।

इसी[2] प्रकार देवतावाचक पदों के द्वन्द्व में वायु को छोड़कर किसी भी शब्द के आगे रहने पर पूर्व पद के अन्त में आकार आदेश हो जाता है। जैसे—मित्रश्च वरुणश्च=मित्रावरुणौ, किन्तु वायु शब्द के रहने पर अग्निवायू ही होगा न कि अग्नावायू। किन्तु इस सूत्र की प्रवृत्ति केवल उन्हीं देवताओं के द्वन्द्व में होती है जिनका साहचर्य प्रसिद्ध है।

इस द्वन्द्व समास में (और तत्पुरुष में भी) जो अन्तिम शब्द होता है, उसी के अनुसार पूरे समास का लिङ्ग होता है; जैसे—

मयूरी च कुक्कुटश्च=मयूरीकुक्कुटौ। कुक्कुटश्च मयूरी च=कुक्कुटमयूर्यौ।

(ख) समाहार द्वन्द्व

जब समास में ऐसी संज्ञाएँ आवें जो 'च' से जुड़ी हुई होने पर अपना अर्थ बतलाती हैं, पर प्रधानतया एक समाहार (समूह) का बोध कराती हैं, तब वह समाहार द्वन्द्व कहलाता है। इस समास को सदा नपुंसकलिङ्ग एकवचन में ही रखते हैं; उदाहरणार्थ—आहारश्च निद्रा च भयञ्च=आहारनिद्राभयम।

इस समाहार में आहार, निद्रा और भय का अर्थ है, पर प्रधानतया जीवों के लक्षण का बोध होता है। जीवों में खाना, पीना, सोना और डर ये ही मुख्य

---

१ आनङ् ऋतो द्वन्द्वे।६।३।२५।

२ देवता द्वन्द्वे च।६।३।२६। वायुशब्दप्रयोगे प्रतिषेधः (वा०)

बातें होती हैं। इसी प्रकार—पाणी च पादौ च=पाणिपादम् (हाथ और पैर के अतिरिक्त प्रधानतया अङ्ग-मात्र का बोध होता है); अहिनकुलम् (साँप और नेवले के अतिरिक्त प्रधानतया ये दोनों जन्मवैरी हैं, यह बोध होता है।

समाहार[1] द्वन्द्व बहुधा उन दशाओं में होता है, जब उसमें आये हुए शब्द—

(१) मनुष्य अथवा पशु के शरीर के अङ्ग के वाचक हों—पाणी च पादौ च पाणिपादम् (हाथ और पैर)।

(२) गाने-बजाने वालों के (संघ के) अंग के वाचक हों—मार्दङ्गिकाश्च पाणविकाश्च=मार्दङ्गिकपाणविकम् (मृदङ्ग और पणव बजाने वाले)।

(३) सेना के अङ्ग के वाचक हों—अश्वारोहाश्च पदातयश्च=पदात्यश्वारोहम् (पैदल और घुड़सवार), इसी प्रकार रथिकाश्वारोहम्।

(४) अचेतन पदार्थ के वाचक हों (द्रव्य हों, गुण नहीं)—गोधूमश्च चणकश्च=गोधूमचणकम्।

(५) नदियों के भिन्न लिङ्ग वाले नाम हों—गङ्गा च शोणश्च=गङ्गाशोणम्, (किन्तु गंगा च यमुना च=गङ्गायमुने होगा क्योंकि ये एक ही लिङ्ग के हैं)।

(६) देशों के भिन्न लिङ्गों वाले नाम हों—कुरवश्च कुरुक्षेत्रञ्च=कुरुकुरुक्षेत्रम्। किन्तु यदि ग्रामों के नाम हों तो समाहार द्वन्द्व नहीं बनता; जैसे—जाम्बवं (नगर) च शालूकिनी (ग्राम) च=जाम्बवशालूकिन्यौ। परन्तु यदि दोनों नगर[2] के नाम हों तो समाहार ही होता है; जैसे—मथुरा च पाटलिपुत्रं च=मथुरापाटलिपुत्रम्।

(७) क्षुद्र जीवों के नाम हों—यूका च लिक्षा च यूकालिक्षम् (जुएँ और लीखें)।

---

१ परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः।२।४।२६। द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्।२।४।२। जातिरप्राणिनाम्।२।४।६। विशिष्टलिङ्गो नदीदेशोऽग्रामाः।२।४।७। क्षुद्रजन्तवः २।४।८। येषां च विरोधः शाश्वतिकः।२।४।९।

२ अग्रामा इत्यत्र नगरप्रतिषेधो वक्तव्यः।

(८) जन्मवैरी जीवों के नाम हों—सर्पश्च नकुलश्च=सर्पनकुलम्; मूषकश्च मार्जारश्च=मूषकमार्जारम् ।

वृक्ष[१], मृग, तृण, धान्य, व्यञ्जन, पशु, शकुनि (वृक्ष[२] इत्यादि से वृक्षविशेष इत्यादि का ग्रहण करना चाहिए) के वाचक शब्दों के समास तथा अश्ववडवे, पूर्वापरे तथा अधरोत्तरे समास भी विकल्प से समाहार द्वन्द्व समास होते हैं जैसे—प्लक्षन्यग्रोधम्, प्लक्षन्यग्रोधाः; रुरुपृषतम्, रुरुपृषताः; कुशकाशम्, कुशकाशाः; व्रीहियवन्, व्रीहियवाः; दधिघृतम्, दधिघृते; गोमहिषम्, गोमहिषाः, शुकबकम्, शुकबकाः; अश्ववडम्, अश्ववडवे; पूर्वापरम्, पूर्वापरे; अधरोत्तरम्, अधरोत्तरे ।

(ग) एकशेष द्वन्द्व

जब दो या अधिक शब्दों में से द्वन्द्व समास में केवल एक ही शेष रह जाय, तब उसको एकशेष द्वन्द्व कहते हैं; जैसे—माता च पिता च=पितरौ । श्वश्रूश्च श्वशुरश्च=श्वशुरौ ।

एकशेष[३] द्वन्द्व में केवल समान रूप वाले शब्द (जैसे रामश्च रामश्चेति रामौ; इसी प्रकार रामश्च रामश्च रामश्चेति रामाः) अथवा समान अर्थ रखने वाले विरूप शब्द भी आ सकते हैं । समास का वचन समास के अङ्गभूत शब्दों की संख्या के अनुसार होगा । यदि समास में पुंल्लिङ्ग शब्द तथा स्त्रीलिङ्ग शब्द दोनों मिले हों तो समास पुंल्लिङ्ग में रहेगा । उदाहरणार्थ—

सरूप—ब्राह्मणी च ब्राह्मणश्च=ब्राह्मणौ । शूद्री च शूद्रश्च=शूद्रौ । अजश्च अजा च=अजौ । चटकश्च चटका च=चटकौ ।

विरूप—वक्रदण्डश्च कुटिलदण्डश्च=वक्रदण्डौ या कुटिलदण्डौ । घटश्च कलशश्च=घटौ या कलशौ ।

११६—द्वन्द्व समास करते समय नीचे लिखे नियमों का ध्यान रखना चाहिए—

---

१ विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्त-राणाम् ।२।४।१२।

२ वृक्षादौ विशेषाणामेव ग्रहणम् । (वार्त्तिक)

३ सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ ।१।२६।४। विरूपाणामपि समानार्थानाम् । (वार्त्तिक)

(१) घिसंज्ञक (ह्रस्व इकारान्त[1] उकारान्त) शब्द प्रथम रखना चाहिए; जैसे—हरिश्च हरश्च=हरिहरौ ।

यदि[2] कई घिसंज्ञक हों तो एक को प्रथम रखना चाहिए, बाकी बचे हुओं को चाहे जहाँ रख सकते हैं; जैसे—

हरिश्च हरश्च गुरुश्च=हरिहरगुरवः या हरिगुरुहराः ।

(२) स्वर[3] से आरंभ होने वाले और 'अ' में अन्त होने वाले शब्द प्रथम आने चाहिए; जैसे—इन्द्रश्च अग्निश्च=इन्द्राग्नी । ईश्वरश्च प्रकृतिश्च ईश्वर-प्रकृती ।

(३) वर्णों[4] के तथा भाइयों के नाम ज्येष्ठ के क्रम से आने चाहिए; जैसे—ब्राह्मणश्च क्षत्रियश्च=ब्राह्मणक्षत्रियौ (क्षत्रियब्राह्मणौ नहीं), रामश्च लक्ष्मणश्च=रामलक्ष्मणौ (लक्ष्मणरामौ नहीं); इसी प्रकार युधिष्ठिरार्जुनौ ।

(४) जिस[5] शब्द में कम अक्षर हों, वह पहिले आना चाहिए; जैसे, शिवश्च केशवश्च=शिवकेशवौ (केशवशिवौ नहीं; क्योंकि शिव में दो अक्षर हैं, केशव में तीन) ।

बहुव्रीहि समास

११७(क)—जब[6] समास में आये हुए दोनों (या अधिक हों तो सब) शब्द मिलकर किसी अन्य शब्द के विशेषण स्वरूप रहते हैं, तो उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं । बहुव्रीहि शब्द का यौगिक अर्थ है—बहुः व्रीहिः (धान्यं) यस्य अस्ति सः बहुव्रीहिः (जिसके पास बहुत चावल हों) । इसमें दो शब्द हैं—"बहु" और "व्रीहि" । प्रथम शब्द दूसरे शब्द का विशेषण है और दोनों मिलकर

---

१ द्वन्द्वे घि ।२।२।३२।

२ अनेकप्राप्तावेकत्र नियमोऽनियमः शेषे । (वार्त्तिक)

३ अजाद्यदन्तम् ।२।२।३३।

४ वर्णानामानुपूर्व्येण । भ्रातुर्ज्यायसः । (वार्त्तिक)

५ अल्पाच्तरम् ।२।२।३४।

६ अनेकमन्यपदार्थे ।२।२।२४। अनेकं प्रथमान्तमन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमानं वा समस्यते स बहुव्रीहिः ।

किसी तीसरे के विशेषण हैं। इसीलिए इस प्रकार के समासों का नाम 'वहुव्रीहि' पड़ा।

(ख) वहुव्रीहि और तत्पुरुष में यह भेद है कि तत्पुरुष में प्रथम शब्द द्वितीय शब्द का विशेषण होता है; जैसे—पीतम् अम्वरम्=पीताम्वरम् (पीला कपड़ा)—कर्मधारय तत्पुरुष। वहुव्रीहि में इसके अतिरिक्त यह होता है कि दोनों मिलकर किसी तीसरे शब्द के विशेषण होते हैं; जैसे—पीताम्वरः=पीतम् अम्वरं यस्य सः (जिसका कपड़ा पीला हो, अर्थात् श्रीकृष्ण)।

इस प्रकार एक ही समास प्रकरण की आवश्यकतानुसार तत्पुरुष या वहुव्रीहि हो सकता है। इसके उदाहरण के लिए एक मनोरञ्जक आख्यायिका है।

एक वार एक याचक फटे-फटाये कपड़े पहने किसी राजा के निकट जाकर बोला—

'अहञ्च त्वञ्च राजेन्द्र, लोकनाथावुभावपि'। (हे राजश्रेष्ठ ! मैं भी लोकनाथ हूँ और आप भी' अर्थात् हम दोनों लोकनाथ हैं)।

याचक की यह उक्ति सुनकर सभा के राजकर्मचारी धृष्टता पर विगड़ कर कहने लगे—देखो, इस पागल को क्या सूझा कि हमारे महाराज की वरावरी करने चला है, निकालो। तव तक याचक श्लोक का दूसरा अंश भी बोल उठा—

'वहुव्रीहिरहं राजन् षष्ठीतत्पुरुषो भवान्'॥ हे नृप ! मैं वहुव्रीहि (समास) हूँ और आप षष्ठीतत्पुरुष;—अर्थात् मेरी दशा में "लोकनाथः" का अर्थ होगा "लोकाः प्रजा नाथाः पालकाः यस्य सः"—जिसकी सभी रक्षा करें और पालन करें और आपकी दशा में "लोकनाथ" का अर्थ होगा "लोकस्य नाथः"—संसार भर के स्वामी। यह सुनकर सव लोग हँस पड़े और याचक को उचित पारितोषिक देकर उसका लोकनाथत्व दूर किया गया।

वहुव्रीहि[1] समास में समास के दोनों शब्दों में से किसी में प्रधानत्व नहीं रहता, दोनों मिल कर तीसरे का (जिसके वह विशेषण स्वरूप होते हैं) ही प्राधान्य सूचित करते हैं।

---

१ अन्यपदार्थप्रधानो वहुव्रीहिः—सि० कौ०।

(ग) इस समास के मुख्य दो भेद हैं

(१) सामानाधिकरण वहुव्रीहि ।

(२) व्यधिकरण बहुव्रीहि ।

समानाधिकरण वहुव्रीहि वह है, जिसके दोनों या सभी शब्दों का एक ही अधिकरण (विभक्ति) हो, अर्थात् वे प्रथमान्त हों, जैसे—पीताम्वरः ।

व्यधिकरण वहुव्रीहि वह है, जिसके दोनों शब्द प्रथमान्त न हों; केवल एक ही शब्द प्रथमान्त हो, दूसरा षष्ठी या सप्तमी में हो, जैसे—

चन्द्रशेखरः—चन्द्रः शेखरे यस्य सः= (शिवः) ।

चक्रपाणिः—चक्रं पाणौ यस्य सः= (विष्णुः) ।

चन्द्रकान्तिः—चन्द्रस्य कान्तिः इव कान्तिः यस्य सः ।

वहुव्रीहि समास का विग्रह करने के लिए विग्रह में 'यत्' शब्द के किसी रूप का आना आवश्यक है । इस 'यत्' से प्रकट किया जाता है कि समास में आए हुए शब्द किसी अन्य शब्द से ही सम्वन्ध रखते हैं ।

११८ (क)—समानाधिकरण वहुव्रीहि के छः भेद होते हैं—

द्वितीयानिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि ।

तृतीयानिष्ठ समानाधिकरण वहुव्रीहि ।

चतुर्थीनिष्ठ समानाधिकरण वहुव्रीहि ।

पञ्चमीनिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि ।

षष्ठीनिष्ठ समानाधिकरण वहुव्रीहि और

सप्तमीनिष्ठ समानाधिकरण बहुव्रीहि ।

यह भेद विग्रह में आये हुए 'यत्' शब्द की विभक्ति से जाने जाते हैं । यदि 'यत्' द्वितीया में हो तो समास द्वितीया समानाधिकरण वहुव्रीहि होगा और इसी प्रकार अन्य भेद होंगे; उदाहरणार्थ—

द्वि० स० ब०—प्राप्तमुदकं यं सः प्राप्तोदकः (ग्रामः)—ऐसा गाँव जहाँ पानी पहुँच चुका हो । आरूढो वानरो यं स आरुढवानरः (वृक्षः) ।

तृ० स० व०—जितानि इन्द्रियाणि येन सः जितेन्द्रियः (पुरुषः)—जिसने इन्द्रियों को वश में कर रक्खा हो । ऊढः रथः येन स ऊढरथः

(अनड्वान्)—ऐसा वैल जिसने रथ खींचा हो। दत्तं चित्तं येन स दत्तचित्तः (पुरुषः)—ऐसा पुरुष जो चित्त दिये हो, लगाये हो।

च० स० व०—उपहृतः पशुः यस्मै स उपहृतपशुः (रुद्रः)—जिसके लिए पशु (वल्यर्थ) लाया गया हो। दत्तधनः (पुरुषः)।

पं० स० व०—उद्धृतम् ओदनं यस्याः सा उद्धृतौदना (थाली)—ऐसी वटलोई जिससे भात निकाल लिया गया हो। निर्गतं धनं यस्मात् स निर्धनः (पुरुषः)। निर्गतं वलं यस्मात् स निर्वलः (पुरुषः)।

ष० स० व०—पीतम् अम्वरं यस्य सः पीताम्वरः (हरिः)। महान्तौ वाहू यस्य सः महावाहुः, इसी प्रकार लम्वकर्णः, चित्रगुः।

स० स० व०—वीराः पुरुषाः यस्मिन् सः वीरपुरुषः (ग्रामः)—ऐसा गाँव जिसमें वीर पुरुष हों।

(ख) व्यधिकरण बहुव्रीहि के दोनों शव्द प्रथमा विभक्ति में नहीं रहते, केवल एक रहता है, दूसरा षष्ठी या सप्तमी में रहता है; जैसे—

चक्रं पाणौ यस्य सः चक्रपाणिः। इसी प्रकार चन्द्रशेखरः, चन्द्रकान्तिः इत्यादि।

(ग) नीचे लिखे वहुव्रीहि भी कभी-कभी पाये जाते हैं—

(१) नञ्[1] के साथ अस् अथवा अस् के समान अर्थ वाली[2] धातुओं से वने शव्द का तथा प्रादि उपसर्गों के साथ किसी धातु से वने शव्द का विकल्प से लोप हो जाता है और उनके इस प्रकार रूप वनते हैं—अविद्यमानः पुत्रः यस्य स अपुत्रः (अथवा अविद्यमानपुत्रः), उत्कन्धरः (अथवा उद्गतकन्धराः), विजीवितः (अथवा विगतजीवितः)।

(२) सह[3] और तृतीयान्त संज्ञा—सीतया सह इति ससीतः (रामः)।

११६—वहुव्रीहि वनाते समय नीचे लिखे नियमों का ध्यान रखना चाहिए—

---

१ नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तर पदलोपः। (वार्तिक)

२ प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः (वार्त्तिक)

३ तेन सहेति तुल्ययोगे ।२।२।१८।

(१) समानाधिकरण[1] वहुव्रीहि में यदि प्रथम शब्द पुंल्लिङ्ग शब्द से बना हुआ स्त्रीलिङ्ग शब्द (रूपवद्—रूपवती, सुन्दर—सुन्दरी आदि) हो किन्तु ऊकारान्त न हो और दूसरा शब्द स्त्रीलिङ्ग हो, तो प्रथम शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप हटा कर आदिम रूप (पुंल्लिङ्ग) रक्खा जाता है; जैसे—

रूपवती भार्या यस्य सः रूपवद्भार्यः (रूपवतीभार्यः नहीं) ।

इस उदाहरण में समास का प्रथम शब्द "रूपवती" था और द्वितीय "भार्या" । प्रथम शब्द "रूपवद्" (पुं०) से बना था और ऊकारान्त न था ईकारान्त था तथा द्वितीय शब्द 'भार्या' स्त्रीलिङ्ग में था । इसलिए प्रथम शब्द का पुंल्लिङ्ग रूप आ गया । इसी प्रकार—

चित्राः गावः यस्य सः चित्रगुः (चित्रागुः नहीं); इसी प्रकार जरद्भार्यः ।

परन्तु गङ्गा भार्या यस्य सः गङ्गाभार्यः (गङ्गभार्यः नहीं) क्योंकि गङ्गा शब्द किसी पुंल्लिङ्ग शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप नहीं है ।

वामोरूभार्यः—वामोरूः भार्या यस्य सः (क्योंकि यहाँ प्रथम शब्द ऊकारान्त है; आकारान्त या ईकारान्त नहीं) ।

किन्तु यदि प्रथम शब्द किसी का नाम हो, पूरणी संख्या हो, उसमें अङ्ग का नाम आता हो और वह ईकारान्त हो, जाति का नाम हो इत्यादि, अथवा यदि द्वितीय शब्द प्रियादिगण में पठित कोई शब्द या क्रमसंख्या हो, तो पूर्वपद का पुंवद्भाव नहीं होता । क्रमानुसार जैसे—

दत्ताभार्यः (जिसकी दत्ता नाम वाली स्त्री है),

पञ्चमीभार्यः (जिसकी पाँचवीं स्त्री है),

सुकेशीभार्यः (जिसकी अच्छे केशों वाली स्त्री है);

शूद्राभार्यः (जिसकी स्त्री शूद्रा है), कल्याणी प्रिया यस्य सः कल्याणीप्रियः, कल्याणी पञ्चमी यासां ताः कल्याणीपञ्चमाः ।

(२) यदि[2] समास के अन्त में इन् में अन्त होने वाले शब्द आवें और

---

१ स्त्रियाः पुंवद्भाषितस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणी प्रियादिषु ।६।३।३४।

२ इनः स्त्रियाम् ।५।४।१५२।

यदि पूरा समास स्त्रीलिङ्ग वनाना हो तो नित्य कप् (क) प्रत्यय जोड़ दिया जाता है; जैसे—

वहवः दण्डिनः यस्यां सा वहुदण्डिका (नगरी) ।

किन्तु यदि पुंल्लिङ्ग वनाना हो तो कप् जोड़ना या न जोड़ना इच्छा पर है; जैसे—

वहुदण्डिको ग्रामः, वहुदण्डी ग्रामः वा ।

यदि[1] नदीसंज्ञक पद अथवा ह्रस्व ऋकारान्त पद उत्तर पद रूप में हों तो समासान्त कप् प्रत्यय जुट जाता है, जैसे कल्याणी पञ्चमी यस्य सः कल्याण-पञ्चमीकः पक्षः ।

ईश्वरः कर्ता यस्य सः ईश्वरकर्तृकः (संसारः) ।

अन्नं धातृ यस्य सः अन्नधातृकः (पुरुषः) ।

सुशीला माता यस्य सः सुशीलमातृकः (मनुष्यः) ।

रूपवती स्त्री यस्य सः रूपवत्स्त्रीकः (मनुष्यः) ।

सुन्दरी वधूः यस्य सः सुन्दरवधूकः (पुरुषः) ।

(३) [2]उरस्, सर्पिस् इत्यादि शब्दों के अन्त में आने पर अनिवार्य रूप से कप् प्रत्यय लगता है; जैसे—

व्यूढम् उरो यस्य सः व्यूढोरस्कः (चौड़ी छाती वाला) । प्रियं सर्पिः यस्य सः प्रियसर्पिष्कः (जिसे घृत प्रिय हो) ।

(४) जव[3] वहुव्रीहि समास के अन्तिम शव्द में अन्य नियमों के अनुसार कोई विकार न हुआ हो तो उसमें इच्छानुसार कप् (क) जोड़ सकते हैं; जैसे—

उदात्तं मनः यस्य सः उदात्तमनस्कः अथवा उदात्तमनाः । इसी प्रकार महायशस्कः अथवा महायशाः यदि विकल्पसिद्ध रूप हैं ।

किन्तु व्याघ्रस्य इव पादौ यस्य सः व्याघ्रपात् (यहाँ व्याघ्रपात्कः नहीं हुआ; क्योंकि समास का अन्तिम शव्द 'पाद' दूसरे नियम से पाद् हो गया और इस प्रकार शव्द में विकार उत्पन्न हो गया) ।

---

१ नद्यृतश्च ।५।४।१५३।

२ उरः प्रभृतिभ्यः कप् ।५।४।१५१।

३ शेषाद्विभाषा ।५।४।१५४।

(५) यदि[1] अन्तिम शब्द आकारान्त (टावन्त) हो, तो कप् के बाद में होने पर इच्छानुसार आकार को अकार भी कर सकते हैं; जैसे—पुष्पमालाकः, पुष्पमालकः । कप् के अभाव में पुष्पमालः होगा ।

१२०—समासान्त प्रकरण

(क) यदि[2] तत्पुरुष समास के अन्त में राजन्, अहन् या सखि शब्द आवें तो इनमें समासान्त टच् प्रत्यय जुड़ता है और इनका रूप राज, अह और सख हो जाता है; जैसे—

महान् राजा=महाराजः, इसी प्रकार सिन्धुराजः इत्यादि ।

उत्तमम् अहः=उत्तमाहः (अच्छा दिन) ।

कृष्णस्य सखा=कृष्णसखः ।

कहीं-कहीं अहन् शब्द का 'अह्न' हो जाता है, जैसे—सर्वाह्नः (सारे दिन); सायाह्नः (सायंकाल) ।

किन्तु ऊपर उदाहृत नियम नञ् तत्पुरुष में नहीं लगता, जैसे—न राजा= अराजा, न सखा=असखा ।

इसी प्रकार[3] पूजनार्थक (श्रेष्ठतावाचक) शब्द के पूर्व पद रूप में रहने पर भी समासान्त प्रत्यय नहीं लगता, जैसे—शोभनः राजा=सुराजा ।

टिप्पणी—ऊपर 'महाराज' में महान् के मूल शब्द 'महत्' के स्थान में 'महा' हो गया है । इसका नियम यह है कि 'महत्'[4] शब्द यदि समानाधिकरण कर्मधारय अथवा बहुव्रीहि समास का प्रथम शब्द हो तो वह 'महा' हो जाता है; जैसे—महाराजः, महायशाः । किन्तु महतां सेवा=महत्सेवा क्योंकि महत् और सेवा समानाधिकरण नहीं हैं ।

(ख) ऋक्[5], पुर, अप्, धुर् तथा पथिन् शब्द जब समास के अन्तिम शब्द होते हैं, तो समास के अन्त में 'अ' प्रत्यय जुड़ जाता है; जैसे—

---

१ आपोऽन्यतरस्याम् ।७।४।१५।

२ राजाहः सखिभ्यष्टच् ।५।४।९१।

३ न पूजनात ।५।४।६९।

४ आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः ।६।३।४६।

५ ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे ।५।४।७४।

ऋचः अर्धम्=अर्धर्चः,

विष्णोः पूः=विष्णुपुरम्,

विमलाः आपः यस्य तत् विमलापं (सरः)।

राजस्य धूः=राज्यधुरा। किन्तु अक्ष (गाड़ी) की धुरी का अभिप्राय हो तो नहीं, जैसे—अक्षधूः।

(ग) अहः[1], सर्व, एकदेश (भाग) सूचक शब्द, संख्यात एवं पुण्य के साथ रात्रि का समास होने पर समासान्त अच् प्रत्यय लगता है और समस्त पद त्रान्त हो जाता है। संख्या और अव्यय के साथ भी ऐसा ही होता है। जैसे—अहश्च रात्रिश्चेति अहोरात्रः। सर्वा रात्रिः सर्वरात्रः। पूर्वं रात्रेः पूर्वरात्रः। इसी प्रकार संख्यातरात्रः, पुण्यरात्रः। नवानां रात्रीणां समाहारो नवरात्रम्। अतिक्रान्तो रात्रिमतिरात्रः।

इन समासों के लिङ्ग के सम्बन्ध में इतना ज्ञातव्य है कि 'संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम्' (वार्त्तिक) के अनुसार संख्यापूर्व रात्रान्त समास जैसे—द्विरात्रम्, नवरात्रम्, इत्यादि नपुंसकलिङ्ग में होंगे, शेष पुंल्लिङ्ग में।

उपरि[2] लिखित 'सर्व' इत्यादि के साथ 'अहन्' शब्द का समास होने पर 'अह्न' हो जाता है। फिर अह्नोऽदन्तात् ।८।४।७। के अनुसार अकारान्त पूर्वपद के रकार के बाद 'अह्न' के 'न' को 'ण' हो जाता है; जैसे, सर्वाह्णः, पूर्वाह्णः, संख्याताह्नः।

परन्तु[3] संख्यावाची शब्द के साथ 'अहन्' का समाहार अर्थ में समास होने पर 'अह्न' आदेश नहीं होता; जैसे—

सप्तानामह्नां समाहारः सप्ताहः। इसी प्रकार द्व्यहः, त्र्यहः इत्यादि।

नोट—अह्न[4] और अहः में अन्त होने वाले समास पुंल्लिङ्ग होते हैं किन्तु पुण्य[5] और सुदिन पूर्वपद वाले तथा अहः अन्त वाले समास नहीं।

---

१ अहः सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः ।५।४।८७।

२ अह्नोऽह्न एतेभ्यः ।५।४।८८।

३ न संख्यादेः समाहारे ।५।४।८९।

४ रात्राह्नाहाः पुंसि ।२।४।२९।

५ पुण्यसुदिनाभ्यामह्नः क्लीबतेष्टा। (वार्त्तिक)

(घ) समस्त पद का जाति या संज्ञा (नाम) अर्थ होने पर अनस्[1], अश्मन्, अयस् और सरस् उत्तर पद वाले समास पदों में टच् प्रत्यय जुड़ता है; जैसे, जाति अर्थ में—उपानसम्, अमृताश्मः, कालावसम्, मण्डूकसरसम्। संज्ञा अर्थ में—महानसम् (रसोई घर), पिण्डाश्मः, लोहितायसम्, जलसरसम्।

(ङ) नञ्[2], दुः और सु के साथ प्रजा और मेधा का बहुव्रीहि समास होने पर असिच् प्रत्यय लगता है; जैसे, अप्रजाः, दुष्प्रजाः, सुप्रजाः। अमेधाः, दुर्मेधाः, सुमेधाः। ये सब 'अस्' में अन्त होते हैं। इनके रूप इस प्रकार होंगे—अप्रजाः, अप्रजसौ, अप्रजसः इत्यादि।

(च) धर्म[3] के पूर्व यदि केवल एक ही पद हो तो बहुव्रीहि समास में धर्म के बाद अनिच् जुड़ता है—जैसे कल्याणधर्मा (धर्मन्) 'उत्पत्स्यतेऽस्तु मम कोऽपि समानधर्मा कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥' (भवभूति)।

(छ)[4] प्र और सम् के साथ 'जानु' का बहुव्रीहि समास होने पर 'जानु' का 'ज्ञु' आदेश हो जाता है। उदाहरणार्थ—प्रगते जानुनी यस्य सः प्रज्ञुः, इसी प्रकार संज्ञुः।

ऊर्ध्व[5] के साथ विकल्प से ज्ञु होता है; जैसे, ऊर्ध्वज्ञुः या ऊर्ध्वजानुः।

(ज) धनुष् में अन्त होने वाले बहुव्रीहि[6] समास में अनङ् आदेश हो जाता है; जैसे, पुष्पं धनुर्यस्य सः पुष्पधन्वा। इसी प्रकार शार्ङ्गधन्वा। किन्तु समस्त पद के नामवाची होने पर विकल्प से अनङ् होगा। जैसे, शतधन्वा, शतधनुः।

(झ) जायान्त[7] बहुव्रीहि में निङ् आदेश हो जाता है; जैसे, युवती जाया

---

१ अनोऽश्मायः सरसां जातिसंज्ञयोः ।५।४।९४।

२ नित्यमसिच् प्रजामेधयोः ।५।४।१२२।

३ धर्मादनिच् केवलात् ।५।४।१२४।

४ प्रसंभ्यां जानुनोर्ज्ञुः ।५।४।१२९।

५ ऊर्ध्वाद्विभाषा ।५।४।१३०।

६ धनुषश्च ।५।४।१३२। वा संज्ञायाम् ।५।४।१३३।

७ जायाया निङ् ।५।४।१३४।

यस्य सः युवजानिः। इसी प्रकार भूजानिः (राजा), महीजानिः (राजा) इत्यादि बनेंगे।

(ञ) उन्[1], पूति, सु तथा सुरभि पूर्वपद वाले तथा 'गन्ध' शब्द में अन्त होने वाले बहुव्रीहि समास में इकार जुड़ जाता है; जैसे, उद्गतो गन्धो यस्य सः उद्गन्धिः। इसी प्रकार पूतिगन्धिः, सुगन्धिः, सुरभिगन्धिः।

(ट) बहुव्रीहि समास में हस्ति[2] इत्यादि शब्दों को छोड़कर यदि कोई उपमान शब्द पूर्व में हो और बाद में पाद शब्द हो तो पाद के अन्तिम वर्ण 'अ' का लोप हो जाता है; जैसे, व्याघ्रस्य इव पादौ यस्य सः व्याघ्रपात्। हस्ति इत्यादि पूर्वपद होने पर हस्तिपादः, कुसूलपादः इत्यादि समास बनेंगे।

(ठ) कुम्भपदी[3] इत्यादि स्त्रीलिङ्ग शब्दों में भी 'पाद' के अकार का लोप हो जाता है। फिर पाद[4] के स्थान में पत् होकर ङीप् जुड़ता है; जैसे —कुम्भपदी; एकपदी। स्त्रीलिङ्ग न होने पर कुम्भपादः समास बनेगा।

---

१ गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः ।५।४।१३५।

२ पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः ।५।४।१३८।

३ कुम्भपदीषु च ।५।४।१३९।

४ पादः पत् ।६।४।१३०।

अष्टम सोपान

तद्धित-विचार

१२१—प्रातिपदिकों (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि) में जिन प्रत्ययों को जोड़ कर कुछ और भी निकाला जाता है, उन प्रत्ययों को तद्धित प्रत्यय कहते हैं—

दितेः अपत्यम्=दैत्यः (दिति+ण्य) । इसमें ण्य (तद्धित प्रत्यय) जोड़कर दिति के लड़के का बोध कराया गया है। कषायेण रक्तम्=काषायम् (वस्त्रम्)—'कषाय रंग में रँगा हुआ'। यहाँ 'कषायेण' शब्द के उपरान्त अण् प्रत्यय कर 'कषाय से रँगे हुए' का अर्थ निकाला गया।

कुशाम्बेन निर्वृता=कोशाम्बी (एक नगरी का नाम)।

'यहाँ 'कुशाम्ब' शब्द के उपरान्त अण् प्रत्यय लगाकर 'कुशाम्ब की वनाई हुई' का अर्थ निकाला गया है। इसी प्रकार और भी कितने ही अर्थों का बोध कराने के लिए तद्धित प्रत्यय जोड़े जाते हैं।

'तद्धित' शब्द का अर्थ है—'तेभ्यः प्रयोगेभ्यः हिताः इति तद्धिताः'—ऐसे प्रत्यय जो भिन्न-भिन्न प्रयोगों के काम में आ सकें। किन-किन प्रयोगों में तद्धित प्रत्यय जोड़े जाते हैं, यह नीचे दिखाया जायगा।

१२२—तद्धित प्रत्यय लगाते समय नीचे लिखे नियमों का ध्यान रखना चाहिए। महर्षि पाणिनि ने इन प्रत्ययों के नामों में ऐसे अक्षर रख दिये हैं, जिनसे कुछ और बातों का भी बोध होता है; जैसे—यदि किसी प्रत्यय में ञ् अथवा ण् हो तो उस शब्द के (जिसमें यह प्रत्यय जुड़ेंगे) प्रथम स्वर की वृद्धि होगी, इत्यादि। ऐसे अक्षर कभी प्रत्यय के आदि में और कभी अन्त में रहते हैं और वृद्धि, गुण आदि की सूचना देने के लिए रक्खे जाते हैं।

(१) तद्धित[1] प्रत्यय में यदि ञ् अथवा ण् इत् हो तो जिस शब्द में ऐसा प्रत्यय जोड़ा जायगा, उस शब्द में जो भी प्रथम स्वर आवेगा उसको वृद्धि रूप ग्रहण करना होगा।

---

१ तद्धितेष्वचामादेः ।७।२।११७।

जैसे—दिति+ण्य (य) =द्+इ+ति+य=द्+ऐ+त्य=दैत्य इत्यादि।

यदि[1] ऐसा प्रत्यय हो जिसमें क् इत् हो, तब भी यही विधि होगी; जैसे, वर्षा+ठक् (इक) =व्+अ+र्षा+इक=व्+आ+र्ष्+इक=वार्षिकः।

नोट—दैत्य में दूसरी 'इ' का और वर्षा में 'आ' का कैसे लोप हो गया, इसके लिए नीचे के नियम देखिए।

(२) किसी स्वर अथवा य से आरम्भ होने वाले प्रत्ययों के पूर्व, शब्दों के अन्तिम स्वर में विकार उत्पन्न होते हैं—अ, आ, इ, ई का तो लोप ही हो जाता है[2], उ और ऊ के स्थान में गुण रूप (ओ) हो जाता है[3] और ओ तथा औ के साथ साधारण सन्धि के नियम लगते हैं; जैसे—

अकारान्त—कृष्ण+अण्=कार्ष्ण (कृष्ण के अ का लोप),
आकारान्त—वर्षा+ठक् (इक)=वार्षिक (वर्षा के आ का लोप),
इकारान्त—गणपति+गण्=गाणपतम् (गणपति की इ का लोप)
ईकारान्त—गर्भिणी+अण्=गार्भिणम् (गर्भिणी की ई का लोप),
उकारान्त—शिशु+अण्=शैशवम् (शिशु के उ के स्थान में गुण रूप, ओ),
ऊकारान्त—वधू+अण्=वाधवम् (वधू के ऊ के साथ में गुण रूप ओ),
ओकारान्त—गो+यत्=ग्+अव्+य=गव्यम्[4],
औकारान्त—नौ+ठक्=न्+आव्+इक=नाविक[5]।

(३) शब्दों के अन्तिम न् का ऐसे प्रत्ययों के सामने जो किसी व्यञ्जन से आरम्भ होते हैं, बहुधा लोप हो जाता है, जैसे—राजन्+मतुप् (वत्); राज+वत्—राजवान्। यदि प्रत्यय स्वर से अथवा य् से आरम्भ होते हों तो न्

१ किति च।७।२।११८।

२ यस्येति च।६।४।१४८।

३ ओर्गुणः।६।४।१४६।

४ वान्तो यिप्रत्यये।६।१।७९।

५ एचोऽयवायावः।६।१।७८।

के साथ पूर्ववर्ती स्वर का भी कभी-कभी लोप हो जाता है[1]; जैसे—आत्मन्+ (ईय)=आत्म+ईय=आत्मीय ।

(४) प्रत्यय के अन्त में आया हुआ हल् अक्षर केवल वृद्धि, गुण आदि किसी विधि की सूचना देने को होता है, शब्द के साथ नहीं जुड़ता; जैसे—अण् का ण् केवल वृद्धि की सूचना के लिए है, केवल अ जोड़ा जायगा ।

(५) प्रत्यय[2] में आये हुए ठ् के स्थान में इक हो जाता है; जैसे—ठक्=इक ।

(६) प्रत्यय[3] के यु, वु के स्थान में क्रम से 'अन' और 'अक' हो जाते हैं; जैसे—युट्=यु=अन, वुञ्=वु=अक ।

(७) प्रत्यय[4] के आदि में आये हुए फ्, ढ्, ख्, छ, घ् के स्थान में क्रम से आयन्, एय्, ईन्, ईय, इय् हो जाते हैं; अर्थात्

फ्=आयन्

ढ्=एय्

ख्=ईन्

छ=ईय्

घ्=इय्

अपत्यार्थ

१२३—अपत्य[5] शब्द का अर्थ है—सन्तान, 'पुत्र अथवा पुत्री' । अपत्याधिकार में ऐसे प्रत्ययों का विचार होगा, जिनको संज्ञाओं में जोड़ने से किसी पुरुष या स्त्री की सन्तान का बोध होता है ।

इन[6] प्रत्ययों में गोत्र शब्द का व्यवहार पौत्र आदि अपत्य के अर्थ में आया है । नीचे मुख्य-मुख्य नियम दिये जाते हैं ।

---

१ नस्तद्धिते ।६।४।१४४।

२ ठस्येकः ।७।३।५०।

३ युवोरनाकौ ।७।१।१।

४ आयनयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् ।७।१।२।

५ तस्यापत्यम् ।४।१।९२।

६ आपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् ।४।१।१६२।

(क) अपत्य[1] का अर्थ वताने के लिए अकारान्त प्रातिपदिक के अनन्तर इञ् प्रत्यय लगता है, जैसे—दशरथ+इञ्=दाशरथिः (दशरथ का लड़का)। दक्षस्य अपत्यं=दाक्षिः (दक्ष्+इञ्), इत्यादि ।

(ख) जिन[2] प्रातिपदिकों में स्त्री प्रत्यय लगा हो, उनमें अपत्य का अर्थ वताने के लिए ढक् (एय्) लगाना चाहिए; जैसे—विनता+ढक्=वैनतेयः (विनता का पुत्र) । भगिनी+ढक्=भागिनेयः (भाञ्जा) इत्यादि ।

जिन[3] प्रातिपदिकों में केवल दो स्वर हों और स्त्रीप्रत्ययान्त हों; और जो[4] प्रातिपदिक दो स्वर वाले तथा इकारान्त हों (इञ् में अन्त होने वाले न हों), उनमें अपत्यार्थ सूचित करने के लिए ढक् प्रत्यय जुड़ता है; जैसे—दत्तायाः अपत्यं पुमान=दात्तेयः (दत्ता+ढक्), अत्रेरपत्यं पुमान्=आत्रेयः (अत्रि+ढक्) ।

(ग) अश्वपति[5] आदि (अश्वपति, शतपति, धनपति, गणपति, राष्ट्रपति, कुलपति, गृहपति, पशुपति, धान्यपति, धन्वपति, सभापति, प्राणपति, क्षेत्रपति) प्रातिपदिकों में अण् प्रत्यय लगाकर अपत्यार्थ सूचित किया जाता है; जैसे—गणपति+अण्=गाणपतम् इत्यादि ।

(घ) राजन्[6] और श्वशुर शब्दों के अनन्तर अपत्यार्थ में यत् (य) प्रत्यय लगता है; राजन्+यत्=राजन्यः[7] (राजवंश वाले क्षत्रिय); श्वशुर +यत्=श्वशुर्यः (साला) ।

राजन्[8] शब्द में यत् प्रत्यय जाति के ही अर्थ में जोड़ा जाता है ।

---

१ अत इञ् ।४।१।९५।

२ स्त्रीभ्यो ढक् ।४।१।१२०।

३ द्वयचः ।४।१।१२१।

४ इतश्चानिञः ।४।१।१२२।

५ अश्वपत्यादिभ्यश्च ।४।१।८४।

६ राजश्वशुराद्यत् ।४।२।१३७।

७ ये चाभावकर्मणोः ।६।४।१६८।

८ राज्ञो जातावेवेति वाच्यम् । (वार्त्तिक)

मत्वर्थीय

१२४—हिन्दी में जो अर्थ 'वान', 'वाला' आदि प्रत्ययों से सूचित होता है (जैसे गाड़ीवान, इक्कावान आदि) उसी अर्थ का बोध करने वाले प्रत्ययों को मत्वर्थीय (मतुप् प्रत्यय के अर्थ वाले) कहते हैं। उनमें से मुख्य दो-चार का ही यहाँ विचार किया जायगा।

(क) किसी[1] वस्तु का किसी दूसरी वस्तु में होना सूचित करने के लिए—जिस वस्तु को सूचित करना हो उसके अनन्तर—मतुप् (मत्) प्रत्यय लगता है; जैसे—

गावः अस्य सन्ति इति=गोमान् (गो+मतुप्)।

जब किसी वस्तु के बाहुल्य, निन्दा, प्रशंसा, नित्ययोग, अधिकता अथवा सम्बन्ध का बोध कराना हो तो प्रायः मत्वर्थीय प्रत्यय लगाते हैं; जैसे—

गोमान् (बहुत गायों वाला)।
ककुदावर्तिनी कन्या (कुबड़ी लड़की)। (मत्वर्थीय इनिः)
रूपवान् (अच्छे रूप वाला)।
क्षीरी वृक्षः (जिसमें नित्य दूध रहता हो)। (" ")
उदरिणी कन्या (बड़े पेट वाली लड़की)। (" ")
दण्डी (दण्ड के साथ रहने वाला साधु)। (" ")

मतुप् प्रत्यय विशेषकर गुणवाची शब्दों (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि) के उपरान्त लगता है; जैसे—गुणवान्, रसवान् इत्यादि।

नोट—यदि[2] मतुप् प्रत्यय के पूर्व ऐसे शब्द हों जो म् अथवा अवर्ण अथवा पाँचों वर्गों के प्रथम चार वर्णों में अन्त होते हैं; अथवा जिनको उपधा (अन्तिम अक्षर के पूर्ववाला अक्षर उपधा कहलाता है) म् अथवा अवर्ण हो, तो मतुप् के म् स्थानों में व् हो जाता है; जैसे विद्यावान्, लक्ष्मीवान्, यशस्वान्, विद्युत्वान्,

---

१ तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ।५।२।९४। भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने। सम्बन्धेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः। (वार्त्तिक)।

२ मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ।८।२।९। झयः ।८।२।१०।

तडित्वान् इत्यादि । कुछ (यव आदि) शब्दों में यह नियम नहीं लगता है; जैसे; यवमान् ।

(ख) अकारान्त[1] शब्दों के अन्तर इनि (इन्) और ठन् (इक) भी लगते हैं; जैसे—

दण्डी (दण्ड+इनि); दण्डिकः, (दण्ड+ठन्) ।

(ग) तारक[2] आदि (तारका, पुष्प, मञ्जरी, सूत्र, मूत्र, प्रचार, विचार, कुड्मल, कण्टक, मुकुल, कुसुम, किसलय, पल्लव, खण्ड, वेग, निद्रा, मुद्रा बुभुक्षा, पिपासा, श्रद्धा, अभ्र, पुलक, द्रोह, सुख, दुःख, उत्कण्ठा, भर, व्याधि, वर्मन्, व्रण, गौरव, शास्त्र, तरङ्ग, तिलक, चन्द्रक, अन्धकार, गर्व, मुकुर, हर्ष, उत्कर्ष, रण, कुवलय, क्षुध्, सीमन्त, ज्वर, रोग, पण्डा, कज्जल, तृष्, कोरक, कल्लोल, फल, कञ्चुल, शृङ्गार, अङ्कुर, वकुल, कलङ्क, कर्दम, कन्दल, मूर्च्छा, अङ्गार, प्रतिविम्ब, प्रत्यय, दीक्षा, गर्ज ये इस गण के मुख्य शब्द हैं) शब्दों के अनन्तर 'यह उत्पन्न (प्रकट) हो गया है जिसमें—इस अर्थ को बोध कराने के लिए इतच् (इत्) प्रत्यय लगाते हैं; जैसे—

तारका+इतच्=तारकित (तारे निकल आये हैं जिसमें) ।
पिपासित (प्यास है जिसमें—प्यासा) ।
पुष्पित, कुसुमित आदि इसी प्रकार बनाते हैं ।

भावार्थ तथा कर्मार्थ

१२५—किसी[3] शब्द से भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए उस शब्द में त्व अथवा तल् (ता) जोड़ देते हैं । त्व में अन्त होने वाले शब्द सदा नपुंसकलिङ्ग में होते हैं और तल् म अन्त होने वाले स्त्रीलिङ्ग में, जैसे—

गो+त्व=गोत्वम्, गो+तल्=गोता, शिशु+त्व=शिशुत्वम्, शिशु+तल्= शिशुता इत्यादि ।

---

१ अत इनिठनौ ।५।२।११५।

२ तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच् ।५।२।३६।

३ तस्य भावस्त्वतलौ ।५।१।११९।

(क) पृथु[1] आदि (पृथु, मृदु, महत्, पटु, तनु, लघु, वहु, साधु, आशु, उरु, गुरु, वहुल, खण्ड, दण्ड, चण्ड, अकिञ्चन, वाल, होड़, पाक, वत्स, मन्द, स्वादु, ह्रस्व, दीर्घ, प्रिय, वृष, ऋजु, क्षिप्र, क्षुद्र, अणु) शब्दों के अनन्तर भाव का अर्थ सूचित करने के लिए इमनिच् (इमन्) प्रत्यय भी विकल्प से लगाते हैं। जिस शब्द में यह प्रत्यय लगाते हैं, वह यदि व्यंजन से आरम्भ हो और उसके अनन्तर ऋकार (मृदु, पृथु आदि) आवें तो उस ऋकार के स्थान में र हो जाता है। इमनिच् प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द सभी पुंल्लिङ्ग में होते हैं; जैसे—

पृथु+इमनिच्=प्रथिमन् (महिमन् के अनुसार रूप चलेंगे), पृथुत्वम्, पृथुता; म्रदिमन्, महिमन्, पटिमन्, तनिमन्, लघिमन्, भूमन् आदि।

(ख) वर्णवाची[2] शब्दों (नील, शुक्ल आदि) के अनन्तर तथा दृढ आदि (दृढ, वृढ, परिवृढ, भृश, कृश, वक्र, शुक्र, चुक्र, आम्र, कृष्ट, लवण, ताम्र, शीत, उष्ण, जड़, वधिर, पण्डित, मधुर, मूर्ख, मूक, स्थिर) के अनन्तर इमनिच् अथवा ष्यञ् (य) भाव के अर्थ में लगाते हैं; जैसे—

शुक्लस्य भावः शुक्लिमा, शौक्ल्यम् (अथवा शुक्लत्वं, शुक्लता)। इसी प्रकार—

माधुर्य्यम्, मधुरिमा, दार्ढ्यम्, द्रढिमा, दृढत्व, दृढता आदि।

ष्यञ् में अन्त होने वाले शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं।

(ग) गुणवाची[3] शब्दों के अनन्तर तथा ब्राह्मण आदि (ब्राह्मण, चोर, धूर्त, आराधय, विराधय, अपराधय, उपराधय, एकभाव, द्विभाव, त्रिभाव, अन्यभाव, संवादिन्, संवेशिन्, संभाषिन्, वहुभाषिन्, शीर्षघातिन्, विघातिन्, समस्थ, विषमस्थ, परमस्थ, मध्यस्थ, अनीश्वर, कुशल, चपल, निपुण, पिशुन, कुतूहल, वालिश, अलस, दुष्पुरुष, राजन्, गणपति, अधिपति, दायाद, विषम, विपात, निपात—ये सब इस गण के मुख्य शब्द हैं) शब्दों के अनन्तर कर्म या भाव अर्थ सूचित करने के लिए ष्यञ् (य) प्रत्यय लगता है; जैसे—

ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा=ब्राह्मण्यम्। इसी प्रकार—

---

१ पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ।५।१।१२२। र ऋतो हलादेर्लघोः ।६।४।१६१।

२ वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च ।५।१।११३।

३ गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ।५।१।१२४।

चौर्यम्, धौर्त्यम्, अपराध्यम्, ऐकभाव्यम्, सामस्थ्यम्, कौशल्यम्, चापल्यम्, नपुण्यम्, पैशुन्यम्, कौतुहल्यम्, वालिश्यम्, आलस्यम्, राज्यम्, आधिपत्यम्, दायाद्यम्, जाड्यम्, मालिन्यम्, मौढ्यम् आदि ।

(घ) इ[1], उ, ऋ अथवा लृ में अन्त होने वाले शब्दों के अनन्तर (यदि पूर्व वर्ण में लघु अक्षर हो; जैसे, शुचि, मुनि आदि—पाण्डु नहीं) भाव अथवा कर्म का अर्थ दिखाने के लिए अञ् (अ) प्रत्यय जोड़ते हैं; जैसे—

शुचेर्भावः कर्म वा शौचम्; मुनेर्भावः कर्म वा मौनम् ।

(च) यदि[2] किसी के तुल्य क्रिया करने का अर्थ हो तो जिसके समान क्रिया की जाती है, उसके अनन्तर वति (वत्) प्रत्यय जोड़ देते हैं; जैसे—ब्राह्मणेन तुल्यमधीते=ब्राह्मणवत् अधीते ।

(छ) यदि[3] किसी में अथवा किसी के तुल्य कोई वस्तु हो, तब भी वति प्रत्यय जोड़ते हैं; जैसे—

इन्द्रप्रस्थे इव प्रयागे दुर्गः=इन्द्रप्रस्थवत् प्रयागे दुर्गः (जैसा किला इन्द्रप्रस्थ में है, वैसा ही प्रयाग में है) ।

चैत्रस्य इव मैत्रस्य गावः=चैत्रवन्मैत्रस्य गावः (जैसी गाएँ चैत्र की हैं, वैसी ही मैत्र की हैं) ।

(ज) यदि[4] किसी के समान किसी की मूर्ति अथवा चित्र हो अथवा किसी के स्थान पर कोई रख लिया जाय जो उस शब्द के अनन्तर कन् (क) प्रत्यय लगाकर इस अर्थ का बोध कराते हैं; जैसे—

अश्व इव प्रतिकृतिः=अश्वकः (अश्व के समान मूर्ति अथवा चित्र है जिसका) ।

पुत्रकः (पुत्र के स्थान पर किसी वृक्ष अथवा पक्षी को जब पुत्र मान लें) ।

---

१ इगन्ताच्च लघुपूर्वात् ।५।१।१३१।

२ तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ।५।१।११५।

३ तत्र तस्येव ।५।१।११६।

४ इवे प्रतिकृतौ ।५।३।९६।

समूहार्थ

१२६—किसी[1] वस्तु के समूह का अर्थ बतलाने के लिए उस वस्तु के अनन्तर अण् (अ) प्रत्यय लगाया जाता है; जैसे—

वकानां समूहः=वाकम् ।

काकानां समूहः=काकम् ।

वृकानां समूहः=वार्कम् (भेड़ियों का समूह) ।

(मायूरम्, कापोतम्, भैक्षम्, गार्भिणम् ।)

(क) ग्राम[2], जन, बन्धु, गज, सहाय शब्दों के अनन्तर समूह के अर्थ के लिए तल् (ता) लगता है—

ग्रामता (ग्रामों का समूह), जनता, बन्धुता, गजता, सहायता ।

सम्बन्धार्थ व विकारार्थ

१२७—"यह[3] इसका है" इस अर्थ को बताने के लिए जिसका सम्बन्ध बताना हो, उसके अनन्तर अण् लगाते हैं, जैसे—

उपगोरदिम् (उपगु+अण्)=औपगवम् ।

देवस्य अयम्=दैवः ।

ग्रीष्म+अण्=ग्रैष्मम्; नैशम् आदि ।

इसका लिङ्ग सम्बद्ध वस्तु के लिङ्ग के अनुसार बदलता है ।

(क) सम्बन्ध[4] अर्थ दिखाने के लिए हल और शब्द के अनन्तर ठक् (इक्) लगता है; जैसे—हालिकम्, सैरिकम् ।

(ख) जिस[5] वस्तु से बनी हुई (विकारस्वरूप) कोई दूसरी वस्तु दिखानी हो तो उसके अनन्तर अण् प्रत्यय लगाते हैं; जैसे—

---

१ तस्य समूहः ।४।२।३७। भिक्षादिभ्योऽण् ।४।२।३८।

२ ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ।४।२।४३। गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम् । वा०

३ तस्येदम् ।४।३।१२०।

४ हलसीराट् ठक् ।४।३।१२४।

५ तस्य विकारः ।४।३।१३४।

भस्मनो विकारः=भास्मनः (भस्म से वना हुआ) ।

मार्त्तिकः (मिट्टी से वना हुआ, मिट्टी का विकार) ।

(ग) प्राणिवाचक[1], ओषधिवाचक तथा वृक्षवाचक शब्दों के अनन्तर यही प्रत्यय 'अवयव' का भी अर्थ वतलाता है, विकार तो वताता ही है; जैसे—

मयूरस्य विकारः अवयवो वा=मायूरः ।

मर्कटस्य विकारः अवयवो वा=मार्कटः ।

मूर्वायाः विकारः अवयवो वा=मौर्वं काण्डम्, भस्म वा ।

पिप्पलस्य विकारः अवयवो वा=पैप्पलः ।

(घ) उ[2], ऊ में अन्त होने वाले शब्द के अनन्तर अवयव का अर्थ दिखाने के लिए अञ् (अ) प्रत्यय होता है, जैसे—

देवदारु+अञ्=दैवदारवम्, भाद्रदारवम् ।

(च) विकार[3] अथवा अवयव का अर्थ वताने के लिए विकल्प से मयट् प्रत्यय भी आ सकता है, किन्तु खाने-पहनने की वस्तुओं के अनन्तर नहीं, जैसे—

अश्मनः विकारो अवयवो वा=आश्मनम् अश्ममयम् वा । इसी प्रकार भास्मनम्, भस्ममयम्, सौवर्णम्, सुवर्णमयम् इत्यादि ।

किन्तु 'मौद्गः सूपः' (मूंग की दाल) के लिए 'मुद्गमयः सूपः' नहीं होगा ।

इसी प्रकार 'कार्पासमाच्छादनम्' के लिए 'कर्पासमयमाच्छादनम्' नहीं होगा ।

परिमाणार्थ तथा संख्यार्थ

१२८—जो प्रत्यय परिमाण (कितना आदि) वताने के लिए लगाये जाते हैं, उन्हें परिमाणार्थ प्रत्यय कहते हैं ।

(क) यत्[4], तत्, एतत् के अनन्तर वतुप् प्रत्यय लगता है और वतुप् का व 'घ' (य) में परिवर्तित हो जाता है । इस प्रकार कियत् और इयत् शब्द वनेंगे, किवत् या इवत् नहीं ।

---

१ अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः ।४।३।१३५।

२ ओरञ् ।४।३।१३६।

३ मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ।४।३।१४३।

४ यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् । किमिदंभ्यां वो घः ।५।२।३९,४०।

इनका विस्तृत रूप विशेषण विचार में दिखाया जा चुका है।

(ख) मात्रच्[1] प्रत्यय लगाकर प्रमाण, परिमाण और संख्या का संशय हटाकर निश्चय स्थापित किया जाता है; जैसे—

शमः प्रमाणम्=शममात्रम् (निश्चय ही शम प्रमाण है)।

सेरमात्रम् (सेर ही भर)।

पञ्चमात्रम् (पाँच ही।)

(ग) पुरुष[2] और हस्तिन् के अनन्तर अण् प्रत्यय लगाकर प्रमाण बताया जाता है; जैसे—

पौरुषम् (जलमस्यां सरिति)=इस नदी में आदमी भर (आदमी के डूबने भर) पानी है। इसी प्रकार हास्तिनम् (जलम्)।

(घ) किम्[3] शब्द के अनन्तर डति (अति) लगाकर संख्या का और परिमाण का भी बोध कराते हैं; जैसे, किम्+डति=कति—कितने।

(च) संख्या[4] शब्द के अनन्तर तयप् लगाकर संख्यासमूह का बोध कराते हैं; जैसे द्वितयम्, त्रितयम् आदि।

द्वि और त्रि के अनन्तर इसी अर्थ में अयच् प्रत्यय भी लगता है—द्वयम्, त्रयम्।

हितार्थ

१२६—जिसके[5] हित की कोई वस्तु हो, उसके अनन्तर छ (ईय) प्रत्यय लगता है; जैसे—

वत्सेभ्यः हितं दुग्धम्=वत्सीयम् दुग्धम् (बछड़ों के लिए दूध)।

इसी[6] अर्थ में शरीर के अवयववाची शब्दों के अनन्तर तथा उकारान्त[7]

---

१ प्रमाणपरिमाणाभ्यां संख्यायाश्चापि संशये मात्रज्वक्तव्य। वा०।

२ पुरुषहस्तिभ्यामण् च ।५।२।३८।

३ किमः संख्यापरिमाणे डति च ।५।२।४१।

४ संख्याया अवयवे तयप् ।५।२।४१। द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ।५।२।४३।

५ तस्मै हितम् ।५।१।५।

६ शरीरावयवाच्च ।५।१।६।

७ उगवादिभ्यो यत् ।५।१।२।

शब्दों और गो आदि (गो, हविस्, अक्षर, विष, बर्हिस्, अष्टका, युग, मेधा, नाभि, नश्वन् का शून् वा शुन् हो जाता है, कूप, दर, खर, असुर, वेद, बीज—ये इस गण के मुख्य शब्द हैं) के अनन्तर 'यत्' प्रत्यय लगता है; जैसे—

दन्तेभ्यः हिता (ओषधिः)=दन्त्या (दन्त+यत्) । इसी प्रकार कर्ण्या; गोभ्यः हितं=गव्यम् (गो+यत्), शरवे हितं=शरव्यम् (शरु+यत्), शून्यम्, शुन्यम्, असुर्यम्, वेद्यम्, बीज्यम् आदि ।

क्रियाविशेषणार्थ

१३०—कुछ तद्धित प्रत्यय ऐसे हैं, जिनके जोड़ने से वह प्रयोजन सिद्ध होता है जो हिन्दी में दिशावाची, कालवाची आदि क्रियाविशेषणों से होता है।

(क) पञ्चमी[1] विभक्ति के अर्थ में संज्ञा, सर्वनाम तथा विशेषण के अनन्तर तथा परि (सर्वार्थक) और अभि (उभयार्थक) उपसर्गों के अनन्तर तसिल् (तस्) लगता है । इस प्रत्यय के पूर्व तथा नीचे लिखे प्रत्ययों के पूर्व सर्वनाम के रूप में कुछ हेर-फेर हो जाता है; जैसे—

त्वतः, मत्तः, युष्मत्तः, अस्मत्तः, अतः, यतः ततः, मध्यतः, परतः, कुतः, सर्वतः, इतः, अमुतः, उभयतः, परितः, अभितः ।

(ख) सप्तमी[2] विभक्ति के अर्थ में सर्वनाम तथा विशेषण के अनन्तर त्रल् प्रत्यय लगता है; जैसे—तत्र, यत्र, बहुत्र, सर्वत्र, एकत्र इत्यादि । परन्तु इदम्[3] में त्रल् न लगकर 'ह' लगता है और 'इह' रूप बनता है ।

(ग) कब[4], जब आदि अर्थ प्रकट करने के लिए सर्व, एक, अन्य, किम् यद् तथा तद् शब्दों के अनन्तर 'दा' प्रत्यय लगता है—

सर्वदा, एकदा, अन्यदा, कदा, यदा, तदा ।

---

१ पञ्चम्यास्तसिल् ।५।३।७। पर्यभिभ्यां च ।५।३।६। सर्वोभयार्थाभ्यामेव (वा०) ।

२ सप्तम्यास्त्रल् ।५।३।१०।

३ इदमो हः ।५।३।११।

४ सर्वैकान्यकियत्तदः काले दा ।५।३।१५।

इसी[1] अर्थ में 'दानीम्' प्रत्यय भी लगता है—कदानीम्, यदानीम्, तदानीम्, इदानीम् आदि ।

(घ) ऐसे[2] वैसे आदि शब्दों के द्वारा 'प्रकार' अर्थ को बताने के लिए थाल् (था) प्रत्यय लगाते हैं—यथा, तथा इत्यादि । परन्तु इदम्[3], एतद् तथा किम् में 'थमु' लगता है—कथम्, इत्थम् ।

(च) आगे[4] पीछे आदि शब्दों का अर्थ बताने के लिए पूर्व आदि दिशावाची शब्दों के अनन्तर प्रथमा, पञ्चमी तथा सप्तमी के अर्थ में अस्ताति (अस्तात्) प्रत्यय लगता है; उदाहरणार्थ—

पूर्व+अस्ताति=पुरस्तात् । इसी प्रकार अधस्तात्, अवस्तात् अवरस्तात्, उपरिष्टात् ।

इसी[5] प्रकार एनप् लगाकर प्रथमा और सप्तमी का अर्थ बताने के लिए दक्षिणेन, उत्तरेण, अधरेण, पश्चिमेन तथा 'आति' लगाकर पश्चात्, उत्तरात्, अधरात्, दक्षिणात् शब्द बनाते हैं ।

(छ)[6] 'दो बार', 'तीन बार' आदि की तरह 'बार' शब्द का अर्थ लाने के लिए संख्यावाची शब्दों के अनन्तर कृत्वसुच् (कृत्वस्) प्रत्यय लगाते हैं; जैसे—

पञ्चकृत्वः भुङ्क्ते (पाँच बार खाता है) ।

इसी प्रकार—षट्कृत्वः, सप्तकृत्वः आदि ।

इसी अर्थ में द्वि,[7] त्रि, चतुर् के अनन्तर सुच् (स्) लगता है; जैसे—

---

१ दानीं च ।५।३।१८।

२ प्रकारवचने थाल् ।५।३।२३।

३ इदमस्थमुः ।५।३।२४। एतदोऽपि वाच्यः (वा०) । किमश्च ।५।३।२५

४ दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः ।५।३।२७।

५ एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः ।५।३।३५। पश्चात् ।५।३।३२। उत्तराधरदक्षिणादातिः ।५।३।३४।

६ संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् ।५।४।१७।

७ द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ।५।४।१८।

द्विः=दो बार । त्रिः=तीन बार । चतुः=चार बार ।

इसी अर्थ में 'एक'[1] से भी सुच् लगता है और 'एक' के स्थान में 'सकृत' आदेश हो जाता है; जैसे—

एक+सुच्—सकृत्+सुच्=सकृत ।[2]

वहु[3] के अनन्तर कृत्वसुच् और धा दोनों प्रत्यय लगते हैं; जैसे—

बहुकृत्वः, बहुधा—वहुत बार ।

शैषिक

१३१—जिन अर्थों का बोध अपत्यार्थ, चातुरर्थिक, रक्ताद्यर्थक प्रत्ययों से नहीं होता, वे तद्धित अर्थ पाणिनि-व्याकारण में 'शेष' शब्द से बतलाये गये हैं । 'शेष'[4] तद्धित अर्थों के लिए अण् आदि जोड़े जाते हैं ।

उदाहरणार्थ—

चक्षुषा गृह्यते (रूपं)	=चाक्षुषम् (चक्षुष्+अण्) ।
श्रवणेन श्रूयते (शब्दः)	=श्रावणः (श्रवण+अण्) ।
अश्वैरुह्यते (रथः)	=आश्वः ।
चतुर्भिरुह्यते (शकटम्)	=चातुरम् ।
चतुर्दश्यां दृश्यते (रक्षः)	=चातुर्दशम् ।

(क) ग्राम[5] शब्द के अनन्तर शैषिक प्रत्यय 'य' और 'खञ्' (ईन) होते हैं; जैसे—ग्राम्यः, ग्रामीणः ।

द्यु[6], प्राच्, अपाच्, उदच्, प्रतीच् शब्दों के अनन्तर 'यत्' होता है; जैसे—दिव्यम्, प्राच्यम्, अपाच्यम्, उदीच्यम्, प्रतीच्यम् ।

---

१ एकस्य सकृच्च ।५।४।१९।

२ त् के वाद में स्थित सुच् के स् का संयोगान्तलोप हो जाता है ।

३ विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले ।५।४।२०।

४ शेषे ।४।२।९२।

५ ग्रामाद्यखञौ ।४।२।९४।

६ द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् ।४।२।१०१।

अमा[1], इह, क्व तथा नि के अनन्तर और तसि-प्रत्ययान्त तथा त्रल्-प्रत्ययान्त शब्दों के अनन्तर त्यप् (त्य) आता है; जैसे—अमात्यः, इहत्यः, क्वत्यः, नित्यः, ततस्त्यः, यतस्त्यः, कुत्रत्यः, तत्रत्यः, अत्रत्यः आदि।

(ख) जिस[2] शब्द के स्वरों में पहला स्वर वृद्धि वाला (आ, ऐ, औ) हो, उन शब्दों को तथा त्यद् आदि (त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत्, किम्) शब्दों को पाणिनि ने 'वृद्ध' नाम दिया है। इन वृद्धों के अनन्तर शैषिक छ (ईय) प्रत्यय लगता है, जैसे—

शाला+छ=शालीय; माला+छ=मालीय; तद्+छ=तदीय। इसी प्रकार यदीय, एतदीय, युष्मदीय, अस्मदीय, भवदीय आदि।

(ग) युष्मद्[3] और अस्मद् शब्दों के अनन्तर इसी अर्थ में 'छ' के अतिरिक्त अण् और खञ् भी विकल्प से हो सकते हैं, किन्तु इनके जुड़ने पर युष्मद् और अस्मद् के स्थान में बहुवचन में युष्माक और अस्माक तथा एकवचन में तवक और ममक आदेश हो जाते हैं; जैसे—

युष्मद्—युष्माक (+अण्)=यौष्माक, (+खञ्)=यौष्माकीण (तुम्हारा)। तवक (+अण्) तावक, (+खञ्)=तावकीन (तेरा), युष्मद् (+छ)=युष्मदीय।

अस्मद्—अस्माक (+अण्)=आस्माक, (+खञ्)=आस्माकीन (हमारा), ममक, (+अण्)=मामक, (+खञ्=)मामकीन (मेरा), अस्मद् (+छ) अस्मदीय।

नोट—'विशेषण विचार' में इनका उल्लेख आ चुका है।

(घ) कालवाची[4] शब्दों के अनन्तर शैषिक ठञ् प्रत्यय होता है; जैसे—

---

१ अव्ययात्यप् ।४।२।१०४। अमेहक्वतसित्रेभ्य एव। वा०। त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम्। वा०।

२ वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम्। त्यदादीनि च ।१।१।७३,७४। वृद्धाच्छः ।४।१।११४।

३ युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च। तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ।४।३।१,२।

४ कालाट्ठञ् ।४।३।११।

मास+ठञ् (इक)=मासिक । इसी प्रकार सांवत्सरिक, सायंप्रातिक, पौनःपुनिक आदि ।

परन्तु[1] सन्धिवेला शब्द, सन्ध्या, अमावास्या, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पौर्णमासी, प्रतिपद् तथा ऋतुवाची (ग्रीष्म आदि) शब्द और नक्षत्रवाची शब्दों के अनन्तर अण् होता है; जैसे—

सान्धिवेलम्, सान्ध्यम्, आमावस्यम्, त्रायोदशम्, चातुर्दशम्, पौर्णमासम्, प्रातिपदम्, ग्रैष्मम् (वार्षिकम्=वर्षा+ठक्; प्रावृषेण्यम्=प्रावृष+एण्य), शारदम्, हैमन्तम्, शैशिरम्, वासन्तम्, पौषम् आदि ।

(च) साय[2], चिरं, प्राह्णे, प्रगे शब्दों के अनन्तर तथा अव्ययों के अनन्तर शैषिक टयु-टयुल् (अन) लगते हैं तथा शब्द और प्रत्यय के बीच में त् भी ऊपर से आ जाता है; जैसे—

सायं+त्+टयुल् (अन)=सायन्तनम् । इसी प्रकार चिरन्तनम्, प्राह्णेतनम्, प्रगेतनम्, दोषातनम्, दिवातनम्, इदानीन्तनम्, तदानीन्तनम् इत्यादि ।

(छ) दो[3] में से एक का अतिशय दिखाने के लिए तरप् और ईयसुन् प्रत्यय लगते हैं और दो से अधिक[4] में से एक का अतिशय दिखाने के लिए तमप् और इष्ठन्; जैसे—

लघु से लघीयस्, लघुतर (दो के लिए) और लघिष्ठ और लघुतम (दो से अधिक के लिए) । इनका विस्तारपूर्वक वर्णन विशेषण-विचार (१०३) में आ चुका है ।

(ज) किम्[5] के अनन्तर, एत् प्रत्ययान्त (प्राह्णे, प्रगे आदि) शब्दों के अनन्तर, अव्ययों के अनन्तर तथा तिङन्त के अनन्तर तमप्+आमु=(तमाम) लगाया जाता है; उदाहरणार्थ—

---

१ सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् ।४३।१६।

२ सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्टयुटयुलौ तुट् च ।४।३।२३।

३ द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ।५।३।५७।

४ अतिशायने तमबिष्ठनौ ।५।३।३५।

५ किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे ।५।४।११।

किन्तमाम्, प्राह्णेतमाम्, उच्चैस्तमाम् (खूब ऊँचा), पचतितमाम् (खूब अच्छी तरह पकाता है)। इसी प्रकार नीचैस्तमाम्, गच्छतितमाम्, दहतितमाम् आदि।

किन्तु द्रव्यसम्बन्धी प्रकर्ष सूचित होने पर 'आमु' नहीं लगता; जैसे—उच्चैस्तमः तरुः।

(झ) कुछ[1] कमी दिखाने के लिए कल्पप् (कल्प), देश्य, देशीयर् (देशीय) प्रत्यय लगाये जाते हैं; जैसे—

विद्वत्कल्पः, विद्वद्देशीयः—कुछ कम विद्वान् पुरुष।

पञ्चवर्षकल्पः, पञ्चवर्षदेश्यः, पञ्चवर्षदेशीयः—कुछ कम पाँच बरस का।

यजतिकल्पम्—जरा कम यज्ञ करता है।

(ट) अनुकम्पा[2] का बोध कराने के लिए कन् (क) प्रत्यय लगाते हैं; जैसे—

पुत्रकः (बेचारा लड़का), भिक्षुकः (बेचारा भिखारी) आदि।

(ठ) जब[3] कोई वस्तु कुछ से कुछ हो जाये, इतनी बदल जाये कि काली न हो तो काली हो जाये, मीठी न हो तो मीठी हो जाये अर्थात्[4] जो पहले नहीं थी, वह हो जाय, तो च्वि प्रत्यय लगा कर इस अर्थ का बोध कराते हैं। यह प्रत्यय केवल कृ धातु, भू धातु और अस् धातु के योग में आता है। च्वि[5] का लोप हो जाता है, किन्तु पूर्व पद का अकार अथवा आकार ईकार में बदल जाता है, और यदि[6] अन्य स्वर पूर्व में आवे तो वह दीर्घ हो जाता है; जैसे—

अकृष्णः कृष्ण क्रियते=कृष्ण+च्वि+क्रियते=कृष्ण+ई+क्रियते=कृष्णीक्रियते।

---

१ ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः ।५।३।१५।

२ अनुकम्पायाम् ।५।४।७६।

३ कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः ।५।४।५०।

४ अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्। (वार्तिक)

५ अस्य च्वौ ।७।४।३२।

६ च्वौ च ।७।४२६।

अब्रह्मा ब्रह्मा भवति 'ब्रह्मीभवति' (जो ब्रह्मा नहीं है, वह ब्रह्मा होता है); अगङ्गा गङ्गा स्यात् 'गङ्गीस्यात्' (जो गङ्गा नहीं है, वह गङ्गा हो जाए) । इसी प्रकार शुचीभवति, पटूकरोति इत्यादि ।

जब[1] किसी वस्तु का दूसरी वस्तु में पूर्णतया परिणत हो जाना दिखाना हो तो च्वि के अतिरिक्त साति (सात्) प्रत्यय भी लगाते हैं; जैसे—

कृत्स्नं इन्धनम् अग्निः भवति=इन्धनम् 'अग्निसात्' भवति, 'अग्नीभवति' वा (ईंधन आग हो जाता है) ।

अग्निः भस्मसात् भवति; भस्मीभवति वा=आग भस्म हो जाती है ।

प्रकीर्णक

१३२—ऊपर उल्लिखित अर्थों के अतिरिक्त और भी कितने ही अर्थों के लिए तद्धित प्रत्यय जोड़े जाते हैं । प्रधान अर्थ नीचे दिये जाते हैं—

(क) यदि[2] किसी वस्तु में दूसरी वस्तु की सत्ता हो, अर्थात् वह वहाँ विद्यमान हो तो जिस वस्तु में सत्ता हो, उसके अनन्तर अण् प्रत्यय जोड़ा जाता है; जैसे—

स्रुघ्ने भवः 'स्रौघ्नः' (स्रुघ्न+अण्)—स्रुघ्न में वर्तमान है ।

इसी[3] अर्थ में शरीर के अवयवों में तथा दिश्, वर्ग, पूग, पक्ष, पथिन्, रहस, उखा, साक्षिन्, आदि, अन्त, मेघ, यूथ, न्याय, वंश, काल, मुख, जघन शब्दों में यत् (य) जोड़ा जाता है; जैसे—

दन्त्य, मुख्य, नासिक्य, दिश्य, पूग्य, वर्ग्य (पुरुष), पक्ष्य (राजा), रहस्य (मन्त्र), उख्यम्, साक्ष्यम्, आद्य (पुरुष), अन्त्य, मेध्य, यूथ्य, न्याय्य, वंश्य, काल्य, मुख्य (सेना आदि के अङ्ग के अर्थ में), जघन्य (नीच) । इनका लिङ्ग विशेष्य के अनुसार होगा ।

इसी[4] अर्थ में कुछ अव्ययीभाव समासों के अनन्तर 'ञ्य' (य) लगता है; जैसे परिमुखे भवम् 'पारिमुख्यम्' ।

---

१ विभाषा साति कार्त्स्न्ये ।५।४।५२।

२ तत्र भवः ।४।३।५३।

३ दिगादिभ्यो यत् । शरीरावयवाच्च ।४।३।५४,५५।

४ अव्ययीभावाच्च ।४।३।५९।

(ख) यदि[1] किसी में किसी मनुष्य का निवास (अपना अथवा पूर्वजों का) हो और यह बतलाना हो कि वह अमुक स्थान का निवासी है, तो स्थान-वाचक शब्द में अण् प्रत्यय लगता है; जैसे—

मथुरायां निवासः अभिजनो वाऽस्य—माथुरः, भाटनागरः।

यदि[2] किसी देश को जनविशेष के निवास अथवा और किसी सम्बन्ध से बताना हो, तो जनवाची शब्द के अनन्तर अण् लगाते हैं; जैसे—

शिवीनां विषयो देशः—शैवः देशः (शिवि लोगों के रहने का देश)।

(ग) यदि[3] किसी वस्तु, स्थान अथवा मनुष्य आदि से कोई वस्तु आवे और यह दिखाना हो कि यह अमुक स्थान, अमुक वस्तु अथवा मनुष्य से आई है, तो स्थानादिवाचक शब्द के अनन्तर बहुधा अण् प्रत्यय लगाते हैं; जैसे—

स्रुघ्नादागतः स्रौघ्नः।

आमदनी[4] के स्थान (दुकान, कारखाना) आदि के अनन्तर ठक् (इक) होता है; जैसे—

शुल्कशालायाः आगतः शौल्कशालिकः।

जिनसे[5] विद्या अथवा जन्म (योनि) का सम्बन्ध हो, उनमें वुञ् (अक) होता है; जैसे—

उपाध्यायादागता विद्या औपाध्यायिका, पितामहादागतं धनं पैतामहकम्; किन्तु ऋकारान्त[6] शब्दों में इसी अर्थ में ठञ् लगता है; जैसे—भ्रातृकम्, हौतृकम्। 'पितृ' में 'यत्' और वुञ् दोनों होते हैं—पित्र्यम्, पैतृकम्।

(घ) यदि[7] कोई मनुष्य किसी वस्तु से जुआ खेले, कुछ खो दे, कुछ

---

१ सोऽस्य निवासः।४।३।८९। अभिजनश्च।२।३।९०।

२ विषयो देशः।४।२।५२। तस्य निवासः।४।२।६९।

३ तत आगतः ४।३।७४।

४ ठगायस्थानेभ्यः।४।३।७५।

५ विद्यायोनिसम्बन्धेभ्योवुञ्।४।३।७७।

६ ऋतष्ठञ्।४।३।७८। पितुर्यच्च।४।३।७९।

७ तेन दीव्यतिखनतिजयतिजितम्।४।४।२। तरति।४।४।२। चरति।४।४।८।

जीते, तैरे, चले तो उस वस्तु के अनन्तर ठक् प्रत्यय लगाकर उस मनुष्य का बोध होता है; जैसे—

अक्षैर्दीव्यति आक्षिकः (अक्ष+ठक्)—ऐसा मनुष्य जो अक्ष (पाँसे) से जुआ खेलता है ।

अभ्रया खनति आभ्रिकः, फावड़े से खोदने वाला ।

अक्षैर्जयति आक्षिकः, पाँसों से जीतने वाला ।

उडुपेन तरति औडुपिकः, डोंगी से तैरने वाला ।

हस्तिना चरति हास्तिकः, हाथी पर चलने वाला ।

(च) अस्ति[1], नास्ति, दिष्ट इनके अनन्तर मति के अर्थ में प्रहरणवाची शब्दों के अनन्तर, 'यह प्रहरण इसके पास है' इस अर्थ में, जिस बात के करने का शील (स्वभाव) हो उसके अनन्तर और जिस काम पर नियुक्त किया गया हो उसके अनन्तर, मनुष्य का बोध कराने के लिए ठक् प्रत्यय लगता है; जैसे—

अस्ति परलोकः इति मतिर्यस्य सः आस्तिकः (अस्ति+ठक्) ।

नास्ति परलोकः इति मतिर्यस्य सः नास्तिकः ।

दिष्टमिति मतिर्यस्य सः दैष्टिकः (भाग्यवादी) ।

अपूपभक्षणं शीलमस्य आपूपिकः (जिसकी पुआ खाने की आदत हो) ।

आकरे नियुक्तः—आकरिकः (खजांची) ।

(छ) 'वश[2] में आया हुआ' के अर्थ में वश के अनन्तर, अनुकूल के अर्थ में धर्म, पथ, अर्थ और न्याय के अनन्तर, प्रिय के अर्थ में हृद् (हृदय) के अनन्तर तथा यदि किसी वस्तु के लिए अच्छा और योग्य कोई हो तो उस वस्तु के अनन्तर यत् प्रत्यय लगता है; जैसे—

वशं गतः 'वश्यः' (वश+यत्), धर्मादनपेतं 'धर्म्यम्' (धर्मानुकूल), पथ्यम्, अर्थ्यम्, न्याय्यम्, हृदयस्य प्रियः 'हृद्यः' (प्रिय); शरणे साधुः 'शरण्यः'

---

१ अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः ।४।४।६०। प्रहरणम् ।४।४।५७। शीलम् ।४।४।६१। तत्र नियुक्तः ।४।४।६९।

२ वशं गतः । धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते । हृदयस्य प्रियः । तत्र साधुः ।४।४।८६,९२,९५,९८।

'शरण्यः' (शरण लेने के लिए अच्छा), कर्मणि साधुः, 'कर्मण्यः' (काम के लिए अच्छा) ।

(ज) जिस[1] वस्तु के जो योग्य होता है, उस मनुष्य का बोध कराने के लिए उस वस्तु के अनन्तर ठञ् आदि प्रत्यय लगाये जाते हैं; जैसे—

प्रस्थमर्हति (असौ याचकः) 'प्रास्थिकः' (प्रस्थ+ठञ्) अर्थात् प्रस्थ भर अन्न के योग्य ।

द्रोणमर्हति 'द्रौणिक', (द्रोण+ठञ्)

श्वेतच्छत्रमर्हति 'श्वैतच्छत्रिकः' (श्वेतच्छत्र+ठक्)

इसी अर्थ में दण्ड आदि (दण्ड, मुसल, मधुपर्क, कशा, अर्घ, मेघ, मेघा, सुवर्ण, उदक, वध, युग, गुहा, भाग, इभ, भङ्ग) शब्दों के अनन्तर यत् प्रत्यय लगता है; जैसे—

(झ) दण्ड्य, मुसल्य, मधुपर्क्य, अर्घ्य, मेध्य, मेघ्य, वध्य, युग्य, गृह्य, भाग्य, भंग्य आदि ।

(ञ) प्रयोजन[2] के अर्थ में ठञ् प्रत्यय लगता है; जैसे—

इन्द्रमहः प्रयोजनमस्य 'ऐन्द्रमाहिकः' (पदार्थः)—इन्द्र के उत्सव के लिए। प्रयोजन का अर्थ फल अथवा कारण दोनों हैं ।

(ट) जिस[3] रंग से रँगी हुई वस्तु हो, उस रङ्गवाची शब्द के अनन्तर अण् प्रत्यय लगाते हैं जैसे—

कषाय+अण्=काषायम् (वस्त्रम्) ।

मञ्जिष्ठा+अण्=माञ्जिष्ठम् ।

किन्तु लाक्षा, रोचन, शकल, कर्दम के अनन्तर ठक् (लाक्षिक, रौचनिक, शाकलिक, कार्दमिक), नीली के अनन्तर अन् (नीली+अन्=नील);

---

१ तदर्हति ।५।१।६३। दण्डादिभ्यः ।५।१।६६।

२ प्रयोजनम् ।५।१।१०९।

३ तेन रक्तं रागात् ।४।२।२१। लाक्षारोचनात् ठक् ।४।२।२। शकल-कर्दमाभ्यामुपसंख्यानम् (वा०) नील्या अन् (वा०) । पीतात्कन् (वा०) हरिद्रामहारजनाभ्यामञ् (वा०) ।

पीत के अनन्तर कन् (पीतकम्) तथा हरिद्रा और महारजन के अनन्तर अञ् (हारिद्रम्, माहारजनम्) इसी अर्थ में लगता है ।

(ठ) नक्षत्र[1] से युक्त समयवाची शब्द बनाने के लिए नक्षत्रवाची शब्द में अण् जोड़ते हैं; जैसे—

चित्रया युक्तः मासः चैत्रः,
पुष्येण युक्ता रात्रिः=पौषी (रात्रिः) इत्यादि ।

(ड) जिस[2] वस्तु में खाने, पीने की वस्तु तैयार की जाये तो यह बोध कराने के लिए कि अमुक वस्तु में यह वस्तु तैयार हुई है, उस वस्तु के अनन्तर अण प्रत्यय लगाते हैं, जैसे—

भ्राष्ट्रे संस्कृताः (यवाः) भ्राष्ट्राः (भाड़ में भूने हुए जौ) ।
पयसि संस्कृतं (भक्तम्) पायसम् (दूध में बना हुआ भात) ।
पयसा संस्कृतम् पायसम् (दूध से बनी चीज) ।
किन्तु दधि शब्द के अनन्तर ठक् लगता है—
दध्ना संस्कृतम् दाधिकम् (दही में बनी चीज) ।

किसी वस्तु (मिर्च, घी आदि) से संस्कार की हुई वस्तु के अनन्तर ठक् लगता है; जैसे—

तैलेन संस्कृतम् तैलिकम् (तेल से बनी वस्तु), घार्तिकम् (घी से बनी), मारीचिकम् (मिर्च से छौंकी हुई) ।

(ढ) जिस[3] खेल में कोई प्रहरण प्रयोग में लाया जाये तो उस खेल का बोध कराने के लिए प्रहरणवाची शब्द के अनन्तर ण (अ) प्रत्यय लगाते हैं; जैसे—

दण्डः प्रहरणमस्यां क्रीडायां सा 'दाण्डा' (डंडेबाजी),
मुष्टिः प्रहरणमस्यां क्रीडायां सा 'मौष्टा' (मुक्केबाजी),

१ नक्षत्रेण युक्तः कालः ।४।२।३।
२ संस्कृतं भक्षाः ।४।२।१६। दध्नष्ठक् ।४।२।१८। संस्कृतम् ।४।४।३।
३ तदस्यां प्रहरणमिति क्रीडायां णः ।४।२।५७।

कोई[1] चीज पढ़ने वाले या जानने वाले का बोध कराने के लिए ञ (अ) लगता है; जैसे—

व्याकरणमधीते वेद वा=वैय्याकरणः (व्याकरण+ञ्)

(त) "इसमें[2] वह वस्तु है", "उससे यह बनी है", "इसमें उसका निवास है", "यह उससे दूर नहीं है"—ये सब अर्थ दिखाने के लिए अण् प्रत्यय जोड़ते हैं; जैसे—

उदुम्बराः सन्त्यस्मिन् देशे 'औदुम्बरः' देशः,
कुशाम्बे निर्वृता 'कौशाम्बी' (नगरी),
शिबीनां निवासो देशः 'शैवः' देशः,
विदिशायाः अदूरभवं (नगरम्) 'वैदिशम्'।

इन चार अर्थों के बोधक प्रत्ययों को चातुरर्थिक तद्धित प्रत्यय कहते हैं।

यदि[3] जनपद का अर्थ लाना हो तो चातुरर्थिक प्रत्ययों का लोप हो जाता है।

पञ्चालानां निवासो जनपदः=पञ्चालाः, इसी प्रकार कुरवः, वङ्गाः, कलिङ्गाः आदि।

जनपदवाची शब्द सदा बहुवचन में रहते हैं।

इ[4] ई, उ, ऊ में अन्त होने वाले स्त्रीलिङ्ग शब्दों में चातुरर्थिक मतुप् प्रत्यय लगता है; जैसे—इक्षुमती।

---

१ तदधीते तद्वेद ।४।२।५९।

२ तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि। तेन निर्वृत्तम्। तस्य निवासः। अदूरभवश्च ।१४।२।६७-७०।

३ जनपदे लुप ।४।२।८१।

४ नद्यां मतुप् ।४।२।८५।

नवम सोपान

१३३——क्रिया-विचार

लकारों के विषय में नियम

संस्कृत क्रियाओं पर विचार करते समय सर्वप्रथम उनसे अति निकट सम्बन्ध रखने वाले लकारों का उल्लेख करना आवश्यक है। ये दस हैं—लट्, लिट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ, लिङ, लुङ, लृङ। इन्हें लकार कहते हैं। ये विभिन्न कालों के वाचक हैं, साथ ही कुछ लकार आज्ञा, निमन्त्रण आदि अर्थ-विशेष (Moods) को भी द्योतित करते हैं। इनमें लेट् लकार का प्रयोग केवल वैदिक संस्कृत में होता है। वहाँ इस लकार का प्रयोग लिङ लकार के अर्थ में होता है।[1] इन पर विस्तृत विचार आगे इसी अध्याय में किया जायगा। इन लकारों के स्थान पर तिङ प्रत्यय आदेश रूप में होते हैं। इन तिङ प्रत्ययों में प्रारम्भ के नव तिप्, तस्, झि, सिप्, थ, मिप्, वस् मस् **परस्मैपद** प्रत्यय कहे जाते हैं तथा वाद के नव त, आताम् झ, थास्, आथास्, ध्वम्, इट्, वहि, महिङ **आत्मनेपद**।

जो धातु अनुदात्तेत् तथा ङित् होती हैं, उनसे और स्वरितेत् एवं ञित् धातु, जिनसे क्रियाफल कर्त्ता को मिलने वाला हो, तो आत्मनेपद प्रत्यय जुड़ते हैं; शेष धातुओं से कर्त्ता अर्थ में परस्मैपद प्रत्यय जुड़ते हैं।

लट् लकार

वर्तमान काल के अर्थ में लट् लकार का प्रयोग होता है।[2]

(१) य[3], व, र, ल, ङ, म, ञ, ण, न, झ, भ जिनके आदि में आते हों ऐसे सार्वधातुक (अर्थात् तिङ और शित्) प्रत्ययों के परवर्ती होने पर पूर्व की धातु के अदन्त अंग को दीर्घ हो जाता है।

---

१ लिङर्थे लेट्।३।४।७।

२ वर्तमाने लट्।३।२।१२३।

३ अतो दीर्घो यञि।७।३।१०१।

(२) टकारान्त[1] लकारों में आत्मनेपद् में अन्तिम स्वर के समेत अन्तिम व्यञ्जन (टि) के स्थान पर एकार आदेश होता है ।

(३) यदि[2] धातु का अकार पूर्ववर्त्ती हो तो आताम्, आथाम् प्रत्ययों के जुड़ने पर प्रत्ययों के आकार को इ (इय्) आदेश हो जाता है ।

(४) टकारान्त[3] लकारों में "थास्" के स्थान पर "से" आदेश हो जाता है ।

लिट् (परोक्षभूत)

(१) भूतकाल की उस अवस्था को द्योतित करने के लिए लिट् लकार का प्रयोग होता है वक्ता ने जिसका प्रत्यक्ष दर्शन न किया हो ।[4] उसके प्रत्यय निम्नलिखित हैं—

परस्मैपद

प्रथमपुरुष	णल् (अ),	अतुस्,	उस्
मध्यमपुरुष	थल्	अथुस्,	अ
उत्तमपुरुष	णल् (अ),	व,	म

(२) जिस[5] धातु को पूर्व ही द्वित्व न हुआ हो उसका लिट् लकार की प्रक्रिया में द्वित्व होता है । जुहोत्यादिगण के सम्वन्ध में नियम वतलाते समय इसके नियम दिये जायेंगे ।

(३) ह और य को छोड़कर अन्य व्यञ्जनों से शुरू होने वाले आर्धधातुक प्रत्ययों के परवर्त्ती होने पर लिट् लकार में धातु और प्रत्यय के बीच इट् (इ) का आगम होता है ।[6]

१ टित आत्मनेपदानां टेरे ।३।४।७९।

२ आतो ङितः ।७।२।८१।

३ थासः से ।३।४।८०।

४ परोक्षे लिट् ।३।२।११५।

५ लिटि धातोरनभ्यासस्य ।६।१।८।

६ आर्धधातुकस्येड्वलादेः ।७।२।३५।

(४) इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ स्वरों से शुरू होने वाली तथा गुरु स्वर से युक्त धातुओं (ऋच्छ् को छोड़कर) के पश्चात् लिट् लकार में 'आम्' का आगम होता है तथा 'आम्' जुड़ने पर जिस पद की धातु रहती है, उस पद में कृ, भ, अस् धातुओं का रूप आगे जुड़ता है।

लुट्[1] (अनद्यतन भविष्यत् काल)

(१) लृङ और लृट् में ष्य अथवा स्य और लुट् में तासि (तास्) प्रत्यय धातु के आगे शप् के स्थान पर आदिष्ट होते हैं।

(२) प्रथम पुरुष के लुट्-लकारीय प्रत्ययों के स्थान पर क्रमशः डा (आ) रौ, रस् आदेश होत हैं और डा के पूर्ववर्ती डकार का लोप हो जाता है। रौ और रस् के जुड़ने पर तास् के सकार का लोप हो जाता है एवं सकारादि के जुड़ने पर भी तास् के सकार का लोप हो जाता है।

लृट् लकार

(१) इस लकार का अर्थ सामान्य भविष्यत्काल को द्योतित करना है[2] और इसकी प्रक्रिया वहुत सरल है। केवल सेट् धातु के पश्चात् 'ष्य' और अनिट् धातु के पश्चात् 'स्य' जुड़ता है और शेष प्रक्रिया लट् लकार के ही समान होती है। हाँ, शप् के कारण जो विशेष परिवर्तन लकार में हो जाते हैं, वे यहाँ नहीं होते।

लङ लकार

(१) विधि आज्ञा और आशिष् को द्योतित करना इस लकार का अभिप्राय है।[3]

(२) लोट् लकार में परस्मैपद में निम्नलिखित प्रत्यय जुड़ते हैं—

प्रथम पुरुष—तु, ताम्, अन्तु (कहीं-कहीं अतु)।

मध्यम पुरुष—हि, तम्, त।

उत्तम पुरुष—नि, व, म।

---

१ अनद्यतने लुट् ।३।३।१५।

२ लृट् शेषे च ।३।३।१३।

३ लोट् च ।३।३।१६२। आशिषि लिङ्लोटौ ।३।३।१७३।

(३) अदन्त अंग के पश्चात् 'हि' का लोप हो जाता है ।

(४) लोट् लकार के उत्तम पुरुष में 'आट्' (आ) का आगम होता है और वह 'पित्' की तरह समझा जाता है ।

(५) लोट् लकार में आत्मनेपद में निम्नलिखित प्रत्यय होते हैं—

प्रथमपुरुष—ताम्, एताम्, अन्ताम् ।

मध्यमपुरुष—स्व, एथाम्, ध्वम् ।

उत्तमपुरुष—ऐ, वहै, महै ।

(६) 'हु' धातु तथा प्रत्येक वर्ग के प्रथमाक्षर, द्वितीयाक्षर, तृतीयाक्षर तथा चतुर्थाक्षर एवं श, ष, स, ह में अन्त होने वाली धातुओं के पश्चात् "हि" के स्थान पर धि आदेश होता है, जैसे जुहुधि, अद्धि ।

(७) अभ्यस्त (जिनको द्वित्व हुआ है उन) धातुओं के पश्चात् अन्तु के स्थान पर अतु आदेश होता है; जैसे ददतु ।

(८) व्यञ्जनान्त धातुओं के पश्चात् क्र्यादि गण में "हि" के पूर्व श्ना के स्थान पर आन (शानच्) आदेश होता है और हि का लोप हो जाता है । जैसे, गृहाण ।

लङ् लकार

(१) अनद्यतन भूतकाल का व्यापार द्योतित करना इस लकार का अभिप्राय है ।[१]

(२) लङ्, लुङ्, लृङ् लकारों में धातु के पूर्व अट् (अ) का आगम होता है ।

(३) लिङ्, लङ्, लुङ्, लृङ् लकारों में ति, अन्ति, सि, मि—इन इकारान्त प्रत्ययों के इकार का लोप हो जाता है ।

लिङ् लकार

१—विधि (आज्ञा), निमन्त्रण, आमन्त्रण (कामचारानुज्ञा), अधीष्ट (सत्कारपूर्वको व्यापारः), सम्प्रश्न और प्रार्थना—इन छः अर्थों में इस लकार का प्रयोग होता है ।[२]

---

१ अनद्यतने लङ् ।३।२।१११।

२ विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ।३।३।१६१।

२—लिङ् लकार में परस्मैपद प्रत्ययों और धातुओं के बीच में यासुट् (यास्) का आगम होता है और इस यास् के सकार का लोप भी प्रायः हुआ करता है।

३—लिङ् लकार में झि (अन्ति) के स्थान पर (उस्) आदेश होता है।

४—अदन्त अंग के पश्चात् यास् के स्थान पर "इय्" आदेश होता है और यदि य से भिन्न कोई व्यञ्जन आगे आवे तो इय् के यकार का लोप हो जाता है।

५—आत्मनेपद में प्रत्यय और धातु के बीच में सीयुट् (सीय्) आदेश होता है और लिङ के सार्वधातुक होने से 'स्' का तथा नियम ४ के अनुसार यकार का भी लोप होता है।

६—लिङ् लकार में 'झ' के स्थान पर 'अन' आदेश होता है।

७—उत्तमपुरुष में 'इट्' के स्थान पर 'अ' आदेश होता है।

आशीर्लिङ

(१) केवल आशीर्वाद अर्थ द्योतित करने के लिए आशीर्लिङ्ग का प्रयोग होता है।[१]

(२) विधिलिङ और आशीर्लिङ में निम्नलिखित अन्तर है—

(क) आशिष् में यासुट् के आगम के पश्चात् गुण[1] और वृद्धि दोनों नहीं हो सकते, जैसे कि विधिलिङ में होते हैं।

(ख) यासुट् से स् का लोप नहीं होता।

(ग) आत्मनेपदी धातुओं के सीयुट् (सीय्) के पश्चात् त और थ के पूर्व में सुच् (स्) का आगम होता है तथा आशीर्लिङ के आर्धधातुक होने से 'स्' का लोप नहीं होता; जैसे, एधिषीष्ट।

लुङ लकार

(१) सामान्य भूतकाल के व्यापार को लक्षित करने के लिये इस लकार का प्रयोग होता है।[२] सभी लकारों से इसका रूप बहुत बहुरंगी और जटिल

---

१ आशिषि लिङ्लोटौ ।३।३।७३।

२ लुङ ।३।२।११०। भूतार्थवृत्तेर्धातोर्लुङ स्यात्।

है। इसलिए इसके नियम बहुत अधिक हैं। उनमें से मुख्य नियम यहाँ दिये जा रहे हैं।

(२) लुङ लकार में शप् के स्थान पर 'च्लि' आदेश होता है। इस 'च्लि' के स्थान पर सिच् (स्) आदेश होता है।

(३) गा (इ), स्था, पा, भू तथा घु-संज्ञक (दा और धा) धातुओं में जब परस्मैपदी प्रत्यय जुड़ें, तब सिच् का लोप हो जाता है।

(४) भू और सू धातुओं के योग में लुङ लकार के प्रत्यय जुड़ने पर गुण नहीं होता।

(५) मा के योग में केवल लुङ लकार का ही प्रयोग होता है और साथ ही साथ धातु के पूर्व अट् का योग भी नहीं होता है।

(६) सिच्[1] (स्) के पश्चात् अपृक्त-संज्ञक को ईट् (ई) आगम होता है।

(७) यदि अकार के पश्चात् 'झ' न जुड़ता हो तो आत्मनेपद में प्रथम पुरुष बहुवचन के वाचक 'झ' के स्थान पर 'अत्' आदेश होता है।

(८) (क) कर्तृवाच्य में लुङ लकार में ण्यन्त धातुओं तथा श्रि, द्रु, स्रु धातुओं के पश्चात् च्लि के स्थान पर चङ (अ) आदेश होता है।

(ख) 'णि' के कारण जिस अंग की वृद्धि हो जाती है, उसका चङ के कारण ह्रस्व हो जाता है और 'णि' की 'इ' का भी लोप उस दशा में हो जाता है जब कि इकरादि प्रत्यय आगे न जुड़ता हो।

(ग) चङ के कारण अनभ्यास वाली धातु के प्रथम एकाच् भाग का द्वित्व करना पड़ता है।

(९) लुङ में अद् के स्थान पर 'घस्' (घस्लृ), हन् के स्थान पर 'वध' और इ के स्थान पर 'गा' आदेश होते हैं।

लृङ (क्रियातिपत्ति—Condition)[2]

इस लकार की क्रिया बहुत सरल है। भविष्यत् लृट् और लङ के रूपों के सामंजस्य से इसकी प्रक्रिया चलती है। इस लकार में भविष्यत् लृट् से

---

१ अस्तिसिचोऽपृक्ते ।७।३।९६।

२ लिङनिमित्ते लृङ क्रियातिपत्तौ ।३।३।१३९।

'स्य' लेकर धातु के पहले 'अ' जोड़कर लङ लकार के नियमों के अनुसार प्रत्यय जोड़ते हैं ।

१३४—संस्कृत भाषा के प्रायः सभी शब्द धातुओं से बने हैं, क्या संज्ञा, क्या विशेषण, क्या क्रिया, क्या अव्यय आदि । कुछ शब्द ऐसे हैं जो कि ऊपर से धातु से बने नहीं जान पड़ते, किन्तु वैयाकरण उनको भी धातुओं से निर्मित सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं । व्याकरण की दृष्टि से 'धातु' शब्द का अर्थ है 'शब्दयोनि'; अर्थात् जिससे 'शब्दों' की उत्पत्ति हो । 'धातुपाठ' में कुल १८८० धातुओं की गणना है । इन्हीं से प्रत्यय विशेष जोड़-जोड़ कर संस्कृत भाषा के शब्द बनते हैं ।

धातुओं में कृत् प्रत्यय जोड़ कर संज्ञा, विशेषण आदि बनते हैं । इनका विचार आगे ग्यारहवें सोपान में किया जायगा । धातुओं में तिङ प्रत्यय जोड़ कर क्रियाएँ बनाई जाती हैं । इस सोपान में क्रिया की दृष्टि से ही विचार किया गया है ।

(क) धातुएँ दस विभागों में विभक्त की गई हैं । इनको 'गण' कहते हैं । उनके नाम ये हैं—भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, स्वादि, तुदादि, रुदादि, तनादि, क्र्यादि और चुरादि[1] । इनको क्रम से प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम तथा दशम गण भी कहते हैं । गण का अर्थ है—"समूह" । धातुओं के उस समूह को जिसके आदि में भू धातु है, भ्वादिगण कहते हैं, इसी प्रकार अदादि भी हैं । जिन धातुओं के रूप एक प्रकार से चलते हैं, वे एक गण में रक्खी गई हैं । प्रत्येक गण में रूप चलाने के लिए क्या विशेषता लानी होती है, यह आगे प्रत्येक गण के विचार के समय उल्लेख किया जाएगा ।

(ख) रूप चलाने की सुगमता के लिए धातुओं का विभाग सेट्, वेट्, अनिट्—इन तीन भागों में भी किया जाता है । सेट् का अर्थ है—इट् सहित, अर्थात् जिनके रूपों में धातु और आर्धधातुक प्रत्यय के बीच में एक "इ" आ जाती है । यह "इ" कुछ ही प्रत्ययों के पूर्व आती है, सब के पूर्व नहीं । वेट्

१ भ्वाद्यदादी जुहोत्यादिः दिवादिः स्वादिरेव च ।
तुदादिश्च रुधादिश्च तनादिक्रीचुरादयः ।।

(वा+इट्) विभाग में वे धातुएँ हैं, जिनके उपरान्त इ विकल्प से आती है और अनिट् विभाग में वे हैं जिनमें इट् नहीं लाई जाती ।

(ग) कुछ धातुएँ सकर्मक होती हैं, और कुछ अकर्मक । सकर्मक धातुओं के रूपों के साथ किसी कर्म की आकांक्षा रहती है, अकर्मक धातुओं के रूपों के साथ नहीं ।

(घ) संस्कृत भाषा में लकारों के स्थान पर आदेश रूप में होने वाले प्रत्यय दो प्रकार के होते हैं—परस्मैपद और आत्मनेपद । परस्मैपद का सीधा अर्थ है—"वह पद जो दूसरे के लिए हो"; और आत्मनेपद का अर्थ है—"वह पद जो अपने लिए हो" । संभवतः ऐसी क्रियाएँ जिनका फल दूसरे के लिए हो, परस्मैपद में होनी चाहिए और ऐसी क्रियाएँ जिनका फल अपने लिए हो, आत्मनेपद में होनी चाहिए । जैसे, 'सः वपति' (वह बोता है)—यहाँ 'वपति' परस्मैपद की क्रिया है और इससे यह तात्पर्य निकलता है कि बोने की क्रिया का जो फल होगा, वह दूसरे के लिए होगा, बोने वाले के लिए नहीं । यदि 'सः वपते' (वह बोता है) कहा जाय तो इसका अर्थ होगा कि बोने की क्रिया का फल बोने वाले को मिलेगा । परन्तु क्रिया के रूपों को इस दृष्टि से प्रयोग करने का नियम केवल व्याकरणों में ही दिखाया गया है, संस्कृत के प्रायः सभी ग्रन्थकार इस नियम का उल्लंघन करते आये हैं । धातुएँ 'पदों' के हिसाब से भी विभक्त हैं, कुछ परस्मैपद में होती हैं, कुछ आत्मनेपद में ही और कुछ दोनों में । इससे परस्मैपदी धातु, आत्मनेपदी धातु और उभयपदी धातु—ये तीन विभाग धातुओं के होते हैं । कभी-कभी विशेष दशा में कोई एक पद की धातु दूसरे पद की हो जाती है । इसका विचार आगे किया जायगा ।

१३५—क्रिया बनाने के लिए धातुओं के रूप तीन वाच्यों में होते हैं—कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य । इनको कभी-कभी 'कर्त्तरि प्रयोग', 'कर्मणि प्रयोग' और 'भावे प्रयोग' भी कहते हैं । हिन्दी में भी इन तीनों प्रयोगों की प्रथा है, जैसे—मैं खाना खाता हूँ (अहं भोजनमद्मि), यह कर्तृवाच्य में; मुझसे खाना खाया जाता है (मया भोजनमद्यते), यह कर्मवाच्य में तथा मुझसे चला नहीं जाता (मया न अट्यते), यह भाववाच्य में । केवल सकर्मक

धातुओं की क्रियाओं में कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य सम्भव होते हैं; अकर्मक धातुओं के रूपों के साथ कर्तृवाच्य और भाववाच्य। अंग्रेजी में केवल कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य होते हैं, भाववाच्य नहीं। हिन्दी में कर्तृवाच्य में बोलना अधिक मुहावरेदार समझा जाता है किन्तु संस्कृत में कर्मवाच्य अथवा भाववाच्य में।

पूर्वोक्त लकारों के प्रयोग के विषय में कुछ निम्नाङ्कित बातें ध्यान में रखनी चाहिए।

(१) वर्तमानकाल की क्रिया का प्रयोग वर्तमान समय में होने वाली वस्तु के विषय में किया जाता है, जैसे—स गच्छति, सः कटं करोति, वयं कुर्मः आदि।

(२) आज्ञा का प्रयोग किसी को कुछ करने की आज्ञा देने के लिए किया जाता है, जैसे—त्वं पाठशालां गच्छ, यूयं मह्यं धनं दत्त, आदि। आज्ञा बहुधा सामने उपस्थित मनुष्य को ही दी जाती है, इसलिए आज्ञा का प्रयोग बहुधा मध्यम पुरुष में ही होता है, परन्तु ऐसे प्रयोग, जैसे—मैं करूँ (अहं करवाणि), वह करे (सः करोतु) आदि भी आवश्यकतानुसार होते हैं।

(३) विधिलिङ का प्रयोग किसी को आदेश देने के लिए किया जाता है, जैसे प्रभु का अपने सेवक को आज्ञा देना। प्रायः यदि आज्ञा के रूप का प्रयोग हो तो नरम आदेश समझना चाहिए, विधि का प्रयोग हो तो कड़ा। विधि का प्रयोग 'चाहिए' अर्थ का बोध कराने के लिए भी होता है, जैसे—सः कुर्यात् (उसको करना चाहिए)।

(४, ५, ६) तीन भूतकाल—संस्कृत में भूतकाल की क्रिया का बोध कराने के लिए तीन काल—अनद्यतनभूत, परोक्ष और सामान्यभूत हैं। इनके प्रयोग में थोड़ा अन्तर है। अनद्यतन भूत का अर्थ है—ऐसा भूतकाल जो आज न हुआ हो, अर्थात् इस काल के रूप ऐसी दशा में लाए जाने चाहिए जब क्रिया आज समाप्त न हुई हो, कल या इससे पूर्व समाप्त हुई हो; जैसे—'मैं आज पढ़ने गया', यहाँ 'गया' शब्द का अनुवाद संस्कृत में अनद्यतनभूत की क्रिया से न होगा, किसी और से होगा। परोक्षभूत का अर्थ है—ऐसा अतीतकाल जो आँखों के सामने न हुआ हो। यदि कोई क्रिया अपनी आँखों के सामने हुई है

तो उस दशा में परोक्ष भूत का प्रयोग न होगा; जैसे—'मैं पाठशाला गया'; यहाँ जाने की क्रिया मेरे समक्ष हुई, इसलिए यहाँ "गया" का अनुवाद परोक्षभूत के रूप से न करके किसी और के रूप से करना[1] होगा। तीसरा भूतकाल अर्थात् सामान्यभूत सब कहीं प्रयोग में लाया जा सकता है, चाहे क्रिया आज समाप्त हुई हो अथवा बरसों पहले।

नोट—संस्कृत में वर्तमान काल की क्रिया के अनन्तर 'स्म' शब्द जोड़ कर एक साधारण भूतकाल बनाया जाता है। यह प्रायः किस्से-कहानियों में वर्णन के काम में लाया जाता है, जैसे—कश्चिद्राजा प्रतिवसतिस्म। 'स्म' का प्रयोग प्रायेण भूतकाल की ऐसी क्रियाओं को प्रकट करने के लिए होता था जिनमें अभ्यास, आदत इत्यादि की बात रहती थी। इस प्रकार इसका प्रयोग अँग्रेजी के used to, won't to, habituated to इत्यादि के अर्थ में होता था; जैसे एक जङ्गल में एक शेर रहा करता था। (There used to live a lion in a forest) का अनुवाद संस्कृत में 'कस्मिंश्चिद्वने एकः सिंहः प्रतिवसति स्म'—इस प्रकार होगा। यहाँ वाक्य से यह ध्वनित होता है कि वह बहुत समय से उस जङ्गल में रहने का अभ्यासी (आदी) हो गया था। परन्तु इसका प्रयोग सभी प्रकार की भूतकाल की क्रियाओं को भी प्रकट करने के लिए होता है।

(७, ८) दोनों भविष्यकाल—भविष्यकाल की क्रिया का बोध कराने के लिए दो काल हैं—अनद्यतन भविष्य और सामान्य भविष्य। इनमें से पहले का प्रयोग ऐसी दशा में नहीं हो सकता जब क्रिया आज ही होने को हो। दूसरे का सब कहीं प्रयोग हो सकता है।

(९) आशीर्लिङ का प्रयोग आशीर्वादात्मक होता है; जैसे—तुम सौ वर्ष तक जिओ—त्वं जीव्याः शरदां शतम्। कभी-कभी आशीर्वाद अथवा

---

१ इस प्रकार परोक्षभूत का प्रयोग उत्तम पुरुष में होता ही नहीं, क्योंकि स्वयं की हुई क्रिया परोक्ष नहीं हो सकती। परन्तु चित्तविक्षेप की अवस्था में किया गया काम परोक्षभूत से भी वर्णित हो सकता है और किए हुए कार्य को छिपाने से भी उत्तम पुरुष में लिट् का प्रयोग होता है। उत्तमपुरुष चित्तविक्षेपादिना पारोक्ष्यम्—सि० कौ०। अत्यन्तापह्नवे लिङ वक्तव्यः (वा०)

आकांक्षा प्रकट करने के लिए आज्ञा अथवा विधि का भी प्रयोग होता है, जैसे— त्वं जीव शरदां शतम्, जीवेम शरदां शतम् इत्यादि ।

(१०) क्रियातिपत्ति का प्रयोग ऐसे अवसर पर होता है, जहाँ एक क्रिया का होना दूसरी क्रिया के होने पर निर्भर हो; जैसे—यदि वह आता तो मैं उसके साथ जाता (यदि सः आगमिष्यत्तर्हि अहं नूनं तेन सह अगमिष्यम्) । इस क्रियातिपत्ति के अर्थ में कभी-कभी भविष्य भी प्रयोग में आता है । यथा— यदि वह आयेगा तो मैं उसके साथ जाऊँगा (यदि स आगमिष्यति तर्हि अहं तेन सह गमिष्यामि) । इसी प्रकार कभी वर्तमान और कभी आज्ञा के रूप भी काम में लाये जाते हैं ।

इन दस लकारों के प्रत्यय परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों में दिये जाते हैं । प्रत्येक लकार में तीन पुरुष और तीन वचन होते हैं (देखिए नियम ४१) । हिन्दी में बहुधा कर्तृवाच्य में कर्ता के लिङ्ग के अनुसार (जैसे—राम जाता है, गौरी जाती है, राम गया, गौरी आई, राम जायगा, गौरी जायगी तथा कर्मवाच्य में कर्म के लिङ्ग के अनुसार (जैसे—मुझसे किताब नहीं पढ़ी जाती, मुझसे अखबार नहीं पढ़ा जाता आदि) बदलती है, परन्तु संस्कृत में क्रिया कर्त्ता या कर्म के लिङ्ग के अनुसार नहीं बदलती (रामः गच्छति या गौरी गच्छति; रामोऽगच्छत् या गौरी अगच्छत्, रामो गमिष्यति या गौरी गमिष्यति; मया पुस्तिका न पठ्यते या मया समाचारपत्रं न पठ्यते आदि ।

१३६—लकारों के प्रत्यय इस प्रकार हैं—

(क) वर्तमान काल (लट्)

परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ति	तस्	अन्ति
म० पु०	सि	थस्	थ
उ० पु०	मि	वस्	मस्

आत्मनेपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ते	इते	अन्ते
म० पु०	से	इथे	ध्वे
उ० पु०	इ	वहे	महे

नोट—दूसरे, तीसरे, पाँचवें, सातवें, आठवें और नवें गण की धातुओं से आत्मनेपद में ये प्रत्यय जुड़ते हैं।

प्र० पु०	ते	आते	अते
म० पु०	से	आथे	ध्वे
उ० पु०	ए	वहे	महे

(ख) आज्ञा (लोट्)

परस्मैपद

प्र० पु०	तु	ताम्	अन्तु
म० पु०	तु या तात्	तम्	त
उ० पु०	आनि	आव	आम

आत्मनेपद

प्र० पु०	ताम्	इताम्	अन्ताम्
म० पु०	स्व	इथाम्	ध्वम्
उ० पु०	ऐ	आवहै	आमहै

नोट—दूसरे, तीसरे, पाँचवें, आठवें और नवें गण की धातुओं के उपरान्त परस्मैपद में ऊपर लिखे ही प्रत्यय लगते हैं, केवल म० पु० एकवचन में 'हि' जोड़ा जाता है। इन गणों में आत्मनेपद में ये प्रत्यय लगते हैं—

प्र० पु०	ताम्	आताम्	अताम्
म० पु०	स्व	आथाम्	ध्वम्
उ० पु०	ए	आवहै	आमहै

(ग) विधिलिङ

परस्मैपद

प्र० पु०	ईत्	ईताम्	ईयुः
म० पु०	ईः	ईतम्	ईत
उ० पु०	ईयम्	ईव	ईम

आत्मनेपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	इत	ईयाताम्	ईरन्
म० पु०	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
उ० पु०	ईय	ईवहि	ईमहि

नोट—दूसरे, तीसरे, पाँचवें, आठवें और नवें गण की धातुओं के उपरान्त आत्मनेपद में ये प्रत्यय लगते हैं—

प्र० पु०	यात्	याताम्	युः
म० पु०	याः	यातम्	यात
उ० पु०	याम्	याव	याम

(घ) अनद्यतनभूत (लङ्)

परस्मैपद

प्र० पु०	त्	ताम्	अन्
म० पु०	स	तम्	त
उ० पु०	अम्	व	म

आत्मनेपद

प्र० पु०	त	इताम्	अन्त
म० पु०	थाः	इथाम्	ध्वम्
उ० पु०	इ	वहि	महि

नोट—दूसरे, तीसरे, पाँचवें, सातवें, आठवें और नवें गण की धातुओं के उपरान्त आत्मनेपद में ये प्रत्यय लगते हैं—

प्र० पु०	त	आताम्	अत
म० पु०	थाः	आथाम्	ध्वम्
उ० पु०	इ	वहि	महि

(च) परोक्षभूत (लिट्)

परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अ	अतुः	उः
म० पु०	थ	अथुः	अ
उ० पु०	अ	व	म

आत्मनेपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ए	आते	इरे
म० पु०	से	आथे	ध्वे
उ० पु०	ए	वहे	महे

नोट—परोक्ष भूत के एक प्रकार के रूप इन प्रत्ययों को जोड़ कर बनते हैं। दूसरे प्रकार के रूप धातु में कृ, भू अथवा अस् के रूप जोड़ कर बनते हैं। इस दशा में धातु और इन रूपों के बीच में—आम्—जोड़ दिया जाता है। जिस पद की धातु होती है, उसी पद के रूप जोड़े जाते हैं; जैसे—ईड् धातु से ईडाञ्चक्रे, ईडाम्बभूव, ईडामास आदि।

(छ) सामान्यभूत (लुङ्)

सामान्यभूत के रूप संस्कृत में सात प्रकार के होते हैं, कुछ किसी गण की धातुओं में लगते हैं, कुछ किसी में। इन सात प्रकार के प्रत्ययों में भी कुछ भेद होता है। उदाहरणार्थ, प्रथम प्रकार के सामान्यभूत और अनद्यतनभूत के प्रत्ययों में केवल प्र० पु० के बहुवचन में अन् के स्थान में उस् हो जाता है। दूसरे प्रकार के सामान्यभूत के प्रत्यय ठीक अनद्यतनभूत के हैं, केवल धातु और प्रत्ययों के बीच में अ जोड़ दिया जाता है। तीसरे प्रकार के भी प्रत्यय अनद्यतनभूत के हैं, केवल प्रत्यय जोड़ने के पूर्व धातु का द्वित्व (अभ्यास) करके अ जोड़ते हैं।

सामान्यभूत के चौथे प्रकार के प्रत्यय ये हैं—

परस्मैपद

प्र० पु०	सीत्	स्ताम्	सुः
म० पु०	सीः	स्तम्	स्त
उ० पु०	सम्	स्व	स्म

आत्मनेपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	स्त	साताम्	सत
म० पु०	स्थाः	साथाम्	ध्वम्
उ० पु०	सि	स्वहि	स्महि

पञ्चम प्रकार के प्रत्यय ये हैं—

परस्मैपद

प्र० पु०	ईत्	इष्टाम्	इषुः
म० पु०	ईः	इष्टम्	इष्ट
उ० पु०	इषम्	इष्व	इष्म

आत्मनेपद

प्र० पु०	इष्ट	इषाताम्	इषत
म० पु०	इष्ठाः	इषाथाम्	इषध्वम्
उ० पु०	इषि	इष्वहि	इष्महि

छठें प्रकार के रूप केवल परस्मैपद में होते हैं और उसके प्रत्यय पाँचवें प्रकार के ही हैं, केवल उनके पूर्व स् और जोड़ दिया जाता है, सीत् (स ईत्) आदि।

सातवें प्रकार के प्रत्यय ये हैं—

परस्मैपद

प्र० पु०	सत्	सताम्	सन्
म० पु०	सः	सतम्	सत्
उ० पु०	सम्	साव	साम

आत्मनेपद

प्र० पु०	सत	साताम्	सन्त
म० पु०	सथाः	साथाम्	सध्वम्
उ० पु०	सि	सावहि	सामहि

सात प्रकार के सामान्यभूत के रूप कौन किस धातु के होते हैं, यह व्याकरण प्रवेशिका में बताना कठिन है। गण-विशेषों की मुख्य-मुख्य धातुओं के जो रूप होते हैं, वे आगे दिखा दिये गये हैं।

(ज) अनद्यतन भविष्य (लुट्)

परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ता	तारौ	तारः
म० पु०	तासि	तास्थः	तास्थ
उ० पु०	तास्मि	तास्वः	तास्मः

आत्मनेपद

प्र० पु०	ता	तारौ	तारः
म० पु०	तासे	तासाथे	ताध्वे
उ० पु०	ताहे	तास्वहे	तास्महे

धातुओं में ये प्रत्यय जोड़े जाते हैं। इनके प्रथम पुरुष के रूप कर्तृवाचक ऋकारान्त दातृ आदि (४४ ग) के प्रथमा पुंल्लिङ्ग रूप हैं और मध्यम तथा उत्तम पुरुष में प्रथमा एकवचन में अस् (होना) के वर्तमान काल के रूप जोड़ देने से निकल सकते हैं।

(झ) सामान्य भविष्य (लृट्)

परस्मैपद

प्र० पु०	स्यति	स्यतः	स्यन्ति
म० पु०	स्यसि	स्यथः	स्यथ
उ० पु०	स्यामि	स्यावः	स्यामः

आत्मनेपद

प्र० पु०	स्यते	स्येते	स्यन्ते
म० पु०	स्यसे	स्येथे	स्यध्वे
उ० पु०	स्ये	स्यावहे	स्यामहे

(ट) आशीर्लिङ

परस्मैपद

प्र० पु०	यात्	यास्ताम्	यासुः
म० पु०	याः	यास्तम्	यास्त
उ० पु०	यासम्	यास्व	यास्म

आत्मनेपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	सीष्ठ	सीयास्ताम्	सीरन्
म० पु०	सीष्ठाः	सीयास्थाम्	सीध्वम्
उ० पु०	सीय	सीवहि	सीमहि

(ठ) क्रियातिपत्ति (लृङ्)

परस्मैपद

प्र० पु०	स्यत्	स्यताम्	स्यन्
म० पु०	स्यः	स्यतम्	स्यत
उ० पु०	स्यम्	स्याव	स्याम

आत्मनेपद

प्र० पु०	स्यत	स्येताम्	स्यन्त
म० पु०	स्यथाः	स्येथाम्	स्यध्वम्
उ० पु०	स्य	स्यावहि	स्यामहि

नोट १—इस प्रकार ऊपर दसों लकारों के प्रत्यय दिये गये हैं। इनमें से अनद्यतन भूत, सामान्यभूत और क्रियातिपत्ति में धातु के पूर्व 'अ' जोड़ा जाता है और परोक्षभूत में धातु का द्वित्व (अभ्यास) कर दिया जाता है। अभ्यास करने के नियम ये हैं—

धातु के प्रथम स्वर को दो बार लाते हैं (जैसे उख् का अभ्यस्त रूप उ उख); यदि प्रथम स्वर के पूर्व में कोई व्यंजन हो तो उस व्यंजन सहित उस स्वर को लाते हैं (जैसे पत् से पपात्)। यदि आरम्भ में संयुक्ताक्षर हो तो संयुक्ताक्षर के प्रथम व्यंजन के साथ स्वर आता है (जैसे प्रच्छ से पप्रच्छ), किन्तु यदि संयुक्ताक्षर के आदि में श्, ष्, स् में से कोई हो तो दूसरा अर्थात् श्, ष्, स् के बाद वाला ही व्यंजन साथ वाले स्वर के साथ आता है (जैसे स्पर्ध से पस्पर्ध)। अभ्यास में आने वाला अक्षर यदि पञ्चवर्गों का द्वितीय अथवा चतुर्थ हो तो क्रम से उसके स्थान पर प्रथम अथवा तृतीय आ जाता है (जैसे छिद् से चिच्छिद, भुज से बुभुज्)। कवर्गीय अक्षर का अभ्यास करना हो तो उसके जोड़ का चवर्गीय अक्षर लाना चाहिए। (जैसे कम् से चकम्, खन्=कखन्=चखन्)। इसी प्रकार ह् के

स्थान पर ज् (जैसे हु से जुहु) होता है। अभ्यास में दीर्घ स्वर का ह्रस्व (जैसे दा से ददा, नी से ननी), ऋ का अ (जैसे कृ से चकृ), ए अथवा ऐ का इ (जैसे सेव् से सिषेव्), और ओ अथवा औ का उ (जैसे गोप् से जुगोप, ढौक् से डुढौक्) हो जाता है।

नोट २—दस लकारों में से वर्तमान, आज्ञा, विधि और अनद्यतनभूत को सार्वधातुक कहते हैं और शेष छः को आर्धधातुक। सार्वधातुक लकारों के प्रत्यय जुड़ने के पूर्व धातुओं में प्रत्येक गण में अलग-अलग कुछ विकार दिया जाता है—कभी-कभी धातु के रूप में कुछ परिवर्तन हो जाता है (जैसे गम् धातु का गच्छ् हो जाता है, प्रच्छं का पृच्छ)। आर्धधातुओं में यह नहीं किया जाता (जैसे गम् से सामान्यभूत में अगमत् आदि, प्रच्छ से अप्राक्षीत् आदि)।

इस सोपान में केवल कर्तृवाच्य के रूप दिये जा रहे हैं। अन्य वाच्यों का विस्तार अगले सोपान में किया जायगा।

भ्वादिगण

१३७—भ्वादिगण की प्रथम धातु 'भू' है, इसलिए इस गण का यह नाम पड़ा। दसों गणों में यह प्रमुख है। धातु पाठ में इसकी १०३५ धातुएँ गिनाई गई हैं। इस हिसाब से जितनी और नौ गणों की धातुएँ मिलाकर हैं, उनसे कहीं अधिक इस एक गण में हैं। संज्ञाओं में जो महत्त्व अकारान्त शब्दों का है वही, क्रिया में भ्वादिगण का है।

इस गण की धातुओं के अनन्तर (प्रत्यय लगाने के पूर्व) शप् (अ) जोड़ दिया जाता है तथा धातु की उपधा का ह्रस्व स्वर अथवा धातु का अन्तिम स्वर गुणवर्ण में बदल जाता है; जैसे—भू धातु में वर्तमान के प्रत्यय जोड़ने हों तो भू+शप् (अ)+ति=भ्+ऊ+अ+ति=भ्+ओ (गुण) +अ+ति=भ्+अव्+अ+ति= भवति, रूप प्रथम पुरुष के एकवचन में बनेगा। इसी प्रकार जि+शप्+ति=ज्+इ+अ+ति=ज्+ए+अ=ति=ज्+अय्+अ + ति=जयति; इसी प्रकार नयति आदि। उपधाभूत ह्रस्व स्वर का गुण; जैसे—बुध्+शप्+ +ति=ब्+उ+ध्+अ+ति=ब्+ओ+ध्+अ+ति=बोधति। जिन धातुओं की उपधा में अथवा अन्त में अ होगा, उनमें गुणसन्धि करने से भी अ ही रहता है।

१३८—परस्मैपदी भू—होना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	भवति	भवतः	भवन्ति
म० पु०	भवसि	भवथः	भवथ
उ० पु०	भवामि	भवावः	भवामः

आज्ञा—लोट् (होवो, जाओ)

प्र० पु०	भवतु	भवताम्	भवन्तु
म० पु०	भव	भवतम्	भवत
उ० पु०	भवानि	भवाव	भवाम

विधि—लिङ

प्र० पु०	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः
म० पु०	भवेः	भवेतम्	भवेत
उ० पु०	भवेयम्	भवेव	भवेम

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
म० पु०	अभवः	अभवतम्	अभवत
उ० पु०	अभवम्	अभवाव	अभवाम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बभूव	बभूवतुः	बभूवुः
म० पु०	बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
उ० पु०	बभूव	बभूविव	बभूविम

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
म० पु०	अभूः	अभूतम्	अभूत
उ० पु०	अभूवम्	अभूव	अभूम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	भविता	भवितारौ	भवितारः
म० पु०	भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ
उ० पु०	भवितास्मि	भवितास्वः	भवितास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
म० पु०	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
उ० पु०	भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः

आशीर्लिङ

प्र० पु०	भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः
म० पु०	भूयाः	भूयास्तम्	भूयास्त
उ० पु०	भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ

प्र० पु०	अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
म० पु०	अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्यत
उ० पु०	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

१३६—भ्वादिगण की अन्य धातुओं के रूप

परस्मैपदी, गम्—जाना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति
म० पु०	गच्छसि	गच्छथः	गच्छथ
उ० पु०	गच्छामि	गच्छावः	गच्छामः
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	गच्छतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	गच्छेत्
लङ	प्र० पु०	एकवचन	अगच्छत्

SRI AUROBINDO LIBRARY PONDICHERRY (India)

परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जगाम	जग्मतुः	जग्मुः
म० पु०	जगमिथ, जगन्थ	जग्मथुः	जग्म
उ० पु०	जगाम, जगम	जग्मिव	जग्मिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अगमत्	अगमताम्	अगमन्
म० पु०	अगमः	अगमतम्	अगमत
उ० पु०	अगमम्	अगमाव	अगमाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	गन्ता	गन्तारौ	गन्तारः
म० पु०	गन्तासि	गन्तास्थः	गन्तास्थ
उ० पु०	गन्तास्मि	गन्तास्वः	गन्तास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति
म० पु०	गमिष्यसि	गमिष्यथः	गमिष्यथ
उ० पु०	गमिष्यामि	गमिष्यावः	गमिष्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	गम्यात्	गम्यास्ताम्	गम्यासुः
म० पु०	गम्याः	गम्यास्तम्	गम्यास्त
उ० पु०	गम्यासम्	गम्यास्व	गम्यास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अगमिष्यत्	अगमिष्यताम्	अगमिष्यन्
म० पु०	अगमिष्यः	अगमिष्यतम्	अगमिष्यत
उ० पु०	अगमिष्यम्	अगमिष्याव	अगमिष्याम

परस्मैपदी--गै[1]--गाना

वर्तमान--लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	गायति	गायतः	गायन्ति
म० पु०	गायसि	गायथः	गायथ
उ० पु०	गायामि	गायावः	गायामः
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	गायतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	गायेत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अगायत्

परोक्षभूत--लिट्

प्र० पु०	जगौ	जगतुः	जगुः
म० पु०	जगिथ, जगाथ	जगतुः	जग
उ० पु०	जगौ	जगिव	जगिम

सामान्यभूत--लुङ्

प्र० पु०	अगासीत्	अगासिष्टाम्	अगासिषुः
म० पु०	अगासीः	अगासिष्टम्	अगासिष्ट
उ० पु०	अगासिषम्	अगासिष्व	अगासिष्म

अनद्यतनभविष्य--लुट्

प्र० पु०	गाता	गातारौ	गातारः
म० पु०	गातासि	गातास्थः	गातास्थ
उ० पु०	गातास्मि	गातास्वः	गातास्मः

सामान्यभविष्य--लृट्

प्र० पु०	गास्यति	गास्यतः	गास्यन्ति
म० पु०	गास्यसि	गास्यथः	गास्यथ
उ० पु०	गास्यामि	गास्यावः	गास्यामः

---

१ ग्लै (प०, क्षीण होना), ध्यै (प०, ध्यान करना), ग्लै (प०, मुरझाना) के रूप गै की तरह होते हैं ।

आशीर्लिङ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	गेयात्	गेयास्ताम्	गेयासुः
म० पु०	गेयाः	गेयास्तम्	गेयास्त
उ० पु०	गेयासम्	गेयास्व	गेयास्म
लृङ	अगास्यत्		

परस्मैपदी

जि—जीतना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	जयति	जयतः	जयन्ति
म० पु०	जयसि	जयथः	जयथ
उ० पु०	जयामि	जयावः	जयामः
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	जयतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	जयेत्
लङ	प्र० पु०	एकवचन	अजयत्

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जिगाय	जिग्यतुः	जिग्युः
म० पु०	जिगयिथ,	जिग्यथुः	जिग्य
उ० पु०	जिगाय, जिगय	जिग्यिव	जिग्यिम

सामान्यभूत—लङ

प्र० पु०	अजैषीत्	अजैष्टाम्	अजैषुः
म० पु०	अजैषीः	अजैष्टम्	अजैष्ट
उ० पु०	अजैषम्	अजैष्व	अजैष्म

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	जेता	जेतारौ	जेतारः
म० पु०	जेतासि	जेतास्थः	जेतास्थ
उ० पु०	जेतास्मि	जेतास्वः	जेतास्मः

सामान्यभविष्य--लृट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	जेष्यति	जेष्यतः	जेष्यन्ति
म० पु०	जेष्यसि	जेष्यथः	जेष्यथ
उ० पु०	जेष्यामि	जेष्यावः	जेष्यामः

आशीर्लिङ

प्र० पु०	जीयात्	जीयास्ताम्	जीयासुः
म० पु०	जीयाः	जीयास्तम्	जीयास्त
उ० पु०	जीयासम्	जीयास्व	जीयास्म

क्रियातिपत्ति--लृङ

प्र० पु०	अजेष्यत्	अजेष्यताम्	अजेष्यन्
म० पु०	अजेष्यः	अजेष्यतम्	अजेष्यत
उ० पु०	अजेष्यम्	अजेष्याव	अजेष्याम

परस्मैपदी

दृश्--देखना

वर्तमान--लट्

प्र० पु०	पश्यति	पश्यतः	पश्यन्ति
म० पु०	पश्यसि	पश्यथः	पश्यथ
उ० पु०	पश्यामि	पश्यावः	पश्यामः
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	पश्यतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	पश्येत्
लङ	प्र० पु०	एकवचन	अपश्यत्

परोक्षभूत--लिट्

प्र० पु०	ददर्श	ददृशतुः	ददृशुः
म० पु०	ददर्शिथ, दद्रष्ठ	ददृशथुः	ददृश
उ० पु०	ददर्श	ददृशिव	ददृशिम

सामान्यभूत—लुङ्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	अदर्शत् अद्राक्षीत्	अदर्शताम् अद्राष्टाम्	अदर्शन् अद्राक्षुः
म० पु०	अदर्शः अद्राक्षीः	अदर्शतम् अद्राष्टम्	अदर्शत अद्राष्ट
उ० पु०	अदर्शम् अद्राक्षम्	अदर्शाव अद्राक्ष्व	अदर्शाम अद्राक्ष्म

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	द्रष्टा	द्रष्टारौ	द्रष्टारः
म० पु०	द्रष्टासि	द्रष्टास्थः	द्रष्टास्थ
उ० पु०	द्रष्टास्मि	द्रष्टास्वः	द्रष्टास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यतः	द्रक्ष्यन्ति
म० पु०	द्रक्ष्यसि	द्रक्ष्यथः	द्रक्ष्यथ
उ० पु०	द्रक्ष्यामि	द्रक्ष्यावः	द्रक्ष्यामः

आशीर्लिङ

प्र० पु०	दृश्यात्	दृश्यास्ताम्	दृश्यासुः
म० पु०	दृश्याः	दृश्यास्तम्	दृश्यास्त
उ० पु०	दृश्यासम्	दृश्यास्व	दृश्यास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ

प्र० पु०	अद्रक्ष्यत्	अद्रक्ष्यताम्	अद्रक्ष्यन्
म० पु०	अद्रक्ष्यः	अद्रक्ष्यतम्	अद्रक्ष्यत
उ० पु०	अद्रक्ष्यम्	अद्रक्ष्याव	अद्रक्ष्याम

उभयपदी[1] धृ--धरना

परस्मैपद

वर्तमान--लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	धरति	धरतः	धरन्ति
म० पु०	धरसि	धरथः	धरथ
उ० पु०	धरामि	धरावः	धरामः
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	धरतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	धरेत्
लङ	प्र० पु०	एकवचन	अधरत्

परोक्षभूत--लिङ

प्र० पु०	दधार	दध्रतुः	दध्रुः
म० पु०	दधर्थ	दध्रथुः	दध्र
उ० पु०	दधार, दधर	दध्रिव	दध्रिम

सामान्यभूत--लुङ्

प्र० पु०	अधार्षीत्	अधार्ष्टाम्	अधार्षुः
म० पु०	अधार्षीः	अधार्ष्टम्	अधार्ष्ट
उ० पु०	अधार्षम्	अधार्ष्व	अधार्ष्म
लुट्	प्र० पु०	एकवचन	धर्ता
लृट्	प्र० पु०	एकवचन	धरिष्यति

आशीर्लिङ

प्र० पु०	ध्रियात्	ध्रियास्ताम्	ध्रियासुः
म० पु०	ध्रियाः	ध्रियास्तम्	ध्रियास्त
उ० पु०	ध्रियासम्	ध्रियास्व	ध्रियास्म

---

१ तृ (उ०, पार करना), भृ (उ०, भरण-पोषण करना), सृ (प० चलना), स्मृ (प०, स्मरण करना), हृ (उ०, हरण करना) के रूप धृ के समान होते हैं ।

क्रियातिपत्ति—लृङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अधरिष्यत्	अधरिष्यताम्	अधरिष्यन्
म० पु०	अधरिष्यः	अधरिष्यतम्	अधरिष्यत
उ० पु०	अधरिष्यम्	अधरिष्याव	अधरिष्याम

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	धरते	धरेते	धरन्ते
म० पु०	धरसे	धरेथे	धरध्वे
उ० पु०	धरे	धरावहे	धरामहे
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	धरताम्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	धरेत
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अधरत

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	दध्रे	दध्राते	दध्रिरे
म० पु०	दध्रिषे	दध्राथे	दध्रिध्वे
उ० पु०	दध्रे	दध्रिवहे	दध्रिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अधृत	अधृषाताम्	अधृषत
म० पु०	अधृथाः	अधृषाथाम्	अधृढ्वम्
उ० पु०	अधृषि	अधृष्वहि	अधृष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	धर्ता	धर्तारौ	धर्तारः
म० पु०	धर्तासि	धर्तासाथे	धर्ताध्वे
उ० पु०	धर्ताहे	धर्तास्वहे	धर्तास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	धरिष्यते	धरिष्येते	धरिष्यन्ते
म० पु०	धरिष्यसे	धरिष्येथे	धरिष्यध्वे
उ० पु०	धरिष्ये	धरिष्यावहे	धरिष्यामहे

आशीर्लिङ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	धृषीष्ठ	धृषीयास्ताम्	धृषीरन्
म० पु०	धृषीष्ठाः	धृषीयास्थाम्	धृषीध्वम्
उ० पु०	धृषीय	धृषीवहि	धृषीमहि

क्रियातिपत्ति--लृङ

प्र० पु०	अधरिष्यत	अधरिष्येताम्	अधरिष्यन्त
म० पु०	अधरिष्यथाः	अधरिष्येथाम्	अधरिष्यध्वम्
उ० पु०	अधरिष्ये	अधरिष्यावहि	अधरिष्यामहि

उभयपदी नी--ले जाना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	नयति	नयतः	नयन्ति
म० पु०	नयसि	नयथः	नयथ
उ० पु०	नयामि	नयावः	नयामः
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	नयतु, नयतात्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	नयेत्
लङ	प्र० पु०	एकवचन	अनयत्

परोक्षभूत--लिट्

प्र० पु०	निनाय	निन्यतुः	निन्युः
म० पु०	निनयिथ निनेथ	निन्यथुः	निन्य
उ० पु०	निनाय, निनय	निन्यिव	निन्यिम

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अनैषीत्	अनैष्टाम्	अनैषुः
म० पु०	अनैषीः	अनैष्टम्	अनैष्ट
उ० पु०	अनैषम्	अनैष्व	अनैष्म

अनद्यतनभविष्य--लुट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	नेता	नेतारौ	नेतारः
म० पु०	नेतासि	नेतास्थः	नेतास्थ
उ० पु०	नेतास्मि	नेतास्वः	नेतास्मः

सामान्यभविष्य--लृट्

प्र० पु०	नेष्यति	नेष्यतः	नेष्यन्ति
म० पु०	नेष्यसि	नेष्यथः	नेष्यथ
उ० पु०	नेष्यामि	नेष्यावः	नेष्यामः

आशीर्लिङ

प्र० पु०	नीयात्	नीयास्ताम्	नीयासुः
म० पु०	नीयाः	नीयास्तम्	नीयास्त
उ० पु०	नीयासम्	नीयास्व	नीयास्म

क्रियातिपत्ति--लृङ

प्र० पु०	अनेष्यत्	अनेष्यताम्	अनेष्यन्
म० पु०	अनेष्यः	अनेष्यतम्	अनेष्यत
उ० पु०	अनेष्यम्	अनेष्याव	अनेष्याम

आत्मनेपद

वर्तमान--लट्

प्र० पु०	नयते	नयेते	नयन्ते
म० पु०	नयसे	नयेथे	नयध्वे
उ० पु०	नये	नयावहे	नयामहे
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	नयताम्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	नयेत
लङ	प्र० पु०	एकवचन	अनयत

परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	निन्ये	निन्याते	निन्यिरे
म० पु०	निन्यिषे	निन्याथे	निन्यिध्वे, ढ्वे
उ० पु०	निन्ये	निन्यिवहे	निन्यिमहे

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अनेष्ट	अनेषाताम्	अनेषत
म० पु०	अनेष्ठाः	अनेषाथाम्	अनेढ्वम्
उ० पु०	अनेषि	अनेष्वहि	अनेष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	नेता	नेतारौ	नेतारः
म० पु०	नेतासे	नेतासाथे	नेताध्वे
उ० पु०	नेताहे	नेतास्वहे	नेतास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते
म० पु०	नेष्यसे	नेष्येथे	नेष्यध्वे
उ० पु०	नेष्ये	नेष्यावहे	नेष्यामहे

आशीर्लिङ

प्र० पु०	नेषीष्ट	नेषीयास्ताम्	नेषीरन्
म० पु०	नेषीष्ठाः	नेषीयास्थाम्	नेषीढ्वम्
उ० पु०	नेषीय	नेषीवहि	नेषीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ

प्र० पु०	अनेष्यत	अनेष्येताम्	अनेष्यन्त
म० पु०	अनेष्यथाः	अनेष्येथाम्	अनेष्यध्वम्
उ० पु०	अनेष्ये	अनेष्यावहि	अनेष्यामहि

परस्मैपदी

पठ्—पढ़ना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	पठति	पठतः	पठन्ति
म० पु०	पठसि	पठथः	पठथ
उ० पु०	पठामि	पठावः	पठामः
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	पठतु, पठतात्

विधिलिङ

प्र० पु०	पठेत्	पठेताम्	पठेयुः
म० पु०	पठेः	पठेतम्	पठेत
उ० पु०	पठेयम्	पठेव	पठेम

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अपठत्	अपठताम्	अपठन्
म० पु०	अपठः	अपठतम्	अपठत
उ० पु०	अपठम्	अपठाव	अपठाम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	पपाठ	पेठतुः	पेठुः
म० पु०	पेठिथ	पेठथुः	पेठ
उ० पु०	पपाठ, पपठ	पेठिव	पेठिम

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अपाठीत्	अपाठिष्टाम्	अपाठिषुः
म० पु०	अपाठीः	अपाठिष्टम्	अपाठिष्ट
उ० पु०	अपाठिषम्	अपाठिष्व	अपाठिष्म

अनद्यतनभविष्य—लुट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	पठिता	पठितारौ	पठितारः
म० पु०	पठितासि	पठितास्थः	पठितास्थ
उ० पु०	पठितास्मि	पठितास्वः	पठितास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	पठिष्यति	पठिष्यतः	पठिष्यन्ति
म० पु०	पठिष्यसि	पठिष्यथः	पठिष्यथ
उ० पु०	पठिष्यामि	पठिष्यावः	पठिष्यामः

आशीर्लिङ

प्र० पु०	पठ्यात्	पठ्यास्ताम्	पठ्यासुः
म० पु०	पठ्याः	पठ्यास्तम्	पठ्यास्त
उ० पु०	पठ्यासम्	पठ्यास्व	पठ्यास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ

प्र० पु०	अपठिष्यत्	अपठिष्यताम्	अपठिष्यन्
म० पु०	अपठिष्यः	अपठिष्यतम्	अपठिष्यत
उ० म०	अपठिष्यम्	अपठिष्याव	अपठिष्याम

परस्मैपदी

पा (पिब्)—पीना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	पिबति	पिबतः	पिबन्ति
म० पु०	पिबसि	पिबथः	पिबथ
उ० पु०	पिबामि	पिबावः	पिबामः
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	पिबतु, पिबतात्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	पिबेत्
लङ	प्र० पु०	एकवचन	अपिबत्

परोक्षभूत--लिट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	पपौ	पपतु	पपुः
म० पु०	पपिथ, पपाथ	पपथुः	पप
उ० पु०	पपौ	पपिव	पपिम

सामान्यभूत--लुङ

प्र० पु०	अपात्	अपाताम्	अपुः
म० पु०	अपाः	अपातम्	अपात
उ० पु०	अपाम्	अपाव	अपाम

अनद्यतनभविष्य--लुट्

प्र० पु०	पाता	पातारौ	पातारः
म० पु०	पातासि	पातास्थः	पातास्थ
उ० पु०	पातास्मि	पातास्वः	पातास्मः

सामान्यभविष्य--लृट्

प्र० पु०	पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति
म० पु०	पास्यसि	पास्यथः	पास्यथ
उ० पु०	पास्यामि	पास्यावः	पास्यामः

आशीर्लिङ

प्र० पु०	पेयात्	पेयास्ताम्	पेयासुः
म० पु०	पेयाः	पेयास्तम्	पेयास्त
उ० पु०	पेयासम्	पेयास्व	पेयास्म

क्रियातिपत्ति--लृङ

प्र० पु०	अपास्यत्	अपास्यताम्	अपास्यन्
म० पु०	अपास्यः	अपास्यतम्	अपास्यत
उ० पु०	अपास्यम्	अपास्याव	अपास्याम

आत्मनेपदी

लभ्—पाना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	लभते	लभेते	लभन्ते
म० पु०	लभसे	लभेथे	लभध्वे
उ० पु०	लभे	लभावहे	लभामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	लभताम्	लभेताम्	लभन्ताम्
म० पु०	लभस्व	लभेथाम्	लभध्वम्
उ० पु०	लभै	लभावहै	लभामहै

विधिलिङ

प्र० पु०	लभेत	लभेयाताम्	लभेरन्
म० पु०	लभेथाः	लभेयाथाम्	लभेध्वम्
उ० पु०	लभेय	लभेवहि	लभेमहि

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अलभत	अलभेताम्	अलभन्त
म० पु०	अलभथाः	अलभेथाम्	अलभध्वम्
उ० पु०	अलभे	अलभावहि	अलभामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	लेभे	लेभाते	लेभिरे
म० पु०	लेभिषे	लेभाथे	लेभिध्वे
उ० पु०	लेभे	लेभिवहे	लेभिमहे

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अलब्ध	अलप्साताम्	अलप्सत
म० पु०	अलब्धाः	अलप्साथाम्	अलब्ध्वम्
उ० पु०	अलप्सि	अलप्स्वहि	अलप्स्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	लब्धा	लब्धारौ	लब्धारः
म० पु०	लब्धासे	लब्धासाथे	लब्धाध्वे
उ० पु०	लब्धाहे	लब्धास्वहे	लब्धास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते
म० पु०	लप्स्यसे	लप्स्येथे	लप्स्यध्वे
उ० पु०	लप्स्ये	लप्स्यावहे	लप्स्यामहे

आशीर्लिङ

प्र० पु०	लप्सीष्ट	लप्सीयास्ताम्	लप्सीरन्
म० पु०	लप्सीष्ठाः	लप्सीयास्थाम्	लप्सीध्वम्
उ० पु०	लप्सीय	सप्सीवहि	लप्सीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अलप्स्यत	अलप्स्येताम्	अलप्स्यन्त
म० पु०	अलप्स्यथाः	अलप्स्येथाम्	अलप्स्यध्वम्
उ० पु०	अलप्स्ये	अलप्स्यावहि	अलप्स्यामहि

आत्मनेपदी

वृत्—होना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	वर्तते	वर्तेते	वर्तन्ते
म० पु०	वर्तसे	वर्तेथे	वर्तध्वे
उ० पु०	वर्ते	वर्तावहे	वर्तामहे
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	वर्तताम्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	वर्तेत
लङ	प्र० पु०	एकवचन	अवर्तत

परोक्षभूत--लिट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	ववृते	ववृताते	ववृतिरे
म० पु०	ववृतिषे	ववृताथे	ववृतिध्वे
उ० पु०	ववृते	ववृतिवहे	ववृतिमहे

सामान्यभूत---लुङ्[1]

प्र० पु०	अवर्तिष्ट / अवृतत्	अवर्तिषाताम् / अवृतताम्	अवर्तिषत / अवृतन्
म० पु०	अवर्तिष्ठाः / अवृतः	अवर्तिषाथाम् / अवृततम्	अवर्तिध्वम्, ढ्वम् / अवृतत
उ० पु०	अवर्तिषि / अवृतम्	अवर्तिष्वहि / अवृताव	अवर्तिष्महि / अवृताम
लुट्	प्र० पु०	एकवचन	वर्तिता

सामान्यभविष्य--लृट्

प्र० पु०	वर्तिष्यते	वर्तिष्येते	वर्तिष्यन्ते
म० पु०	वर्तिष्यसे	वर्तिष्येथे	वर्तिष्यध्वे
उ० पु०	वर्तिष्ये	वर्तिष्यावहे	वर्तिष्यामहे

अथवा

प्र० पु०	वर्त्स्यति	वर्त्स्यतः	वर्त्स्यन्ति
म० पु०	वर्त्स्यसि	वर्त्स्यथः	वर्त्स्यथ
उ० पु०	वर्त्स्यामि	वर्त्स्यावः	वर्त्स्यामः

आशीर्लिङ

प्र० पु०	वर्तिषीष्ट	वर्तिषीयास्ताम्	वर्तिषीरन्
म० पु०	वर्तिषीष्ठाः	वर्तिषीयास्थाम्	वर्तिषीध्वम्
उ० पु०	वर्तिषीय	वर्तिषीवहि	वर्तिषीमहि

---

१ लुङ, लृट् तथा लृङ में यह परस्मैपदी भी हो जाती है ।

क्रियातिपत्ति––लृङ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अवर्तिष्यत	अवर्तिष्येताम्	अवर्तिष्यन्त
म० पु०	अवर्तिष्यथाः	अवर्तिष्येथाम्	अवर्तिष्यध्वम्
उ० पु०	अवर्तिष्य	अवर्तिष्यावहि	अवर्तिष्यामहि

अथवा

प्र० पु०	अवर्त्स्यत्	अवर्त्स्यताम्	अवर्त्स्यन्
म० पु०	अवर्त्स्यः	अवर्त्स्यतम्	अवर्स्यत
उ० पु०	अवर्त्स्यम्	अवर्त्स्याव	अवर्त्स्याम

उभयपदी

श्रि––सहारा लेना

परस्मैपद

वर्तमान––लट्

प्र० पु०	श्रयति	श्रयतः	श्रयन्ति
म० पु०	श्रयसि	श्रयथः	श्रयथ
उ० पु०	श्रयामि	श्रयावः	श्रयामः
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	श्रयतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	श्रयेत्
लङ	प्र० पु०	एकवचन	अश्रयत्

परोक्षभूत––लिट्

प्र० पु०	शिश्राय	शिश्रियतुः	शिश्रियुः
म० पु०	शिश्रियिथ	शिश्रियथुः	शिश्रिय
उ० पु०	शिश्राय, शिश्रिय	शिश्रियिव	शिश्रियिम

सामान्यभूत––लुङ

प्र० पु०	अशिश्रियत्	अशिश्रियताम्	अशिश्रियन्
म० पु०	अशिश्रियः	अशिश्रियतम्	अशिश्रियत
उ० पु०	अशिश्रियम्	अशिश्रियाव]	अशिश्रियाम

अनद्यतनभविष्य——लुट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	श्रयिता	श्रयितारौ	श्रयितारः
म० पु०	श्रयितासि	श्रयितास्थः	श्रयितास्थ
उ० पु०	श्रयितास्मि	श्रयितास्वः	श्रयितास्मः

सामान्यभविष्य——लृट्

प्र० पु०	श्रयिष्यति	श्रयिष्यतः	श्रयिष्यन्ति
म० पु०	श्रयिष्यसि	श्रयिष्यथः	श्रयिष्यथ
उ० पु०	श्रयिष्यामि	श्रयिष्यावः	श्रयिष्यामः

आशीर्लिङ

प्र० पु०	श्रीयात्	श्रीयास्ताम्	श्रीयासुः
म० पु०	श्रीयाः	श्रीयास्तम्	श्रीयास्त
उ० पु०	श्रीयासम्	श्रीयास्व	श्रीयास्म

क्रियातिपत्ति——लृङ

प्र० पु०	अश्रयिष्यत्	अश्रयिष्यताम्	अश्रयिष्यन्
म० पु०	अश्रयिष्यः	अश्रयिष्यतम्	अश्रयिष्यत
उ० पु०	अश्रयिष्यम्	अश्रयिष्याव	अश्रयिष्याम

आत्मनेपद

वर्तमान——लट्

प्र० पु०	श्रयते	श्रयेते	श्रयन्ते
म० पु०	श्रयसे	श्रयेथे	श्रयध्वे
उ० पु०	श्रये	श्रयावहे	श्रयामहे
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	श्रयाताम्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	श्रयेत्
लुङ	प्र० पु०	एकवचन	अश्रयन्

परोक्षभूत––लिट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	शिश्रिये	शिश्रियाते	शिश्रियिरे
म० पु०	शिश्रियिष	शिश्रियाथे	शिश्रियिध्वे-ढ्वे
उ० पु०	शिश्रिये	शिश्रियिवहे	शिश्रियिमहे

सामान्यभूत––लुङ

प्र० पु०	अशिश्रियत	अशिश्रियेताम्	अशिश्रियन्त
म० पु०	अशिश्रियथाः	अशिश्रियेथाम्	अशिश्रियध्वम्
उ० पु०	अशिश्रिये	अशिश्रियावहि	अशिश्रियामहि

अनद्यतनभविष्य––लुट्

प्र० पु०	श्रयिता	श्रयितारौ	श्रयितारः
म० पु०	श्रयितासे	श्रयितासाथे	श्रयिताध्वे
उ० पु०	श्रयिताहे	श्रयितास्वहे	श्रयितास्महे

सामान्यभविष्य––लृट्

प्र० पु०	श्रयिष्यते	श्रयिष्येते	श्रयिष्यन्ते
म० पु०	श्रयिष्यसे	श्रयिष्येथे	श्रयिष्यध्वे
उ० पु०	श्रयिष्ये	श्रयिष्यावहे	श्रयिष्यामहे
आशी०	प्र० पु०	एकवचन	श्रयिषीष्ट
लृङ	प्र० पु०	एकवचन	अश्रयिष्यत

परस्मैपदी

श्रु—सुनना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	शृणोति	शृणुतः	शृण्वन्ति
म० पु०	शृणोषि	शृणुथः	शृणुथ
उ० पु०	शृणोमि	शृणुवः, शृण्वः	शृणुमः, शृण्मः

आज्ञा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	शृणोतु	शृणुताम्	शृण्वन्तु
म० पु०	शृणु	शृणुतम्	शृणुत
उ० पु०	शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम

विधिलिङः

प्र० पु०	शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयुः
म० पु०	शृणुयाः	शृणुयातम्	शृणुयात
उ० पु०	शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम

अनद्यतनभूत—लङः

प्र० पु०	अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन
म० पु०	अशृणोः	अशृणुतम्	अशृणुत
उ० पु०	अशृणवम्	अशृणुव, अशृण्व	अशृणुम, अशृण्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	शुश्राव	शुश्रुवतुः	शुश्रुवुः
म० पु०	शुश्रोथ	शुश्रुवथुः	शुश्रुव
उ० पु०	शुश्राव, शुश्रव	शुश्रुविव	शुश्रुविम

सामान्यभूत—लुङः

प्र० पु०	अश्रौषीत्	अश्रौष्टाम्	अश्रौषुः
म० पु०	अश्रौषीः	अश्रौष्टम्	अश्रौष्ट
उ० पु०	अश्रौषम्	अश्रौष्व	अश्रौष्म
लुट्	श्रोता	श्रोतारौ	श्रोतारः
लृट्	श्रोष्यति	श्रोष्यतः	श्रोष्यन्ति
आशी०	श्रुयात्	श्रूयास्ताम्	श्रूयासुः
लृङः	अश्रोष्यत्	अश्रोष्यताम्	अश्रोष्यन्

परस्मैपद

स्था—ठहरना

वर्तमान--लट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	तिष्ठति	तिष्ठतः	तिष्ठन्ति
म० पु०	तिष्ठसि	तिष्ठथः	तिष्ठथ
उ० पु०	तिष्ठामि	तिष्ठावः	तिष्ठामः
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	तिष्ठतु, तिष्ठतात्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	तिष्ठेत्
लङ	प्र० पु०	एकवचन	अतिष्ठत्

परोक्षभूत--लिट्

प्र० पु०	तस्थौ	तस्थतुः	तस्थुः
म० पु०	तस्थित, तस्थाथ	तस्थथुः	तस्थ
उ० पु०	तस्थौ	तस्थिव	तस्थिम

सामान्यभूत--लुङ

प्र० पु०	अस्थात्	अस्थाताम्	अस्थुः
म० पु०	अस्थाः	अस्थातम्	अस्थात
उ० पु०	अस्थाम्	अस्थाव	अस्थाम

अनद्यतनभविष्य--लुट्

प्र० पु०	स्थाता	स्थातारौ	स्थातारः
म० पु०	स्थातासि	स्थातास्थः	स्थातास्थ
उ० पु०	स्थातास्मि	स्थातास्वः	स्थातास्मः

सामान्यभविष्य--लृट्

प्र० पु०	स्थास्यति	स्थास्यतः	स्थास्यन्ति
म० पु०	स्थास्यसि	स्थास्यथः	स्थास्यथ
उ० पु०	स्थास्यामि	स्थास्यावः	स्थास्यामः

आशीर्लिङ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	स्थेयात्	स्थेयास्ताम्	स्थेयासुः
म० पु०	स्थेयाः	स्थेयास्तम्	स्थेयास्त
उ० पु०	स्थेयासम्	स्थेयास्व	स्थेयास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ

प्र० पु०	अस्थास्यत्	अस्थास्यताम्	अस्थास्यन्
म० पु०	अस्थास्यः	अस्थास्यतम्	अस्थास्यत
उ० पु०	अस्थास्यम्	अस्थास्याव	अस्थास्याम

१४०—भ्वादिगण की मुख्य धातुओं की सूची और रूपों का दिग्दर्शन—

क्रन्द् (प०)—रोना। लट्—क्रन्दति। लिट्—चक्रन्द, चक्रन्दतुः, चक्रन्दुः, चक्रन्दिथ। लुङ—अक्रन्दीत्, अक्रन्दिष्टाम्, अक्रन्दिषुः। अक्रन्दीः, अक्रन्दिष्टम्, अक्रन्दिष्ट। अक्रन्दिषम्, अक्रन्दिष्व, अक्रन्दिष्म। लुट्—क्रन्दिता। लृट्—क्रन्दिष्यति। आशी० —क्रन्द्यात्। लृङ—अक्रन्दिष्यत्।

क्रीड् (प०)—खेलना। लट्—क्रीडति। लोट्—क्रीडतु। विधि—क्रीडेत्। लङ—अक्रीडत्, अक्रीडताम्, अक्रीडन्। लिट्—चिक्रीड, चिक्रीडतुः, चिक्रीडुः। चिक्रीडिथ, चिक्रीडथुः, चिक्रीड, चिक्रीडिव, चिक्रीडिम। लुङ—अक्रीडीत्, अक्रीडिष्टाम्, अक्रीडिषुः। अक्रीडीः, अक्रीडिष्टम्, अक्रीडिष्ट। अक्रीडिषम् अक्रीडिष्व, अक्रीडिष्म। लुट्—क्रीडिता। लृट्—क्रीडिष्यति। आशी०—क्रीड्यात्। लृङ—अक्रीडिष्यत्।

क्रुश् (प०)—चिल्लाना, रोना। लट्—क्रोशति। लोट्—क्रोशतु। विधि० —क्रोशेत्। लङ—अक्रोशत्। लिट्—चुक्रोश, चुक्रुशतुः, चुक्रुशुः। चुक्रोशिथ, चुक्रुशथुः, चुक्रुश। चुक्रोश, चुक्रुशिव, चुक्रुशिम। लुङ—अक्रुशत, अक्रुशताम्, अक्रुशन्। अक्रुशः, अक्रुशतम्, अक्रुशत।

अक्रुशन्, अक्रुशाव, अक्रुशाम । लुट्—क्रोष्टा । लृट्—क्रोक्ष्यति । आशी०—क्रुश्यात् । लृङ—अक्रोक्ष्यत् ।

क्लम्[१] (प०)—थकना । लट्—क्लामति । लिट्—चक्लाम, चक्लमतुः, चक्लमुः । चक्लमिथ, चक्लमथुः, चक्लम । चक्लाम-चक्लम, चक्लामिव, चक्लामिम । लुङ—अक्लम्, अक्लमताम्, अक्लमन् । लुट्—क्लमिता । लुट्—क्लमिष्यति । आशी०—क्लम्यात् ।

क्षम्[२] (आ०)—क्षमा करना । लट्—क्षमते, क्षमेते, क्षमन्ते ।

लिट्—चक्षमे	चक्षमाते	चक्षमिरे
{ चक्षमिषे / चक्षसे	चक्षमाथे	{ चक्षमिध्वे / चक्षन्ध्वे
चक्षमे	{ चक्षमिवहे / चक्षण्वहे	{ चक्षमिमहे / चक्षण्महे

कम्प् (आ०)—काँपना । लट्—कम्पते, कम्पेते, कम्पन्ते । लोट्—कम्पताम्, कम्पेताम्, कम्पन्ताम् । विधि—कम्पेत, कम्पेयाताम्, कम्पेरन् । लङ—अकम्पत, अकम्पेताम्, अकम्पन्त । अकम्पथाः, अकम्पेथाम्, अकम्पध्वम् । अकम्पे, अकम्पावहि, अकम्पामहि । लिट्—चकम्पे, चकम्पाते, चकम्पिरे, चकम्पिषे, चकम्पाथे, चकम्पिध्वे । चकम्पे, चकम्पिवहे, चकम्पिमहे । लुङ—अकम्पिष्ट, अकम्पिषाताम्, अकम्पिषत । अकम्पिष्ठाः, अकम्पिषाथाम्, अकम्पिध्वम् । अकम्पिषि, अकम्पिष्वहि, अकम्पिष्महि । लुङ—कम्पिता, कम्पितारौ, कम्पितारः । कम्पितासे, कम्पितासाथे, कम्पिताध्वे । कम्पिताहे, कम्पितास्वहे, कम्पितास्महे । लृट्—कम्पिष्यते, कम्पिष्येते, कम्पिष्यन्ते । कम्पिष्यसे, कम्पिष्येथे, कम्पिष्यध्वे । कम्पिष्ये,

---

१ यह दिवादि गण में भी है । वहाँ इसका रूप 'क्लाम्यति' इत्यादि है ।

२ यह भी दिवादि में होती है; और इसका रूप 'क्षाम्यति' इत्यादि होता है ।

कम्पिष्यावहे, कम्पिष्यामहे । आशी०—कम्पिषीष्ट, कम्पिषीयास्ताम्, कम्पिषीरन् । लृङ—अकम्पिष्यत, अकम्पिष्येताम्, अकम्पिष्यन्त ।

काङ्क्ष् (प०)—इच्छा करना । लट्—काङ्क्षति । लोट्—काङ्क्षतु । विधि०—काङ्क्षेत् । लङ—अकांक्षत् । लिट्—चकाङ्क्ष, चकाङ्क्षतुः, चकाङ्क्षुः । चकाङ्क्षिथ, चकाङ्क्षथुः, चकाङ्क्ष । चकाङ्क्ष, चकाङ्क्षिव, चकाङ्क्षिम । लुङ—अकाङ्क्षीत्, अकाङ्क्षिष्टाम्, अकाङ्क्षिषुः । अकाङ्क्षीः, अकाङ्क्षिष्टम्, अकाङ्क्षिष्ट । अकाङ्क्षिषम्, अकाङ्क्षिष्व, अकाक्षिष्म । लुट्—काङ्क्षिता । लृट्—काङ्क्षिष्यति । आशी०—काङ्क्ष्यात् । लृङ—अकाङ्क्षिष्यत् ।

काश् (आ०)—चमकना । लट्—काशते, काशेते, काशन्ते । लिट्—चकाशे, चकाशाते, चकाशिरे । चकाशिषे चकाशाथे, चकाशिध्वे । चकाशे, चकाशिवहे, चकाशिमहे । लुङ—अकाशिष्ट, अकाशिषाताम्, अकाशिषत । अकाशिष्ठाः, अकाशिषाथाम्, अकाशिध्वम् । अकाशिषि, अकाशिष्वहि, अकाशिष्महि । लुट्—काशिता लृट् । काशिष्यते । आशी०—काशिषीष्ट । लृङ—अकाशिष्यत ।

खन् (उ०)—खनना । लट्—खनति, खनते । लिट्—चखान, चख्नतुः, चख्नुः । चखनिथ, चख्नथुः, चख्न । चखान,चखन, चख्निव, चख्निम । चख्ने, चख्नाते, चख्निरे । चख्निषे, चख्नाथे, चख्निध्वे । चख्ने, चख्निवहे, चख्निमहे । लुङ—अखनीत्, अखनिष्टाम्, अखनिषुः, अखानीत्, अखानिष्टाम्, अखानिषुः । अखनिष्ट, अखनिषाताम् । अखनिषत । लुट्—खनिता । लृट्—खनिष्यति, खनिष्येत । आशी०—खन्यात्, खायात्, खनिषीष्ट ।

ग्लै (प०) —क्षीण होना । ग्लायति, ग्लायतः, ग्लायन्ति । लिट्—जग्लौ, जग्लतुः, जग्लुः । जग्लिथ-जग्लाथ, जग्लथुः, जग्ल । जग्लौ, जग्लिव, जग्लिम । लुङ—अग्लासीत् । लुट्—ग्लाता । लृट्—ग्लास्यति । आशी०—ग्लायात्, ग्लेयात् ।

चल् (प०)—चलना । लट्—चलति, चलतः, चलन्ति । लिट्—चचाल, चेलतुः, चेलुः । चेलिथ, चेलथुः, चेल । चचाल-चचल, चेलिव,

चेलिम । लुङ्—अचालीत् । लुट्—चलिता । लृट्—चलिष्यति । आशी०—चल्यात् । लृङ्—अचलिष्यत् ।

ज्वल् (प०)—जलना । लट्—ज्वलति । लिट्—जज्वाल, जज्वलतुः, जज्वलुः । जज्वलिथ, जज्वलथुः, जज्वल । जज्वाल-जज्वल, जज्वलिव, जज्वलिम । लुङ्—अज्वालीत्, अज्वालिष्टाम्, अज्वालिषुः । लुट्—ज्वलिता । लृट्—ज्वलिष्यति । आशी०—ज्वल्यात् ।

डी[1] (आ०)—उड़ना । लट्—डयते, डयेते, डयन्ते । लिट्—डिड्ये, डिड्याते डिड्यिरे । लुङ्—अडयिष्ट, अडयिषाताम्, अडयिषत । लुट्—डयिता । लृट्—डयिष्यते । आशी०—डयिषीष्ट ।

त्यज् (प०)—छोड़ना । लट्—त्यजति, त्यजतः, त्यजन्ति । लिट्—तत्याज, तत्यजतुः, तत्यजुः । तत्यजिथ-तत्यक्थ, तत्यजथुः, तत्यज । तत्याज-तत्यज, तत्यजिव, तत्यजिम । लुङ्—अत्याक्षीत्, अत्याष्टाम्, अत्याक्षुः । अत्याक्षीः, अत्याष्टम्, अत्याष्ट । अत्याक्षम्, अत्याक्ष्व, अत्याक्ष्म । लुट्—त्यक्ता, त्यक्तारौ, त्यक्तारः लृट्—त्यक्ष्यति, त्यक्ष्यतः, त्यक्ष्यन्ति । आशी०—त्यज्यात् ।

दह् (प०)—जलाना । लट्—दहति, दहतः, दहन्ति । लिट्—ददाह, देहतुः, देहुः । देहिथ-ददग्ध, देहथुः, देह । ददाह-ददह, देहिव, देहिम । लुङ्—अधाक्षीत्, अदाग्धाम्, अधाक्षुः । अधाक्षीः, अदाग्धम्, अदाग्ध । अधाक्षम्, अधाक्ष्व, अधाक्ष्म । लुट्—दग्धा, दग्धारौ, दग्धारः । लृट्—धक्ष्यति, धक्ष्यतः, धक्ष्यन्ति । आशी०—दह्यात् ।

ध्यै (प०)—ध्यान रखना । लट्—ध्यायति, ध्यायतः, ध्यायन्ति । लिट्—दध्यौ, दध्यतुः, दध्युः । दध्यिथ-दध्याथ, दध्यथुः, दध्य । दध्यौ, दध्यिव, दध्यिम । लुङ्—अध्यासीत्, अध्यासिष्टाम्, अध्यासिषुः । लुट्—ध्याता । लृट्—ध्यास्यति ।

---

१ यह दिवादिगणी भी है । वहाँ पर इसके रूप डीयते, डीयन्ते चलते हैं ।

पच् (उ०)—पकाना या पचाना । लट्—पचति, पचते ।

लिट्—परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	पपाच	पेचतुः	पेचुः
म० पु०	पेचिथ, पपक्थ	पेचथुः	पेच
उ० पु०	पपाच-पपच	पेचिव	पेचिम

लिट्—आत्मनेपद

प्र० पु०	पेचे	पेचाते	पेचिरे
म० पु०	पेचिषे	पेचाथे	पेचिध्वे
उ० पु०	पेचे	पेचिवहे	पेचिमहे

लुङ्—आत्मनेपद

प्र० पु०	अपाक्षीत्	अपाक्ताम्	अपाक्षुः
म० पु०	अपाक्षीः	अपाक्तम्	अपाक्त
उ० पु०	अपाक्षम्	अपाक्ष्व	अपाक्ष्म

लुङ्—परस्मैपद

प्र० पु०	अपक्त	अपक्षाताम्	अपक्षत
म० पु०	अपक्थाः	अपक्षाथाम्	अपग्ध्वम्
उ० पु०	अपक्षि	अपक्ष्वहि	अपक्ष्महि

लुट्—पक्ता, पक्तारौः, पक्तारः । लृट्—पक्ष्यति, पक्ष्यते । आशी०—पक्ष्यात्, पक्षीष्ट । लृङ्—अपक्ष्यत्, अपक्ष्यत ।

पत् (प०)—गिरना । लट्—पतति । लिट्—पपात, पेततुः, पेतुः ।

लुङ्

प्र० पु०	अपप्तत्	अपप्तताम्	अपप्तन्
म० पु०	अपप्तः	अपप्ततम्	अपप्तत
उ० पु०	अपप्तम	अपप्ताव	अपप्ताम

लुट्—पतिता । लृट्—पतिष्यति ।

फल् (प०)—फलना । लट् —फलति । लिट्—पफाल, फेलतुः, फेलुः । फेलिथ । लुङ—अफालीत्, अफालिष्टाम्, अफालिषुः । लुट्—फलिता । लृट्—फलिष्यति ।

फुल्ल् (प०)—फूलना । लट्—फुल्लति । लिट्—पुफुल्ल, पुफुल्लतुः, पुफुल्लुः । लुङ—अफुल्लीत्, अफुल्लिष्टाम्, अफुल्लिषुः । लुट्—फुल्लिता । लृट्—फुल्लिष्यति ।

बाध् (आ०)—पीड़ा देना । लट्—बाधते । लिट्—बबाधे, बबाधाते, बबाधिरे । लुङ—अबाधिष्ट, अबाधिषाताम्, अबाधिषत । लुट्—बाधिता । लृट्—बाधिष्यते ।

बुध्[1] (उ०)—जानना । लट्—बोधते, बोधति । लिट्—बुबोध, बुबुधे । लुङ—अबुधत्, अबुधताम्, अबुधन् । अबोधीत्, अबोधिष्टाम्, अबोधिषुः । अबोधिष्ट, अबोधिषाताम्, अबोधिषत । लुट्—बोधिता । लृट्—बोधिष्यति, बोधिष्यते । आशी०—बुध्यात्, बोधिषीष्ट ।

भज् (उ०)—सेवा करना । लट्—भजति, भजते । लिट्—बभाज, भेजतुः, भेजुः । भेजिथ-बभक्थ, भेजथुः, भेज । बभाज-बभज, भेजिव, भेजिम । भेजे, भेजाते, भेजिरे । भेजिषे, भेजाथे, भेजिध्वे । भेजे, भेजिवहे, भेजिमहे । लुङ—अभाक्षीत्, अभाक्ताम्, अभाक्षुः । अभाक्षीः, अभाक्तम्, अभाक्त । अभाक्षम्, अभाक्ष्व, अभाक्ष्म । अभक्त, अभक्षाताम्, अभक्षत । अभक्थाः, अभक्षाथाम्, अभग्ध्वम् । अभक्षि, अभक्ष्वहि, अभक्ष्महि । लुट्—भक्ता । लृट्—भक्ष्यति, भक्ष्यते । आशी०—भज्यात्, भक्षीष्ट ।

भाष् (आ०)—बोलना । लट्—भाषते, भाषेते, भाषन्ते । लिट्—बभाषे, बभाषाते, बभाषिरे । बभाषिषे, बभाषाथे, बभाषिध्वे । बभाषे, बभाषिवहे, बभाषिमहे । लुङ—अभाषिष्ट, अभाषिषाताम्,

---

१ यह दिवादिगणी भी है । वहाँ यह आत्मनेपद होती है और बुध्यते इत्यादि रूप चलता है ।

अभाषिषत । अभाषिष्ठाः, अभाषिषाथाम्, अभाषिध्वम् । अभाषिषि, अभाषिष्वहि, अभाषिष्महि । लुट्—भाषिता । लृट्—भाषिष्यते । आशी०—भाषिषीष्ट ।

भिक्ष् (आ०)—भीख माँगना । लट्—भिक्षते । लिट्—बिभिक्षे, बिभिक्षाते, बिभिक्षिरे । बिभिक्षिषे, बिभिक्षाथे, बिभिक्षिध्वे । बिभिक्षे, बिभिक्षिवहे, बिभिक्षिमहे । लुङ्—अभिक्षिष्ट, अभिक्षिषाताम्, अभिक्षिषत । लुट्—भिक्षिता । लृट्—भिक्षिष्यते । आशी०—भिक्षिषीष्ट ।

भूष्[1] (प०)—सजाना । लट्—भूषति । लिट्—बुभूष, बुभूषतुः, बुभूषुः । लुङ—अभूषीत्, अभूषिष्टाम्, अभूषिषुः । लुट्—भूषिता । लृट्—भूषिष्यति । आशी०—भूष्यात्, भूष्यास्ताम्, भूष्यासुः ।

भृ[2] (उ०) —भरना या पालना-पोसना । लट्—भरति, भरते । लिट्—बभार, बभ्रतुः, बभ्रुः । बभर्थ, बभ्रथुः, बभ्र । बभार-बभर, बभृव, बभृम । बभ्रे, बभ्राते, बभ्रिरे । बभृषे, बभ्राथे, बभृध्वे । बभ्रे, बभृवहे, बभृमहे । लुङ—अभार्षीत, अभार्ष्टाम्, अभार्षुः । अभार्षीः, अभार्ष्टम्, अभार्ष्ट । अभार्षम्, अभार्ष्व, अभार्ष्म । अभृत, अभृषाताम्, अभृषत । अभृथाः, अभृषाथाम्, अभृढ्वम् । अभृषि, अभृष्वहि, अभृष्महि । लुट्—भर्ता । लृट्—भरिष्यति, भरिष्यते । आशी०—भ्रियात्, भृषीष्ट ।

भ्रंश्[3] (आ०)—गिरना । लट्—भ्रंशते । लिट्—बभ्रंशे । लुङ—अभ्रशत्, अभ्रशताम्, अभ्रशन् तथा अभ्रंशिष्ट अभ्रंशिषाताम्, अभ्रंशिषत । लुट्—भ्रंशिता । लृट्—भ्रंशिष्यते । आशी०—भ्रंशिषीष्ट ।

---

१ यह धातु चुरादिगणी भी है । वहाँ यह उभयपदी है और भूषयति, भूषयते, इत्यादि रूप होते हैं ।

२ यह धातु जुहोत्यादिगणी भी है; वहाँ इसके रूप बिभर्ति, बिभ्रतः, बिभ्रति इत्यादि होते हैं ।

३ यह धातु दिवादिगणी भी है; वहाँ इसके भ्रश्यते इत्यादि रूप होते हैं ।

(१) यह दिवादिगणी भी है । वहाँ यह परस्मैपदी होती है (भ्रश्यति)।
(२) भ्वादिगण में लुङ लकार में इसके रूप परस्मैपद तथा आत्मनेपद दोनों में चलते हैं ।

भ्रम्[1] (प०)—भ्रमण करना । लट्—भ्रमति । लिट्—बभ्राम, भ्रेमतुः, भ्रेमुः । भ्रेमिथ, भ्रेमथुः, भ्रेम । बभ्राम-बभ्रम. भ्रेमिव, भ्रेमिम तथा बभ्राम, बभ्रतुः, बभ्रुमुः । बभ्रमिथ, बभ्रमथुः, बभ्रम। बभ्राम-बभ्रम, बभ्रमिव, बभ्रमिम । लुङ—अभ्रमीत् । लुट्—भ्रमिता । लृट्—भ्रमिष्यति । आशी०—भ्रम्यात् ।

मथ् (प०) —मथना । लट्—मथति । लिट्—ममाथ । लुङ—अमथीत् । लुट्—मथिता । लृट्—मथिष्यति । आशी०—मथ्यात् ।

मन्थ्[2] (प०)—मथना । लट्—मन्थति । लिट्—ममन्थ । लुङ—अमन्थीत् । लुट्—मथिता । लृट्—मन्थिष्यति । आशी०—मथ्यात् ।

मुद् (आ०)—प्रसन्न होना । लट्—मोदते । लिट्—मुमुदे । लुङ—अमोदिष्ट । लुट्—मोदिता । लृट्—मोदिष्यते । आशी०—मोदिषीष्ट ।

यज् (उ०)—यज्ञ करना, देवता की पूजा करना, संग करना या देना । लट्—यजति, यजते ।

लिट्—परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	इयाज	ईजतुः	ईजुः
म० पु०	इयजिथ / इयष्ठ	ईजथुः	ईज
प्र० पु०	इयाज / इयज	ईजिव	ईजिम

---

१ यह दिवादिगणी भी है । यहाँ पर लट्, लोट्, विधिलिङ तथा लुङ में भेड पड़ जाता है ।

२ यह क्रयादिगणी भी है । यहाँ मथ्नाति, मथ्नीतः, मथ्नन्ति इत्यादि रूप होते हैं ।

लिट्--आत्मनेपद

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	ईजे	ईजाते	ईजिरे
म० पु०	ईजिषे	ईजाथे	ईजिध्वे
उ० पु०	ईजे	ईजिवहे	ईजिमहे

लुङ--परस्मैपद

प्र० पु०	अयाक्षीत्	अयाष्टाम्	अयाक्षुः
म० पु०	अयाक्षीः	अयाष्टम्	अयाष्ट
उ० पु०	अयाक्षम्	अयाक्ष्व	अयाक्ष्म

लुङ--आत्मनेपद

प्र० पु०	अयष्ट	अयक्षाताम्	अयक्षत

लुट्—यष्टा, यष्टारौ, यष्टारः। लृट्—यक्ष्यति, यक्ष्यते। आशी०—इज्यात्, यक्षीष्ट।

यत् (आ०)--प्रयत्न करना। लट्--यतते। लिट्—येते, येताते, येतिरे। येतिषे, येताथे, येतिध्वे। येते, येतिवहे, येतिमहे। लुङ—अयतिष्ट, अयतिषाताम्, अयतिषत। अयतिष्ठाः, अयतिषाथाम्, अयतिध्वम्। अयतिषि, अयतिष्वहि, अयतिष्महि। लुट्—यतिता। लृट्—यतिष्यते। आशी०—यतिषीष्ट।

याच् (उ०) --माँगना। लट्--याचति, याचते। लिट्—ययाच, ययाचतुः, ययाचुः। ययाचिथ, ययाचथुः, ययाच। ययाच, ययाचिव ययाचिम। ययाचे, ययाचाते, ययाचिरे। ययाचिषे, ययाचाथे, ययाचिध्वे। ययाचे, ययाचिवहे, ययाचिमहे। लुङ—अयाचीत्, अयाचिष्टाम्, अयाचिषुः। अयाचिष्ट, अयाचिषाताम्, अयाचिषत। लुट्—याचिता। लृट्—याचिष्यति, याचिष्यते।

रभ् (आ०)—शुरू करना, आलिङ्गन करना, अभिलाषा करना, जल्दबाजी में काम करना। लट्—रभते। लिट्—रेभे, रेभाते, रेभिरे। रेभिषे, रेभाथे, रेभिध्वे। रेभे, रेभिवहे, रेभिमहे। लुङ—

अरब्ध, अरप्सताम्, अरप्सत । अरब्धाः, अरप्साथाम्, अरब्ध्वम् । अरप्सि, अरप्स्वहि, अरप्स्महि । लुट्—रब्धा, रब्धारौ, रब्धारः । लृट्—रप्स्यते । आशी०—रप्सीष्ट । लृङ—अरप्स्यत ।

रम् (आ०)—खेलना, हर्षित होना । लट्—रमते, रमेते, रमन्ते । लिट्—रेमे, रेमाते, रेमिरे । लुङ—अरंस्त, अरंसाताम्, अरंसत । अरंस्थाः, अरंसाथाम्, अरंध्वम् । अरंसि, अरंस्वहि, अरंस्महि । लुट्—रन्ता, रन्तारौ, रन्तारः । लृट्—रंस्यते । लृङ—अरंस्यत ।

रुह् (प०)—उगना, बढ़ना, उठना, । लट्—रोहति, रोहतः, रोहन्ति । लिट्—रुरोह, रुरुहतुः, रुरुहुः । रुरोहिथः, रुरुहथुः, रुरुह । रुरोह, रुरुहिव, रुरुहिम । लुङ—अरुक्षत्, अरुक्षताम्, अरुक्षन् । अरुक्षः, अरुक्षतम । अरुक्षतम् । अरुक्षम्, अरुक्षाव, अरुक्षाम । लुट्—रोढा । लृट्—रोक्ष्यति ।

वद् (प०))कहना । लट्—वदति ।

लिट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	उवाद	ऊदतुः	ऊदुः
म० पु०	उवदिथ	ऊदथुः	ऊद
उ० पु०	उवाद, उवद	ऊदिव	ऊदिम

लुङ

प्र० पु०	अवादीत्	अवादिष्टाम्	अवादिषुः
म० पु०	अवादीः	अवादिष्टम्	अवादिष्ट
उ० पु०	अवादिषम्	अवादिष्व	अवादिष्म

लुट्—वदिता । लृट्—वदिष्यति । आशी०—उद्यात् ।

वन्द् (आ०)—नमस्कार करना या स्तुति करना । लट्—वन्दते, वन्देते, वन्दन्ते । लिट्—ववन्दे, ववन्दाते, ववन्दिरे । लुङ—अवन्दिष्ट, अवन्दिषाताम्, अवन्दिषत । लुट्—वन्दिता । लृट्—वन्दिष्यते । आशी०—वन्दिषीष्ट ।

वप् (उ०) बोना, छितराना, कपड़ा बुनना, बाल बनाना। लट्—वपति, वपे।

लिट्—परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	उवाप	ऊपतुः	ऊपुः
म० पु०	उवपिथ-उवप्थ	ऊपथुः	ऊप
उ० पु०	उवाप-उवप	ऊपिव	ऊपिम

लिट्—आत्मनेपद

प्र० पु०	ऊपे	ऊपाते	ऊपिरे
म० पु०	ऊपिषे	ऊपिथे	ऊपिध्वे
उ० पु०	ऊपे	ऊपिवहे	ऊपिमहे

लुङ्—परस्मैपद

प्र० पु०	अवाप्सीत्	अवाप्ताम्	अवाप्सुः
म० पु०	अवाप्सीः	अवाप्तम्	अवाप्त
उ० पु०	अवाप्सम्	अवाप्स्व	अवाप्स्म

लुङ्—आत्मनेपद

प्र० पु०	अवप्त	अवप्साताम्	अवप्सत
म० पु०	अवप्थाः	अवप्साथाम्	अवब्ध्वम्
उ० पु०	अवप्सि	अवप्स्वहि	अवप्स्महि

लुट्—वप्ता, वप्तारौ, वप्तारः। लृट्—वप्स्यति, वप्स्यते। आशी०—उप्यात्, उप्यास्ताम्, उप्यासुः। वप्सीष्ट, वप्सीयास्ताम्, वप्सीरन्।

वस् (प०) —रहना, होना, समय व्यतीत करना। लट्—वसति।

लिट्

प्र० पु०	उवास	ऊषतुः	ऊषुः
म० पु०	उवसिथ-उवस्थ	ऊषथुः	ऊष
उ० पु०	उवास-उवस	ऊषिव	ऊषिम

लुङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अवात्सीत्	अवात्ताम्	अवात्सुः
म० पु०	अवात्सीः	अवात्तम्	अवात्त
उ० पु०	अवात्सम्	अवात्स्व	अवात्स्म

लुट्

प्र० पु०	वस्ता	वस्तारौ	वस्तारः

लृट्

प्र० पु०	वत्स्यति	वत्स्यतः	वत्स्यन्ति
म० पु०	वत्स्यसि	वत्स्यथः	वत्स्यथ
उ० पु०	वत्स्यामि	वत्स्यावः	वत्स्यामः

वाञ्छ् (प०)—इच्छा करना। लट्—वाञ्छति, वाञ्छतः, वाञ्छन्ति। लिट्—ववाञ्छ, ववाञ्छतुः, ववाञ्छुः। ववाञ्छिथ। लुङ्—अवाञ्छीत्। लुट्—वाञ्छिता। लृट्—वाञ्छिष्यति। आशी०——वाञ्छ्यात्।

वृध्[1] (आ०)—बढ़ना। लट्—वर्धते, वर्धेते, वर्धन्ते। लिट्—ववृधे, ववृधाते, ववृधिरे। ववृधिषे, ववृधाथे, ववृधिध्वे। ववृधे, ववृधिवहे, ववृधिमहे। लुङ्—अवर्धिष्ट, अवर्धिषाताम्, अवर्धिषत। अवृधत्, अवृधताम्, अवृधन्। लुट्—वर्धिता। लृट्—वर्धिष्यते अथवा वर्त्स्यति। लृङ्—अवर्धिष्यत्, अवर्त्स्यत।

आशी०

प्र० पु०	वर्धिषीष्ट	वर्धिषीयास्ताम्	वर्धिषीरन्
म० पु०	वर्धिषीष्ठाः	वर्धिषीयास्थाम्	वर्धिषीध्वम्
उ० पु०	वर्धिषीय	वर्धिषीवहि	वर्धिषीमहि

वृष् (प०)—बरसना। लट्—वर्षति, वर्षतः, वर्षन्ति। लिट्—ववर्ष, ववृषतुः, ववृषुः[1]। लुङ्—अवर्षीत्। लुट्—वर्षिता। लृट्—वर्षिष्यति। आशी०—वृष्यात्।

---

१ यह लृट, लुङ तथा लृङ में परस्मैपदी भी हो जाती है।

व्रज् (प०)—चलना । लट्—व्रजति । लिट्—वव्राज, वव्राजतुः, वव्रजुः । लुङ—अव्राजीत्, अव्राजिष्टाम्, अव्राजिषुः । लुट्—व्रजिता । लृट्—व्रजिष्यति । आशी०—व्रज्यात् ।

शंस् (प०)—स्तुति करना या चोट पहुँचाना । लट्—शंसति । लिट्—शशंस, शशंसतुः, शशंसुः । लुङ—अशंसीत्, अशंसिष्टाम्, अशंसिषुः । लुट्—शंसिता । लृट्—शंसिष्यति । आशी०—शस्यात्, शस्यास्ताम्, शस्यासुः ।

शङ्क (आ०)—शङ्का करना । लट्—शङ्कते, शङ्केते, शङ्कन्ते । लिट्—शशङ्के, शशङ्काते, शशङ्किरे । लुङ—अशङ्किष्ट, अशङ्किषाताम्, अशङ्किषत । लुट्—शङ्किता । लृट्—शङ्किष्यते । आशी०—शङ्किषीष्ट ।

शिक्ष् (आ०)—सीखना । लट्—शिक्षते । लिट्—शिशिक्षे । लुङ—अशिक्षिष्ट, अशिक्षिषाताम्, अशिक्षिषत । लुट्—शिक्षिता । लृट्—शिक्षिष्येते । आशी०—शिक्षिषीष्ट ।

शुच् (प०) —शोक करना, पछताना । लट्—शोचति, शोचतः, शोचन्ति । लिट्—शुशोच, शुशुचतुः, शुशुचुः । शुशोचिथ । लुङ—अशोचीत्, अशोचिष्टाम्, अशोचिषुः । लुट्—शोचिता । लृट्—शोचिष्यति । आशी०—शुच्यात् ।

शुभ् (आ०)—शोभित होना, प्रसन्न होना । लट्—शोभते, शोभेते, शोभन्ते । लिट्—शुशुभे, शुशुभाते, शुशुभिरे । लुङ—अशोभिष्ट, अशोभिषाताम्, अशोभिषत । लुट्—शोभिता । लृट्—शोभिष्यते । आशी०—शोभिषीष्ट ।

सह् (आ०)—सहना । लट्—सहते । लिट्—सेहे, सेहाते, सेहिरे ।

लुङ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	असहिष्ट	असहिषाताम्	असहिषत
म० पु०	असहिष्ठाः	असहिषाथाम्	असहिध्वम्
उ० पु०	असहिषि	असहिष्वहि	असहिष्महि

लुट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	सोढा	सोढारौ	सोढारः
म० पु०	सोढासे	सोढासाथे	सोढाध्वे
उ० पु०	सोढाहे	सोढास्वहे	सोढास्महे

अथवा

प्र० पु०	सहिता	सहितारौ	सहितारः
म० पु०	सहितासे	सहितासाथे	सहिताध्वे
उ० पु०	सहिताहे	सहितास्वहे	सहितास्महे

लृट्—सहिष्यते । आशी०—सहिषीष्ट ।

सृ (प०)—चलना । लट्—सरति, सरतः, सरन्ति । लिट्—ससार, सस्रतुः, सस्रुः । ससर्थ, सस्रथुः, सस्र । ससार-ससर, ससृव, ससृम । लङ—असरत्, असरताम्, असरन् तथा असार्षीत्, असार्ष्टाम्, असार्षुः । लुट्—सर्त्ता । लृट्—सरिष्यति । आशी०—स्रियात् ।

सेव् (आ०)—सेवा करना । लट्—सेवते, सेवेते, सेवन्ते । लिट्—सिषेव, सिषेवाते, सिषेविरे । सिषेविषे, सिषेवाथे, सिषेविध्वे । सिषेवे, सिषेविवहे, सिषेविमहे । लुङ—असेविष्ट, असेविषाताम्, असेविषत । लुट्—सेविता । लृट्—सेविष्यते । आशी०—सेविषीष्ट ।

स्मृ (प०)—स्मरण करना । लट्—स्मरति, स्मरतः, स्मरन्ति ।

लिट्

प्र० प्र०	सस्मार	सस्मरतुः	सस्मरुः
म० पु०	सस्मर्थ	सस्मरथुः	सस्मर
उ० पु०	सस्मार, सस्मर	सस्मरिव	सस्मरिम

लुङ—अस्मार्षीत्, अस्मार्ष्टाम्, अस्मार्षुः । अस्मार्षीः, अस्मार्ष्टम्, अष्मार्ष्ट । अस्मार्षम्, अस्मार्ष्व, अस्मार्ष्म । लुट्—स्मर्ता । लृट्—स्मरिष्यति । आशी०—स्म्रियात् ।

स्वद् (आ०)—स्वाद लेना, अच्छा लगना। लट्—स्वदते, स्वदेते, स्वदन्ते। लिट्—सस्वदे, सस्वदाते, सस्वदिरे। सस्वदिषे, सस्वदाथे, सस्वदिध्वे। सस्वदे, सस्वदिवहे, सस्वदिमहे। लुङ्—अस्वदिष्ट, अस्वदिषाताम्, अस्वदिषत। अस्वदिष्ठाः, अस्वदिषाथाम्, अस्वदिध्वम्। अस्वदिषि, अस्वदिष्वहि, अस्वदिष्महि। लुट्—स्वदिता। लृट्—स्वदिष्यते। आशी०—स्वदिषीष्ट।

स्वाद् (आ०)—स्वाद लेना, अच्छा लगना। लट्—स्वादते, स्वादेते, स्वादन्ते। लिट्—सस्वादे, सस्वादाते, सस्वादिरे। सस्वादिषे, सस्वादाथे, सस्वादिध्वे। सस्वादे, सस्वादिवहे, सस्वादिमहे। लुङ्—अस्वादिष्ट, अस्वादिषाताम्, अस्वादिषत। लुट्—स्वादिता। लृट्—स्वादिष्यते। आशी०—स्वादिषीष्ट।

ह्लद् (आ०)—खुश होना या शब्द करना। लट्—ह्लादते। लिट्—जह्लादे, जह्लादाते, जह्लादिरे। लुङ्—अह्लादिष्ट। लुट्—ह्लादिता। लृट्—ह्लादिष्यते। आशी०—ह्लादिषीष्ट।

(२) अदादिगण

१४१—इस गण के आदि में अद् (खाना) धातु है, इसलिए इसका नाम अदादि है। धातुपाठ में इस गण की ७२ धातुएँ पठित हैं। इस गण की धातुओं के उपरान्त ही प्रत्यय जोड़ दिये जाते हैं, धातु और प्रत्यय के बीच में भ्वादिगण के शप्[1] (अ) की तरह कुछ नहीं रहने पाता। उदाहरणार्थ अद्+मि=अद्मि, अद्+ति=अत्ति, स्ना+ति=स्नाति।

परस्मैपदी आकारान्त धातुओं के अनन्तर अनद्यतनभूत के प्रथम पुरुष बहुवचन के 'अन्' प्रत्यय के स्थान पर विकल्प से 'उस्' आता है; जैसे—आदन् अथवा आदुः।

१ अदिप्रभृतिभ्यः शपः।२।४।७२। अर्थात् अदादिगण की धातुओं के बाद शप् का लुक् (लोप) हो जाता है।

परस्मैपदी

अद्—खाना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अत्ति	अत्तः	अदन्ति
म० पु०	अत्सि	अत्थः	अत्थ
उ० पु०	अद्मि	अद्वः	अद्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	अत्तु, अत्तात्	अत्ताम्	अदन्तु
म० पु०	अद्धि, अत्तात्	अत्तम्	अत्त
उ० पु०	अदानि	अदाव	अदाम

विधिलिङ

प्र० पु०	अद्यात्	अद्याताम्	अद्युः
म० पु०	अद्याः	अद्यातम्	अद्यात
उ० पु०	अद्याम्	अद्याव	अद्याम

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	आदत्	आत्ताम्	आदन्, आदुः
म० पु०	आदः	आत्तम्	आत्त
उ० पु०	आदम्	आद्व	आद्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जघास	जक्षतुः	जक्षुः
म० पु०	जघसिथ	जक्षथुः	जक्ष
उ० पु०	जघास, जघस	जघसिव	जघसिम

अथवा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	आद	आदतुः	आदुः
म० पु०	आदिथ	आदथुः	आद
उ० पु०	आद	आदिव	आदिम

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अघसत्	अघसताम्	अघसन्
म० पु०	अघसः	अघसतम्	अघसत
उ० पु०	अघसम्	अघसाव	अघसाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	अत्ता	अत्तारौ	अत्तारः
म० पु०	अत्तासि	अत्तास्थः	अत्तास्थ
उ० पु०	अत्तास्मि	अत्तास्वः	अत्तास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	अत्स्यति	अत्स्यतः	अत्स्यन्ति
म० पु०	अत्स्यसि	अत्स्यथः	अत्स्यथ
उ० पु०	अत्स्यामि	अत्स्यावः	अत्स्यामः

आशीर्लिङ

प्र० पु०	अद्यात्	अद्यास्ताम्	अद्यासुः
म० पु०	अद्याः	अद्यास्तम्	अद्यास्त
उ० पु०	अद्यासम्	अद्यास्व	अद्यास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ

प्र० पु०	आत्स्यत्	आत्स्यताम्	आत्स्यन्
म० पु०	आत्स्यः	आत्स्यतम्	आत्स्यत
उ० पु०	आत्स्यम्	आत्स्याव	आत्स्याम

१४२—अदादिगण की अन्य धातुओं के रूप ।

परस्मैपदी

अस्—होना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अस्ति	स्तः	सन्ति
म० पु०	असि	स्थः	स्थ
उ० पु०	अस्मि	स्वः	स्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	अस्तु, स्तात्	स्ताम्	सन्तु
म० पु०	एधि, स्तात्	स्तम्	स्त
उ० पु०	असानि	असाव	असाम

विधिलिङ

प्र० पु०	स्यात्	स्याताम्	स्युः
म० पु०	स्याः	स्यातम्	स्यात
उ० पु०	स्याम्	स्याव	स्याम

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	आसीत्	आस्ताम्	आसन्
म० पु०	आसीः	आस्तम्	आस्त
उ० पु०	आसम्	आस्व	आस्म

शेष लकारों में अस् धातु के रूप वे ही हैं जो भ्वादिगणी भू धातु के हैं।

आत्मनेपदी

आस्—बैठना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	आस्ते	आसाते	आसते
म० पु०	आस्से	आसाथे	आध्वे
उ० पु०	आसे	आस्वहे	आस्महे

आज्ञा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	आस्ताम्	आसाताम्	आसताम्
म० पु०	आस्स्व	आसाथाम्	आध्वम्
उ० पु०	आसै	आसावहै	आसामहै

विधिलिङ

प्र० पु०	आसीत	आसीयाताम्	असीरन्
म० पु०	आसीथाः	आसीयाथाम्	आसीध्वम्
उ० पु०	आसीय	आसीवहि	आसीमहि

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	आस्त	आसाताम्	आसत
म० पु०	आस्थाः	आसाथाम्	आध्वम्
उ० पु०	आसि	आस्वहि	आस्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	आसाञ्चक्रे	आसाञ्चक्राते	आसाञ्चक्रिरे
म० पु०	आसाञ्चकृषे	आसाञ्चक्राथे	आसाञ्चकृढ्वे
उ० पु०	आसाञ्चक्रे	आसाञ्चकृवहे	आसाञ्चकृमहे

आसाम्बभूव तथा आसामास इत्यादि रूप भी होते हैं।

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	आसिष्ट	आसिषाताम्	आसिषत
म० पु०	आसिष्ठाः	आसिषाथाम्	आसिध्वम्, ढ्वम्
उ० पु०	आसिषि	आसिष्वहि	आसिष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	आसिता	आसितारौ	आसितारः, इत्यादि।

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	आसिष्यते	आसिष्येते	आसिष्यन्ते, इत्यादि।

आशीर्लिङ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	आसिषीष्ट	आसिषीयास्ताम्	आसिषीरन्
म० पु०	आसिषीष्ठाः	आसिषीयास्थाम्	आसिषीध्वम्
उ० पु०	आसिषीय	आसिषीवहि	आसिषीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ

प्र० पु०	आसिष्यत	आसिष्येताम्	आसिष्यन्त

इत्यादि ।

आत्मनेपदी (अधि[1]) इङ—अध्ययन करना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	अधीते	अधीयाते	अधीयते
म० पु०	अधीषे	अधीयाथे	अधीध्वे
उ० पु०	अधीये	अधीवहे	अधीमहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयताम्
म० पु०	अधीष्व	अधीयाथाम्	अधीध्वम्
उ० पु०	अध्ययै	अध्ययावहै	अध्ययामहै

विधिलिङ

प्र० पु०	अधीयीत	अधीयीयाताम्	अधीयीरन्
म० पु०	अधीयीथाः	अधीयीयाथाम्	अधीयीध्वम्
उ० पु०	अधीयीय	अधीयीवहि	अधीयीमहि

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अध्यैत	अध्यैयाताम्	अध्यैयत
म० पु०	अध्यैथाः	अध्यैयाथाम्	अध्यैध्वम्
उ० पु०	अध्यैयि	अध्यैवहि	अध्यैमहि

---

१ इङिकावध्युपसर्गतो न व्यभिचरतः ।

परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अधिजगे[1]	अधिजगाते	अधिजगिरे
म० पु०	अधिजगिषे	अधिजगाथे	अधिजगिध्वे
उ० पु०	अधिजगे	अधिजगिवहे	अधिजगिमहे

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अध्यगीष्ट[2]	अध्यगीषाताम्	अध्यगीषत
म० पु०	अध्यगीष्ठाः	अध्यगीषाथाम्	अध्यगीढ्वम्
उ० पु०	अध्यगीषि	अध्यगीष्वहि	अध्यगीष्महि

अथवा

प्र० पु०	अध्यैष्ट	अध्यैषाताम्	अध्यैषत
म० पु०	अध्यैष्ठाः	अध्यैषाथाम्	अध्यैढ्वम्
उ० पु०	अध्यैषि	अध्यैष्वहि	अध्यैष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	अध्येता	अध्येतारौ	अध्येतारः
म० पु०	अध्येतासे	अध्येतासाथे	अध्येताध्वे
उ० पु०	अध्येताहे	अध्येतास्वहे	अध्येतास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	अध्येष्यते	अध्येष्येते	अध्येष्यन्ते
म० पु०	अध्येष्यसे	अध्येष्येथे	अध्येष्यध्वे
उ० पु०	अध्येष्ये	अध्येष्यावहे	अध्येष्यामहे

---

१ गाङ लिटि ।२।४।४९। अर्थात् लिट् में इङ धातु के स्थान में गाङ हो जाता है ।

२ विभाषा लुङलृङोः ।२।४।५०। अर्थात् लुङ तथा लृङ (क्रियातिपत्ति) में विकल्प से गाङ होता है । इसी से इन दोनों लकारों में दो-दो प्रकार के रूप वनते हैं ।

आशीर्लिङ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अध्येषीष्ट	अध्यषीयास्ताम्	अध्येषीरन्
म० पु०	अध्येषीष्ठाः	अध्येषीयास्थाम्	अध्येषीढ्वम्
उ० पु०	अध्येषीय	अध्येषीवहि	अध्येषीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ

प्र० पु०	अध्यगीष्यत	अध्यगीष्येताम्	अध्यगीष्यन्त
म० पु०	अध्यगीष्यथाः	अध्यगीष्येथाम्	अध्यगीष्यध्वम्
उ० पु०	अध्यगीष्ये	अध्यगीष्यावहि	अध्यगीष्यामहि

अथवा

प्र० पु०	अध्यैष्यत	अध्यैष्येताम्	अध्यैष्यन्त
म० पु०	अध्यैष्यथाः	अध्यैष्येथाम्	अध्यैष्यध्वम्
उ० पु०	अध्यैष्ये	अध्यैष्यावहि	अध्यैष्यामहि

परस्मैपदी इण्—जाना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	एति, इतात्	इतः	यन्ति
म० पु०	एषि	इथः	इथ
उ० पु०	एमि	इवः	इमः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	एतु, इतात्	इताम्	यन्तु
म० पु०	एहि	इतम्	इत
उ० पु०	अयानि	अयाव	अयाम

विधिलिङ

प्र० पु०	इयात्	इयाताम्	इयुः
म० पु०	इयाः	इयातम्	इयात
उ० पु०	इयाम्	इयाव	इयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ऐत्	ऐताम्	आयन
म० पु०	ऐः	ऐतम्	ऐत
उ० पु०	आयम्	ऐव	ऐम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	इयाय	ईयतुः	ईयुः
म० पु०	इययिथ, इयेथ	ईयथुः	ईय
उ० पु०	इयाय, इयय	ईयिव	ईयिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अगत्[1]	अगाताम्	अगुः
म० पु०	अगाः	अगातम्	अगात
उ० पु०	अगाम्	अगाव	अगाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	एता	एतारौ	एतारः
म० पु०	एतासि	एतास्थः	एतास्थ
उ० पु०	एतास्मि	एतास्वः	एतास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	एष्यति	एष्यतः	एष्यन्ति
म० पु०	एष्यसि	एष्यथः	एष्यथ
उ० पु०	एष्यामि	एष्यावः	एष्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	इयात्	इयास्ताम्	इयासुः
म० पु०	इयाः	इयास्तम्	इयास्त
उ० पु०	इयासम्	इयास्व	इयास्म

---

१ इणो गा लुङि ।२।४।४५। अर्थात् लुङ लकार में इण् के स्थान में गा हो जाता है ।

क्रियातिपत्ति—लृङ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ऐष्यत्	ऐष्यताम्	ऐष्यन्
म० पु०	ऐष्यः	ऐष्यतम्	ऐष्यत
उ० पु०	ऐष्यम्	ऐष्याव	ऐष्याम

उभयपदी ब्रू—बोलना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	ब्रवीति	ब्रूतः	ब्रुवन्ति
	आह	आहतुः	आहुः
म० पु०	ब्रवीषि	ब्रूथः	ब्रूथ
	आत्थ	आहथुः	
उ० पु०	ब्रवीमि	ब्रूवः	ब्रूमः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	ब्रवीतु, ब्रूतात्	ब्रूताम्	ब्रुवन्तु
म० पु०	ब्रूहि, ब्रूतात्	ब्रूतम्	ब्रूत
उ० पु०	ब्रवाणि	ब्रवाव	ब्रवाम

विधिलिङ

प्र० पु०	ब्रूयात्	ब्रूयाताम्	ब्रूयुः
म० पु०	ब्रूयाः	ब्रूयातम्	ब्रूयात
उ० पु०	ब्रूयाम्	ब्रूयाव	ब्रूयाम

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अब्रवीत्	अब्रूताम्	अब्रूवन्
म० पु०	अब्रवीः	अब्रूतम्	अब्रूत
उ० पु०	अब्रवम्	अब्रूव	अब्रूम

परोक्षभूत--लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	उवाच[1]	ऊचतुः	ऊचुः
म० पु०	उवचिथ, उवक्थ	ऊचथुः	ऊच
उ० पु०	उवच, उवाच	ऊचिव	ऊचिम

सामान्यभूत--लुङ

प्र० पु०	अवोचत्	अवोचताम्	अवोचन्
म० पु०	अवोचः	अवोचतम्	अवोचत
उ० पु०	अवोचम्	अवोचाव	अवोचाम

अनद्यतनभविष्य--लुट्

प्र० पु०	वक्ता	वक्तारौ	वक्तारः
म० पु०	वक्तासि	वक्तास्थः	वक्तास्थ
उ० पु०	वक्तास्मि	वक्तास्वः	वक्तास्मः

सामान्यभविष्य--लृट्

प्र० पु०	वक्ष्यति	वक्ष्यतः	वक्ष्यन्ति
म० पु०	वक्ष्यसि	वक्ष्यथः	वक्ष्यथ
उ० पु०	वक्ष्यामि	वक्ष्यावः	वक्ष्यामः

आशीर्लिङ

प्र० पु०	उच्यात्	उच्यास्ताम्	उच्यासुः
म० पु०	उच्याः	उच्यास्तम्	उच्यास्त
उ० पु०	उच्यासम्	उच्यास्व	उच्यास्म

क्रियातिपत्ति--लृङ

प्र० पु०	अवक्ष्यत्	अवक्ष्यताम्	अवक्ष्यन्
म० पु०	अवक्ष्यः	अवक्ष्यतम्	अवक्ष्यत
उ० पु०	अवक्ष्यम्	अवक्ष्याव	अवक्ष्याम

---

१ ब्रुवो वचिः ।२।४।५३। अर्थात् लिट् इत्यादि आर्धधातुक प्रत्यय में ब्रू के स्थान में वच् हो जाता है।

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ब्रूते	ब्रुवाते	ब्रुवते
म० पु०	ब्रूषे	ब्रूवाथे	ब्रूध्वे
उ० पु०	ब्रुवे	ब्रूवहे	ब्रमहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	ब्रूताम्	ब्रूवाताम्	ब्रूवताम्
म० पु०	ब्रूष्व	ब्रूवाथाम्	ब्रूध्वम्
उ० पु०	ब्रूवै	ब्रवावहै	ब्रवामहै

विधिलिङ

प्र० पु०	ब्रुवीत	ब्रुवीयास्ताम्	ब्रुवीरन्
म० पु०	ब्रुवीथाः	ब्रुवीयाथाम्	ब्रुवीध्वम्
उ० पु०	ब्रुवीय	ब्रुवीवहि	ब्रुवीमहि

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अब्रूत	अब्रूवाताम्	अब्रूवत
म० पु०	अब्रूथाः	अब्रूवाथाम्	अब्रूध्वम्
उ० पु०	अब्रुवि	अब्रूवहि	अब्रूमहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ऊचे	ऊचाते	ऊचिरे
म० पु०	ऊचिषे	ऊचाथे	ऊचिध्वे
उ० पु०	ऊचे	ऊचिवहे	ऊचिमहे

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अवोचत	अवोचेताम्	अवोचन्त
म० पु०	अवोचथाः	अवोचेथाम्	अवोचध्वम्
उ० पु०	अवोचे	अवोचावहि	अवोचामहि

अनद्यतनभविष्य--लुट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	वक्ता	वक्तारौ	वक्तारः
म० पु०	वक्तासे	वक्तासाथे	वक्ताध्वे
उ० पु०	वक्ताहे	वक्तास्वहे	वक्तास्महे

सामान्यभविष्य--लृट्

प्र० पु०	वक्ष्यते	वक्ष्येते	वक्ष्यन्ते
म० पु०	वक्ष्यसे	वक्ष्येथे	वक्ष्यध्वे
उ० पु०	वक्ष्ये	वक्ष्यावहे	वक्ष्यामहे

आशीर्लिङ

प्र० पु०	वक्षीष्ट	वक्षीयास्ताम्	वक्षीरन्
म० पु०	वक्षीष्ठाः	वक्ष्यीयास्थाम्	वक्षीध्वम्
उ० पु०	वक्षीय	वक्षीवहि	वक्षीमहि

क्रियातिपत्ति--लृङ

प्र० पु०	अवक्ष्यत	अवक्ष्येताम्	अवक्ष्यन्त
म० पु०	अवक्ष्यथाः	अवक्ष्येथाम्	अवक्ष्यध्वम्
उ० पु०	अवक्ष्ये	अवक्ष्यावहि	अवक्ष्यामहि

परस्मैपदी या--जाना

वर्तमान--लट्

प्र० पु०	याति	यातः	यान्ति
म० पु०	यासि	याथः	याथ
उ० पु०	यामि	यावः	यामः

आज्ञा--लोट्

प्र० पु०	यातु, यातात्	याताम्	यान्तु
म० पु०	याहि, यातात्	यातम्	यात
उ० पु०	यानि	याव	याम

विधिलिङ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	यायात्	यायाताम्	यायु:
म० पु०	याया:	यायातम्	यायात
उ० पु०	यायाम्	यायाव	यायाम

अनद्यतनभूत--लङ

प्र० पु०	अयात्	अयाताम्	अयु:
म० पु०	अया:	अयातम्	अयात्
उ० पु०	अयाम्	अयाव	अयाम

परोक्षभूत--लिट्

प्र० पु०	ययौ	ययतु:	ययु:
म० पु०	ययिथ, ययाथ	ययथु:	यय
उ० पु०	ययौ	ययिव	ययिम

सामान्यभूत--लुङ

प्र० पु०	अयासीत्	अयासिष्टाम्	अयासिषु:
म० पु०	अयासी:	अयासिष्टम्	अयासिष्ट
उ० पु०	अयासिषम्	अयासिष्व	अयासिष्म

अनद्यतनभविष्य--लुट्

प्र० पु०	याता	यातारौ	यातार:
म० पु०	यातासि	यातास्थ:	यातास्थ
उ० पु०	यातास्मि	यातास्व:	यातास्म:

सामान्यभविष्य--लृट्

प्र० पु०	यास्यति	यास्यत:	यास्यन्ति
म० पु०	यास्यसि	यास्यथ:	यास्यथ
उ० पु०	यास्यामि	यास्याव:	यास्याम:

आशीर्लिङ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	यातात्	यायास्ताम्	यायासुः
म० पु०	यायाः	यायास्तम्	यायास्त
उ० पु०	यायासम्	यायास्व	यायास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ

प्र० पु०	अयास्यत्	अयास्यताम्	अयास्यन्
म० पु०	अयास्यः	अयास्यतम्	अयास्यत
उ० पु०	अयास्यम्	अयास्याव	अयास्याम

ख्या (कहना), या (पालना), भा (चमकना), मा (नापना), रा (देना), ला (लेना), वा (बहना) के रूप 'या' के समान होते हैं ।

परस्मैपदी रुद्—रोना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	रोदिति	रुदितः	रुदन्ति
म० पु०	रोदिषि	रुदिथः	रुदिथ
उ० पु०	रोदिमि	रुदिवः	रुदिमः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	रोदितु, रुदितात्	रुदिताम्	रुदन्तु
म० पु०	रुदिहि	रुदितम्	रुदित
उ० पु०	रोदानि	रोदाव	रोदाम

विधिलिङ

प्र० पु०	रुद्यात्	रुद्याताम्	रुद्युः
म० पु०	रुद्याः	रुद्यातम्	रुद्यात
उ० पु०	रुद्याम्	रुद्याव	रुद्याम

अनद्यतनभूत--लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अरोदीद्, अरोदत्	अरुदिताम्	अरुदन्
म० पु०	अरोदीः, अरोदः	अरुदितम्	अरुदित
उ० पु०	अरोदम्	अरुदिव	अरुदिम

परोक्षभूत--लिट्

प्र० पु०	रुरोद	रुरुदतुः	रुरुदुः
म० पु०	रुरोदिथ	रुरुदथुः	रुरुद
उ० पु०	रुरोद	रुरुदिव	रुरुदिम

सामान्यभूत--लुङ्

प्र० पु०	अरुदत्, अरोदीत्	अरुदताम्, अरोदिष्टाम्	अरुदन्, अरोदिषुः
म० पु०	अरुदः, अरोदीः	अरुदतम्, अरोदिष्टम्	अरुदत, अरोदिष्ट
उ० पु०	अरुदम्, अरोदिषम्	अरुदाव, अरोदिष्व	अरुदाम, अरोदिष्म

अनद्यतनभविष्य--लुट्

प्र० पु०	रोदिता	रोदितारौ	रोदितारः
म० पु०	रोदितासि	रोदितास्थः	रोदितास्थ
उ० पु०	रोदितास्मि	रोदितास्वः	रोदितास्मः

सामान्यभविष्य--लृट्

प्र० पु०	रोदिष्यति	रोदिष्यतः	रोदिष्यन्ति
म० पु०	रोदिष्यसि	रोदिष्यथः	रोदिष्यथ
उ० पु०	रोदिष्यामि	रोदिष्यावः	रोदिष्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	रुद्यात्	रुद्यास्ताम्	रुद्यासुः
म० पु०	रुद्याः	रुद्यास्तम्	रुद्यास्त
उ० पु०	रुद्यासम्	रुद्यास्व	रुद्यास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अरोदिष्यत्	अरोदिष्यताम्	अरोदिष्यन्
म० पु०	अरोदिष्यः	अरोदिष्यतम्	अरोदिष्यत
उ० पु०	अरोदिष्यम्	अरोदिष्याव	अरोदिष्याम

परस्मैपदी शास्——शासन करना

वर्तमान——लट्

प्र० पु०	शास्ति	शिष्टः	शासति
म० पु०	शास्सि	शिष्टः	शिष्ट
उ० पु०	शास्मि	शिष्वः	शिष्मः

आज्ञा——लोट्

प्र० पु०	शास्तु	शिष्टाम्	शासतु
म० पु०	शाधि	शिष्टम्	शिष्ट
उ० पु०	शासानि	शासाव	शासाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	शिष्यात्	शिष्याताम्	शिष्युः
म० पु०	शिष्याः	शिष्यातम्	शिष्यात
उ० पु०	शिष्याम्	शिष्याव	शिष्याम

अनद्यतनभूत——लङ्

प्र० पु०	अशात्	अशिष्टाम्	अशासुः
म० पु०	अशाः, अशात्	अशिष्टम्	अशिष्ट
उ० पु०	अशासम्	अशिष्व	अशिष्म

परोक्षभूत——लिट्

प्र० पु०	शशास	शशासतुः	शशासुः
म० पु०	शशासिथ	शशासथुः	शशास
उ० पु०	शशास	शशासिव	शशासिम

सामान्यभूत—लुङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अशिषत्	अशिषताम्	अशिषन्
म० पु०	अशिषः	अशिषतम्	अशिषत
उ० पु०	अशिषम्	अशिषाव	अशिषाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	शासिता	शासितारौ	शासितारः
म० पु०	शासितासि	शासितास्थः	शासितास्थ
उ० पु०	शासितास्मि	शासितास्वः	शासितास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	शासिष्यति	शासिष्यतः	शासिष्यन्ति
म० पु०	शासिष्यसि	शासिष्यथः	शासिष्यथ
उ० पु०	शासिष्यामि	शासिष्यावः	शासिष्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	शिष्यात्	शिष्यास्ताम्	शिष्यासुः
म० पु०	शिष्याः	शिष्यास्तम्	शिष्यास्त
उ० पु०	शिष्यासम्	शिष्यास्व	शिष्यास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अशासिष्यत्	अशासिष्यताम्	अशासिष्यन्
म० पु०	अशासिष्यः	अशासिष्यतम्	अशासिष्यत
उ० पु०	अशासिष्यम्	अशासिष्याव	अशासिष्याम

आत्मनेपदी शी—लेटना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	शेते	शयाते	शेरते
म० पु०	शेषे	शयाथे	शेध्वे
उ० पु०	शेये	शेवहे	शेमहे

आज्ञा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	शेताम्	शयाताम्	शेरताम्
म० पु०	शेष्व	शयाथाम्	शेध्वम्
उ० पु०	शयै	शयावहै	शयामहै

विधिलिङ

प्र० पु०	शयीत	शयीयाताम्	शयीरन्
म० पु०	शयीथाः	शयीयाथाम्	शयीध्वम्
उ० पु०	शयीय	शयीवहि	शयीमहि

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अशेत	अशयाताम्	अशेरत
म० पु०	अशेथाः	अशयाथाम्	अशेध्वम्
उ० पु०	अशयि	अशेवहि	अशेमहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	शिश्ये	शिश्याते	शिश्यिरे
म० पु०	शिश्यिषे	शिश्याथे	शिश्यिध्वे-ढ्वे
उ० पु०	शिश्ये	शिश्यिवहे	शिश्यिमहे

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अशयिष्ट	अशयिषाताम्	अशयिषत
म० पु०	अशयिष्ठाः	अशयिषाथाम्	अशयिढ्वम्-ध्वम्
उ० पु०	अशयिषि	अशयिष्वहि	अशयिष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	शयिता	शयितारौ	शयितारः
म० पु०	शयितासे	शयितासाथे	शयिताध्वे
उ० पु०	शयिताहे	शयितास्वहे	शयितास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	शयिष्यते	शयिष्येते	शयिष्यन्ते
म० पु०	शयिष्यसे	शयिष्येथे	शयिष्यध्वे
उ० पु०	शयिष्ये	शयिष्यावहे	शयिष्यामहे

आशीर्लिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	शयिषीष्ट	शयिषीयास्ताम्	शयिषीरन्
म० पु०	शयिषीष्ठाः	शयिषीयास्थाम्	शयिषीढ्वम्-ध्वम्
उ० पु०	शयिषीय	शयिषीवहि	शयिषीमहि

क्रियातिपत्ति--लृङ्

प्र० पु०	अशयिष्यत	अशयिष्येताम्	अशयिष्यन्त
म० पु०	अशयिष्यथाः	अशयिष्येथाम्	अशयिष्यध्वम्
उ० पु०	अशयिष्ये	अशयिष्यावहि	अशयिष्यामहि

परस्मैपदी स्ना--नहाना

वर्तमान--लट्

प्र० पु०	स्नाति	स्नातः	स्नान्ति
म० पु०	स्नासि	स्नाथः	स्नाथ
उ० पु०	स्नामि	स्नावः	स्नामः

आज्ञा--लोट्

प्र० पु०	स्नातु, स्नातात्	स्नाताम्	स्नान्तु
म० पु०	स्नाहि, स्नातात्	स्नातम्	स्नात
उ० पु०	स्नानि	स्नाव	स्नाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	स्नायात्	स्नायाताम्	स्नायुः
म० पु०	स्नायाः	स्नायातम्	स्नायात
उ० पु०	स्नायाम्	स्नायाव	स्नायाम

अनद्यतनभूत--लङ्

प्र० पु०	अस्नात्	अस्नाताम्	अस्नुः, अस्नान्
म० पु०	अस्नाः	अस्नातम्	अस्नात
उ० पु०	अस्नाम्	अस्नाव	अस्नाम

परोक्षभूत--लिट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	सस्नौ	सस्नतुः	सस्नुः
म० पु०	सस्निथ, सस्नाथ	सस्नथुः	सस्न
उ० पु०	सस्नौ	सस्निव	सस्निम

सामान्यभूत--लुङ

प्र० पु०	अस्नासीत्	अस्नासिष्टाम्	अस्नासिषुः
म० पु०	अस्नासीः	अस्नासिष्टम्	अस्नासिष्ट
उ० पु०	अस्नासिषम्	अस्नासिष्व	अस्नासिष्म

अनद्यतनभविष्य--लुट्

प्र० पु०	स्नाता	स्नातारौ	स्नातारः
म० पु०	स्नातासि	स्नातास्थः	स्नातास्थ
उ० पु०	स्नातास्मि	स्नातास्वः	स्नातास्मः

सामान्यभविष्य--लृट्

प्र० पु०	स्नास्यति	स्नास्यतः	स्नास्यन्ति
म० पु०	स्नास्यसि	स्नास्यथः	स्नास्यथ
उ० पु०	स्नास्यामि	स्नास्यावः	स्नास्यामः

आशीर्लिङ

प्र० पु०	स्नायात्	स्नायास्ताम्	स्नायासुः
म० पु०	स्नायाः	स्नायास्तम्	स्नायास्त
उ० पु०	स्नायासम्	स्नायास्व	स्नायास्म

अथवा

प्र० पु०	स्नेयात्	स्नेयास्ताम्	स्नेयासुः
म० पु०	स्नेयाः	स्नेयास्तम्	स्नेयास्त
उ० पु०	स्नेयासम्	स्नेयास्व	स्नेयास्म

क्रियातिपत्ति--लृङ

प्र० पु०	अस्नास्यत्	अस्नास्यताम्	अस्नास्यन्
म० पु०	अस्नास्यः	अस्नास्यतम्	अस्नास्यत
उ० पु०	अस्नास्यम्	अस्नास्याव	अस्नास्याम

परस्मैपदी स्वप्––सोना

वर्तमान––लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	स्वपिति	स्वपितः	स्वपन्ति
म० पु०	स्वपिषि	स्वपिथः	स्वपिथ
उ० पु०	स्वपिमि	स्वपिवः	स्वपिमः

आज्ञा––लोट्

प्र० पु०	स्वपितु, स्वपितात्	स्वपिताम्	स्वपन्तु
म० पु०	स्वपिहि, स्वपितात्	स्वपितम्	स्वपित
उ० पु०	स्वपानि	स्वपाव	स्वपाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	स्वप्यात्	स्वप्याताम्	स्वप्युः
म० पु०	स्वप्याः	स्वप्यातम्	स्वप्यात
उ० पु०	स्वप्याम्	स्वप्याव	स्वप्याम

अनद्यतनभूत––लङ्

प्र० पु०	{ अस्वपीत्, अस्वपत्	अस्वपिताम्	अस्वपन्
म० पु०	{ अस्वपीः, अस्वपः	अस्वपितम्	अस्वपित
उ० पु०	अस्वपम्	अस्वपिव	अस्वपिम

परोक्षभूत––लिट्

प्र० पु०	सुष्वाप	सुषुपतुः	सुषुपुः
म० पु०	सुष्वपिथ, सुष्वप्थ	सुषुपथुः	सुषुप
उ० पु०	सुष्वाप, सुष्वप	सुषुपिव	सुषुपिम

सामान्यभूत––लुङ्

प्र० पु०	अस्वाप्सीत्	अस्वाप्ताम्	अस्वाप्सुः
म० पु०	अस्वाप्सीः	अस्वाप्तम्	अस्वाप्त
उ० पु०	अस्वाप्सम्	अस्वाप्स्व	अस्वाप्स्म

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
लृट्	प्र० पु०	एकवचन	स्वप्ता
लृट्	,,	,,	स्वप्स्यति
आशीर्लिङ	,,	,,	सुप्यात्
लृङ	,,	,,	अस्वप्स्यत्

परस्मैपदी श्वस्--साँस लेना

लट्	प्र० पु०	एकवचन	श्वसिति
लोट्	,,	,,	श्वसितु
विधि	,,	,,	श्वस्यात्
लङ	,,	,,	अश्वसीत्, अश्वसत्
लिट्	,,	,,	शश्वास
लुङ	,	,,	अश्वसीत्
लुट्	,,	,,	श्वसिता
लृट्	,,	,,	श्वसिष्यति
आशीर्लिङ	,,	,,	श्वस्यात्
लृङ	,,	,,	अश्वसिष्यत्

श्वस् के रूप स्वप् के समान होते हैं ।

परस्मैपदी हन्--मार डालना

वर्तमान--लट्

प्र० पु०	हन्ति	हतः	घ्नन्ति
म० पु०	हंसि	हथः	हथ
उ० पु०	हन्मि	हन्वः	हन्मः

आज्ञा--लोट्

प्र० पु०	हन्तु, हतात्	हताम्	घ्नन्तु
म० पु०	जहि, हतात्	हतम्	हत
उ० पु०	हनानि	हनाव	हनाम

विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	हन्यात्	हन्याताम्	हन्युः
म० पु०	हन्याः	हन्यातम्	हन्यात
उ० पु०	हन्याम्	हन्याव	हन्याम

अनद्यतनभूत--लङ्

प्र० पु०	अहन्	अहताम्	अघ्नन्
म० पु०	अहन्	अहतम्	अहत
उ० पु०	अहनम्	अहन्व	अहन्म

परोक्षभूत--लिट्

प्र० पु०	जघान	जघ्नतुः	जघ्नुः
म० पु०	जघनिथ, जघन्थ	जघ्नथुः	जघ्न
उ० पु०	जघान, जघन	जघ्निव	जघ्निम

सामान्यभूत--लुङ्

प्र० पु०	अवधीत्	अवधिष्टाम्	अवधिषुः
म० पु०	अवधीः	अवधिष्टम्	अवधिष्ट
उ० पु०	अवधिषम्	अवधिष्व	अवधिष्म

अनद्यतनभविष्य--लुट्

प्र० पु०	हन्ता	हन्तारौ	हन्तारः
म० पु०	हन्तासि	हन्तास्थः	हन्तास्थ
उ० पु०	हन्तास्मि	हन्तास्वः	हन्तास्मः

सामान्यभविष्य--लृट्

प्र० पु०	हनिष्यति	हनिष्यतः	हनिष्यन्ति
म० पु०	हनिष्यसि	हनिष्यथः	हनिष्यथ
उ० पु०	हनिष्यामि	हनिष्यावः	हनिष्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	वध्यात्	वध्यास्ताम्	वध्यासुः
म० पु०	वध्याः	वध्यास्तम्	वध्यास्त
उ० पु०	वध्यासम्	वध्यास्व	वध्यास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अहनिष्यत्	अहनिष्यताम्	अहनिष्यन्
म० पु०	अहनिष्यः	अहनिष्यतम्	अहनिष्यत
उ० पु०	अहनिष्यम्	अहनिष्याव	अहनिष्याम

(३) जुहोत्यादिगण[1]

१४३—इस गण की प्रथम धातु हु (हवन करना) है और उसके रूप जुहोति, जुहुतः, जुह्वति आदि होते हैं, इसलिए इस गण का नाम जुहोत्यादि-गण पड़ा। इस गण में २४ धातुएँ हैं। इनके उपरान्त प्रत्यय जोड़ते समय धातु और प्रत्यय के बीच में कुछ नहीं लाया जाता, केवल धातु का अभ्यास किया जाता है। अभ्यास करने के नियम ऊपर नियम १३६ के अन्तर्गत नोट नं० १, पृ० ३१० पर दिए गए हैं।

इस गण में वर्तमान प्रथम पुरुष के बहुवचन में 'अन्ति' के स्थान पर 'अति' तथा अनद्यतन भूत के प्रथम पुरुष के बहुवचन में 'अन्' के स्थान पर 'उस्' होता है। इस 'उस्' प्रत्यय के पूर्व धातु का अन्तिम 'आ' लोप कर दिया जाता है और अन्तिम इ, उ, ऋ को गुण (७) प्राप्त होता है।

नीचे इस गण की मुख्य-मुख्य धातुओं के रूप दिए जाते हैं—

उभयपदी दा—देना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	ददाति	दत्तः	ददति
म० पु०	ददासि	दत्थः	दत्थ
उ० पु०	ददामि	दद्वः	दद्मः

१ जुहोत्यादिभ्यः श्लुः।२।४।७५। जुहोत्यादिगण की धातुओं के बाद शप् का 'श्लु' हो जाता है। श्लु दूसरे शब्दों में लुक् या लुप् का ही पर्याय है, केवल "श्लौ" ।६।१।१०। इस सूत्र के अनुसार 'श्लु' के कारण धातु का द्वित्व हो जाता है।

आज्ञा--लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ददातु, दत्तात्	दत्ताम्	ददतु
म० पु०	देहि, दत्तात्	दत्तम्	दत्त
उ० पु०	ददानि	ददाव	ददाम

विधिलिङ

प्र० पु०	दद्यात्	दद्याताम्	दद्युः
म० पु०	दद्याः	दद्यातम्	दद्यात
उ० पु०	दद्याम्	दद्याव	दद्याम

अनद्यतनभविष्य--लुट्

प्र० पु०	अददात्	अदत्ताम्	अददुः
म० पु०	अददाः	अदत्तम्	अदत्त
उ० पु०	अददाम्	अदद्व	अदद्म

परोक्षभूत--लिट्

प्र० पु०	ददौ	ददतुः	ददुः
म० पु०	ददिथ, ददाथ	ददथुः	दद
उ० पु०	ददौ	ददिव	ददिम

सामान्यभूत--लुङ

प्र० पु०	अदात्	अदाताम्	अदुः
म० पु०	अदाः	अदातम्	अदात
उ० पु०	अदाम्	अदाव	अदाम

अनद्यतनभविष्य--लुट्

प्र० पु०	दाता	दातारौ	दातारः
म० पु०	दातासि	दातास्थः	दातास्थ
उ० पु०	दातास्मि	दातास्वः	दातास्मः

सामान्यभविष्य--लृट्

प्र० पु०	दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति
म० पु०	दास्यसि	दास्यथः	दास्यथ
उ० पु०	दास्यामि	दास्यावः	दास्यामः

आशीर्लिङ

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	देयात्	देयास्ताम्	देयासुः
म० पु०	देयाः	देयास्तम्	देयास्त
उ० पु०	देयासम्	देयास्व	देयास्म

क्रियातिपत्ति--लृङ

प्र० पु०	अदास्यत्	अदास्यताम्	अदास्यन्
म० पु०	अदास्यः	अदास्यतम्	अदास्यत
उ० पु०	अदास्यम्	अदास्याव	अदास्याम

आत्मनेपद

वर्तमान--लट्

प्र० पु०	दत्ते	ददाते	ददते
म० पु०	दत्से	ददाथे	दद्ध्वे
उ० पु०	ददे	दद्वहे	दद्महे

आज्ञा--लोट्

प्र० पु०	दत्ताम्	ददाम्	ददताम्
म० पु०	दत्स्व	ददाथाम्	दद्ध्वम्
उ० पु०	ददै	ददावहै	ददामहै

विधिलिङ

प्र० पु०	ददीत	ददीयाताम्	ददीरन्
म० पु०	ददीथाः	ददीयाथाम्	ददीध्वम्
उ० पु०	ददीय	ददीवहि	ददीमहि

अनद्यतनभविष्य--लुङ

प्र० पु०	अदत्त	अददाताम्	अददत
म० पु०	अदत्थाः	अददाथाम्	अदद्ध्वम्
उ० पु०	अददि	अदद्वहि	अदद्महि

परोक्षभूत--लिट्

प्र० पु०	ददे	ददाते	ददिरे
म० पु०	ददिषे	ददाथे	ददिध्वे
उ० पु०	ददे	ददिवहे	ददिमहे

सामान्यभूत––लुङ

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	अदित	अदिषाताम्	अदिषत
म० पु०	अदिथाः	अदिषाथाम्	अदिध्वम्, ढ्वम्
उ० पु०	अदिषि	अदिष्वहि	अदिष्महि

अनद्यतनभविष्य––लुट्

प्र० पु०	दाता	दातारौ	दातारः
म० पु०	दातासे	दातासाथे	दाताध्वे
उ० पु०	दाताहे	दातास्वहे	दातास्महे

सामान्यभविष्य––लृट्

प्र० पु०	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
म० पु०	दास्यसे	दास्येथे	दास्यध्वे
उ० पु०	दास्ये	दास्यावहे	दास्यामहे

आशीर्लिङ

प्र० पु०	दासीष्ट	दासीयास्ताम्	दासीरन्
म० पु०	दासीष्ठाः	दासीयास्थाम्	दासीध्वम्
उ० पु०	दासीय	दासीवहि	दासीमहि

क्रियातिपत्ति––लृङ

प्र० पु०	अदास्यत	अदास्येताम्	अदास्यन्त
म० पु०	अदास्यथाः	अदास्येथाम्	अदास्यध्वम्
उ० पु०	अदास्ये	अदास्यावहि	अदास्यामहि

उभयपदी धा––धारण करना

परस्मैपद

वर्तमान––लट्

प्र० पु०	दधाति	धत्तः	दधति
म० पु०	दधासि	धत्थः	धत्थ
उ० पु०	दधामि	दध्वः	दध्मः

आज्ञा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	दधातु, धत्तात्	धत्ताम्	दधतु
म० पु०	धेहि	धत्तम्	धत्त
उ० पु०	दधानि	दधाव	दधाम

विधिलिङ

प्र० पु०	दध्यात्	दध्याताम्	दध्युः
म० पु०	दध्याः	दध्यातम्	दध्यात
उ० पु०	दध्याम्	दध्याव	दध्याम

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अदधात्	अधत्ताम्	अदधुः
म० पु०	अदधाः	अधत्तम्	अधत्त
उ० पु०	अदधाम्	अदध्व	अदध्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	दधौ	दधतुः	दधुः
म० पु०	दधिथ, दधाथ	दधथुः	दध
उ० पु०	दधौ	दधिव	दधिम

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अधात्	अधाताम्	अधुः
म० पु०	अधाः	अधातम्	अधात
उ० पु०	अधाम्	अधाव	अधाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	धाता	धातारौ	धातारः
म० पु०	धातासि	धातास्थः	धातास्थ
उ० पु०	धातास्मि	धातास्वः	धातास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	धास्यति	धास्यतः	धास्यन्ति
म० पु०	धास्यसि	धास्यथः	धास्यथ
उ० पु०	धास्यामि	धास्यावः	धास्यामः

आशीर्लिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	धेयात्	धेयास्ताम्	धेयासुः
म० पु०	धेयाः	धेयास्तम्	धेयास्त
उ० पु०	धेयासम्	धेयास्व	धेयास्म

क्रियातिपत्ति––लृङ्

प्र० पु०	अधास्यत	अधास्यताम्	अधास्यन्
म० पु०	अधास्यः	अधास्यतम्	अधास्यत
उ० पु०	अधास्यम्	अधास्याव	अधास्याम

आत्मनेपद

वर्तमान––लट्

प्र० पु०	धत्ते	दधाते	दधते
म० पु०	धत्से	दधाथे	धद्ध्वे
उ० पु०	दधे	दध्वहे	दध्महे

आज्ञा––लोट्

प्र० पु०	धत्ताम्	दधाताम्	दधताम्
म० पु०	धत्स्व	दधाथाम्	धद्ध्वम्
उ० पु०	दधै	दधावहै	दधामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	दधीत	दधीयाताम्	दधीरन्
म० पु०	दधीथाः	दधीयाथाम्	दधीध्वम्
उ० पु०	दधीय	दधीवहि	दधीमहि

अनद्यतनभूत––लङ्

प्र० पु०	अधत्त	अदधाताम्	अदधत
म० पु०	अधत्थाः	अदधाथाम्	अधद्ध्वम्
उ० पु०	अदधि	अदध्वहि	अदध्महि

परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	दधे	दधाते	दधिरे
म० पु०	दधिषे	दधाथे	दधिध्वे
उ० पु०	जदधे	दधिवहे	दधिमहे

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अधित	अधिषाताम्	अधिषत
म० पु०	अधिथाः	अधिषाथाम्	अधिध्वम्, ढ्वम्
उ० पु०	अधिषि	अधिष्वहि	अधिष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	धाता	धातारौ	धातारः
म० पु०	धातासे	धातासाथे	धाताध्वे
उ० पु०	धाताहे	धातास्वहे	धातास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	धास्यते	धास्येते	धास्यन्ते
म० पु०	धास्यसे	धास्येथे	धास्यध्वे
उ० पु०	धास्ये	धास्यावहे	धास्यामहे

आशीर्लिङ

प्र० पु०	धासीष्ट	धासीयास्ताम्	धासीरन्
म० पु०	धासीष्ठाः	धासीयास्थाम्	धासीध्वम्
उ० पु०	धासीय	धासीवहि	धासीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ

प्र० पु०	अधास्यत	अधास्येताम्	अधास्यन्त
म० पु०	अधास्यथाः	अधास्येथाम्	अधास्यध्वम्
उ० पु०	अधास्ये	अधास्यावहि	अधास्यामहि

परस्मैपदी भी--डरना

वर्तमान--लट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	विभेति	बिभितः, विभीतः	विभ्यति
म० पु०	विभेषि	विभिथः, बिभीथः	विभिथ, बिभीथ
उ० पु०	बिभेमि	विभिवः, विभीवः	विभिमः, विभीमः

आज्ञा--लोट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	विभेतु विभितात्, विभीतात्	विभिताम् विभीताम्	विभ्यतु
म० पु०	विभिहि, विभीहि विभितात्:, विभीतात्	विभितम् विभीतम्	विभित विभीत
उ० पु०	विभयानि	विभयाव	विभयाम

विधिलिङ

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	विभियात् विभीयात्	विभियाताम् विभीयाताम्	बिभियुः विभीयुः
म० पु०	विभियाः विभीयाः	विभियातम् विभीयातम्	विभियात विभीयात
उ० पु०	विभियाम् विभीयाम्	विभियाव विभीयाव	विभियाम विभीयाम

अनद्यतनभूत--लङ

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	अविभेत्	अविभिताम् अविभीताम्	अबिभयुः
म० पु०	अविभेः	अविभितम् अविभीतम्	अविभित अविभीत
उ० पु०	अविभयम्	अविभिव अविभीव	अविभिम अविभीम

परोक्षभूत--लिट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	विभयाञ्चकार	विभयाञ्चक्रतुः	विभयाञ्चक्रुः
म० पु०	विभयाञ्चकर्थ	विभयाञ्चक्रथुः	विभयाञ्चक्र
उ० पु०	विभयाञ्चकार विभयाञ्चकर	विभयाञ्चकृव	विभयाञ्चकृम

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	विभयाम्वभूव	विभयाम्वभूवतुः	बिभयाम्वभूवुः
म० पु०	विभयाम्वभूविथ	विभयाम्वभूवथुः	विभयाम्वभूव
उ० पु०	विभयाम्वभूव	विभयाम्वभूविव	विभयाम्वभूविम
प्र० पु०	विभयामास	विभयामासतुः	बिभयामासुः
म० पु०	विभयामासिथ	विभयामासथुः	विभयामास
उ० पु०	विभयामास	विभयामासिव	बिभयामासिम

सामान्यभूत--लुङ

प्र० पु०	अभैषीत्	अभैष्टाम्	अभैषुः
म० पु०	अभैषीः	अभैष्टम्	अभैष्ट
उ० पु०	अभैषम्	अभैष्व	अभैष्म

अनद्यतनभविष्य--लुट्

प्र० पु०	भेता	भेतारौ	भेतारः
म० पु०	भेतासि	भेतास्थः	भेतास्थ
उ० पु०	भेतास्मि	भेतास्वः	भेतास्मः

सामान्यभविष्य--लृट्

प्र० पु०	भेष्यति	भेष्यतः	भेष्यन्ति
म० पु०	भेष्यसि	भेष्यथः	भेष्यथ
उ० पु०	भेष्यामि	भेष्यावः	भेष्यामः

आशीर्लिङ

प्र० पु०	भीयात्	भीयास्ताम्	भीयासुः
म० पु०	भीयाः	भीयास्तम्	भीयास्त
उ० पु०	भीयासम्	भीयास्व	भीयास्म

क्रियातिपत्ति--लृङ

प्र० पु०	अभेष्यत्	अभेष्यताम्	अभेष्यन्
म० पु०	अभेष्यः	अभेष्यतम्	अभेष्यत
उ० पु०	अभेष्यम्	अभेष्याव	अभेष्याम

परस्मैपदी

हा—छोड़ना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जहाति	जहितः जहीतः	जहति
म० पु०	जहासि	जहिथः जहीथः	जहिथ जहीथ
उ० पु०	जहामि	जहिवः जहीवः	जहिमः जहीमः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	जहातु जहितात् जहीतात्	जहिताम् जहीताम्	जहतु
म० पु०	जहाहि जहिहि, जहीहि जहितात्, जहीतात्	जहितम् जहीतम्	जहित जहीत
उ० पु०	जहानि	जहाव	जहाम

विधिलिङ

प्र० पु०	जह्यात्	जह्याताम्	जह्युः
म० पु०	जह्याः	जह्यातम्	जह्यात
उ० पु०	जह्याम्	जह्याव	जह्याम

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अजहात्	अजहिताम् अजहीताम्	अजहुः
म० पु०	अजहः	अजहितम् अजहीतम्	अजहित अजहीत
उ० पु०	अजहाम्	अजहिव अजहीव	अजहिम अजहीम

परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जहौ	जहतुः	जहुः
म० पु०	जहिथ, जहाथ	जहथुः	जह
उ० पु०	जहौ	जहिव	जहिम

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अहासीत्	अहासिष्टाम्	अहासिषुः
म० पु०	अहासीः	अहासिष्टाम्	अहासिष्ट
उ० पु०	अहासिषम्	अहासिष्व	अहासिष्म

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	हाता	हातारौ	हातारः
म० पु०	हातासि	हातास्थः	हातास्थ
उ० पु०	हातास्मि	हातास्वः	हातास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	हास्यति	हास्यतः	हास्यन्ति
म० पु०	हास्यसि	हास्यथः	हास्यथ
उ० पु०	हास्यामि	हास्यावः	हास्यामः

आशीर्लिङ

प्र० पु०	हेयात्	हेयास्ताम्	हेयासुः
म० पु०	हेयाः	हेयास्तम्	हेयास्त
उ० पु०	हेयासम्	हेयास्व	हेयास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ

प्र० पु०	अहास्यत्	अहास्यताम्	अहास्यन्
म० पु०	अहास्यः	अहास्यतम्	अहास्यत
उ० पु०	अहास्यम्	अहास्याव	अहास्याम

(४) दिवादिगण

१४४—इस गण की प्रथम धातु दिव् (जुवा खेलना आदि) है, इस कारण इसका नाम दिवादिगण है। इसमें १४० धातुएँ हैं। इस गण की धातुओं और प्रत्ययों के बीच में श्यन्[1] (य) जोड़ा जाता है, जैसे—मन् धातु से मन्+य+ते=मन्यते; कुप्+य+ति=कुप्यति।

१ दिवादिभ्यः श्यन् ।३।१।६९।

नीचे इस गण की मुख्य-मुख्य धातुओं के रूप दिखाए जाते हैं—

परस्मैपदी दिव्—जुआ खेलना, चमकना आदि

वर्तमान लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	दीव्यति	दीव्यतः	दीव्यन्ति
म० पु०	दीव्यसि	दीव्यथः	दीव्यथ
उ० पु०	दीव्यामि	दीव्यावः	दीव्यामः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	दीव्यतु, दीव्यतात्	दीव्यताम्	दीव्यन्तु
म० पु०	दीव्य, दीव्यतात्	दीव्यतम्	दीव्यत
उ० पु०	दीव्यानि	दीव्याव	दीव्याम

विधिलिङ

प्र० पु०	दीव्येत्	दीव्येताम्	दीव्येयुः
म० पु०	दीव्येः	दीव्येतम्	दीव्येत
उ० पु०	दीव्येयम्	दीव्येव	दीव्येम

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अदीव्यत्	अदीव्यताम्	अदीव्यन्
म० पु०	अदीव्यः	अदीव्यतम्	अदीव्यत
उ० पु०	अदीव्यम्	अदीव्याव	अदीव्याम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	दिदेव	दिदिवतुः	दिदिवुः
म० पु०	दिदेविथ	दिदिवथुः	दिदिव
उ० पु०	दिदेव	दिदिविव	दिदिविम

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अदेवीत्	अदेविष्टाम्	अदेविषुः
म० पु०	अदेवीः	अदेविष्टम्	अदेविष्ट
उ० पु०	अदेविषम्	अदेविष्व	अदेविष्म
लुट्	देविता	देवितारौ	देवितारः
लृट्	देविष्यति	देविष्यतः	देविष्यन्ति

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
आशी०	दीव्यात्	दीव्यास्ताम्	दीव्यासुः
लृङ्	अदेविष्यत्	अदेविष्यताम्	अदेविष्यन्

आत्मनेपदी जन्--पैदा होना

वर्तमान--लट्

प्र० पु०	जायते	जायेते	जायन्ते
म० पु०	जायसे	जायेथे	जायध्वे
उ० पु०	जाये	जायावहे	जायामहे

आज्ञा--लोट्

प्र० पु०	जायताम्	जायेताम्	जायन्ताम्
म० पु०	जायस्व	जायेथाम्	जायध्वम्
उ० पु०	जायै	जायावहै	जायामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	जायेत	जायेयाताम्	जायेरन्
म० पु०	जायेथाः	जायेयाथाम्	जायेध्वम्
उ० पु०	जायेय	जायेवहि	जायेमहि

अनद्यतनभूत--लङ्

प्र० पु०	अजायत	अजायेताम्	अजायन्त
म० पु०	अजायथाः	अजायेथाम्	अजायध्वम्
उ० पु०	अजाये	अजायावहि	अजायमहि

परोक्षभूत--लिट्

प्र० पु०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
म० पु०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिढ्वे-ध्वे
उ० पु०	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

सामान्यभूत--लुङ्

प्र० पु०	अजनि, अजनिष्ट	अजनिषाताम्	अजनिषत
म० पु०	अजनिष्ठाः	अजनिषाथाम्	अजनिढ्वम्-ध्वम्
उ० पु०	अजनिषि	अजनिष्वहि	अजनिष्महि

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
लुट्	जनिता	जनितारौ	जनितारः
लृट्	जनिष्यते	जनिष्येते	जनिष्यन्ते
आशी०	जनिषीष्ट	जनिषीयास्ताम्	जनिषीरन्
लृङ्	अजनिष्यत	अजनिष्येताम्	अजनिष्यन्त

परस्मैपदी कुप्--कोप करना

वर्तमान--लट्

प्र० पु०	कुप्यति	कुप्यतः	कुप्यन्ति
म० पु०	कुप्यसि	कुप्यथः	कुप्यथ
उ० पु०	कुप्यामि	कुप्यावः	कुप्यामः

आज्ञा--लोट्

प्र० पु०	कुप्यतु	कुप्यताम्	कुप्यन्तु
म० पु०	कुप्य	कुप्यतम्	कुप्यत
उ० पु०	कुप्यानि	कुप्याव	कुप्याम

विधिलिङ

प्र० पु०	कुप्येत्	कुप्येताम्	कुप्येयुः
म० पु०	कुप्येः	कुप्येतम्	कुप्येत
उ० पु०	कुप्येयम्	कुप्येव	कुप्येम

अनद्यतनभूत--लङ

प्र० पु०	अकुप्यत्	अकुप्यताम्	अकुप्यन्
म० पु०	अकुप्यः	अकुप्यतम्	अकुप्यत
उ० पु०	अकुप्यम्	अकुप्याव	अकुप्याम

परोक्षभूत--लिट्

प्र० पु०	चुकोप	चुकुपतुः	चुकुपुः
म० पु०	चुकोपिथ	चुकुपथुः	चुकुप
उ० पु०	चुकोप	चुकुपिव	चुकुपिम

सामान्यभूत—लुङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अकुपत्	अकुपताम्	अकुपन्
म० पु०	अकुपः	अकुपतम्	अकुपत
उ० पु०	अकुपम्	अकुपाव	अकुपाम
लुट्	कोपिता	कोपितारौ	कोपितारः
लृट्	कोपिष्यति	कोपिष्यतः	कोपिष्यन्ति
आशी०	कुप्यात्	कुप्यास्ताम्	कुप्यासुः
लृङ्	अकोपिष्यत्	अकोपिष्यताम्	अकोपिष्यन्

आत्मनेपदी विद्—होना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	विद्यते	विद्येते	विद्यन्ते
म० पु०	विद्यसे	विद्येथे	विद्यध्वे
उ० पु०	विद्ये	विद्यावहे	विद्यामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	विद्यताम्	विद्येताम्	विद्यन्ताम्
म० पु०	विद्यस्व	विद्येथाम्	विद्यध्वम्
उ० पु०	विद्यै	विद्यावहै	विद्यामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	विद्येत	विद्येयाताम्	विद्येरन्
म० पु०	विद्येथाः	विद्येयाथाम्	विद्येध्वम्
उ० पु०	विद्येय	विद्येवहि	विद्येमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अविद्यत	अविद्येताम्	अविद्यन्त
म० पु०	अविद्यथाः	अविद्येथाम्	अविद्यध्वम्
उ० पु०	अविद्ये	अविद्यावहि	अविद्यामहि

परोक्षभूत--लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	विविदे	विविदाते	विविदिरे
म० पु०	विविदिषे	विविदाथे	विविदिध्वे
उ० पु०	विविदे	विविदिवहे	विविदिमहे

सामान्यभूत--लुङ्

प्र० पु०	अवित्त	अवित्साताम्	अवित्सत
म० पु०	अवित्थाः	अवित्साथाम्	अविद्ध्वम्, ढ्वम्
उ० पु०	अवित्सि	अवित्स्वहि	अवित्स्महि
लुट्	वेत्ता	वेत्तारौ	वेत्तारः
लृट्	वेत्स्यते	वेत्स्येते	वेत्स्यन्ते
आशी०	वित्सीष्ट	वित्सीयास्ताम्	वित्सीरन्
लृङ्	अवेत्स्यत	अवेत्स्येताम्	अवेत्स्यन्त

१४५—नीचे कुछ मुख्य-मुख्य धातुओं की सूची दी जाती है।

क्रम्[1] (प०)—जाना। लट्—क्राम्यति। लङ्—अक्राम्यत्। लुट्—क्रमिता। लृट्—क्रमिष्यति। विधि०—क्राम्येत। आशी०—क्रम्यात्। लृङ्—अक्रमिष्यत्।

परोक्षभूत--लिट्

प्र० पु०	चक्राम	चक्रमतुः	चक्रमुः
म० पु०	चक्रमिथ	चक्रमथुः	चक्रम
उ० पु०	चक्राम, चक्रम	चक्रमिव	चक्रमिम

१ इस धातु से सार्वधातुकों में विकल्प से श्यन् प्रत्यय जुड़ता है। अतः वह इन्हीं में विकल्प से दिवादिगणी होती है, अन्यथा यह भ्वादिगणी है और इसके रूप क्रामति, क्रामतु, क्रामेत्, अक्रामत् इत्यादि होते हैं। यह धातु आत्मनेपदी भी है और आत्मनेपदी होने पर यह सेट् नहीं होती। तब इसके रूप क्रमते, क्रमताम्, क्रमेत, क्रंसीष्ट, अक्रमत, चक्रमे, अक्रंस्त, क्रन्ता, क्रंस्यते, अक्रंस्यत इत्यादि होते हैं।

सामान्यभूत––लुङ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अक्रमीत्	अक्रमिष्टाम्	अक्रमिषुः
म० पु०	अक्रमीः	अक्रमिष्टम्	अक्रमिष्ट
उ० पु०	अक्रमिषम्	अक्रमिष्व	अक्रमिष्म

क्रुध् (प०)––गुस्सा करना । लट्––क्रुध्यति । लिट्––चुक्रोध । लुङ––अक्रुधत् । लुट्––क्रोद्धा । लृट्––क्रोत्स्यति । आशी०––क्रुध्यात् । लृङ––अक्रोत्स्यत् ।

क्लिश् (आत्म०)––दुःखी होना, क्लेश पाना । लट्––क्लिश्यते । लुङ––अक्लिष्ट । लुट्––क्लेशिता । लृट्––क्लेशिष्यते । आशी०––क्लेशिषीष्ट । लृङ––अक्लेशिष्यत ।

परोक्षभूत––लिट्

प्र० पु०	चिक्लिशे	चिक्लिशाते	चिक्लिशिरे
म० पु०	चिक्लिशिषे	चिक्लिशाथे	चिक्लिशिध्वे
उ० पु०	चिक्लिशे	चिक्लिशिवहे	चिक्लिशिमहे

क्षम्[1] (प०)––क्षमा करना । लट्––क्षाम्यति । विधि––क्षाम्येत् । लुट्––क्षमिता अथवा क्षन्ता ।

सामान्यभविष्य––लृट्

प्र० पु०	क्षमिष्यति	क्षमिष्यतः	क्षमिष्यन्ति
म० पु०	क्षमिष्यसि	क्षमिष्यथः	क्षमिष्यथ
उ० पु०	क्षमिष्यामि	क्षमिष्यावः	क्षमिष्यामः

अथवा

प्र० पु०	क्षंस्यति	क्षंस्यतः	क्षंस्यन्ति
म० पु०	क्षंस्यसि	क्षंस्यथः	क्षंस्यथ
उ० पु०	क्षंस्यामि	क्षंस्यावः	क्षंस्यामः

आशी० क्षम्यात् लृङ––अक्षमिष्यत्, अक्षंस्यत् ।

---

१ यह धातु वेट् है, अतः क्षमिता तथा क्षन्ता, क्षमिष्यति तथा क्षंस्यति इत्यादि द्विविध रूप होते हैं ।

परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चक्षाम	चक्षमतुः	चक्षमुः
म० पु०	{ चक्षमिथ चक्षन्थ	चक्षमथुः	चक्षम
उ० पु०	{ चक्षाम चक्षम	{ चक्षमिव चक्षण्व	{ चक्षमिम चक्षण्म

लङ्—अक्षाम्यत् । लुङ्—अक्षमत्, अक्षमताम्, अक्षमन् ।

क्षुध् (प०)—भूखा होना । लट्—क्षुध्यति । लिट्—चुक्षोध । लुङ्—अक्षुधत् । लुट्—क्षोद्धा । लृट्—क्षोत्स्यति । आशी०—क्षुध्यात् लृट्—क्षोत्स्यति । आशी०—क्षुध्यात् । लृङ—अक्षेत्स्यत् ।

खिद् (आत्म०)—दुःखी होना । लट्—खिद्यते । लिट्—चिखिदे । लुङ—अखैत्सीत् । लुट्—खेत्ता । लृट्—खेत्स्यते । आशी०—खित्सीष्ट । लृङ—अखेत्स्यत् ।

तुष् (प०)—प्रसन्न होना । लट्—तुष्यति । लिट्—तुतोष । लुङ—अतुषत् । लुट्—तोष्टा । लृट्—तोक्ष्यति । आशी०—तुष्यात् । लृङ—अतोक्ष्यत् ।

दम् (प०)—दमन करना, दबाना । लट्—दाम्यति । लिट्—ददाम । लुङ—अदमत् । लुट्—दमिता । लृट्—दमिष्यति । आशी०—दम्यात् । लृङ—अदमिष्यत् ।

दुष् (प०)—अशुद्ध होना । लट्—दुष्यति । लिट्—दुदोष । लुङ—अदुषत् । लुट्—दोष्टा । लृट्—दोक्ष्यति । आशी०—दुष्यात् । लृङ—अदोक्ष्यत् ।

द्रुह् (प०)—डाह करना । लट्—द्रुह्यति । लुट्—द्रोहिता, द्रोग्धा, द्रोढा । लृट्—द्रोहिष्यति, ध्रोक्ष्यति । आशी०—द्रुह्यात् । लृङ—अद्रोहिष्यत्, अध्रोक्ष्यत् । लुङ—अद्रुहत् ।

परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	दुद्रोह	दुद्रुहतुः	दुद्रुहुः
म० पु०	दुद्रोहिथ दुद्रोढ दुद्रोग्ध	दुद्रुहथुः	दुद्रुह
उ० पु०	दुद्रोह	दुद्रुहिव दुद्रुह्व	दुद्रुहिम दुद्रुह्म

नश् (प०)—नाश हो जाना, न दिखाई पड़ना । लट्—नश्यति । लुट्—नशिता, नष्टा । लृट्—नशिष्यति, नंक्ष्यति । आशी०—नश्यात् । लृट्—अनशिश्यत्, अनंक्ष्यत् । लुङ—अनशत् ।

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ननाश	नेशतुः	नेशुः
म० पु०	नेशिथ ननंष्ठ	नेशथुः	नेश
उ० पु०	ननाश ननश	नेशिव नेश्व	नेशिम नेश्म

नृत् (प०) नाचना । लट्—नृत्यति । लुट्—नर्तिता । लृट्—नर्तिष्यति, नर्त्स्यति । आशी०—नृत्यात् ।

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ननर्त	ननृततुः	ननृतुः
म० पु०	ननर्तिथ	ननृतथुः	ननृत
उ० पु०	ननर्त	ननृतिव	ननृतिम
लुङ	अनर्तीत	अनर्तिष्टाम्	अनर्तिषुः

भ्रम्[1] (प०)—भ्रान्त होना । लट्—भ्राम्यति । लुट्—भ्रमिता । लृट्—भ्रमिष्यति । आशी०—भ्रम्यात् ।

---

१ 'अनवस्थान' अर्थात् भ्रान्ति अर्थ में यह धातु दिवादिगणी होती है परन्तु विकल्प से शप् भी होता है । शवन्त होने पर इसके भ्रमति, भ्रमतः, भ्रमन्ति इत्यादि रूप होते हैं ।

भ्रमण करना या घूमना अर्थ होने पर यह धातु भ्वादिगणी होती है और इसके रूप पूर्वोक्त भ्रमति इत्यादि ही होते है । वहाँ यह विकल्प से दिवादि भी होती है और तब श्यन् जुड़ने पर भ्राम्यति इत्यादि रूप होते हैं ।

परोक्षभूत--लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	बभ्राम	बभ्रमतुः, भ्रेमतुः	बभ्रमुः, भ्रेमुः
म० पु०	बभ्रमिथ, भ्रेमिथ	बभ्रमथुः, भ्रेमथुः	बभ्रम, भ्रेम
उ० पु०	बभ्राम, बभ्रम	बभ्रमिव, भ्रेमिव	बभ्रमिम, भ्रेमिम
लुङ	अभ्रमत्	अभ्रमताम्	अभ्रमन्

मन् (आत्म०)—समझना । लट्—मन्यते । लुट्—मन्ता । लृट्—मंस्यते । आशी०—मंसीष्ट । लिट्—मेने, मेनाते, मेनिरे । लुङ—अमंस्त, अमंसाताम् अमंसत । अमंस्थाः, अमंसाथाम्, अमन्ध्वम् । अमंसि, अमंस्वहि, अमंस्महि ।

युध् (आ०)—संग्राम करना । लट्—युध्यते । लुट्—योद्धा । लृट्—योत्स्यते । आशी०—युत्सीष्ट । लृङ—अयोत्स्यत । लिट्—युयुधे । लुङ—अयुद्ध, अयुत्साताम्, अयुत्सत ।

व्यध् (प०)—बेधना । लट्—विध्यति । लुट्—व्यद्धा । लृट्—व्यत्स्यति आशी०—विध्यात् ।

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	विव्याध	विविधतुः	विविधुः
म० पु०	विव्यधिथ, विव्यद्ध	विविधथुः	विविध
उ० पु०	विव्याध, विव्यध	विविधिव	विविधिम

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अव्यात्सीत्	अव्याद्धाम्	अव्यात्सुः
म० पु०	अव्यात्सीः	अव्याद्धम्	अव्याद्ध
उ० पु०	अव्यात्सम्	अव्यात्स्व	अव्यात्स्म

शुष् (प०)—सूखना । लट्—शुष्यति । लुट्—शोष्टा । लृट्—शोक्ष्यति । आशी०—शुष्यात् । लिट्—शुशोष । लुङ—अशुषत् ।

सिध् (प०)—सिद्ध होना, कामयाव होना । लट्—सिध्यति । लुट्—सेद्धा । आशी०—सिध्यात् । लिट्—सिषेध । लुङ—असिधत् ।

सिव् (प०)—सीना । लट्—सीव्यति । लुट्—सेविता । आशी०—सीव्यात् । लिट्—सिषेव । लुङ—असेवीत् ।

हृष् (प०)—हर्षित होना । लट्—हृष्यति । लुट्—हर्षिता । लृट्—हर्षिष्यति । आशी०—हृष्यात् । लिट्—जहर्ष । लुङ—अहृषत् ।

(५) स्वादिगण

१४६—इस गण की प्रथम धातु सु (रस निकालना) है, इस कारण इसका नाम स्वादि पड़ा । इसमें ३५ धातुएँ हैं । धातु[1] और प्रत्यय के बीच में इस गण में श्नु (नु) जोड़ा जाता है । उदाहरणार्थ—सु+नु+ते=सुनुते आदि ।

नोट—प्रत्यय के व, म से पूर्व विकल्प से नु का उ लुप्त हो जाता है, (जैसे—सु+नु+वः=सुनुवः, सुन्वः, इसी प्रकार, सुनुमः सुन्मः । किन्तु यदि नु के पूर्व कोई व्यंजन हो तो उ नहीं हटाया जाता, (जैसे—साध्+नु+मः=साध्नुमः) ।

नीचे इस गण की मुख्य-मुख्य धातुओं के रूप दिये जाते हैं ।

परस्मैपदी आप्—पाना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	आप्नोति	आप्नुतः	आप्नुवन्ति
म० पु०	आप्नोषि	आप्नुथः	आप्नुथ
उ० पु०	आप्नोमि	आप्नुवः	आप्नुमः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	आप्नोतु	आप्नुताम्	आप्नुवन्तु
म० पु०	आप्नुहि	आप्नुतम्	आप्नुत
उ० पु०	आप्नवानि	आप्नवाव	आप्नवाम

१ स्वादिभ्यः श्नुः ।३।१।७३।

विधिलिङ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	आप्नुयात्	आप्नुयाताम्	आप्नुयुः
म० पु०	आप्नुयाः	आप्नुयातम्	आप्नुयात
उ० पु०	आप्नुयाम्	आप्नुयाव	आप्नुयाम

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	आप्नोत्	आप्नुताम्	आप्नुवन्
म० पु०	आप्नोः	आप्नुतम्	आप्नुत
उ० पु०	आप्नवम्	आप्नुव	आप्नुम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	आपः	आपतुः	आपुः
म० पु०	आपिथ	आपथुः	आप
उ० पु०	आप	आपिव	आपिम

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	आपत्	आपताम्	आपन्
म० पु०	आपः	आपतम्	आपत
उ० पु०	आपम्	आपाव	आपाम
लुट्	आप्ता	आप्तारौ	आप्तारः
लृट्	आप्स्यति	आप्स्यतः	आप्स्यन्ति
आशी०	आप्यात्	आप्यास्ताम्	आप्यासुः
लृङ	आप्स्यत्	आप्स्यताम्	आप्स्यन्

उभयपदी चि—इकट्ठा करना

परस्मैपदी

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	चिनोति	चिनुतः	चिन्वन्ति
म० पु०	चिनोषि	चिनुथः	चिनुथ
उ० पु०	चिनोमि	चिनुवः, चिन्वः	चिनुमः, चिन्मः

आज्ञा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चिनोतु, चिनुतात्	चिनुताम्	चिन्वन्तु
म० पु०	चिनु, चिनुतात्	चिनुतम्	चिनुत
उ० पु०	चिनवानि	चिनवाव	चिनवाम

विधिलिङ

प्र० पु०	चिनुयात्	चिनुयाताम्	चिनुयुः
म० पु०	चिनुयाः	चिनुयातम्	चिनुयात
उ० पु०	चिनुयाम्	चिनुयाव	चिनुयाम

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अचिनोत्	अचिनुताम्	अचिन्वन्
म० पु०	अचिनोः	अचिनुतम्	अचिनुत
उ० पु०	अचिनवम्	अचिनुव, अचिन्व	अचिनुम, अचिन्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिकाय	चिक्यतुः	चिक्युः
म० पु०	चिकयिथ, चिकेथ	चिक्यथुः	चिक्य
उ० पु०	चिकाय, चिकय	चिक्यिव	चिक्यिम

अथवा

प्र० पु०	चिचाय	चिच्यतुः	चिच्युः
म० पु०	चिचयिथ, चिचेय	चिच्यथुः	चिच्य
उ० पु०	चिचाय, चिचय	चिच्यिव	चिच्यिम

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अचैषीत्	अचैष्टाम्	अचैषुः
म० पु०	अचैषीः	अचैष्टम्	अचैष्ट
उ० पु०	अचैषम्	अचैष्व	अचैष्म
लुङ	चेता	चेतारौ	चेतारः
लृट्	चेष्यति	चेष्यतः	चेष्यन्ति

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
आशी०	चीयात्	चीयास्ताम्	चीयासुः
लृङ्	अचेष्यत्	अचेष्यताम्	अचेष्यन्

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	चिनुते	चिन्वाते	चिन्वते
म० पु०	चिनुषे	चिन्वाथे	चिनुध्वे
उ० पु०	चिन्वे	चिनुवहे, चिन्वहे	चिनुमहे, चिन्महे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	चिनुताम्	चिन्वाताम्	चिन्वताम्
म० पु०	चिनुष्व	चिन्वाथाम्	चिनुध्वम्
उ० पु०	चिनवै	चिन्वावहै	चिन्वामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	चिन्वीत	चिन्वीयाताम्	चिन्वीरन्
म० पु०	चिन्वीथाः	चिन्वीयाथाम्	चिन्वीध्वम्
उ० पु०	चिन्वीय	चिन्वीवहि	चिन्वीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अचिनुत	अचिन्वाताम्	अचिन्वत
म० पु०	अचिनुथाः	अचिन्वाथाम्	अचिनुध्वम्
उ० पु०	अचिन्वि	{ अचिनुवहि, अचिन्वहि	{ अचिनुमहि, अचिन्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिक्ये	चिक्याते	चिक्यिरे
म० पु०	चिक्यिषे	चिक्याथे	चिक्यिध्वे, ढ्वे
उ० पु०	चिक्ये	चिक्यिवहे	चिक्यिमहे

अथवा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चिच्ये	चिच्याते	चिच्यिरे
म० पु०	चिच्यिषे	चिच्याथे	चिच्यिध्वे, ढ्वे
उ० पु०	चिच्ये	चिच्यिवहे	चिच्यिमहे

सामान्यभूत—लङ

प्र० पु०	अचेष्ट	अचेषाताम्	अचेषत
म० पु०	अचेष्ठाः	अचेषाथाम्	अचेढ्वम्
उ० पु०	अचेषि	अचेष्वहि	अचेष्महि
लुट्	चेता	चेतारौ	चेतारः
लृट्	चेष्यते	चेष्येते	चेष्यन्ते
आशी०	चेषीष्ट	चेषीयास्ताम्	चेषीरन्
लृङ	अचेष्यत	अचेष्येताम्	अचेष्यन्त

उभयपदी वृ[1]—चुनना, वरण करना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	वृणोति	वृणुतः	वृण्वन्ति
म० पु०	वृणोषि	वृणुथः	वृणुथ
उ० पु०	वृणोमि	वृणुवः, वृण्वः	वृणुमः, वृण्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	वृणोतु	वृणुताम्	वृण्वन्तु
म० पु०	वृणु	वृणुतम्	वृणुत
उ० पु०	वृणवानि	वृणवाव	वृणवाम

विधिलिङ

प्र० पु०	वृणुयात्	वृणुयाताम्	वृणुयुः
म० पु०	वृणुयाः	वृणुयातम्	वृणुयात
उ० पु०	वृणुयाम्	वृणुयाव	वृणुयाम

१ यह धातु इसी अर्थ में क्रयादिगण में भी है। वहाँ इसके रूप वृणाति, वृणीते इत्यादि होते हैं।

अनद्यतनभूत—लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अवृणोत्	अवृणुताम्	अवृण्वन्
म० पु०	अवृणोः	अवृणुतम्	अवृणुत
उ० पु०	अवृणवम्	अवृणुव, अवृण्व	अवृणुम, अवृण्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ववार	वव्रतुः	वव्रुः
म० पु०	ववरिथ	वव्रथुः	वव्र
उ० पु०	ववार, ववर	ववृव	ववृम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अवारीत्	अवारिष्टाम्	अवारिषुः
म० पु०	अवारीः	अवारिष्टम्	अवारिष्ट
उ० पु०	अवारिषम्	अवारिष्व	अवारिष्म
लुट्	{ वरिता वरीता	{ वरितारौ वरीतारौ	{ वरितारः वरीतारः
लृट्	{ वरिष्यति वरीष्यति	{ वरिष्यतः वरीष्यतः	{ वरिष्यन्ति वरीष्यन्ति
आशी०	व्रियात	व्रियास्ताम्	विव्रयासुः
लृङ	{ अवरिष्यत् अवरीष्यत्	{ अवरिष्यताम् अवरीष्यताम्	{ अवरिष्यन् अवरीष्यन्

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	वृणुते	वृण्वाते	वृण्वते
म० पु०	वृणुषे	वृण्वाथे	वृणुध्वे
उ० पु०	वृण्वे	वृणुवहे, वृण्वहे	वृणुमहे, वृण्महे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	वृणुताम्	वृण्वाताम्	वृण्वताम्
म० पु०	वृणुष्व	वृण्वाथाम्	वृणुध्वम्
उ० पु०	वृणवै	वृण्वावहै	वृण्वामहै

विधिलिङ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	वृण्वीत	वृण्वीयाताम्	वृण्वीरन्
म० पु०	वृण्वीथाः	वृण्वीयाथाम्	वृण्वीध्वम्
उ० पु०	वृण्वीय	वृण्वीवहि	वृण्वीमहि

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अवृणुत	अवृण्वाताम्	अवृण्वत
म० पु०	अवृणुथाः	अवृण्वाथाम्	अवृणुध्वम्
उ० पु०	अवृण्वि	अवृण्वहि	अवृण्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	वव्रे	वव्राते	वव्रिरे
म० पु०	ववृषे	वव्राथे	ववृढ्वे
उ० पु०	वव्रे	ववृवहे	ववृमहे

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अवरिष्ट	अवरिषाताम्	अवरिषत
म० पु०	अवरिष्ठाः	अवरिषाथाम्	अवरिध्वम्, ढ्वम्
उ० पु०	अवरिषि	अवरिष्वहि	अवरिष्महि

या

प्र० पु०	अवरीष्ट	अवरीषाताम्	अवरीषत
म० पु०	अवरीष्ठाः	अवरीषाथाम्	अवरीध्वम्, ढ्वम्
उ० पु०	अवरीषि	अवरीष्वहि	अवरीष्महि

अथवा

प्र० पु०	अवृत	अवृषाताम्	अवृषत
म० पु०	अवृथाः	अवृषाथाम्	अवृढ्वम्
उ० पु०	अवृषि	अवृष्वहि	अवृष्महि
लुट्	वरिता / वरीता	वरितारौ / वरीतारौ	वरितारः / वरीतारः
लृट्	वरिष्यते / वरीष्यते	वरिष्येते / वरीष्येते	वरिष्यन्ते / वरीष्यन्ते

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
आशी०	वरिषीष्ट वृषीष्ट	वरिषीयास्ताम् वृषीयास्ताम्	वरिषीरन् वृषीरन्
लृङ	अवरिष्यत अवरीष्यत	अवरिष्येताम् अवरीष्येताम्	अवरिष्यन्त अवरीष्यन्त

परस्मैपदी शक्—सकना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	शक्नोति	शक्नुतः	शक्नुवन्ति
म० पु०	शक्नोषि	शक्नुथः	शक्नुथ
उ० पु०	शक्नोमि	शक्नुवः	शक्नुमः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	शक्नोतु	शक्नुताम्	शक्नुवन्तु
म० पु०	शक्नुहि	शक्नुतम्	शक्नुत
उ० पु०	शक्नवानि	शक्नवाव	शक्नवाम

विधिलिङ

प्र० पु०	शक्नुयात्	शक्नुयाताम्	शक्नुयुः
म० पु०	शक्नुयाः	शक्नुयाताम्	शक्नुयात
उ० पु०	शक्नुयाम्	शक्नुयाव	शक्नुयाम

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अशक्नोत्	अशक्नुताम्	अशक्नुवन्
म० पु०	अशक्नोः	अशक्नुतम्	अशक्नुत
उ० पु०	अशक्नवम्	अशक्नुव	अशक्नुम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	शशाक	शेकतुः	शेकुः
म० पु०	शेकिथ, शशक्थ	शेकथुः	शेक
उ० पु०	शशाक, शशक	शेकिव	शेकिम

सामान्यभूत—लुङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अशकत्	अशकताम्	अशकन्
म० पु०	अशकः	अशकतम्	अशकत
उ० पु०	अशकम्	अशकाव	अशकाम
लुट्	शक्ता	शक्तारौ	शक्तारः
लृट्	शक्ष्यति	शक्ष्यतः	शक्ष्यन्ति
आशी०	शक्यात्	शक्यास्ताम्	शक्यासुः
लृङ्	अशक्ष्यत्	अशक्ष्यताम्	अशक्ष्यन्

(६) तुदादिगण

१४७—इस गण की प्रथम धातु तुद् (पीड़ा पहुँचाना) है, इसी से इसका नाम तुदादिगण है। इसमें १५७ धातुएँ हैं। धातु और प्रत्यय के बीच में इसमें[1] श (अ) जोड़ा जाता है। भ्वादिगण में भी अ जोड़ा जाता है किन्तु वहाँ धातु की उपधा को अथवा अन्त के स्वर को गुण प्राप्त होता है, यहाँ तुदादिगण में ऐसा नहीं होता। यहाँ अन्तिम इ, को इय् उ,, ऊ को उव्, ऋ को रिय् और ॠ को इर् हो जाता है, जैसे—रि+अ+ति=रियति। धु+अ+ति=धुवति। मृ+अ+ते=म्रियते। गॄ+अ+ति=गिरति। कृष्‌ धातु भ्वादिगण तथा तुदादिगण दोनों में हैं, भ्वादि में कर्षति आदि और तुदादि में कृषति आदि रूप होते हैं।

नीचे मुख्य-मुख्य धातुओं के रूप दिये जाते हैं।

उभयपदी तुद्—पीड़ा पहुँचाना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	तुदति	तुदतः	तुदन्ति
म० पु०	तुदसि	तुदथः	तुदथ
उ० पु०	तुदामि	तुदावः	तुदामः

१ तुदादिभ्यः शः ।३।१।७७।

आज्ञा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	तुदतु, तुदतात्	तुदताम्	तुदन्तु
म० पु०	तुद, तुदतात्	तुदतम्	तुदत
उ० पु०	तुदानि	तुदाव	तुदाम

विधिलिङ

प्र० पु०	तुदेत्	तुदेताम्	तुदेयुः
म० पु०	तुदेः	तुदेतम्	तुदेत
उ० पु०	तुदेयम्	तुदेव	तुदेम

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अतुदत्	अतुदताम्	अतुदन्
म० पु०	अतुदः	अतुदतम्	अतुदत
उ० पु०	अतुदम्	अतुदाव	अतुदाम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	तुतोद	तुतुदतुः	तुतुदुः
म० पु०	तुतोदिथ	तुतुदथुः	तुतुद
उ० पु०	तुतोद	तुतुदिव	तुतुदिम

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अतौत्सीत्	अतौत्ताम्	अतौत्सुः
म० पु०	अतौत्सीः	अतौत्तम्	अतौत्त
उ० पु०	अतौत्सम्	अतौत्स्व	अतौत्स्म

लुट्—तोत्ता । लृट्—तोत्स्यति । आशी०—तुद्यात् । लृङ—अतोत्स्यत् ।

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	तुदते	तुदेते	तुदन्ते
म० पु०	तुदसे	तुदेथे	तुदध्वे
उ० पु०	तुदे	तुदावहे	तुदामहे

आज्ञा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	तुदताम्	तुदेताम्	तुदन्ताम्
म० पु०	तुदस्व	तुदेथाम्	तुदध्वम्
उ० पु०	तुदै	तुदावहै	तुदामहै

विधिलिङ

प्र० पु०	तुदेत	तुदेयाताम्	तुदेरन्
म० पु०	तुदेथाः	तुदेयाथाम्	तुदेध्वम्
उ० पु०	तुदेय	तुदेवहि	तुदेमहि

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अतुदत	अतुदेताम्	अतुदन्त
म० पु०	अतुदथाः	अतुदेथाम्	अतुदध्वम्
उ० पु०	अतुदे	अतुदावहि	अतुदामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	तुतुदे	तुतुदाते	तुतुदिरे
म० पु०	तुतुदिषे	तुतुदाथे	तुतुदिध्वे
उ० पु०	तुतुदे	तुतुदिवहे	तुतुदिमहे

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अतुत्त	अतुत्साताम्	अतुत्सत
म० पु०	अतुत्थाः	अतुत्साथाम्	अतुद्ध्वम्
उ० पु०	अतुत्सि	अतुत्स्वहि	अतुत्स्महि

लुट्—तोत्ता, तोत्तारौ, तोत्तारः। तोत्तासे। लृट्—तोत्स्यते। आशी०—तोत्सीष्ट। लृङ—अतोत्स्यत।

परस्मैपदी इष्—इच्छा करना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	इच्छति	इच्छतः	इच्छन्ति
म० पु०	इच्छसि	इच्छथः	इच्छथ
उ० पु०	इच्छामि	इच्छावः	इच्छामः

आज्ञा--लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	इच्छतु	इच्छताम्	इच्छन्तु
म० पु०	इच्छ	इच्छतम्	इच्छत
उ० पु०	इच्छानि	इच्छाव	इच्छाम

विधिलिङ

प्र० पु०	इच्छेत्	इच्छेताम्	इच्छेयुः
म० पु०	इच्छेः	इच्छेतम्	इच्छेत
उ० पु०	इच्छेयम्	इच्छेव	इच्छेम

अनद्यतनभूत--लङ

प्र० पु०	ऐच्छत्	ऐच्छताम्	ऐच्छन्
म० पु०	ऐच्छः	ऐच्छतम्	ऐच्छत
उ० पु०	ऐच्छम्	ऐच्छाव	ऐच्छाम

परोक्षभूत--लिट्

प्र० पु०	इयेष	ईषतुः	ईषुः
म० पु०	इयेषिथ	ईषथुः	ईष
उ० पु०	इयेष	ईषिव	ईषिम

सामान्यभूत--लुङ

प्र० पु०	ऐषीत्	ऐषिष्टाम्	ऐषिषुः
म० पु०	ऐषीः	ऐषिष्टम्	ऐषिष्ट
उ० पु०	ऐषिषम्	ऐषिष्व	ऐषिष्म

अनद्यतनभविष्य--लुट्

प्र० पु०	एषिता / एष्टा	एषितारौ / एष्टारौ	एषितारः / एष्टारः
म० पु०	एषितासि / एष्टासि	एषितास्थः / एष्टास्थः	एषितास्थ / एष्टास्थ
उ० पु०	एषितास्मि / एष्टास्मि	एषितास्वः / एष्टास्वः	एषितास्मः / एष्टास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	एषिष्यति	एषिष्यतः	एषिष्यन्ति
म० पु०	एषिष्यसि	एषिष्यथः	एषिष्यथ
उ० पु०	एषिष्यामि	एषिष्यावः	एषिष्यामः
आशी०	इष्यात् ।	लृङ	ऐषिष्यत् ।

१४८—तुदादिगण की अन्य मुख्य धातुओं की सूची ।

कृत् (प०)—काटना । लट्—कृन्तति । लुट्—कर्तिता । लृट्—कर्तिष्यति, कर्त्स्यति । आशी०—कृत्यात् । लुङ—अकर्तिष्यत्, अकर्त्स्यत् । लिट्—चकर्त, चकृततुः, चकृतुः । लृङ—अकर्तीत् ।

कृष् (उ०)—जोतना । लट्—कृषति, कृषते । लुट्—कर्ष्टा, क्रष्टा । लृट्—कर्क्ष्यति, क्रक्ष्यति, कर्क्ष्यते, क्रक्ष्यते । आशी०—कृष्यात्, कृक्षीष्ट । लृङ—अकर्क्ष्यत्, अक्रक्ष्यत्, अकर्क्ष्यत, अक्रक्ष्यत । लिट्—चकर्ष, चकृषे । लुङ—अकार्क्षीत्, अक्राक्षीत्, अकृष्ट, अकृक्षत ।

कॄ (प०)—तितर बितर करना । लट्—किरति । लुट्—करिता, करीता । लृट्—करिष्यति, करीष्यति । आशी०—कीर्यात् । लृङ—अकरिष्यत्, अकरीष्यत् । लिट्—चकार, चकरतुः चकरुः । चकरिथ । लुङ—अकारीत्, अकारिष्टाम्, अकारिषुः ।

गॄ (प०)—निगलना । लट्—गिरति, गिरतः, गिरन्ति तथा गिलति, गिलतः गिलन्ति । लुट्—गरिता, गरीता । गलिता, गलीता । लृट्—गरिष्यति, गरीष्यति । गलिष्यति, गलीष्यति । आशी०—गीर्यात् लिट्—जगार, जगरतुः, जगरुः । जगाल, जगलतुः जगलुः । जगरिथ, जगलिथ । लुङ—अगारीत्, अगालीत् ।

त्रुट्[1] (प०)—टूट जाना । लट्—त्रुटति । लुट्—त्रुटिता । लृट्—त्रुटिष्यति । आशी०—त्रुट्यात् । लिट्—तुत्रोट, तुत्रुटतुः, तुत्रुटुः ।

---

१ इस धातु में विकल्प श्यन् होने के कारण त्रुटयति इत्यादि भी रूप होते हैं ।

तुत्रुटिथ, तुत्रुटथुः, तुत्रुट । तुत्रोट, तुत्रुटिव, तुत्रुटिम । लुङ्—अत्रुटीत्, अत्रुटिष्टाम्, अत्रुटिषुः ।

प्रच्छ् (प०)—पूछना । लट्—पृच्छति, पृच्छतः, पृच्छति । लुट्—प्रष्टा, प्रष्टारौ, प्रष्टारः । लृट् । प्रक्ष्यति । आशी०—पृच्छ्यात् । लृङ—अप्रक्ष्यत् ।

परोक्षभूत--लिट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	पप्रच्छ	पप्रच्छतुः	पप्रच्छुः
म० पु०	पप्रच्छिथ, पप्रष्ठ	पप्रच्छथुः	पप्रच्छ
उ० पु०	पप्रच्छ	पप्रच्छिव	पप्रच्छिम

सामान्यभूत—लुङ

प्र०पु०	अप्राक्षीत्	अप्राष्टाम्	अप्राक्षुः
म० पु०	अप्राक्षीः	अप्राष्टम्	अप्राष्ट
उ० पु०	अप्राक्षम्	अप्राक्ष्व	अप्राक्ष्म

मिल् (उ०)—मिलना । लट्—मिलति, मिलते । लिट्—मिमेल, मिमिलतुः, मिमिलुः । मिमेलिथ, मिमिलथुः मिमिल । मिमेल, मिमिलिव, मिमिलिम । मिमिले, मिमिलाते, मिमिलिरे । लुङ—अमेलीत्, अमेलिष्टाम्, अमेलिषुः । अमेलिष्ट, अमेलिषाताम्, अमेलिषत । लुट्—मेलिता । लृट्—मेलिष्यति, मेलिष्यते । आशी०—मिल्यात्, मेल्यात्, मेलिषीष्ट । लृङ—अमेलिष्यत्, अमेलिष्यत ।

मुच् (उ०)—छोड़ना । लट्—मुञ्चति[१], मुञ्चतः, मुञ्चन्ति । मुञ्चते, मुञ्चेते, मुञ्चन्ते । लुट्—मोक्ता । लट्—मोक्ष्यति, मोक्ष्यते । आशी०—मुच्यात्, मुक्षीष्ट । लृङ—अमोक्ष्यत्, अमोक्ष्यत ।

---

१ शे मुचादीनाम् ।७।१।५९। मुच् इत्यादि धातुओं में नुम् का आगम हो जाता है । वे धातुएँ निम्नलिखित हैं—मुच्, लुप् (लुम्पति), षिच् (सिञ्चति), कृत् (कृन्तति), खिद् (खिन्दति) और पिश् (पिंशति) ।

परोक्षभूत—लिट्

परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	मुमोच	मुमुचतुः	मुमुचुः
म० पु०	मुमोचिथ, मुमोक्थ	मुमुचथुः	मुमुच
उ० पु०	मुमोच	मुमुचिव	मुमुचिम

परोक्षभूत—लिट्

आत्मनेपद

प्र० पु०	मुमुचे	मुमुचाते	मुमुचिरे
म० पु०	मुमुचिषे	मुमुचाथे	मुमुचिध्वे
उ० पु०	मुमुचे	मुमुचिवहे	मुमुचिमहे

सामान्यभूत—लुङ

परस्मैपद

प्र० पु०	अमुचत्	अमुचताम्	अमुचन्
म० पु०	अमुचः	अमुचतम्	अमुचत
उ० पु०	अमुचम्	अमुचाव	अमुचाम

सामान्यभूत—लृङ

आत्मनेपद

प्र० पु०	अमुक्त	अमुक्षाताम्	अमुक्षत
म० पु०	अमुक्थाः	अमुक्षाथाम्	अमुग्ध्वम्
उ० पु०	अमुक्षि	अमुक्ष्वहि	अमुक्ष्महि

लिख् (प०)—लिखना। लट्—लिखति। लुट्—लेखिता। लृट्—लेखिष्यति। आशी०—लिख्यात्। लृङ—अलेखिष्यत्। लिट्—लिलेख, लिलिखतुः, लिलिखुः। लिलेखिथ, लिलिखथुः, लिलिखि। लिलेख, लिलिखिव, लिलिखिम। लुङ—अलेखीत्।

लिप् (उ०)—लीपना। लट्—लिम्पति, लिम्पतः, लिम्पन्ति। लिम्पते, लिम्पेते, लिम्पन्ते। लुट्—लेप्ता। लृट्—लेप्स्यति, लेप्स्यते। आशी०—

लिप्यात् । लिप्सीष्ट, लिप्सीयास्ताम्, लिप्सीरन् । लिट्—लिलेप, लिलिपतुः, लिलिपुः । लिलिपे, लिलिपाते, लिलिपिरे । लुङ्—अलिपत्, अलिपताम्, अलिपन् । अलिपत, अलिपेताम्, अलिपन्त । अलिप्त, अलिप्साताम्, अलिप्सत ।

विश् (प०)—घुसना । लट्—विशति । लुट्—वेष्टा । लृट्—वेक्ष्यति । आशी०—विश्यात् । लृङ—अवेक्ष्यत् । लिट्—विवेश । लुङ—अविक्षत् ।

सद् (प०)—दुःखी होना, सहारा लेना, जाना । लट्—सीदति । लुट्—सत्ता । लृट्—सत्स्यति । आशी०—सद्यात् । लृङ—असत्स्यत् । लिट्—ससाद, सेदतुः, सेदुः । सेदिथ-ससत्थ, सेदथुः, सेद । ससाद-ससद, सेदिव, सेदिम । लुङ—असदत्, असदताम्, असदन् ।

सिच् (उ०)—छिड़कना, सींचना । लट्—सिञ्चति, सिञ्चते । लुट्—सेक्ता । लट्—सेक्ष्यति, सेक्ष्यते । आशी०—सिच्यात्, सिक्षीष्ट । लिट्—सिषेच, सिषिचतुः, सिषिचुः । सिषेचिथ । सिषिचे, सिषिचाते, सिषिचिरे । लुङ—असिचत् । असिचत । असिक्त ।

सृज् (प०)—बनाना । लट्—सृजति । लुट्—स्रष्टा । लृट्—स्रक्ष्यति, आशी०—सृज्यात् । लृङ—अस्रक्ष्यत् । लिट्—ससर्ज, ससृजतुः, ससृजुः । लुङ—अस्राक्षीत्, अस्राष्टाम्, अस्राक्षुः ।

स्पृश् (प०)—छूना । लट्—स्पृशति । लुट्—स्प्रष्टा, स्पर्ष्टा । लृट्—स्पर्क्ष्यति, स्प्रक्ष्यति । आशी०—स्पृश्यात् । लिट—पस्पर्श, पस्पृशतुः, पस्पृशुः । पस्पर्शिथ, पस्पृशथुः, पस्पृश । पस्पर्श, पस्पृशिव, पस्पृशिम । लुङ—अस्प्राक्षीत्, अस्प्राष्टाम्, अस्प्राक्षुः । अस्प्राक्षीः, अस्प्राष्टम्, अस्प्राष्ट । अस्प्राक्षम्, अस्प्राक्ष्व, अस्प्राक्ष्म; तथा—अस्पार्क्षीत्, अस्पार्ष्टाम्, अस्पार्क्षुः और अस्पृक्षत्, अस्पृक्षताम्, अस्पृक्षन् ।

स्फुट् (प०)—खुलना, खिलना या फट जाना । लट्—स्फुटट् । लुट्—स्फुटिता । लृट्—स्फुटिष्यति । आशी०—स्फुट्यात् । लिट्—पुस्फोट,

पुस्फुटतुः, पुस्फुटुः । पुस्फुटिथ, पुस्फुटथुः, पुस्फुट । पुस्फोट, पुस्फुटिव, पुस्फुटिम । लुङ—अस्फुटीत्, अस्फुटिष्टाम्, अस्फुटिषुः । अस्फुटीः, अस्फुटिष्टम्, अस्फुटिष्ट । अस्फुटिषम्, अस्फुटिष्व, अस्फुटिष्म ।

स्फुर् (प०)—काँपना, फड़कना, लपलपाना, चमकना । लट्—स्फुरति । लुट्—स्फुरिता । लृट्—स्फुरिष्यति । आशी०—स्फुर्यात् । लिट्—पुस्फोर, पुस्फुरतुः, पुस्फुरुः । पुस्फुरिथ । लुङ—अस्फुरीत्, अस्फुरिष्टाम्, अस्फुरिषुः ।

(७) रुधादिगण

१४९—इस गण की प्रथम धातु रुध् (रोकना, घेरना) है, इस कारण इसका नाम रुधादि है । इसमें २५ धातुएँ हैं । धातु के प्रथम स्वर के उपरान्त इस गण में श्नम्[1] (न अथवा न्[2]) जोड़ा जाता है; जैसे—क्षुद्+ति=क्षु+न+द्+ति=क्षुण+द्+ति=क्षुणत्ति । क्षुद्+यात्=क्षु+न्+द्+यात्=क्षुन्द्यात् ।

नीचे मुख्य-मुख्य धातुओं के रूप दिखाये जाते हैं ।

उभयपदी रुध्—रोकना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	रुणद्धि	रुन्धः	रुन्धन्ति
म० पु०	रुणत्सि	रुन्धः	रुन्ध
उ० पु०	रुणध्मि	रुन्धवः	रुन्धमः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	रुणद्धु	रुन्धाम्	रुन्धन्तु
म० पु०	रुन्धि	रुन्धम्	रुन्ध
उ० पु०	रुणधानि	रुणधाव	रुणधाम

१ रुधादिभ्यः श्नम् ।३।१।७८।

२ श्नसोरल्लोपः ।६।४।१११। से कित् तथा ङित् सार्वधातुक में न का अकार लुप्त हो जाता है, केवल न् ही जुड़ता है ।

विधिलिङ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्ध्युः
म० पु०	रुन्ध्याः	रुन्ध्यातम्	रुन्ध्यात
उ० पु०	रुन्ध्याम्	रुन्ध्याव	रुन्ध्याम

अनद्यतनभूत––लङ

प्र० पु०	अरुणत्, अरुणद्	अरुन्धाम्	अरुन्धन्
म० पु०	अरुणः, अरुणत्-द्	अरुन्धम्	अरुन्ध
उ० पु०	अरुणधम्	अरुन्ध्व	अरुन्ध्म

परोक्षभूत––लिट्

प्र० पु०	रुरोध	रुरुधतुः	रुरुधुः
म० पु०	रुरोधिथ	रुरुधथुः	रुरुध
उ० पु०	रुरोध	रुरुधिव	रुरुधिम

सामान्यभूत––लुङ

प्र० पु०	अरुधत्	अरुधताम्	अरुधन्
	अरौत्सीत्	अरौद्धाम्	अरौत्सुः
म० पु०	अरुधः	अरुधतम्	अरुधत
	अरौत्सीः	अरौद्धम्	अरौद्ध
उ० पु०	अरुधम्	अरुधाव	अरुधाम
	अरौत्सम्	अरौत्स्व	अरौत्स्म
लुट्	रोद्धा	रोद्धारौ	रोद्धारः
लृट्	रोत्स्यति	रोत्स्यतः	रोत्स्यन्ति
आशी०	रुध्यात्	रुध्यास्ताम्	रुध्यासुः
लृङ	अरोत्स्यत्	अरोत्स्यताम्	अरोत्स्यन्

आत्मनेपद

वर्तमान––लट्

प्र० पु०	रुन्धे	रुन्धाते	रुन्धते
म० पु०	रुन्त्से	रुन्धाथे	रुन्ध्वे
उ० पु०	रुन्धे	रुन्ध्वहे	रुन्ध्महे

आज्ञा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	रुन्धाम्	रुन्धाताम्	रुन्धताम्
म० पु०	रुन्त्स्व	रुन्धाथाम्	रुन्ध्वम्
उ० पु०	रुणधै	रुणधावहै	रुणधामहै

विधिलिङ

प्र० पु०	रुन्धीत	रुन्धीयाताम्	रुन्धीरन्
म० पु०	रुन्धीथाः	रुन्धीयाथाम	रुन्धीध्वम्
उ० पु०	रुन्धीय	रुन्धीवहि	रुन्धीमहि

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अरुन्ध	अरुन्धाताम्	अरुन्धत
म० पु०	अरुन्धाः	अरुन्ध्याथाम्	अरुन्ध्वम्
उ० पु०	अरुन्धि	अरुन्ध्वहि	अरुन्ध्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	रुरुधे	रुरुधाते	रुरुधिरे
म० पु०	रुरुधिषे	रुरुधाथे	रुरुधिध्वे
उ० पु०	रुरुधे	रुरुधिवहे	रुरुधिमहे

सामान्यभूत्—लुङ

प्र० पु०	अरुद्ध	अरुत्साताम्	अरुत्सत
म० पु०	अरुद्धाः	अरुत्साथाम्	अरुद्धवम्
उ० पु०	अरुत्सि	अरुत्स्वहि	अरुत्स्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	रोद्धा	रोद्धारौ	रोद्धारः
म० पु०	रोद्धासे	रोद्धासाथे	रोद्धाध्वे
उ० पु०	रोद्धाहे	रोद्धास्वहे	रोद्धास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	रोत्स्यते	रोत्स्येते	रोत्स्यन्ते
म० पु०	रोत्स्यसे	रोत्स्येथे	रोत्स्यध्वे
उ० पु०	रोत्स्ये	रोत्स्यावहे	रोत्स्यामहे
आशी०	रुत्सीष्ट	रुत्सीयास्ताम्	रुत्सीरन्
लृङ्	अरोत्स्यत	अरोत्स्येताम्	अरोत्स्यन्त

उभयपदी छिद्—काटना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	छिनत्ति	छिन्तः	छिन्दन्ति
म० पु०	छिनत्सि	छिन्त्थः	छिन्त्थ
उ० पु०	छिनद्मि	छिन्द्वः	छिन्द्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	छिनत्तु	छिन्ताम्	छिन्दन्तु
म० पु०	छिन्धि	छिन्तम्	छिन्त
उ० पु०	छिनदानि	छिनदाव	छिनदाम

विधिलिङ

प्र० पु०	छिन्द्यात्	छिन्द्याताम्	छिन्द्युः
म० पु०	छिन्द्याः	छिन्द्यातम्	छिन्द्यात
उ० पु०	छिन्द्याम्	छिन्द्याव	छिन्द्याम

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अच्छिनत्	अच्छिन्ताम्	अच्छिन्दन्
म० पु०	अच्छिनः, अच्छिनत्	अच्छिन्तम्	अच्छिन्त
उ० पु०	अच्छिनदम्	अच्छिन्द्व	अच्छिन्द्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिच्छेद	चिच्छिदतुः	चिच्छिदुः
म० पु०	चिच्छेदिथ	चिच्छिदथुः	चिच्छिद
उ० पु०	चिच्छेद	चिच्छिदिव	चिच्छिदिम

सामान्यभूत—लुङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अच्छिदत्	अच्छिदताम्	अच्छिदन्
म० पु०	अच्छिदः	अच्छिदतम्	अच्छिदत
उ० पु०	अच्छिदम्	अच्छिदाव	अच्छिदाम

अथवा

प्र० पु०	अच्छैत्सीत्	अच्छैत्ताम्	अच्छैत्सुः
म० पु०	अच्छैत्सीः	अच्छैत्तम्	अच्छैत्त
उ० पु०	अच्छैत्सम्	अच्छैत्स्व	अच्छैत्स्म
लुट्	छेत्ता	छेत्तारौ	छेत्तारः
लृट्	छेत्स्यति	छेत्स्यतः	छेत्स्यन्ति
आशी०	छिद्यात्	छिद्यास्ताम्	छिद्यासुः
लृङ्	अच्छेत्स्यत्	अच्छेत्स्याताम्	अच्छेत्स्यन्

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	छिन्ते	छिन्दाते	छिन्दते
म० पु०	छिन्त्से	छिन्दाथे	छिन्द्ध्वे
उ० पु०	छिन्दे	छिन्द्वहे	छिन्द्महे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	छिन्ताम्	छिन्दाताम्	छिन्दताम्
म० पु०	छिन्त्स्व	छिन्दाथाम्	छिन्द्ध्वम्
उ० पु०	छिनदै	छिनदावहै	छिनदामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	छिन्दीत	छिन्दीयाताम्	छिन्दीरन्
म० पु०	छिन्दीथाः	छिन्दीयाथाम्	छिन्दीध्वम्
उ० पु०	छिन्दीय	छिन्दीवहि	छिन्दीमहि

अनद्यतनभूत--लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अच्छिन्त	अच्छिन्दाताम्	अच्छिन्दत
म० पु०	अच्छिन्त्थाः	अच्छिन्दाथाम्	अच्छिन्द्ध्वम्
उ० पु०	अच्छिन्दि	अच्छिन्द्वहि	अच्छिन्द्महि

परोक्षभूत--लिट्

प्र० पु०	चिच्छिदे	चिच्छिदाते	चिच्छिदिरे
म० पु०	चिच्छिदिषे	चिच्छिदाथे	चिच्छिदिध्वे
उ० पु०	चिच्छिदे	चिच्छिदिवहे	चिच्छिदिमहे

सामान्यभूत--लुङ्

प्र० पु०	अच्छित	अच्छित्साताम्	अच्छित्सत
म० पु०	अच्छित्थाः	अच्छित्साथाम्	अच्छिद्ध्वम्
उ० पु०	अच्छित्सि	अच्छित्स्वहि	अच्छित्स्महि
लुट्	छेत्ता	छेत्तारौ	छेत्तारः
लृट्	छेत्स्यते	छेत्स्येते	छेत्स्यन्ते
आशी०	छित्सीष्ट	छित्सीयास्ताम्	छित्सीरन्
लृङ्	अच्छेत्स्यत	अच्छेत्स्येताम्	अच्छेत्स्यन्त

परस्मैपद भञ्ज्--तोड़ना

वर्तमान--लट्

प्र० पु०	भनक्ति	भङ्क्तः	भञ्जन्ति
म० पु०	भनक्षि	भङ्क्थः	भङ्क्थ
उ० पु०	भनज्मि	भञ्ज्वः	भञ्ज्मः

आज्ञा--लोट्

प्र० पु०	भनक्तु, भङ्क्तात्	भङ्क्ताम्	भञ्जन्तु
म० पु०	भङ्ग्धि, भङ्क्तात्	भङ्क्तम्	भङ्क्त
उ० पु०	भनजानि	भनजाव	भनजाम

विधिलिङ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	भञ्ज्यात्	भञ्ज्याताम्	भञ्ज्युः
म० पु०	भञ्ज्याः	भञ्ज्यातम्	भञ्ज्यात
उ० पु०	भञ्ज्याम्	भञ्ज्याव	भञ्ज्याम

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अभनक्	अभङ्क्ताम्	अभञ्जन्
म० पु०	अभनक्	अभङ्क्तम्	अभङ्क्त
उ० पु०	अभनजम्	अभञ्ज्व	अभञ्ज्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बभञ्ज	बभञ्जतुः	बभञ्जुः
म० पु०	बभञ्जिथ / बभङ्क्थ	बभञ्जथुः	बभञ्ज
उ० पु०	बभञ्ज	बभञ्जिव	बभञ्जिम

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अभाङ्क्षीत्	अभाङ्क्ताम्	अभाङ्क्षुः
म० पु०	अभाङ्क्षीः	अभाङ्क्तम्	अभाङ्क्त
उ० पु०	अभाङ्क्षम्	अभाङ्क्ष्व	अभाङ्क्ष्म
लुट्	भङ्क्ता	भङ्क्तारौ	भङ्क्तारः
लृट्	भङ्क्ष्यति	भङ्क्ष्यतः	भङ्क्ष्यन्ति
आशी०	भज्यात्	भज्यास्ताम्	भज्यासुः
लृङ	अभङ्क्ष्यत्	अभङ्क्ष्यताम्	अभङ्क्ष्यन्

उभयपदी भुज्—रक्षा करना, खाना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	भुनक्ति[1]	भुङ्क्तः	भुञ्जन्ति
म० पु०	भुनक्षि	भुङ्क्थः	भुङ्क्थ
उ० पु०	भुनज्मि	भुञ्ज्वः	भुञ्ज्मः

१ रक्षा करने के अर्थ में भुज् धातु परस्मैपदी होती है ।

आज्ञा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	भुनक्तु	भुङ्क्ताम्	भुञ्जन्तु
म० पु०	भुङ्ग्धि	भुङ्क्तम्	भुङ्क्त
उ० पु०	भुनजानि	भुनजाव	भुञ्ज्याम

विधिलिङ

प्र० पु०	भुञ्ज्यात्	भुञ्ज्याताम्	भुञ्ज्युः
म० पु०	भुञ्ज्याः	भुञ्ज्याताम्	भुञ्ज्यात
उ० पु०	भुञ्ज्याम्	भुञ्ज्याव	भुञ्ज्याम

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अभुनक्	अभुङ्क्ताम्	अभुञ्जन्
म० पु०	अभुनक्	अभुङ्क्तम्	अभुङ्क्त
उ० पु०	अभुनजम्	अभुञ्ज्व	अभुञ्ज्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बुभोज	बुभुजतुः	बुभुजुः
म० पु०	बुभोजिथ	बुभुजथुः	बुभुज
उ० पु०	बुभोज	बुभुजिव	बुभुजिम

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अभौक्षीत्	अभौक्ताम्	अभौक्षुः
म० पु०	अभौक्षीः	अभौक्ताम्	अभौक्त
उ० पु०	अभौक्षम्	अभौक्ष्व	अभौक्ष्म
लुट्	भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तारः
लृट्	भोक्ष्यति	भोक्ष्यतः	भोक्ष्यन्ति
आशी०	भुज्यात्	भुज्यास्ताम्	भुज्यासुः
लृङ	अभोक्ष्यत्	अभोक्ष्यताम्	अभोक्ष्यन्

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	भुङ्क्ते[1]	भुञ्जाते	भुञ्जते
म० पु०	भुङ्क्षे	भुञ्जाथे	भुङ्ग्ध्वे
उ० पु०	भुञ्जे	भुञ्ज्वहे	भुञ्ज्महे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	भुङ्क्ताम्	भुञ्जाताम्	भुञ्जताम्
म० पु०	भुङ्क्ष्व	भुञ्जाथाम्	भुङ्ग्ध्वम्
उ० पु०	भुनजै	भुनजावहै	भुनजामहै

विधिलिङ

प्र० पु०	भुञ्जीत	भुञ्जीयाताम्	भुञ्जीरन्
म० पु०	भुञ्जीथाः	भुञ्जीयाथाम्	भुञ्जीध्वम्
उ० पु०	भुञ्जीय	भुञ्जीवहि	भुञ्जीमहि

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अभुङ्क्त	अभुञ्जाताम्	अभुञ्जत
म० पु०	अभुङ्क्थाः	अभुञ्जाथाम्	अभुङ्ध्वम्
उ० पु०	अभुञ्जि	अभुञ्जवहि	अभुञ्जमहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बुभुजे	बुभुजाते	बुभुजिरे
म० पु०	बुभुजिषे	बुभुजाथे	बुभुजिध्वे
उ० पु०	बुभुजे	बुभुजिवहे	बुभुजिमहे

---

१ भुजोऽनवने ।१।३।६६। के अनुसार रक्षा से भिन्न (खाना, उपभोग करना) अर्थ होने पर भुज् धातु आत्मनेपद में होती है । रक्षा करने के अर्थ में भुनक्ति इत्यादि रूप होंगे, जैसे—'महीं भुनक्ति महीपालः ।'

सामान्यभूत—लुङ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अभुक्त	अभुक्षाताम्	अभुक्षत
म० पु०	अभुक्थाः	अभुक्षाथाम्	अभुग्ध्वम्
उ० पु०	अभुक्षि	अभुक्ष्वहि	अभुक्ष्महि
लुट्	भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तारः
लृट्	भोक्ष्यते	भोक्ष्येते	भोक्ष्यन्ते
आशी०	भुक्षीष्ट	भुक्षीयास्ताम्	भुक्षीरन्
लृङ	अभोक्ष्यत	अभोक्ष्येताम्	अभोक्ष्यन्त

(८) तनादिगण

१५०—इस गण की प्रथम धातु तन् (फैलाना) है, इसलिए इसका नाम तनादि है। इसमें दस धातुएँ हैं। धातु[1] और प्रत्यय के बीच में, इस गण में उ जोड़ा जाता है, जैसे—तन्+उ+ते=तनुते।

[नोट—नियम १४६ में उदाहृत नोट यहाँ भी लागू होता है।]

नीचे तन् और कृ धातुओं के रूप दिए जाते हैं।

उभयपदी तन्—फैलाना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	तनोति	तनुतः	तन्वन्ति
म० पु०	तनोषि	तनुथः	तनुथ
उ० पु०	तनोमि	तनुवः तन्वः	तनुमः तन्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	तनोतु, तनुतात्	तनुताम्	तन्वन्तु
पु० म०	तनु, तनुतात्	तनुतम्	तनुत
उ० पु०	तनवानि	तनवाव	तनवाम

१ तनादिकृञ्भ्यः उः ।३।१।७६।

विधिलिङ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	तनुयात्	तनुयाताम्	तनुयुः
म० पु०	तनुयाः	तनुयातम्	तनुयात
उ० पु०	तनुयाम्	तनुयाव	तनुयाम

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अतनोत्	अतनुताम्	अतन्वन्
म० पु०	अतनोः	अतनुतम्	अतनुत
उ० पु०	अतनवम्	अतनुव	अतनुम
		अतन्व	अतन्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ततान	तेनतुः	तेनुः
म० पु०	तेनिथ	तेनथुः	तेन
उ० पु०	ततान, ततन	तेनिव	तेनिम

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अतनीत्	अतनिष्टाम्	अतनिषुः
म० पु०	अतनीः	अतनिष्टम्	अतनिष्ट
उ० पु०	अतनिषम्	अतनिष्व	अतनिष्म

अथवा

प्र० पु०	अतानीत्	अतानिष्टाम्	अतानिषुः
म० पु०	अतानीः	अतानिष्टम्	अतानिष्ट
उ० पु०	अतानिषम्	अतानिष्व	अतानिष्म
लुट्	तनिता	तनितारौ	तनितारः
लृट्	तनिष्यति	तनिष्यतः	तनिष्यन्ति
आशी०	तन्यात्	तन्यास्ताम्	तन्यासुः
लृङ	अतनिष्यत	अतनिष्यताम्	अतनिष्यन्

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	तनुते	तन्वाते	तन्वते
म० पु०	तनुषे	तन्वाथे	तनुध्वे
उ० पु०	तन्वे	तनुवहे, तन्वहे	तनुमहे, तन्महे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	तनुताम्	तन्वाताम्	तन्वताम्
म० पु०	तनुष्व	तन्वाथाम्	तनुध्वम्
उ० पु०	तनवै	तनवावहै	तनवामहै

विधिलिङ

प्र० पु०	तन्वीत	तन्वीयाताम्	तन्वीरन्
म० पु०	तन्वीथाः	तन्वीयाथाम्	तन्वीध्वम्
उ० पु०	तन्वीय	तन्वीवहि	तन्वीमहि

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अतनुत	अतन्वाताम्	अतन्वत
म० पु०	अतनुथाः	अतन्वाथाम्	अतनुध्वम्
उ० पु०	अतन्वि	{ अतनुवहि अतन्वहि	{ अतनुमहि अतन्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	तेने	तेनाते	तेनिरे
म० पु०	तेनिषे	तेनाथ	तेनिध्वे
उ० पु०	तेने	तेनिवहे	तेनिमहे

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अतत, अतनिष्ट[1]	अतनिषाताम्	अतनिषत
म० पु०	अतथाः, अतनिष्ठाः	अतनिषाथाम्	अतनिध्वम्
उ० पु०	अतनिषि	अतनिष्वहि	अतनिष्महि

---

१ अतानिष्ट इत्यादि भी रूप होंगे ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
लुट्	तनिता	तनितारौ	तनितारः
लृट्	तनिष्यते	तनिष्येते	तनिष्यन्ते
आशी०	तनिषीष्ट	तनिषीयास्ताम्	तनिषीरन्
लृङ	अतनिष्यत	अतनिष्येताम्	अतनिष्यन्त

उभयपदी कृ—करना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति
म० पु०	करोषि	कुरुथः	कुरुथ
उ० पु०	करोमि	कुर्वः	कुर्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	करोतु, कुरुतात्	कुरुताम्	कुर्वन्तु
म० पु०	कुरु, कुरुतात्	कुरुतम्	कुरुत
उ० पु०	करवाणि	करवाव	करवाम

विधिलिङ

प्र० पु०	कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः
म० पु०	कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात
उ० पु०	कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्
म० पु०	अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत
उ० पु०	अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चकार	चक्रतुः	चक्रुः
म० पु०	चकर्थ	चक्रथुः	चक्र
उ० पु०	चकार, चकर	चकृव	चकृम

सामान्यभूत—लुङ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अकार्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः
म० पु०	अकार्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट
उ० पु०	अकार्षम्	अकार्ष्व	अकार्ष्म
लुट्	कर्त्ता	कर्त्तारौ	कर्त्तारः
लृट्	करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति
आशी०	क्रियात्	क्रियास्ताम्	क्रियासुः
लृङ	अकरिष्यत्	अकरिष्यताम्	अकरिष्यन्

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
म० पु०	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
उ० पु०	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
म० पु०	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
उ० पु०	करवै	करवावहै	करवामहै

विधिलिङ

प्र० पु०	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
म० पु०	कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
उ० पु०	कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
म० पु०	अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
उ० पु०	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि

परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
म० पु०	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे
उ० पु०	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे

सामन्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अकृत	अकृषाताम्	अकृषत
म० पु०	अकृथाः	अकृषाथाम्	अकृढ्वम्
उ० पु०	अकृषि	अकृष्वहि	अकृष्महि
लुट्	कर्त्ता	कर्त्तारौ	कर्त्तारः
लृट्	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
आशी०	कृषीष्ट	कृषीयास्ताम्	कृषीरन्
लृङ	अकरिष्यत्	अकरिष्येताम्	अकरिष्यन्त

(९) क्र्यादिगण

१५१—इस गण की प्रथम धातु क्री (मोल लेना) है, इस कारण इसका नाम क्र्यादिगण पड़ा। इसमें ६१ धातुएँ हैं। धातु और प्रत्यय के वीच इस गण में श्ना (ना) जोड़ा जाता[1] है। किन्हीं प्रत्ययों के पूर्व यह 'ना' 'न' हो जाता है, और किन्हीं के पूर्व 'नी'। धातु की उपधा में यदि वर्गों का पञ्चम अक्षर अथवा अनुस्वार हो तो उसका लोप हो जाता है।

व्यञ्जनान्त धातुओं के उपरान्त आज्ञा के म० पु० एकवचन में 'हि' प्रत्यय के स्थान में 'आन' होता है; जैसे—मुष्+हि=मुष्+आन=मुषाण।

नीचे मुख्य धातुओं के रूप दिए जाते हैं।

उभयपदी क्री—खरीदना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	क्रीणाति	क्रीणीतः	क्रीणन्ति
म० पु०	क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ
उ० पु०	क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः

१ क्र्यादिभ्यः श्ना ।३।१।८१।

आज्ञा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	क्रीणातु, क्रीणीतात्	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु
म० पु०	क्रीणीहि	क्रीणीतम्	क्रीणीत
उ० पु०	क्रीणानि	क्रीणीव	क्रीणीम

विधिलिङ

प्र० पु०	क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयु:
म० पु०	क्रीणीया:	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात
उ० पु०	क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्
म० पु०	अक्रीणा:	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत
उ० पु०	अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिक्राय	चिक्रियतु:	चिक्रियु:
म० पु०	चिक्रयिथ, चिक्रेथ	चिक्रियथु:	चिक्रिय
उ० पु०	चिक्राय, चिक्रय	चिक्रियिव	चिक्रियिम

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अक्रैषीत्	अक्रैष्टाम्	अक्रैषु:
म० पु०	अक्रैषी:	अक्रैष्टम्	अक्रैष्ट
उ० पु०	अक्रैषम्	अक्रैष्व	अक्रैष्म
लुट्	क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतार:
लृट्	क्रेष्यति	क्रेष्यत:	क्रेष्यन्ति
आशी०	क्रीयात्	क्रीयास्ताम्	क्रीयासु:
लृङ	अक्रेष्यत्	अक्रेष्यताम्	अक्रेष्यन्

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
म० पु०	क्रीणीषे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे
उ० पु०	क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्
म० पु०	क्रीणीष्व	क्रीणाथाम्	क्रीणीध्वम्
उ० पु०	क्रीणै	क्रीणावहै	क्रीणामहै

विधिलिङ

प्र० पु०	क्रीणीत	क्रीणीयाताम्	क्रीणीरन्
म० पु०	क्रीणीथाः	क्रीणीयाथाम्	क्रीणीध्वम्
उ० पु०	क्रीणीय	क्रीणीवहि	क्रीणीमहि

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणत
म० पु०	अक्रीणीथाः	अक्रीणाथाम्	अक्रीणीध्वम्
उ० पु०	अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अक्रीणीमहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिक्रिये	चिक्रियाते	चिक्रियिरे
म० पु०	चिक्रियिषे	चिक्रियाथे	चिक्रिध्वे-ढ्वे
उ० पु०	चिक्रिये	चिक्रियिवहे	चिक्रियिमहे

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अक्रेष्ट	अक्रेषाताम्	अक्रेषत
म० पु०	अक्रेष्ठाः	अक्रेषायाम्	अक्रेढ्वम्
उ० पु०	अक्रेषि	अक्रेष्वहि	अक्रेष्महि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
लुट्	क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतारः
लृट्	क्रेष्यते	क्रेष्येते	क्रेष्यन्ते
आशी०	क्रेषीष्ट	क्रेषीयास्ताम्	क्रेषीरन्
लृङ	अक्रेष्यत	अक्रेष्येताम्	अक्रेष्यन्त

उभयपदी ग्रह्—लेना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	गृह्णाति	गृह्णीतः	गृह्णन्ति
म० पु०	गृह्णासि	गृह्णीथः	गृह्णीथ
उ० पु०	गृह्णामि	गृह्णीवः	गृह्णीमः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	गृह्णातु	गृह्णीताम्	गृह्णन्तु
म० पु०	गृहाण	गृह्णीतम्	गृह्णीत्
उ० पु०	गृह्णानि	गृह्णाव	गृह्णाम

विधिलिङ

प्र० पु०	गृह्णीयात्	गृह्णीयताम्	गृह्णीयुः
म० पु०	गृह्णीयाः	गृह्णीयातम्	गृह्णीयात
उ० पु०	गृह्णीयाम्	गृह्णीयाव	गृह्णीयाम

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अगृह्णात्	अगृह्णीताम्	अगृह्णन्
म० पु०	अगृह्णाः	अगृह्णीतम	अगृह्णीत
उ० पु०	अगृह्णाम्	अगृह्णीव	अगृह्णीम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० प्र०	जग्राह	जगृहतुः	जगृहुः
म० पु०	जग्रहिथ	जगृहथुः	जगृह
उ० पु०	जग्राह, जग्रह	जगृहिव	जगृहिम

सामान्यभूत—लुङ्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	अग्रहीत्	अग्रहीष्टाम्	अग्रहीषुः
म० पु०	अग्रहीः	अग्रहीष्टम्	अग्रहीष्ट
उ० पु०	अग्रहीषम्	अग्रहीष्व	अग्रहीष्म
लुट्	ग्रहीता	ग्रहीतारौ	ग्रहीतारः
लृट्	ग्रहीष्यति	ग्रहीष्यतः	ग्रहीष्यन्ति
आशी०	गृह्यात्	गृह्यास्ताम्	गृह्यासुः
लृङ	अग्रहीष्यत्	अग्रहीष्यताम्	अग्रहीष्यन्

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	गृह्णीते	गृह्णाते	गृह्णते
म० पु०	गृह्णीषे	गृह्णाथे	गृह्णीध्वे
उ० पु०	गृह्णे	गृह्णीवहे	गृह्णीमहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	गृह्णीताम्	गृह्णाताम्	गृह्णताम्
म० पु०	गृह्णीष्व	गृह्णाथाम्	गृह्णीध्वम्
उ० पु०	गृह्णै	गृह्णावहै	गृह्णामहै

विधिलिङ

प्र० पु०	गृह्णीत	गृह्णीयाताम्	गृह्णीरन्
म० पु०	गृह्णीथाः	गृह्णीयाथाम्	गृह्णीध्वम्
उ० पु०	गृह्णीय	गृह्णीवहि	गृह्णीमहि

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अगृह्णीत	अगृह्णीताम्	अगृह्णत
म० पु०	अगृह्णीथाः	अगृह्णीथाम्	अगृह्णीध्वम्
उ० पु०	अगृह्णि	अगृह्णीवहि	अगृह्णीमहि

परोक्षभूत—लिट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जगृहे	जगृहाते	जगृहिरे
म० पु०	जगृहिषे	जगृहाथे	जगृहिध्वे, ढ्वे
उ० पु०	जगृहे	जगृहिवहे	जगृहिमहे

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अग्रहीष्ट	अग्रहीषाताम्	अग्रहीषत
म० पु०	अग्रहीष्ठाः	अग्रहीषाथाम्	अग्रहीध्वम्, ढ्वम्
उ० पु०	अग्रहीषि	अग्रहीष्वहि	अग्रहीष्महि
लुट्	प्र० पु०	एकवचन	ग्रहीता
लृट्	प्र० पु०	एकवचन	ग्रहीष्यते
आशी०	प्र० पु०	एकवचन	ग्रहीषीष्ट
लृङ	प्र० पु०	एकवचन	अग्रहीष्यत

उभयपदी ज्ञा—जानना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	जानाति	जानीतः	जानन्ति
म० पु०	जानासि	जानीथः	जानीथ
उ० पु०	जानामि	जानीवः	जानीमः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	जानातु, जानीतात्	जानीताम्	जानन्तु
म० पु०	जानीहि, जानीतात्	जानीतम्	जानीत
उ० पु०	जानानि	जानाव	जानाम

विधिलिङ

प्र० पु०	जानीयात्	जानीयाताम्	जानीयुः
म० पु०	जानीयाः	जानीयातम्	जानीयात
उ० पु०	जानीयाम्	जानीयाव	जानीमया

अनद्यतनभूत—लङ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अजानात्	अजानीताम्	अजानन्
म० पु०	अजानाः	अजानीतम्	अजानीत
उ० पु०	अजानाम्	अजानीव	अजानीम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जज्ञौ	जज्ञतुः	जज्ञुः
म० पु०	जज्ञिथ, जज्ञाथ	जज्ञथुः	जज्ञ
उ० पु०	जज्ञौ	जज्ञिव	जज्ञिम

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अज्ञासीत्	अज्ञासिष्टाम्	अज्ञासिषुः
म० पु०	अज्ञासीः	अज्ञासिष्टम्	अज्ञासिष्ट
उ० पु०	अज्ञासिषम्	अज्ञासिष्व	अज्ञासिष्म
लुट्	प्र० पु०	एकवचन	ज्ञाता
लृट्	" "	" "	ज्ञास्यसि
आशी०	" "	" "	ज्ञेयात्, ज्ञायात्
लृङ	" "	" "	अज्ञास्यत्

आत्मनेपदी

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	जानीते	जानाते	जानते
म० पु०	जानीषे	जानाथे	जानीध्वे
उ० पु०	जाने	जानीवहे	जानीमहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	जानीताम्	जानाताम्	जानताम्
म० पु०	जानीष्व	जानाथाम्	जानीध्वम्
उ० पु०	जानै	जानावहै	जानामहै

विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जानीत	जानीयाताम्	जानीरन्
म० पु०	जानीथाः	जानीयाथाम्	जानीध्वम्
उ० पु०	जानीय	जानीवहि	जानीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अजानीत	अजानाताम्	अजानत
म० पु०	अजानीथाः	अजानाथाम्	अजानीध्वम्
उ० पु०	अजानि	अजानीवहि	अजानीमहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
म० पु०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे
उ० पु०	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अज्ञास्त	अज्ञासाताम्	अज्ञासत
म० पु०	अज्ञास्थाः	अज्ञासाथाम्	अज्ञाध्वम्
उ० पु०	अज्ञासि	अज्ञास्वहि	अज्ञास्महि
लुट्	प्र० पु०	एकवचन	ज्ञाता
लृट्	,, ,,	,, ,,	ज्ञास्यते
आशी०	,, ,,	,, ,,	ज्ञासीष्ट
लृङ्	,, ,,	,, ,,	अज्ञास्यत

परस्मैपदी—बन्ध्—बाँधना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	बध्नाति	बध्नीतः	बध्नन्ति
म० पु०	बध्नासि	बध्नीथः	बध्नीथ
उ० पु०	बध्नामि	बध्नीवः	बध्नीमः

आज्ञा—लोट

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	बध्नातु, बध्नीतात्	बध्नीताम्	बध्नन्तु
म० पु०	बधान, ,,	बध्नीतम्	बध्नीत
उ० पु०	बध्नानि	बध्नाव	बध्नाम

विधिलिङ

प्र० पु०	बध्नीयात्	बध्नीयाताम्	बध्नीयुः
म० पु०	बध्नीयाः	बध्नीयातम्	बध्नीयात
उ० पु०	बध्नीयाम्	बध्नीयाव	बध्नीयाम

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अबध्नात्	अबध्नीताम्	अबध्नन्
म० पु०	अबध्नाः	अबध्नीतम्	अबध्नीत
उ० पु०	अबध्नाम्	अबध्नीव	अबध्नीम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बबन्ध	बबन्धतुः	बबन्धुः
म० पु०	बबन्धिथ, बबन्ध	बबन्धथुः	बबन्ध
उ० पु०	बबन्ध	बबन्धिव	बबन्धिम

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अभान्त्सीत्	अबान्धाम्	अभान्त्सुः
म० पु०	अभान्त्सीः	अबान्धम्	अबान्ध
उ० पु०	अभान्त्सम्	अभान्त्स्व	अभान्त्स्म
लुट्	प्र० पु०	एकवचन	बन्धा
लृट्	,, ,,	,, ,,	भन्त्स्यति
आशी०	,, ,,	,, ,,	बन्ध्यात्
लृङ	,, ,,	,, ,,	अभन्त्स्यत्

(१०) चुरादिगण

१५२—इस गण की प्रथम धातु चुर् (चुराना) है, इस कारण इसका नाम चुरादिगण पड़ा । धातुपाठ में इस गण की ४११ धातुएँ पठित हैं । इसमें धातु और प्रत्यय के बीच में अय जोड़ दिया जाता है,[१] तथा उपधा के ह्रस्व स्वर (अ के अतिरिक्त) का गुण हो जाता है और यदि उपधा में ऐसा अ हो जिसके अनन्तर संयुक्ताक्षर न हो तो उसकी और अन्तिम स्वर की वृद्धि हो जाती है। उदाहरणार्थ—चुर्+अय+ति=चोरयति । तड्+अय+ति=ताड्+अय+ति= ताडयति ।

नीचे चुर् धातु के रूप दिये जाते हैं ।

उभयपदी चुर्—चुराना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चोरयति	चोरयतः	चोरयन्ति
म० पु०	चोरयसि	चोरयथः	चोरयथ
उ० पु०	चोरयामि	चोरयावः	चोरयामः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	चोरयतु, चोरयतात्	चोरयताम्	चोरयन्तु
म० पु०	चोरय, चोरयतात्	चोरयतम्	चोरयत
उ० पु०	चोरयाणि	चोरयाव	चोरयाम

विधिलिङ

प्र० पु०	चोरयेत्	चोरयेताम्	चोरयेयुः
म० पु०	चोरयेः	चोरयेतम्	चोरयेत
उ० पु०	चोरयेयम्	चोरयेव	चोरयेम

---

१ सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् ।३।१।२५। अर्थात् सत्य इत्यादि प्रातिपदिकों के आगे धातु के अर्थ में तथा चुरादिगण की धातुओं के आगे स्वार्थ (अपने ही अर्थ) में णिच् प्रत्यय (अय्) जुड़ता है ।

अनद्यतनभूत—लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अचोरयत्	अचोरयताम्	अचोरयन्
म० पु०	अचोरयः	अचोरतम्	अचोरयत्
उ० पु०	अचोरयम्	अचोरयाव	अचोरयाम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चोरयामास	चोरयामासतुः	चोरयामासुः
म० पु०	चोरयामासिथ	चोरयामासथः	चोरयामास
उ० पु०	चोरयामास	चोरयामासिव	चोरयामासिम

अथवा

प्र० पु०	चोरयाम्बभूव	चोरयाम्बभूवतुः	चोरयाम्बभूवुः
म० पु०	चोरयाम्बभूविथ	चोरयाम्बभूवथुः	चोरयाम्बभूव
उ० पु०	चोरयाम्बभूव	चोरयाम्बभूविव	चोरयाम्बभविम

अथवा

प्र० पु०	चोरयाञ्चकार	चोरयाञ्चक्रतुः	चोरयाञ्चक्रुः
म० पु०	चोरयाञ्चकर्थ	चोरयाञ्चक्रथुः	चोरयाञ्चक्र
उ० पु०	{ चोरयाञ्चकार { चोरयाञ्चकर	चोरयाञ्चकृव	चोरयाञ्चकृम

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	अचूचुरत्	अचूचुरताम्	अचूचुरन्
म० पु०	अचूचुरः	अचूचुरतम्	अचूचुरत
उ० पु०	अचूचुरम्	अचूचुराव	अचूचुराम
लुट्	प्र० पु०	एकवचन	चोरियिता
लृट्	,, ,,	,, ,,	चोरयिष्यति
आशी०	,, ,,	,, ,,	चोर्यात्
लृङ	,, ,,	,, ,,	अचोरयिष्यत्

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चोरयते	चोरयेते	चोरयन्ते
म० पु०	चोरयसे	चोरयेथे	चोरयध्वे
उ० पु०	चोरये	चोरयावहे	चोरयामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	चोरयताम्	चोरयेताम्	चोरयन्ताम्
म० पु०	चोरयस्व	चोरयेथाम्	चोरयध्वम्
उ० पु०	चोरयै	चोरयावहै	चोरयामहै

विधिलिङ

प्र० पु०	चोरयेत	चोरयेयाताम्	चोरयेरन्
म० पु०	चोरयेथाः	चोरयेयाथाम्	चोरयेध्वम्
उ० पु०	चोरयेय	चोरयेवहि	चोरयेमहि

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अचोरयत	अचोरयेताम्	अचोरयन्त
म० पु०	अचोरयथाः	अचोरयेथाम्	अचोरयध्वम्
उ० पु०	अचोरये	अचोरयावहि	अचोरयामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चोरयाञ्चक्रे	चोरयाञ्चक्राते	चोरयाञ्चक्रिरे
म० पु०	चोरयाञ्चकृषे	चोरयाञ्चक्राथे	चोरयाञ्चकृढ्वे
उ० पु०	चोरयाञ्चक्रे	चोरयाञ्चकृवहे	चोरयाञ्चकृमहे
	चोरयामास	इत्यादि	
	चोरयाम्बभूव	इत्यादि	

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अचूचुरत	अचूचुरेताम्	अचूचुरन्त
म० पु०	अचूचुरथाः	अचूचुरेथाम्	अचूचुरध्वम्
उ० पु०	अचूचुरे	अचूचुरावहि	अचूचुरामहि
लुट्—	प्र० पु०	एकवचन	चोरयिता
लृट्—	" "	" "	चोरयिष्यते
आशी०—	" "	" "	चोरयिषीष्ट
लृङ्—	" "	" "	अचोरयिष्यत

१५३—चुरादिगण की मुख्य-मुख्य धातुओं की सूची।

उभयपदी अर्च[1]—पूजा करना।

लट्—अर्चयति, अर्चयते। लोट्—अर्चयतु, अर्चयताम्। विधि—अर्चयेत्, अर्चयेत। लङ्—आर्चयत्, आर्चयत। लिट्—अर्चयामास, अर्चयाम्बभूव, अर्चयाञ्चकार, अर्चयाञ्चक्रे।

लुङ्—परस्मैपद

प्र० पु०	आर्चिचत्	आर्चिचेताम्	आर्चिचन्
म० पु०	आर्चिचः	आर्चिचतम्	आर्चिचत
उ० पु०	आर्चिचम्	आर्चिचाव	आर्चिचाम

आत्मनेपद

प्र० पु०	आर्चिचत	आर्चिचेताम्	आर्चिचन्त
म० पु०	आर्चिचथाः	आर्चिचेथाम्	आर्चिचध्वम्
उ० पु०	आर्चिचे	आर्चिचावहि	आर्चिचामहि

लुट्—अर्चयिता। लृट्—अर्चयिष्यति, अर्चयिष्यते। आशी०—अर्च्यात्, अर्चयिषीष्ट। लृङ्—आर्चयिष्यत्, आर्चयिष्यत।

---

१ यह धातु भ्वादिगणी भी है। वहाँ पर यह परस्मैपदी होती है और इसके रूप अर्चति इत्यादि होते हैं।

अर्ज (उभयपदी—कमाना, पैदा करना) के रूप अर्च के समान चलते हैं।

अर्थ (आत्मनेपदी—प्रार्थना करना) के रूप अर्च के समान होते हैं। केवल सामान्यभूत (लुङ) में भेद होता है, जो कि नीचे दिखाया जाता है।

लट्—अर्थयते। लोट्—अर्थयताम्। विधि—अर्थयेत। लङ—आर्थयत। लिट्—अर्थयामास, अर्थयाम्बभूव, अर्थयाञ्चक्रे। लुट्—अर्थयिता। लृट्—अर्थयिष्यते। आशी०—अर्थयिषीष्ट। लृङ—आर्थयिष्यत।

लुङ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	आर्तथत	आर्तथेताम्	आर्तथन्त
म० पु०	आर्तथथाः	आर्तथेथाम्	आर्तथध्वम्
उ० पु०	आर्तथे	आर्तथावहि	आर्तथामहि

उभयपदी कथ् (कहना)

लट्—कथयति, कथयते। लोट्—कथयतु, कथयताम्। विधि—कथयेत्, कथयेत। लङ—अकथयत् अकथयत। लिट्—कथयामास, कथयाम्बभूव, कथायाञ्चकार, कथयाञ्चक्रे। लुट्—कथयिता। लृट्—कथयिष्यति, कथयिष्यते। आशी०—कथ्यात्, कथयिषीष्ट। लृङ—अकथयिष्यत्, अकथयिष्यत।

लुङ—परस्मैपद

प्र० पु०	अचकथत्	अचकथताम्	अचकथन्
म० पु०	अचकथः	अचकथतम्	अचकथत्
उ० पु०	अचकथम्	अचकथाव	अचकथाम

आत्मनेपद

प्र० पु०	अचकथत	अचकथेताम्	अचकथन्त
म० पु०	अचकथथाः	अचकथेथाम्	अचकथध्वम्
उ० पु०	अचकथे	अचकथावहि	अचकथामहि

उभयपदी क्षल् (धोना, साफ करना)

लट्—क्षालयति, क्षालयते । लिट्—क्षालयामास, क्षालयाम्बभूव, क्षालयाञ्चकार, क्षालयाञ्चक्रे । लुट्—क्षालयिता । लृट्—क्षालयिष्यति, क्षालयिष्यते । आशी०—क्षाल्यात्, क्षालयिषीष्ट । लृङ—अक्षालयिष्यत्, अक्षालयिष्यत । लुङ—अचिक्षलत्, अचिक्षलताम्, अचिक्षलन् । अचिक्षलः, अचिक्षलतम्, अचिक्षलत । अचिक्षलम्, अचिक्षलाव, अचिक्षलाम । आत्मनेपद में—अचिक्षलत, अचिक्षलेताम्, अचिक्षवन्त इत्यादि ।

उभयपदी गण् (गिनना)

लट्—गणयति, गणयते । लिट्—गणयाम्बभूव, गणयामास, गणयाञ्चकार, गणयाञ्चक्रे । लुङ—अजीगणत्, अजीगणताम्, अजीगणन् तथा अजगणत् अजगणताम्, अजगणन् । अजीगणत, अजीगणेताम्, अजीगणन्त तथा अजगणत, अजगणेताम्, अजगणन्त । लुट्—गणयिता । लृट्—गणयिष्यति, गणयिष्यते । आशी०—गण्यात्, गणयिषीष्ट । लृङ—गणयिष्यत्, अगणयिष्यत ।

उभयपदी चिति[1] (विचारना)

लट्—चिन्तयति, चिन्तयते । लिट्—चिन्तयामास, चिन्तयाम्बभूव, चिन्तयाञ्चकार, चिन्तयाञ्चक्रे । लुङ—अचिचिन्तत्, अचिचिन्तताम्, अचिचिन्तन् । अचिचिन्तत, अचिचिन्तेताम्, अचिचिन्तन्त । लुट्—चिन्तयिता । लृट्—चिन्तयिष्यति, चिन्तयिष्यते । आशी०—चिन्त्यात्, चिन्तयिषीष्ट । लृट्—अचिन्तयिष्यत्, अचिन्तियिष्यत ।

उभयपदी तड् (मारना)

लट्—ताडयति, ताडयते । लिट्—ताडयामास, ताडयाम्बभूव, ताडयाञ्चकार, ताडयाञ्चक्रे । लुङ्—अतीतडत्, अतीतडताम्, अतीतडन् । अतीतडत, अतीतडेताम् अतीतडन्त । लुट्—ताडयिता । लृट्—ताडयिष्यति, ताडयिष्यते । आशी०—ताड्यात्, ताडयिषीष्ट ।

---

१ चिन्त के स्थान में इकारान्त चिति पाठ नुमागम के अतिरिक्त यह चित करने के लिए किया गया है कि यह धातु विकल्प से णिजन्त होती है । णिच् न लगने पर इसके रूप चिन्तति, चिन्ततः इत्यादि होते हैं । 'चिन्त' इति पठितव्ये इदित्करणं णिचः पाक्षिकत्वे लिङ्गम्—सि० कौ० ।

उभयपदी तप् (गरम करना)

तप् के रूप सर्वथा तड् के समान होते हैं। तापयति-तापयते इत्यादि।

उभयपदी तुल् (तौलना)

लट्—तोलयति, तोलयते इत्यादि। लिट्—तोलयाञ्चकार, तोलयाञ्चक्रे। लुङ—अतूतुलत्, अतूतुलताम्, अतूतुलन्। अतूतुलत, अतूतुलेताम्, अतूतुलन्त। लुट्—तोलयिता। लृट्—तोलयिष्यति, तोलयिष्यते। आशी०—तोल्यात्, तोलयिषीष्ट।

उभयपदी दण्ड् (दण्ड देना)

लट्—दण्डयति, दण्डयते। लिट्—दण्डयाञ्चकार, दण्डयाञ्चक्रे, दण्डयामास, दण्डयाम्बभूव। लुङ—अददण्डत्, अददण्डताम्, अददण्डन्। अददण्डत, अददण्डेताम् अददण्डन्त। लुट्—दण्डयिता। लृट्—दण्डयिष्यति, दण्डयिष्यते। आशी०—दण्ड्यात्, दण्डयिषीष्ट।

उ० पा—(पालना, रक्षा करना) लुङ—अपीपलत्, अपीपलत।

उ० पीड्—(दुःख देना) „ —अपिपीडत्, अपिपीडत, अपीपिडत्, अपीपिडत।

उ० पूज्—(पूजा करना) „—अपूपुजत्, अपूपुजत।

उभयपदी प्री (खुश करना)

लट्—प्रीणयति, प्रीणयते इत्यादि। लुङ—अपिप्रीणत्, अपिप्रीणत।

आत्मनेपदी भर्त्स (धमकाना, डाटना)

लट्—भर्त्सयते। लिट्—भर्त्सयाञ्चक्रे। लुङ—अबभर्त्सत, अबभर्त्सेताम्, अबभर्त्सन्त। अबभर्त्सथाः, अबभर्त्सेथाम्, अबभर्त्सध्वम्। अबभर्त्से, अबभर्त्सावहि, अबभर्त्सामहि। लुट्—भर्त्सयिता। लृट्—भर्त्सयिष्यते। आशी०—भर्त्सयिषीष्ट।

उभयपदी भक्ष् (खाना)

लट्—भक्षयति, भक्षयते। लिट्—भक्षयामास, भक्षयाम्बभूव, भक्षयाञ्चकार, भक्षयाञ्चक्रे। लुङ—अबभक्षत्, अबभक्षत। अलुट्—भक्षयिता। लृट्—भक्षयिष्यति, भक्षयिष्यते। आशी०—भक्ष्ययिषीष्ट।

उभयपदी **भूष्** (सजाना)

लट्—भूषयति, भूषयते। लिट्—भूषयामास, भूषयाम्बभूव, भूषयाञ्चकार, भूषयाञ्चक्रे। लुङ—अबुभूषत्, अबुभूषत। लुट्—भूषयिता। लृट्—भूषयिष्यति, भूषयिष्यते। आशी०—भूष्यात्, भूषयिषीष्ट।

आ० **मंत्रि**[1] (सालह करना या देना)

लट्—मन्त्रयते। लिट्—मन्त्रयाञ्चक्रे। लुङ—अममन्त्रत, अममन्त्रेताम्, अममन्त्रन्त। अममन्त्रथाः, अममन्त्रेथाम्, अममन्त्रध्वम्। अममन्त्रे, अममन्त्रावहि, अममन्त्रामहि। लुट्—मन्त्रयिता। लृट्—मन्त्रयिष्यते। आशी०—मन्त्रयिषीष्ट।

उभयपदी **मार्ग्** (खोजना)

मार्गयति, मार्गयते। लिट्—मार्गयामास, मार्गयाम्बभूव, मार्गयाञ्चकार, मार्गयाञ्चक्रे। लुङ—अममार्गत्, अममार्गत। लुट्—मार्गयिता। लृट्—मार्गयिष्यति, मार्गयिष्यते। आशी०—मार्ग्यात्, मार्गयिषीष्ट।

मार्ज्[2] (शुद्ध करना, पोंछना)

लट्—मार्जयति, मार्जयते। लिट्—मार्जयामास, मार्जयाम्बभूव, मार्जयाञ्चकार, मार्जयाञ्चक्रे। लुङ—अममार्जत्, अममार्जत। लुट्—मार्जयिता। लृट्—मार्जयिष्यति, मार्जयिष्यते। आशी०—मार्ज्यात्, मार्जयिषीष्ट।

परस्मैपदी **मान**[3] (आदर करना)

लट्—मानयति। लिट्—मानयाञ्चकार। लुङ—अमीमनत्, अमीमनताम्, अमीमनन्।

---

१ इकारान्त पाठ होने से यह भी 'चिति' की भाँति अणिजन्त होती है और तब मन्त्रति इत्यादि रूप होते हैं।

२ मार्ज और मृजू दोनों ही धातुएँ चुरादिगण की है। मार्ज 'शब्द करने' के अर्थ में होती है और मृजू शुद्ध करना, अलंकृत करना इत्यादि अर्थ में होती है, जैसा कि भट्टोजि दीक्षित ने सिद्धान्त कौमुदी में लिखा है :—'मृजू, शौचालङ्कारयोः।' मृजू अणिजन्त में होती है, तब इसके रूप मार्जति इत्यादि होते हैं।

३ यह अणिजन्त भी होती है। तब इसके रूप मानति इत्यादि होते हैं। 'स्तम्भन' अर्थ में यह आत्मनेपदी भी होती है और मान्यते इत्यादि इसके रूप होते हैं।

उभयपदी रच् (वनाना)

लट्—रचयति, रचयते । लुङ—अररचत्, अररचत । लुट्—रचयिता । लृट्—रचयिष्यति, रचयिष्यते । आशी०—रच्यात्, रचयिषीष्ट ।

उभयपदी वर्ण (वर्णन करना या रँगना)

लट्—वर्णयति, वर्णयते । लुङ—अववर्णत्, अववर्णत । लुट्—वर्णयिता । लृट्—वर्णयिष्यति, वर्णयिष्यते । आशी०—वर्ण्यात्, अवर्णयिषीष्ट ।

आत्मनेपदी वञ्च (धोखा देना)

लट्—वञ्चयते । लिट्—वञ्चयामास, वञ्चयाम्बभूव, वञ्चयाञ्चक्रे । लुङ—अववञ्चत, अववञ्चेताम्, अववञ्चन्त । लुट्—वञ्चयिता । लृट्—वञ्चयिष्यते । आशी०—वञ्चयिषीष्ट ।

उभयपदी वृज् (छोड़ना, निकालना)

लट्—वर्जयति, वर्जयते । लुङ—अवीवृजत्, अवीवृजताम्, अवीवृजन् । अववर्जत्, अववर्जताम्, अववर्जन् । अवीवृजत, अवीवृजेताम्, अवीवृजन्त । अववर्जत, अववर्जेताम्, अववर्जन्त ।

उभयपदी स्पृह् (चाहना)

लट्—स्पृहयति, स्पृहयते । लिट्—स्पृहयामास, स्पृयाम्बभूव, स्पृहयाञ्चकार, स्पृहयाञ्चक्रे । लुङ—अपस्पृहत्, अपस्पृहेताम्, अपस्पृहन् । अपस्पृहत, अपस्पृहेताम्, अपस्पृहन्त, । लुट्—स्पृहयिता । लृट—स्पृहयिष्यति, स्पृहयिष्यते । आशी०—स्पृहयिषीष्ट ।

दशम सोपान

क्रिया-विचार (उत्तरार्ध)

१५४—ऊपर (सेक्सन १३५ में) कह चुके हैं कि संस्कृत में तीन वाच्य होते हैं—कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य। धातुओं के कर्तृवाच्य के रूप दसों गणों के सभी लकारों में पिछले सोपान में दिखाये जा चुके हैं। यह भी बताया जा चुका है कि कर्मवाच्य केवल सकर्मक धातुओं में और भाववाच्य केवल अकर्मक धातुओं में हो सकता है। इन दोनों वाच्यों के रूप केवल आत्मनेपद में होते हैं[1], धातु चाहे जिस पद की हो। आत्मनेपद के जो प्रत्यय दसों लकारों के हैं, वे ही प्रत्यय जोड़े जाते हैं। कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के रूप बनाते समय नीचे लिखे नियमों का पालन किया जाता है—

(१) धातु और प्रत्ययों के बीच में सार्वधातुक लकारों में यक् (य) जोड़ा जाता है; जैसे—भिद् और ते के बीच में य जोड़ कर भिद्यते रूप बनता है।

(२) धातु में यक् के पूर्व कोई विकार नहीं होता; जैसे गम्+य+ते=गम्यते। कर्तृवाच्य में सार्वधातुक लकारों में धातुओं के स्थान में धात्वादेश (जैसे गम् का गच्छ) नहीं होता। इसी प्रकार गुण और वृद्धि भी नहीं होती।

(३) दा, दे, दो, धा, धे, मा, गै, पा, सो और हा धातुओं का अन्तिम स्वर ई में बदल जाता है; जैसे—दीयते, धीयते, मीयते, गीयते, सीयते, हीयते। और धातुओं का वैसे ही रहता है; जैसे—ज्ञायते, स्नायते, भूयते, ध्यायते। बहुत-सी धातुओं के बीच का अनुस्वार कर्मवाच्य के रूपों में निकाल दिया जाता है जैसे—बन्ध् से बध्यते, शंस् से शस्यते, इन्ध् से इध्यते।

(४) अन्य छः लकारों में कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में कर्तृवाच्य (आत्मनेपद) के रूप होते हैं; जैसे परोक्षभूत—में निन्ये, बभूवे, जज्ञे आदि,

---

१ भावकर्मणोः।१।३।१३।

अथवा कृ धातु के रूप जोड़ कर,जैसे ईक्षाञ्चक्रे, अथवा अस् धातु के रूप लगाकर, कथयामासे आदि ।

(५) स्वरान्त धातुओं के तथा हन्, ग्रह, दृश् धातुओं के दोनों भविष्य, क्रियातिपत्ति तथा आशीर्लिङ में वैकल्पिक रूप धातु के स्वर की वृद्धि करके तथा प्रत्ययों के पूर्व इ जोड़कर बनते हैं; जैसे—दा से दायिता अथवा दाता। दायिष्यते अथवा दास्यते । अदायिष्यत अथवा अदास्यत । दायिषीष्ट अथवा दासीष्ट ।

(क) नीचे कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के रूप दिये जाते हैं । जैसा ऊपर नवें सोपान में बता चुके हैं, कर्मवाच्य की क्रिया के रूप पुरुष और वचन में कर्म के अनुसार होते हैं । भाववाच्य का अर्थ है—केवल किसी क्रिया का होना दिखाना । यह सदा प्रथम पुरुष एकवचन में होता है, कर्त्ता के अनुसार इसके रूप नहीं बदलते; जैसे—तेन भूयते, ताभ्याम् भूयते, तैः भूयते; त्वया भूयते, युवाभ्यां भूयते, युष्माभिः भूयते; मया भूयते, आवाभ्यां भूयते, अस्माभिः भूयते । इसी प्रकार भूयताम्, भूयात, अभूयत ।

१५५—मुख्य धातुओं के कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के रूप ।

पठ्—लट्—पठ्यते, पठ्येते, पठ्यन्ते । लोट्—पठ्यताम्, पठ्येताम् पठ्यन्ताम् । विधि—पठ्येत्, पठ्येयाताम्, पठ्येरन् । लङ—अपठ्यत, अपठ्येताम्, अपठ्यन्त । लिट्—पेठे, पेठाते, पेठिरे । लुङ—अपाठि, अपाठिषाताम्, अपाठिषत । लुट्—पठिता, पठितारौ, पठितारः । पठितासे । लृट्—पठिष्यते । आशी०—पठिषीष्ट ।

मुच्—लट्—मुच्यते, मुच्येते, मुच्यन्ते । लोट्—मुच्यताम्, मुच्येताम्, मुच्यन्ताम् । विधि—मुच्येत, मुच्येयाताम्, मुच्येरन् । लङ—अमुच्यत, अमुच्येताम्, अमुच्यन्त ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
लिट्	मुमुचे	मुमुचाते	मुमुचिरे
	मुमुचिषे	मुमुचाथे	मुमुचिध्वे
	मुमुचे	मुमुचिवहे	मुमुचिमहे

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
लुङ्	अमोचि	अमुक्षाताम्	अमुक्षत
	अमुक्थाः	अमुक्षाथाम्	अमुग्ध्वम्
	अमुक्षि	अमुक्ष्वहि	अमुक्ष्महि
लुट्	मोक्ता	मोक्तारौ	मोक्तारः
लृट्	मोक्ष्यते	मोक्ष्येते	मोक्ष्यन्ते
आशी०	मुक्षीष्ट	मुक्षीयास्ताम्	मुक्षीरन्
लृङ्	अमोक्ष्यत	अमोक्ष्येताम्	अमोक्ष्यन्त

सकर्मक दा—कर्मवाच्य

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	दीयते	दीयेते	दीयन्ते
म० पु०	दीयसे	दीयेथे	दीयध्वे
उ० पु०	दीये	दीयावहे	दीयामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	दीयताम्	दीयेताम्	दीयन्ताम्
म० पु०	दीयस्व	दीयेथाम्	दीयध्वम्
उ० पु०	दीयै	दीयावहै	दीयामहै

विधिलिङ

प्र० पु०	दीयेत	दीयेयाताम्	दीयेरन्
म० पु०	दीयेथाः	दीयेयाथाम्	दीयेध्वम्
उ० पु०	दीयेय	दीयेवहि	दीयेमहि

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अदीयत	अदीयेताम्	अदीयन्त
म० पु०	अदीयथाः	अदीयेथाम्	अदीयध्वम्
उ० पु०	अदीये	अदीयावहि	अदीयामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ददे	ददाते	ददिरे
म० पु०	ददिषे	ददाथे	ददिध्वे
उ० पु०	ददे	ददिवहे	ददिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अदायि	अदायिषाताम् / अदिषाताम्	अदायिषत / अदिषत
म० पु०	अदायिष्ठाः / आदिथाः	अदायिषाथाम् / अदिषाथाम्	अदायिध्वम् / अदिध्वम्
उ० पु०	अदायिषि / अदिषि	अदायिष्वहि / अदिष्वहि	अदायिष्महि / अदिष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	दाता	दातारौ	दातारः
म० पु०	दातासे	दातासाथे	दाताध्वे
उ० पु०	दाताहे	दातास्वहे	दातास्महे

अथवा

प्र० पु०	दायिता	दायितारौ	दायितारः
म० पु०	दायितासे	दायितासाथे	दायिताध्वे
उ० पु०	दायिताहे	दायितास्वहे	दायितास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
म० पु०	दास्यसे	दास्येथे	दास्यध्वे
उ० पु०	दास्ये	दास्यावहे	दास्यामहे

अथवा

प्र० पु०	दायिष्यते	दायिष्येते	दायिष्यन्ते
म० पु०	दायिष्यसे	दायिष्येथे	दायिष्यध्वे
उ० पु०	दायिष्ये	दायिष्यावहे	दायिष्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	दासीष्ट	दासीयास्ताम्	दासीरन्
म० पु०	दासीष्ठाः	दासीयास्थाम्	दासीध्वम्
उ० पु०	दासीय	दासीवहि	दासीमहि

अथवा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	दायिषीष्ट	दायिषीयास्ताम्	दायिषीरन्
म० पु०	दायिषीष्ठाः	दायिषीयास्थाम्	दायिषीध्वम्, ढ्वम्
उ० पु०	दायिषीय	दायिषीवहि	दायिषीमहि

क्रियातिपत्ति--लृङ

प्र० पु०	अदास्यत	अदास्येताम्	अदास्यन्त
म० पु०	अदास्यथाः	अदास्येथाम्	अदास्यध्वम्
उ० पु०	अदास्ये	अदास्यावहि	अदास्यामहि

अथवा

प्र० पु०	अदायिष्यत	अदायिष्येताम्	अदायिष्यन्त
म० पु०	अदायिष्यथाः	अदायिष्येथाम्	अदायिष्यध्वम्
उ० पु०	अदायिष्ये	अदायिष्यावहि	अदायिष्यामहि

पा—लट्—पीयते, पीयेते, पीयन्ते । पीयसे, पीयेथे, पीयध्वे । पीये, पीयावहे, पीयामहे । लोट्—पीयताम्, पीयेताम्, पीयन्ताम् । पीयस्व, पीयेथाम्, पीयध्वम् । पीयै, पीयावहै, पीयामहै । विधि—पीयेत, पीयेयाताम्, पीयेरन् । पीयेथाः, पीयेयाथाम्, पीयेध्वम् । पीयेय, पीयेवहि, पीयेमहि । लङ—अपीयत, अपीयेताम्, अपीयन्त । अपीयथाः, अपीयेथाम्, अपीयध्वम् । अपीये, अपीयावहि, अपीयामहि । लिट्—पपे, पपाते, पपिरे । पपिषे, पपाथे, पपिध्वे । पपे, पपिवहे, पपिमहे । लुङ—अपायि, अपायिषाताम्, अपायिषत । अपायिष्ठाः, अपायिषाथाम्, अपायिध्वम् । अपायिषि, अपायिष्वहि, अपायिष्महि । लुट्—पाता, पातारौ, पातारः । लृट्—पास्यते, पास्येते, पास्यन्ते । आशी०—पासीष्ट । लृङ—अपास्यत ।

अकर्मक स्था—भाववाच्य

स्थीयते, स्थीयेते, स्थीयन्ते इत्यादि । लोट्—स्थीयताम् । विधि—स्थीयेत । लङ—अस्थीयत, अस्थीयेताम्, अस्थीयन्त । लिट्—तस्थे, तस्थाते, तस्थिरे । तस्थिषे, तस्थाथे, तस्थिध्वे । तस्थे, तस्थिवहे, तस्थिमहे । लुङ—

अस्थायि, अस्थायिषाताम्, अस्थायिषत । अस्थायिष्ठाः, अस्थायिषाथाम्, अस्थायिध्वम् । अस्थायिषि, अस्थायिष्वहि, अस्थायिष्महि । लुट्—स्थाता । लृट्—स्थास्यते । आशी०—स्थासीष्ट ।

हा—हीयते इत्यादि । लिट्—जहे, जहाते, जहिरे । लुङ—अहायि, अहायिषाताम्, अहायिषत इत्यादि ।

सकर्मक ज्ञा—कर्मवाच्य

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	ज्ञायते	ज्ञायेते	ज्ञायन्ते
म० पु०	ज्ञायसे	ज्ञायेथे	ज्ञायध्वे
उ० पु०	ज्ञाये	ज्ञायावहे	ज्ञायामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	ज्ञायताम्	ज्ञायेताम्	ज्ञायन्ताम्
म० पु०	ज्ञायस्व	ज्ञायेथाम्	ज्ञायध्वम्
उ० पु०	ज्ञायै	ज्ञायावहै	ज्ञायामहै

विधिलिङ

प्र० पु०	ज्ञायेत	ज्ञायेयाताम्	ज्ञायेरन्
म० पु०	ज्ञायेथाः	ज्ञायेयाथाम्	ज्ञायेध्वम्
उ० पु०	ज्ञायेय	ज्ञायेवहि	ज्ञायेमहि

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अज्ञायत	अज्ञायताम्	अज्ञायन्त
म० पु०	अज्ञायथाः	अज्ञायेथाम्	अज्ञायध्वम्
उ० पु०	अज्ञाये	अज्ञायावहि	अज्ञायामहि

सामान्यभूत—लुङ

प्र० पु०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
म० पु०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे
उ० पु०	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अज्ञायि	अज्ञायिषाताम् अज्ञासाताम्	अज्ञायिषत अज्ञासत
म० पु०	अज्ञायिष्ठाः अज्ञास्थाः	अज्ञायिषाथाम् अज्ञासाथाम्	अज्ञायिध्वम् अज्ञाध्वम्
उ० पु०	अज्ञायिषि अज्ञासि	अज्ञायिष्वहि अज्ञास्वहि	अज्ञायिष्महि अज्ञास्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	ज्ञाता ज्ञायिता	ज्ञातारौ ज्ञायितारौ	ज्ञातारः ज्ञायितारः
म० पु०	ज्ञातासे ज्ञायितासे	ज्ञातासाथे ज्ञायितासाथे	ज्ञाताध्वे ज्ञायिताध्वे
उ० पु०	ज्ञाताहे ज्ञायिताहे	ज्ञातास्वहे ज्ञायितास्वहे	ज्ञातास्महे ज्ञायितास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	ज्ञास्यत ज्ञायिष्यते	ज्ञास्येते ज्ञायिष्येते	ज्ञास्यन्ते ज्ञायिष्यन्ते
म० पु०	ज्ञास्यसे ज्ञायिष्यसे	ज्ञास्येथे ज्ञायिष्येथे	ज्ञास्यध्वे ज्ञायिष्यध्वे
उ० पु०	ज्ञास्ये ज्ञायिष्ये	ज्ञास्यावहे ज्ञायिष्यावहे	ज्ञास्यामहे ज्ञायिष्यामहे

आशीर्लिङ

प्र० पु०	ज्ञासीष्ट ज्ञायिषीष्ट	ज्ञासीयास्ताम् ज्ञायिषीयास्ताम्	ज्ञासीरन् ज्ञायिषीरन्
म० पु०	ज्ञासीष्ठाः ज्ञायिषीष्ठाः	ज्ञासीयास्थाम् ज्ञायिषीयास्थाम्	ज्ञासीध्वम् ज्ञायिषीध्वम्, ढ्वम्
उ० पु०	ज्ञासीय ज्ञायिषीयं	ज्ञासीवहि ज्ञायिषीवहि	ज्ञासीमहि ज्ञायिषीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अज्ञास्यत	अज्ञास्येताम्	अज्ञास्यन्त
	अज्ञायिष्यत	अज्ञायिष्येताम्	अज्ञायिष्यन्त
म० पु०	अज्ञास्यथाः	अज्ञास्येथाम्	अज्ञास्यध्वम्
	अज्ञायिष्यथाः	अज्ञायिष्येथाम्	अज्ञायिष्यध्वम्
उ० पु०	अज्ञास्ये	अज्ञास्यावहि	अज्ञास्यामहि
	अज्ञायिष्ये	अज्ञायिष्यावहि	अज्ञायिष्यामहि

ध्यै—लट् ध्यायते, ध्यायेते, ध्यायन्ते। लोट्—ध्यायताम्, ध्यायेताम्, ध्यायन्ताम्। विधि०—ध्यायेत, ध्यायेयाताम्, ध्यायेरन्। लङ्—अध्यायत, अध्यायेताम्, अध्यायन्त। लिट्—दध्ये, दध्याते, दध्यिरे। लुङ्—अध्यायि, अध्यायिषाताम्-अध्यासाताम्, अध्यायिषत-अध्यासत। लुट्—ध्याता। लृट्—ध्यास्यते।

सकर्मक चि—कर्मवाच्य

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	चीयते	चीयेते	चीयन्ते
म० पु०	चीयसे	चीयेथे	चीयध्वे
उ० पु०	चीये	चीयावहे	चीयामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	चीयताम्	चीयेताम्	चीयन्ताम्
म० पु०	चीयस्व	चीयेथाम्	चीयध्वम्
उ० पु०	चीयै	चीयावहै	चीयामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	चीयेत	चीयेयाताम्	चीयेरन्
म० पु०	चीयेथाः	चीयेयाथाम्	चीयेध्वम्
उ० पु०	चीयेय	चीयेवहि	चीयेमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अचीयत	अचीयेताम्	अचीयन्त
म० पु०	अचीयथाः	अचीयेथाम्	अचीयध्वम्
उ० पु०	अचीये	अचीयावहि	अचीयामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिक्ये	चिक्याते	चिक्यिरे
म० पु०	चिक्यिषे	चिक्याथे	चिक्यिध्वे, ढ्वे
उ० पु०	चिक्ये	चिक्यिवहे	चिक्यिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अचायि	अचायिषाताम् अचेषाताम्	अचायिषत अचेषत
म० पु०	अचायिष्ठाः अचेष्ठाः	अचायिषाथाम् अचेषाथाम्	अचायिध्वम्, ढ्वम् अचेध्वम्, ढ्वम्
उ० पु०	अचायिषि अचेषि	अचायिष्वहि अचेष्वहि	अचायिष्महि अचेष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	चेता चायिता	चेतारौ चायितारौ	चेतारः चायितारः
म० पु०	चेतासे चायितासे	चेतासाथे चायितासाथे	चेताध्वे चायिताध्वे
उ० पु०	चेताहे चायिताहे	चेतास्वहे चायितास्वहे	चेतास्महे चायितास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	चेष्यते चायिष्यते	चेष्येते चायिष्येते	चेष्यन्ते चायिष्यन्ते
म० पु०	चेष्यसे चायिष्यसे	चेष्येथे चायिष्येथे	चेष्यध्वे चायिष्यध्वे
उ० पु०	चेष्ये चायिष्ये	चेष्यावहे चायिष्यावहे	चेष्यामहे चायिष्यामहे

आशीर्लिङ

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	चेषीष्ट	चेषीयास्ताम्	चेषीरन्
	चायिषीष्ट	चायिषीयास्ताम्	चायिषीरन्
म० पु०	चेषीष्ठाः	चेषीयास्थाम्	चेषीढ्वम्
	चायिषीष्ठाः	चायिषीयास्थाम्	चायिषीध्वम्, ढ्वम्
उ० पु०	चेषीय	चेषीवहि	चेषीमहि
	चायिषीय	चायिषीवहि	चायिषीमहि

लृङ

प्र० पु०	अचेष्यत	अचेष्येताम्	अचेष्यन्त
	अचायिष्यत	अचायिष्येताम्	अचायिष्यन्त
म० पु०	अचेष्यथाः	अचेष्येथाम्	अचेष्यध्वम्
	अचायिष्यथाः	अचायिष्येथाम	अचायिष्यध्वम्
उ० पु०	अचेष्ये	अचेष्यावहि	अचेष्यामहि
	अचायिष्ये	अचायिष्यावहि	अचायिष्यामहि

जि—लट्—जीयते, जीयेते, जीयन्ते । लोट्—जीयताम्, जीयेताम्, जीयन्ताम् । विधि०—जीयेत, जोयेयाताम्, जीयेरन् । लङ—अजीयत, अजीयेताम्, अजीयन्त । लिट्,—जिग्ये, जिग्याते, जिग्यिरे । जिग्यिषे, जिग्याथे, जिग्यिध्वे । जिग्ये, जिग्यिवहे, जिग्यिमहे । लुङ—अजायि, अजायिषाताम्-अजेषाताम्, अजायिषत-अजेषत । अजायिष्ठाः-अजेष्ठाः, अजायिषाथाम्-अजेषाथाम्, अजायिध्वम्-अजेध्वम् । अजायिषि-अजेषि, अजायिष्वहि-अजेष्वहि, अजायिष्महि-अजेष्महि । लुट्—जेता-जयिता । लृट्—जेष्यते-जायिष्यते । आशी०—जेषीष्ट-जायिषीष्ट । लृङ—अजेष्यत-अजायिष्यत ।

श्रि—लट्—श्रीयते, श्रीयेते, श्रीयन्ते । लोट्—श्रीयताम्, श्रीयेताम्, श्रीयन्ताम् । विधि०—श्रीयेत । लङ—अश्रीयत, अश्रीयेताम्, अश्रीयन्त । लिट्—शिश्रिये, शिश्रियाते, शिश्रियिरे । शिश्रियिषे, शिश्रियाषे, शिश्रियिध्वे-ढ्वे । शिश्रिये, शिश्रियिवहे, शिश्रियिमहे । लुङ—अश्रायि,

अश्रायिषाताम्, अश्रयिषाताम्, अश्रायिषत-अश्रयिषत । अश्रायिष्ठाः-अश्रयिष्ठाः, अश्रायिषाथाम्-अश्रयिषाथाम्, अश्रायिघ्वम्, ढ्वम्, अश्रयिध्वम्-अश्रयिढ्वम् । अश्रायिषि-अश्रयिषि, अश्रायिष्वहि-अश्रयिष्वहि, अश्रायिष्महि-अश्रयिष्महि । लुट्—श्रयिता, श्रायिता । लृट्—श्रयिष्यते-श्रायिष्यते । आशी०—श्रयिषीष्ट-श्रायिषीष्ट । लृङ्—अश्रयिष्यत-अश्रायिष्यत ।

सकर्मक नी—कर्मवाच्य

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	नीयते	नीयेते	नीयन्ते
म० पु०	नीयसे	नीयेथे	नीयध्वे
उ० पु०	नीये	नीयावहे	नीयामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	नीयताम्	नीयेताम्	नीयन्ताम्
म० पु०	नीयस्व	नीयेथाम्	नीयध्वम्
उ० पु०	नीयै	नीयावहै	नीयामहै

विधिलिङ

प्र० पु०	नीयेत	नीयेयाताम्	नीयेरन्
म० पु०	नीयेथाः	नीयेयाथाम्	नीयेध्वम्
उ० पु०	नीयेय	नीयेवहि	नीयेमहि

अनद्यतनभूत—लङ

प्र० पु०	अनीयत	अनीयेताम्	अनीयन्त
म० पु०	अनीयथाः	अनीयेथाम्	अनीयध्वम्
उ० पु०	अनीये	अनीयावहि	अनीयामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	निन्ये	निन्याते	निन्यिरे
म० पु०	निन्यिषे	निन्याथे	निन्यिध्वे, ढ्वे
उ० पु०	निन्ये	निन्यिवहे	निन्यिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अनायि	अनायिषाताम्	अनायिषत
		अनेषाताम्	अनेषत
म० पु०	अनायिष्ठाः	अनायिषाथाम्	अनायिध्वम्, ढ्वम्
	अनेष्ठाः	अनेषाथाम्	अनेढ्वम्
उ० पु०	अनायिषि	अनायिष्वहि	अनायिष्महि
	अनेषि	अनेष्वहि	अनेष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	नेता	नेतारौ	नेतारः
म० पु०	नेतासे	नेतासाथे	नेताध्वे
उ० पु०	नेताहे	नेतास्वहे	नेतास्महे

तथा

प्र० पु०	नायिता	नायितारौ	नायितारः
म० पु०	नायितासे	नायितासाथे	नायिताध्वे
उ० पु०	नायिताहे	नायितास्वहे	नायितास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते
म० पु०	नेष्यसे	नेष्येथे	नेष्यध्वे
उ० पु०	नेष्ये	नेष्यावहे	नेष्यामहे

तथा

प्र० पु०	नायिष्यते	नायिष्येते	नायिष्यन्ते
म० पु०	नायिष्यसे	नायिष्येथे	नायिष्यध्वे
उ० पु०	नायिष्ये	नायिष्यावहे	नायिष्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	नेषीष्ट	नेषीयास्ताम्	नेषीरन्
म० पु०	नेषीष्ठाः	नेषीयास्थाम्	नेषीढ्वम्
उ० पु०	नेषीय	नेषीवहि	नेषीमहि

तथा

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्र० पु०	नायिषीष्ट	नायिषीयास्ताम्	नायिषीरन्
म० पु०	नायिषीष्ठाः	नायिषीयास्थाम्	नायिषीध्वम्, ढ्वम्
उ० पु०	नायिषीय	नायिषीवहि	नायिषीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ

प्र० पु०	अनेष्यत	अनेष्येताम्	अनेष्यन्त
म० पु०	अनेष्यथाः	अनेष्येथाम्	अनेष्यध्वम्
उ० पु०	अनेष्ये	अनेष्यावहि	अनेष्यामहि

तथा

प्र० पु०	अनायिष्यत	अनायिष्येताम्	अनायिष्यन्त
म० पु०	अनायिष्यथाः	अनायिष्येथाम्	अनायिष्यध्वम्
उ० पु०	अनायिष्ये	अनायिष्यावहि	अनायिष्यामहि

सकर्मक कृ—कर्मवाच्य

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	क्रियते	क्रियेते	क्रियन्ते
म० पु०	क्रियसे	क्रियेथे	क्रियध्वे
उ० पु०	क्रिये	क्रियावहे	क्रियामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	क्रियताम्	क्रियेताम्	क्रियन्ताम्
म० पु०	क्रियस्व	क्रियेथाम्	क्रियध्वम्
उ० पु०	क्रियै	क्रियावहै	क्रियामहै

विधिलिङ

प्र० पु०	क्रियेत	क्रियेयाताम्	क्रियेरन्
म० पु०	क्रियेथाः	क्रियेयाथाम्	क्रियेध्वम्
उ० पु०	क्रियेय	क्रियेवहि	क्रियेमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अक्रियत	अक्रियेताम्	अक्रियन्त
म० पु०	अक्रियथाः	अक्रियेथाम्	अक्रियध्वम्
उ० पु०	अक्रिये	अक्रियावहि	अक्रियामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
म० पु०	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे
उ० पु०	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अकारि	अकारिषाताम्	अकारिषत
		अकृषाताम्	अकृषत
म० पु०	अकारिष्ठाः	अकारिषाथाम्	अकारिध्वम्, ढ्वम्
	अकृथाः	अकृषाथाम्	अकृढ्वम्
उ० पु०	अकारिषि	अकारिष्वहि	अकारिष्महि
	अकृषि	अकृष्वहि	अकृष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	कर्त्ता	कर्तारौ	कर्तारः
	कारिता	कारितारौ	कारितारः
म० पु०	कर्तासे	कर्तासाथे	कर्ताध्वे
	कारितासे	कारितासाथे	कारिताध्वे
उ० पु०	कर्ताहे	कर्तास्वहे	कर्तास्महे
	कारिताहे	कारितास्वहे	कारितास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
म० पु०	करिष्यसे	करिष्येथे	करिष्यध्वे
उ० पु०	करिष्ये	करिष्यावहे	करिष्यामहे

तथा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	कारिष्यते	कारिष्येते	कारिष्यन्ते
म० पु०	कारिष्यसे	कारिष्येथे	कारिष्यध्वे
उ० पु०	कारिष्ये	कारिष्यावहे	कारिष्यामहे

आशीर्लिङ

प्र० पु०	कृषीष्ट	कृषीयास्ताम्	कृषीरन्
	कारिषीष्ट	कारिषीयास्ताम्	कारिषीरन्
म० पु०	कृषीष्ठाः	कृषीयास्थाम्	कृषीढ्वम्
	कारिषीष्ठाः	कारिषीयास्थाम्	कारिषीध्वम्, ढ्वम्
उ० पु०	कृषीय	कृषीवहि	कृषीमहि
	कारिषीय	कारिषीवहि	कारिषीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ

प्र० पु०	अकरिष्यत	अकरिष्येताम्	अकरिष्यन्त
	अकारिष्यत	अकारिष्येताम्	अकारिष्यन्त
म० पु०	अकरिष्यथाः	अकरिष्येथाम्	अकरिष्यध्वम्
	अकारिष्यथाः	अकारिष्येथाम्	अकारिष्यध्वम्
उ० पु०	अकरिष्ये	अकरिष्यावहि	अकरिष्यामहि
	अकारिष्ये	अकारिष्यावहि	अकारिष्यामहि

धृ—लट्—ध्रियते, ध्रियेते, ध्रियन्ते । लोट्—ध्रियताम्, ध्रियेताम्, ध्रियन्ताम् । विधि—ध्रियेत, ध्रियेयाताम्, ध्रियेरन् । लङ—अध्रियत, अध्रियेताम्, अध्रियन्त । लिट्—दध्रे, दध्राते, दध्रिरे । लुङ—धारि, अधारिषाताम्-अधृषाताम्, अधारिषत-अधृषत । लुट—धर्ता, धरिता । लृट्—धरिष्यते-धारिष्यते । आशी०—धृषीष्ट, धारिषीष्ट । लृङ—अधरिष्यत-अधारिष्यत ।

भृ—भ्रियते इत्यादि । लिट्—बभ्रे, बभ्राते, बभ्रिरे । बभृषे, बभ्राथे, बभृढ्वे । बभ्रे, बभृवहे बभृमहे । लुङ—अभारि, अभारिषाताम्-अभृषाताम्, अभारिषत-अभृषत ।

वृ—व्रियते इत्यादि ।

हृ—ह्रियते इत्यादि

वच्—उच्यते ।	लङ—औच्यत ।
वद्—उद्यते ।	लङ—औद्यत ।
वप्—उप्यते ।	लङ—औप्यत ।
वस्—उष्यते ।	लङ—औष्यत ।
वह्—उह्यते ।	लङ—औह्यत ।

चुरादिगण की धातुओं का गुण तथा वृद्धि जो कि लट्, लोट्, विधि और लङ में साधारणतः होता है, कर्मवाच्य में भी बना रहता है ।

इस गण का 'अय्' लट्, लोट्, विधि और लङ में तथा लुङ के प्रथम पुरुष के एकवचन में निकाल दिया जाता है लिट् म बना रहता है और शेष लकारों में विकल्प रूप से निकाल दिया जाता है । जैसे चुर् का—चोर्यते, चोर्येते, चोर्यन्ते ।

लिट्—चोरयाञ्चक्रे । चोरयाम्बभूवे । चोरयामासे । लुङ—अचोरि, अचोरिषाताम्-अचोरयिषाताम्, अचोरिषत-अचोरयिषत । अचोरिष्ठाः-अचोरयिष्ठाः, अचोरिषाथाम्-अचोरयिषाथाम्, अचोरिध्वम्-अचोरयिध्वम् । अचोरिषि-अचोरयिषि, अचोरिष्वहि-अचोरयिष्वहि, अचोरिष्महि-अचोरयिष्महि ।

लुट्—चोरिता । लृट्—चोरिष्यते-चोरयिष्यते ।

आशी०—चोरिषीष्ट-चोरयिषीष्ट । लृङ—अचोरिष्यत-अचोरियिष्यत ।

प्रत्ययान्त धातुएँ

१५६—धातुओं में विशेष प्रत्यय जोड़ कर धातु के अर्थ के साथ-साथ और अर्थ का भी बोध हो जाता है । जैसे हिन्दी में 'मैं जाता हूँ' के साथ यदि चाहने का अर्थ लगाना हो तो 'मैं जाना चाहता हूँ' इस वाक्य का प्रयोग करेंगे । इसमें दो धातुओं ('जाना' और 'चाहना') का प्रयोग हुआ, किन्तु संस्कृत में गम् धातु के अनन्तर सन् प्रत्यय जोड़ कर चाहने का अर्थ निकाल लिया जाता है, जैसे गम्—जाना, जिगमिष्—जाने की इच्छा करना (अहं गच्छामि—अहं जिग-

मिषामि)। 'जिगमिष्' को सन्-प्रत्ययान्त धातु कहेंगे। 'सन्' आदि प्रत्यय धातु और लिङ्ग प्रत्ययों के बीच में जोड़े जाते हैं, तब क्रिया की सिद्धि होती है।

प्रत्ययान्त धातुएँ चार प्रकार की होती हैं—

(१) णिजन्त—णिच् प्रत्यय में अन्त होने वाली।

(२) सन्नन्त—सन् प्रत्यय में अन्त होने वाली।

(३) यङन्त—यङ प्रत्यय में अन्त होने वाली (यङलुङन्त धातुएँ भी एक प्रकार से यङन्त ही कही जायँगी) तथा

(४) नामधातु—किसी प्रातिपदिक को धातु रूप देकर बनाई हुई धातु।

णिजन्त धातु

१५७—किसी धातु में जब प्रेरणा का अर्थ लाना हो तो णिच् प्रत्यय जोड़ देते हैं। करना से कराना, पढ़ना से पढ़ाना, पकाना से पकवाना, बनाना से बनवाना आदि प्रेरणा के अर्थ हैं। सादी धातु में जो कर्ता रहता है, वह प्रेरणार्थक धातु में स्वयं कार्य न करके किसी दूसरे से कार्य कराता है; जैसे 'राम पकाता है' इस वाक्य में राम स्वयं पकाने का कार्य करता है, किन्तु 'राम पकवाता है' इस वाक्य में राम स्वयं नहीं पकाता, पकाने का काम किसी और से कराता है। णिच् प्रत्यय लगकर अकर्मक धातु कभी-कभी सकर्मक भी हो जाती है, और कभी-कभी उसके अर्थ में परिवर्तन भी हो जाता है और णिजन्त धातु से परस्मैपद तथा आत्मनेपद दोनों प्रकार के तिङ प्रत्यय जुटते ही हैं।

(क) णिजन्त धातु के रूप चुरादिगण की धातुओं के समान चलते हैं, धातु और तिङ प्रत्ययों के बीच में अय् जोड़ दिया जाता है।

तथा नियम १५२ में उल्लिखित स्वर का परिवर्तन होता है; जैसे—

(१) बुध्	(बोधति)	से	प्रेरणार्थक	बोधयति
(२) अद्	(अत्ति)	से	„	आदयति
(३) हु	(जुहोति)	से	„	हावयति
(४) दिव्	(दीव्यति)	से	„	देवयति
(५) सु	(सुनोति)	से	„	सावयति

(६)	तुद्	(तुदति)	से	प्रेरणार्थक	तोदयति
(७)	रुध्	(रुणद्धि)	से	,,	रोधयति
(८)	तन्	(तनोति)	से	,,	तानयति
(९)	अश्	(अश्नाति)	से	,,	आशयति
(१०)	चुर्	(चोरयति)	से	,,	चोरयति

चुरादिगण की धातुओं के रूप प्रेरणार्थक में भी वैसे ही होते हैं, जैसे सादे में।

(ख) कुछ धातुओं के साथ ऊपर लिखे हुए सभी परिवर्तन नहीं होते। मुख्य-मुख्य धातुओं के भेद ये हैं —

अम् में अन्त होने वाली धातुओं में (अम्, कम्, चम्, शम् और यम् को छोड़कर) उपधा के अकार को वृद्धि नहीं होती, जैसे—गम् से गमयति; किन्तु कम् से कामयते होता है।

बहुधा आकारान्त (और ऐसी ए, ऐ, ओ में अन्त होने वाली धातुएं जो आकारान्त हो जाती है) धातुओं के अनन्तर अय् के पूर्व प् जोड़ दिया जाता है; जैसे—दा से दापयति, स्ना से स्नापयति, गै से गापयति। मि, भी, दी, जि, क्री में भी प् जोड़ दिया जाता है और इकार का अकार हो जाता है; जैसे मापयति, दापयति, जापयति, क्रापयति।

(ग) नीचे लिखी धातुओं के प्रेरणार्थक रूप इस प्रकार चलते हैं—

इण्[1] (जाना) से गमयति। परन्तु प्रति के साथ प्रत्याययति। अधि+इङ से अध्यापयति।

चि	(इकट्ठा करना)	से	चाययति-ते, चापयति-ते।
जागृ	(जागना)	से	जागरयति।
दुष्	(दोषी होना)	से	दूषयति-ते, दोषयति-ते।
प्री	(प्रसन्न होना)	से	प्रीणयति।
रुह्	(उगना)	से	रोहयति-ते, रोपयति-ते।
वा	(डोलना)	से	वापयति, वाजयति।
हन्	(मारना)	से	घातयति।

१ णौ गमिरबोधने।२।४।४६।—इण् धातु में णिच् जुड़ने पर इण् के स्थान में गम् हो जाता है और गमयति रूप बनता है, परन्तु जहाँ बोध कराने या समझाने का अर्थ होता है, वहाँ इण् के स्थान में गम् नहीं होगा; जैसे—प्रत्याययति।

(घ) प्रेरणार्थक धातुओं के रूप चुरादिगणी धातुओं के समान दसों लकारों, तीनों वाच्यों और दोनों पदों में चलते हैं। उदाहरणार्थ, बुध् धातु के रूप प्रथम पुरुष एक वचन में दिखाये जाते हैं। कर्तृवाच्य में—लट्—बोधयति, बोधयते। लोट्—बोधयतु, बोधयताम्। विधि०—बोधयेत्, बोधयेत। लङ—अबोधयत्, अबोधयत। लिट्—बोधयाञ्चकार, बोधयाम्बभूव, बोधयामास, बोधयाञ्चक्रे, बोधयाम्बभूवे, बोधयामासे। लुङ—अबूबुधत्, अबूबुधत। लुट्—बोधयिता। लृट्—बोधयिष्यति, बोधयिष्यते। आशी०—बोध्यात्, बोधयिषीष्ट। लृङ—अबोधयिष्यत्, अबोधयिष्यत।

कर्मवाच्य में—लट्—बोध्यते। लोट्—बोध्यताम्। विधि०—बोध्येत। लङ—अबोध्यत। लिट्—बोधयाञ्चक्रे, बोधयाम्बभूवे, बोधयामासे। लुङ—अबोधि। लुट्—बोधिता। लृट्—बोधिष्यते। आशी०—बोधिषीष्ट। लृङ—अबोधिष्यत।

सन्नन्त धातु

१५८—[1]किसी कार्य के करने की इच्छा का अर्थ बतलाने के लिए उस कार्य का अर्थ बतलाने वाली धातु के अनन्तर सन् प्रत्यय लगाया जाता है; जैसे—'मैं जाना चाहता हूँ'। यहाँ मैं जाने की इच्छा करता हूँ, इसलिए 'जाने' का बोध कराने वाली धातु के अनन्तर संस्कृत में सन् प्रत्यय जोड़कर 'जाना चाहता हूँ' यह अर्थ निकल आयेगा' (अगम् से जिगमिष्)। जो कर्ता जाने की क्रिया का होगा, वही इच्छा करने वाला होना चाहिए। यदि दूसरा कर्त्ता होगा तो सन् प्रत्यय नहीं लग सकता, जैसे—'मैं इच्छा करता हूँ कि वह जावे' इस वाक्य में इच्छा करने वाला 'मैं' हूँ और जाने वाला 'वह', यहाँ सन् लगना असम्भव होगा। किन्तु मैं उसे पढ़ाना चाहता हूँ, इस वाक्य में सन् लग सकता है; क्योंकि यहाँ 'पढ़ाना' तथा 'चाहना' दोनों क्रियाओं का कर्त्ता एक ही है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रेरणार्थक धातु के अनन्तर भी सन् लग सकता है किन्तु तभी जब प्रेरणा करने वाला और इच्छा वाला करने एक ही व्यक्ति हो।

सन् प्रत्यय लगाना न लगाना अपनी इच्छा पर है। यदि न लगाना चाहें तो यही अर्थ इष्, अभिलष् आदि चाहने का अर्थ बतलाने वाली क्रियाओं के प्रयोग

१ धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ।३।१।७।

से भी लाया जा सकता है; जैसे—'मैं जाना चाहता हूँ' का अनुवाद चाहे 'अहं जिगमिषामि' करें चाहे 'अहं गन्तुमिच्छामि' या 'अहं गन्तुमभिलषामि' आदि करें, दोनों ढंग ठीक होंगे।

इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि जिस कार्य की इच्छा की जाती है, वह इच्छा करने की क्रिया का कर्मस्वरूप होना चाहिए, और कोई कारक नहीं। ऊपर 'मैं जाना चाहता हूँ', इस वाक्य में 'चाहता हूँ' क्रिया का 'जाना' कर्म है; तभी सन् प्रत्यय लगाया जा सका है। यदि 'मैं चाहता हूँ कि मेरे खाने से बल बढ़े' इस प्रकार का वाक्य हो जहाँ 'खाने से' करण कारक है, तो ऐसी दशा में 'खाने' की धातु के अनन्तर सन् लगा कर इच्छा का बोध नहीं कराया जा सकता।

(क) सन् प्रत्यय का स् धातु में जोड़ा जाता है, यह स् सन्धि के (२४वें) नियम के अनुसार कहीं-कहीं ष् हो जाता है। स् जोड़ने के पूर्व धातु को पृष्ठ ३१० में उल्लेख किये हुए नियमों के अनुसार अभ्यस्त कर देना आवश्यक है। अभ्यास में यदि अकार हो तो उसका इकार हो जाता है; जैसे—पठ्+सन्=पठ्+पठ्+सन्=प+पठ्+स्=पिपठ्+इ+ष्। धातु यदि सेट् हो तो स् के पूर्व बहुधा इकार आ जाता है परन्तु कभी-कभी किसी-किसी धातु में नहीं भी आता, यदि वेट हो तो बहुधा इच्छानुसार इकार आता है; और यदि अनिट् हो तो बहुधा नहीं आता; जैसे—सेट् पठ् धातु का सन्नन्त रूप पिपठ्+इ+ष्=पिपठिष् हुआ, किन्तु सेट् भू धातु का बुभुष् हुआ।

(ख) इस प्रकार बनी हुई सन्नन्त धातु के रूप धातु के पद के अनुसार दसों लकारों में चलते हैं। परोक्षभूत में आम् जोड़ कर कृ, भू और अस् धातुओं के रूप जोड़ दिये जाते हैं।

उदाहरणार्थ बुध् धातु के प्रथम पुरुष एकवचन के रूप दिये जाते हैं—

	कर्तृवाच्य		कर्मवाच्य
लट्	बुबोधिषति	बुबोधिषते	बुबोधिष्यते
लोट्	बुबोधिषतु	बुबोधिषताम्	बुबोधिष्यताम्
विधि	बुबोधिषेत्	बुबोधिषेत	बुबोधिष्येत
लङ्	अबुबोधिषत्	अबुबोधिषत	अबुबोधिष्यत

लिट्	वुबोधिषाञ्चकार	वुबोधिषाञ्चक्रे	वुबोधिषाञ्चक्रे
	वुबोधिषाम्बभूव	वुबोधिषाम्बभूवे	वुबोधिषाम्बभूवे
	वुबोधिषामास	वुबोधिषामासे	बुबोधिषामांसे
लुङ्	अवुबोधिषीत्	अवुबोधिषिष्ट	अबुबोधिषि
लुट्	वुबोधिषिता	वुबोधिषिता	बुबोधिषिता
लृट्	वुबोधिषिष्यति	वुबोधिषिष्यते	बुबोधिषिष्यते
आशी०	बुबोधिष्यात्	बुबोधिषिषीष्ट	बुबोधिषिषीष्ट
लृङ्	अवुबोधिषिष्यत्	अबुबोधिषिष्यत	अबुबोधिषिष्यत

(ग) नीचे कुछ धातुओं के सन्नन्त रूप दिये जाते हैं ।

पठ्	+	सन्	=	पिपठिष्	(पिपठिषति)
ग्रह्	+	सन्	=	जिघृक्ष्	(जिघृक्षति)
प्रच्छ्	+	सन्	=	पिपृच्छिष्	(पिपृच्छिषति)
कृ	+	सन्	=	चिकरिष्	(चिकरिषति)
गृ	+	सन्	=	जिगरिष्, जिगलिष्	(जिगरिषति, जिगलिषति)
धृङ्	+	सन्	=	दिधरिष्	(दिधरिषते)
हन्	+	सन्	=	जिघांस्	(जिघांसिषति)
गम्	+	सन्	=	जिगमिष्	(जिगमिषति)
इण्	+	सन्	=	जिगमिष्	(,,)

नोट—सन्[1] लगने पर बोध से भिन्न अर्थ होने पर इण् का गम् का आदेश हो जाता है । बोध अर्थ में प्रतिषिषति रूप होता है ।

ज्ञा	+	सन्	=	जिज्ञास्	(जिज्ञासते)
श्रु	+	सन्	=	शुश्रूष्	(शुश्रूषते)
दृश्	+	सन्	=	दिदृक्ष्	(दिदृक्षते)
पा	+	सन्	=	पिपास्	(पिपासते)
भू	+	सन्	=	बुभुष्	(बुभूषते)
आप्	+	सन्	=	ईप्स्	(ईप्सति)

१ सनि च ।२।४।४७।

नोट—सन्[1] लगने पर आप् के आ के स्थान में ई हो जाता है और अभ्यास का लोप हो जाता है।

अद् + सन् = जिघत्स् (जिघत्सति)

यङन्त धातु

१५६—व्यञ्जन[2] से आरम्भ होने वाली किसी भी एकाच् धातु के अनन्तर क्रिया को बार-बार करने अथवा क्रिया को खूब करने का बोध कराने के लिए यङ प्रत्यय लगाया जाता है। यह प्रत्यय दसवें गण की (सूच्, सूत्र, मूत्र इत्यादि कुछ धातुओं को छोड़कर) किसी धातु के अनन्तर नहीं लगता, केवल प्रथम नौ गणों की धातुओं के उपरान्त लग सकता है; जैसे, नेनीयते—बार-बार ले जाता है; देदीयते—खूब देता है।

यङ प्रत्यय धातु में दो प्रकार से जोड़ा जाता है। एक को जोड़ने से परस्मैपद में रूप चलते हैं और दूसरे को जोड़ने से आत्मनेपद में। परस्मैपद वाले रूप वैदिक संस्कृत में ही प्रायः मिलते हैं, इसलिए उसका उल्लेख यहाँ अनावश्यक है। आत्मनेपद के यङन्त रूपों का दिग्दर्शन कराया जाता है।

(क) धातु में पहले यङ का य् जोड़ा जाता है; जैसे—नी+यङ=नीय; इसी प्रकार भूय, नन्द्य इत्यादि। नियम १५४ (३) में उल्लिखित किसी-किसी धातु का विकृत रूप यहाँ भी हो जाता है; जैसे—दा+यङ=दीय, बन्ध+यङ= बध्य।

इस प्रकार से प्राप्त हुए यङन्त रूप का अभ्यास पृष्ठ ३१० पर लिखे हुए नियमों के अनुसार किया जाता है, केवल अभ्यास अक्षर के अ का, आ, इ अथवा ई का ए तथा उ अथवा ऊ का ओ हो जाता है, जैसे—व्रज्+यङ=वव्रज्य=वाव्रज्य, दीय=देदीय, नेनीय, वोभूय। इसके अतिरिक्त[3] जिन धातुओं की उपधा में ऋ हो, उनके अभ्यास में री का आगम हो जाता है; जैसे नरीनृत्यते, वरीवृत्यते इत्यादि।

---

१ आप्ज्ञप्यृधामीत् ।७।४।५५। एषामच ईत्स्यात्सनि।

२ धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ ।३।१।२३। पौनः पुन्यं भृशार्थंश्च क्रिया-समभिहारः। तस्मिन्द्योत्ये यङ स्यात्। सि० कौ०

३ रीगृदुपधस्य च ।७।४।९०।

(ख) इस प्रकार बनी हुई धातु के आत्मनेपद में दसों लकारों में रूप चलते हैं। उदाहरणार्थ बुध् धातु के यङन्त रूप प्रथम पुरुष एकवचन में दिए जाते हैं—

लकार	कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
लट्	बोबुध्यते	बोबुध्यते
लोट्	बोबुध्यताम्	बोबुध्यताम्
विधि०	बोबुध्येत	बोबुध्येत
लङ्	अबोबुध्यत	अबोबुध्यत
लिट्	बोधाञ्चक्रे	बोधाञ्चक्रे
लुङ्	अबोबुधिष्ट	अबोबुधि
लुट्	बोबुधिता	बोबुधिता
लृट्	बोबुधिष्यते	बोबुधिष्यते
आशी०	बोबुधिषीष्ट	बोबुधिषीष्ट
लृङ्	अबोबुधिष्यत	अबोबुधिष्यत

(ग)—नियम १५९ क्रियासमभिहार में ही यङ का विधान करता है। परन्तु कहीं-कहीं इससे भिन्न अर्थ में भी लगता है। नीचे ऐसे कुछ स्थल दिखाए जाते हैं—

गत्यर्थक[1] धातुओं में कौटिल्य के अर्थ में यङ प्रत्यय जुड़ता है, बारम्बार या अधिक अर्थ में नहीं; जैसे—कुटिलं व्रजति इति वाव्रज्यते।

लुप्[2], सद्, चर्, जप्, जभ्, दह्, दश्, गृ धातुओं के आगे गर्हित अर्थ में यङ प्रत्यय लगता है; जैसे—गर्हितं लुम्पति इति लोलुप्यते।

जप[3], जभ, दह, दश, भञ्ज, पश धातुओं में लङ जुड़ने पर अभ्यास में न का आगम हो जाता है; जैसे—गर्हितं जपति इति जञ्जप्यते। इसी प्रकार जञ्जभ्यते, दन्दह्यते, दन्दश्यते, पम्पश्यते।

---

१ नित्यं कौटिल्ये गतौ ।३।१।२३।

२ लुपसदचरजपजभदशगृभ्यो भावगर्हायाम् ।३।१।२४।

३ अपजभदहभञ्जपशां च ।७।४।८६।

नोट—माधवीयधातुवृत्ति में पशि के स्थान में 'पसि' पाठ है। परन्तु काशिका में 'पशि' पाठ भी मिलता है।

गॄ[1] धातु में यङ जुड़ने पर रेफ के स्थान में लकार हो जाता है; जैसे—गर्हितं गिरति इति जेगिल्यते।

नाम-धातु

१६०—जब किसी सुवन्त (संज्ञा आदि) के अनन्तर कोई प्रत्यय जोड़ कर उसे धातु बना लेते हैं, तो उसे नामधातु कहते हैं। नाम संज्ञा को ही कहते हैं, इसीलिए यह नाम पड़ा। नाम धातुओं के विशेष-विशेष अर्थ होते हैं; जैसे—पुत्रीयति (पुत्र+क्यच्)—पुत्र की इच्छा करता है। कृष्णति (कृष्ण+क्विप्)—कृष्ण के समान आचरण करता है; लोहितायते (लोहित+क्यच्)—लाल हो जाता है। मुण्डयति (मुण्ड+णिच्)—मूडता है इत्यादि।

नाम-धातुओं के रूप सभी लकारों में चल सकते हैं, परन्तु बहुधा इनका प्रयोग वर्तमान काल में ही होता है।

नीचे नाम-धातुओं के केवल दो मुख्य प्रत्यय दिए जाते हैं।

१६१—क्यच् प्रत्यय

(क) जिस[2] वस्तु की इच्छा करे, उस वस्तु के सूचक शब्द के अनन्तर क्यच् लगाया जाता है।

(ख) क्यच् (य) जुड़ने के पूर्व शब्द के अन्तिम स्वर में परिवर्तन हो जाता है; अ तथा आ का इ, ई का ई, उ का ऊ, ऋ का री, ओ का अव् और औ का आव्। अन्तिम ङ, ञ्, ण् तथा न् का लोप कर दिया जाता है और पूर्ववर्ती स्वर का ऊपर लिखे नियम के अनुसार परिवर्तन हो जाता है। मकारान्त[3] शब्द के अनन्तर तथा अव्यय के अनन्तर क्यच् जुड़ता ही नहीं।

उदाहरणार्थ—

पुत्रम् आत्मनः इच्छति=पुत्रीयति (पुत्र+क्यच्)—अपने लिए पुत्र की इच्छा करता है। गङ्गाम् आत्मनः इच्छति=गङ्गीयति (गङ्गा+क्यच्)—

---

१ ग्रो यङि।८।२।२०।

२ सुप आत्मनः क्यच्।३।१।८।

३ मान्तप्रकृतिवसुवन्तादव्ययाच्च क्यच् न। वा०। इदमिच्छति, स्वरिच्छति सि० कौ०।

अपने लिए गङ्गा की इच्छा करता है । इसी प्रकार कवीयति (कवि+क्यच्), नदीयति (नदी+क्यच्), विष्णूयति (विष्णु+क्यच्), वधूयति (वधू+क्यच्), कर्त्रीयति (कर्तृ+क्यच्), गव्यति (गो+क्यच्), नाव्यति (नौ+क्यच्); राजीयति (राजन्+क्यच्) इत्यादि ।

(ग) क्यच् प्रत्यय[1] किसी चीज को किसी के समान समझकर या मानकर उसके सम्बन्ध में आचरण करने के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है । इस दशा में जो या जिसके समान समझा जाय अर्थात् जो उपमान हो उसके अनन्तर क्यच् प्रत्यय लगता है और वह उपमान कर्म होना चाहिए; जैसे वह विद्यार्थी को पुत्र समझता है अर्थात् उसके साथ पुत्र का-सा व्यवहार करता है । यहाँ पुत्र के अनन्तर क्यच् प्रत्यय लगेगा—गुरुः छात्रं पुत्रीयति; एवं विष्णूयति द्विजम्—ब्राह्मण को विष्णु के समान समझता है । उपमान के अधिकरण होने पर भी उसमें क्यच् जुड़ता है; जैसे प्रासादीयति कुट्यां भिक्षुः—भिखारी कुटी को महल समझता है; कुटीयति प्रासादे राजा—राजा महल को कुटी समझता है ।

(घ) क्यच् में अन्त होने वाली धातु के रूप परस्मैपद में सब लकारों में चलते हैं, यदि प्रत्यय के पूर्व में व्यंजन हो तो लट्, लोट्, विधि और लङ को छोड़कर शेष लकारों में यकार का लोप कर दिया जाता है; जैसे समिध्यति, समिधिष्यति आदि ।

१६२ क्यङ—

(क) किसी[2] सुवन्त के अनन्तर 'जैसा वह करता है, वैसा ही यह करता है' इस अर्थ का बोध कराने के लिए क्यङ (य) प्रत्यय लगाकर नामधातु बनाते हैं ।

(ख) इसके रूप आत्मनेपद में चलते हैं । इस प्रत्यय के 'य' के पूर्व सुवन्त का अ दीर्घ कर दिया जाता है, दीर्घ आ वैसा ही रहता है और शेष स्वर

१ उपमानादाचारे ।३।१।१०। अधिकरणाच्चेति वक्तव्यम् ।

२ कर्तुः क्यङ सलोपश्च ।३।१।११। ओजसोऽप्सरसो नित्यमितरेषां विभाषया । वा० ।

जैसे क्यच् के पूर्व (१६१ ख) बदलते हैं, वैसे ही बदलते हैं। शब्द के अन्तिम स् का विकल्प से (किन्तु ओजस् और अप्सरस् का नित्य) लोप हो जाता है। उदाहरणार्थ—

कृष्ण इवाचरति=कृष्णायते—कृष्ण के समान आचरण करता है। इसी प्रकार, ओजायते—ओजस्वी के समान आचरण करता है। गर्दभी अप्सरायते—गदही अप्सरा के समान आचरण करती है। यशायते अथवा यशस्यते—यशस्वी के समान आचरण करता है। विद्वायते अथवा विद्वस्यते—विद्वान् के समान आचरण करता है।

(ग) स्त्री-प्रत्ययान्त[1] शब्द का (यदि वह "क" में अन्त न होता हो) स्त्री प्रत्यय गिरा दिया जाता है और शेष में क्यङ जुड़ता है; जैसे, कुमारीव आचरति—कुमारायते, युवतीव आचरति—युवायते।

क[2] में अन्त होने पर स्त्री प्रत्यय का लोप नहीं होता; जैसे—पाचिकेव आचरति—पाचिकायते।

(घ) कर्मभूत[3] रोमन्थ और तपस् शब्दों के अनन्तर वर्तन और चरण अर्थ में क्यङ प्रत्यय जुड़ता है; जैसे, रोमन्थ वर्तयति इति 'रोमन्थायते'; तपश्चरतीति 'तपस्यति'।

(ङ) कर्मभूत[4] वाष्प और ऊष्मा शब्दों के अनन्तर उद्वमन अर्थ में क्यङ जुड़ता है; जैसे, वाष्पमुद्वमतीति 'वाष्पायते'। इसी प्रकार ऊष्माणमुद्वमतीति 'ऊष्मायते'। फेन शब्द के बाद भी इसी अर्थ में क्यङ जुड़ता है; जैसे, फेनमुद्वमतीति 'फेनायते'।

(च) शब्द[5], वैर, कलह, अभ्र, कण्व (पाप) और मेघ के अनन्तर क्यङ जुड़ता है, यदि ये कर्मभूत हों और 'इन्हें करने' का अर्थ प्रकट करना हो; जैसे, शब्दं करोति=शब्दायते। इसी प्रकार वैरायते, कलहायते इत्यादि।

---

१ क्यङ्मानिनोश्च ।६।३।३६।

२ न कोपधायाः ।६।३।३७।

३ कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्तिचरोः ।३।१।१५। (तपसः परस्मैपदं च—वा०)

४ वाष्पोष्मभ्यामुद्वमने ।३।१।१६। फेनाच्चेति वाच्यम्—वा०— ।

५ शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे ।३।१।१७।

(छ) कर्मभूत[1] सुख इत्यादि के अनन्तर भी वेदना या अनुभव अर्थ में क्यङ जुड़ता है (यदि वेदना के कर्ता को ही सुख इत्यादि हों तो); जैसे, सुखं वेदयते=सुखायते । 'परस्य सुखं वेदयत'—यहाँ क्यङ नहीं जुड़ेगा ।

पदव्यवस्था

१६३—ऊपर नियम १३४ (घ) में बता चुके हैं कि संस्कृत भाषा में धातुएँ दो पदों में रक्खी जाती हैं—परस्मैपद और आत्मनेपद । कुछ एक पद की ही होती हैं, कुछ दूसरे की ही और कोई-कोई दोनों पदों की । किन दशाओं में धातु एक पद को छोड़र दूसरे की हो जाती हैं, यह यहाँ दिखाने का प्रयत्न किया जायगा ।

भाववाच्य तथा कर्मवाच्य में धातु केवल आत्मनेपद में रहती है, कर्तृवाच्य में चाहे वह परस्मैपद में हो चाहे आत्मनेपद में ।

दो चार मोटे-मोटे नियम यहाँ दिए जाते हैं—

(क) यदि[2] बुध्, युध्, नश्, जन् (अधिपूर्वक) इङ, प्रु, द्रु तथा स्रु धातुओं का णिजन्त प्रयोग हो तो ये परस्मैपदी होती है; जैसे—छात्रः अधीते, गुरुः छात्रमध्यापयति । इसी प्रकार प्रावयति, स्रावयति, नाशयति, जनयति, द्रावयति, बोधयति, योधयति इत्यादि ।

(ख) कृ[3] धातु उभयपदी है । परन्तु यदि 'अनु' अथवा 'परा' उपसर्ग लगा हो तो केवल परस्मैपदी होती है (अनुकरोति, पराकरोति) । नीचे लिखी दशाओं में वह केवल आत्मनेपद में होती है—

'अधि' उपसर्ग लगाकर क्षमा करने या अधिकार कर लेने के अर्थ में; जैसे, शत्रुमधिकुरुते—वैरी को क्षमा कर देता है अथवा उस पर कब्जा कर लेता है; विपूर्वक होने पर उसका कर्म जब कोई शब्द हो तब; जैसे, स्वरान् विकुरुते

---

१ सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम् ।३।१।१८।

२ बुध्युध्नश्जनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः ।१।३।८६।

३ अनुपराभ्यां कृञः ।१।३।७९। अधेः प्रसहने । वेः शब्दकर्मणः । अकर्मकाच्च ।१।३।३३—३५। गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः ।१।३।३२।

(उच्चारयतीत्यर्थः) शब्द से भिन्न कर्म होने पर परस्मैपदी ही होगी; जैसे= चित्तं विकरोति कामः । अकर्मक होने पर भी आत्मनेपदी होगी; जैसे छात्रा विकुर्वते—विकारं लभन्ते । जब गन्धन (हिंसा, हानि पहुँचाना), अवक्षेपण (निन्दा, भर्त्सना), सेवन, साहसिक कर्म, प्रतियत्न (किसी गुण का स्थापन), प्रकथन अथवा धर्मार्थ में लग जाने के बाद कोई उपसर्ग जोड़ कर कराया जाय, तब भी कृ आत्मनेपदी होगी; जैसे—

उत्कुरुते (सूचना देता है—सूचना देकर हानि पहुँचाता है) । श्येनो वर्तिकामुदाकुरुते । (बाज बटेर को डराता है) । हरिमुपकुरुते (विष्णु की सेवा करता है) । परदारान् प्रकुर्वते (वे पराई स्त्रियों पर साहस से अत्याचार करते हैं) । एधः उदकस्य उपस्कुरुते (इंधन पानी की शीतलता ले लेता है) गाथाः प्रकुरुते (गाथाएँ कहता है) । शतं प्रकुरुते (सौ रुपए धर्मार्थ लगाता है) ।

(ग) क्रम[1] धातु उभयपदी है, किन्तु अप्रतिहत गति, उत्साह तथा स्फीतता (स्पष्टता) के अर्थों में आत्मनेपदी होती है और इन्हीं अर्थों में उप और परा के साथ भी आत्मनेपदी होती है । जैसे:—ऋचि क्रमते बुद्धिः (न प्रतिहन्यते); अध्ययनाय क्रमते (उत्सहते); क्रमन्तेऽस्मिन् शास्त्राणि (स्फीतानि भवन्ति) । इसी प्रकार उपक्रमते और पराक्रमते प्रयोग भी होंगे । आङ के साथ सूर्य आदि के निकलने के अर्थ में ('सूर्यः आक्रमते' उदयते इत्यर्थः) प्र और उप के साथ आरंभ करने के अर्थ में भी आत्मनेपद (वक्तुं प्रक्रमते-उपक्रमते) में ही होती है ।

(घ) क्री[2] के पूर्व यदि अव, परि अथवा वि हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है; जैसे—अवक्रीणीते, परिक्रीणीते, विक्रीणीते ।

(ङ) क्रीड्[3] धातु के पूर्व यदि अनु, आ, परि अथवा सम् में से कोई उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है; जैसे—अनु-परि-आ-सं-क्रीडते ।

---

१ वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः । उपराभ्याम आङ उद्गमने (ज्योतिरुद्गमन इति वाच्यम्) ।१।३।३८।—४० । प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् ।१।३।४२।

२ परिव्यवेभ्यः क्रियः ।१।३।१८।

३ क्रीडोऽनुसम्परिभ्यश्च ।१।३।२१।

(च) क्षिप्[1] के पूर्व यदि अभि, प्रति, अति में से कोई उपसर्ग हो तो वह परस्मैपदी होती है; जैसे—अभि-अति-प्रति-क्षिपति ।

(छ) गम्[2] के पूर्व यदि 'सम्' उपसर्ग हो और वह अकर्मक हो तथा मिलने या उपयुक्त होने का अर्थ दिखाता हो तो आत्मनेपदी हो जाती है; जैसे सखीभिः सङ्गच्छते—सखियों से मिलती है । इयं वार्ता संगच्छते—यह वात ठीक है । सकर्मक होने पर परस्मैपदी ही होगी; जैसे—ग्रामं संगच्छति । इसी प्रकार सम् पूर्वक ऋच्छ् भी आत्मनेपदी होती है; जैसे—समृच्छिष्यते ।

(ज) चर्[3] के पूर्व यदि उद् उपसर्ग हो और धातु सकर्मक हो जाय अथवा सम्-पूर्वक हो और तृतीयान्त शब्द के साथ हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है; जैसे, धर्ममुच्चरते—धर्म के विपरीत करता है; किन्तु, वाष्पमुच्चरति—आँसू निकालता है; रथेन सञ्चरते—रथ पर चलता है ।

(झ) जि[4] के पूर्व यदि 'वि' अथवा 'परा हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है; जैसे शत्रून् विजयते, पराजयते वाः अध्ययनात् पराजयते—पढ़ने से हार जाता है ।

(ञ) ज्ञा[5], श्रू, स्मृ तथा दृश् धातुएँ सन्नन्त होने पर आत्मनेपदी हो जाती हैं; जैसे—धर्मं—जिज्ञासते, शुश्रूषते, सुस्मूर्षते; विष्णुं दिदृक्षते । नीचे लिखी दशाओं में भी ज्ञा धातु आत्मनेपदी होती है—

यदि 'अप' पूर्वक हो तो अपह्नव (इनकारी) का अर्थ वताती हो (शतमपजानीते—सौ रुपयों से इनकार करता है), यदि सकर्मक हो (सर्पिषो जानीते), यदि 'प्रति'-पूर्वक हो तथा प्रतिज्ञा का अर्थ बताती हो (शतं प्रतिजानीते —सौ रुपये की प्रतिज्ञा करता है), यदि 'सम्'-पूर्वक हो तथा आशा करने के अर्थ में प्रयुक्त हुई हो (शतं सञ्जानीते—सौ रुपये की आशा करता है) ।

---

१ अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः १।३।८०।

२ समो गम्यृच्छिभ्याम् ।१।३।२६।

३ उदश्चरः सकर्मकात् । समस्तृतीयायुक्तात् ।१।३।५३,५४।

४ विपराभ्यां जेः ।१।३।१६।

५ ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः ।१।३।५७। अपह्नवे ज्ञः । अकर्मकाच्च । सम्प्रतिभ्यामनाध्याने ।१।३।४४—४६।

(ट) दा[1] के पूर्व यदि आङ उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी होती है, किन्तु मुँह खोलने के अर्थ में नहीं; जैसे—नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्; किन्तु, सुखं व्याददाति ।

(ठ) 'सम्'[2] पूर्वक ऋ, श्रु तथा दृश् धातुएँ यदि अकर्मक हों तो आत्मनेपदी होती हैं, जैसे, सम्पश्यते—भली प्रकार सोचता है; संश्रृणुते—अच्छी प्रकार सुनता है; मा समरत ।

(ड) नी[3] धातु से जब सम्मान करने, उठाने उपनयन करने, ज्ञात करने, वेतन दे कर काम में लगाने, कर (टैक्स) आदि अदा करने (चुकाने) अथवा भले कार्य में खर्च करने का अर्थ निकलता हो तो वह आत्मनेपदी होती है; जैसे—(क्रम से) शास्त्रे शिष्यं नयते (शिष्य को शास्त्र पढ़ाता है—इससे उसका सम्मान होगा); दण्डमुन्नयते (डंडा ऊपर उठाता है); माणवकमुपनयते (लड़के का उपनयन करता है); तत्त्वं नयते (तत्त्व का निश्चय करता है अर्थात् ज्ञान प्राप्त करता है); कर्मकरानुपनयते (मजदूर लगाता है); करं विनयते (टैक्स चुकाता है); तथा शतं विनयते (सौ रुपये अच्छी तरह खर्च करता है) ।

(ढ) प्रच्छ्[4] धातु के पूर्व 'आ' लगाकर जब अनुमति लेने का अर्थ निकालना हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है; जैसे—(आपृच्छस्व प्रियसखममुम्) (इस प्रिय मित्र से जाने की अनुमति ले लो ।) (सम्' लगा कर जब यह धातु अकर्मक होती है, तब भी आत्मनेपदी हो जाती है (सम्पृच्छते) । आपूर्वक नु धातु भी आत्मनेपदी होती है; जैसे—आनुते ।

(ण) भुज्[5] धातु रक्षा करने के अर्थ में परस्मैपदी होती है; अन्य सब अर्थों में आत्मनेपदी; जैसे—महीं भुनक्ति (पृथ्वी की रक्षा करता है) महीं बुभुजे (पृथ्वी का भोग किया)।

---

१ आङो दोऽनास्यविहरणे ।१।३।२०।।

२ अर्तिश्रुदृशिभ्यश्चेति वक्तव्यम् । वा० ।

३ सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नियः ।१।३।३६।

४ आङि नुप्रच्छयोः । वा० ।

५ भुजोऽनवने ।१।३।६६।

(त) रम्[1] आत्मनेपदी धातु है किन्तु वि, आङ, परि और उप उपसर्गों के अनन्तर परस्मैपदी हो जाती है; जैसे—वत्सैतस्माद्विरम, आरमति, परिमति, यज्ञदत्तम् उपरमति (रमयति) । किन्तु जब उपपूर्वक रम् धातु अकर्मक होती है तो विकल्प से आत्मनेपदी भी होती है; जैसे—स उपरमति, उपरमते वा (निवर्तते) ।

(थ) वद्[2] नीचे लिखे अर्थों में आत्मनेपदी होती है—

भासन (चमकना)—शास्त्रे वदते (शास्त्र में चमकता है, अर्थात् इतना विद्वान् है कि चमकता है), उपसम्भाषा (मेल मिलाप करना, शांत करना) भृत्यानुपवदते (नौकरों को समझा कर शान्त करता है), ज्ञान—शास्त्रे वदते (शास्त्र जानता है), यत्न—क्षेत्रे वदते (खेत में उद्योग करता है), विमति—परस्परं विवदन्ते स्मृतियः (स्मृतियाँ परस्पर झगड़ा करती हैं), उपमन्त्रण—दातारम् उपवदते (दाता की प्रशंसा करता है), अपपूर्वक निन्दा करने के अर्थ में —अपवदते (निन्दा करता है) ।

(द) विश्[3] धातु के पूर्व यदि 'नि' अथवा 'अभिनि' उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है; जैसे—निविशते, अभिनिविशते ।

(ध) 'आ'[4] अथवा 'प्रति' के अनन्तर श्रु परस्मैपदी ही रहती है (आशुश्रूषति, प्रतिशुश्रूषति) ।

(न) स्था[5] धातु के पूर्व यदि सम्, अव, प्र और वि में से कोई उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है; जैसे—संतिष्ठते, अवतिष्ठते, प्रतिष्ठते और वितिष्ठते । प्रतिज्ञा करने के अर्थ में 'आङ' पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होती है;

---

१ व्याङ्परिभ्यो रमः । उपाच्च । विभाषाऽकर्मकात् ।१।३।८३—८५ ।

२ भासनोपसंभाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वदः ।१।३।४७।
अपाद्वदः ।१।३।७३।

३ नेर्विशः ।१।३।१७।

४ प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः ।१।३।५९।

५ समवप्रविभ्यः स्थः ।१।३।२२। आङ प्रतिज्ञायामुपसंख्यानम् । वा०। उदोऽनूर्ध्वकर्मणि ।१।३।२४। उपाद्देवपूजासङ्गतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम् । वा०। वा लिप्सायाम् । वा० ।

जैसे—शब्दं नित्यम् आतिष्ठते (शब्द नित्य है यह प्रतिज्ञा करता है) 'उद्'-पूर्वक स्था धातु का यदि 'ऊपर उठना' अर्थ न हो तथा उप-पूर्वक उसका देवपूजा मिलना, मित्र बनाना, सड़क का जाना अर्थ हो तो नित्य रूप से तथा लिप्सा अर्थ हो तो विकल्प से आत्मनेपदी होती है।

मुक्तावुत्तिष्ठते, (किन्तु पीठादुत्तिष्ठति); आदित्यमुपतिष्ठते (सूर्य को पूजता है); गङ्गा यमुनामतिष्ठते (गङ्गा यमुना से मिलती है); रथिकानुपतिष्ठते (रथवालों से मित्रता करता है); पन्थाः काशीमुपतिष्ठते (रास्ता काशी को जाता है); भिक्षुकः प्रभुमुपतिष्ठते, उपतिष्ठति वा (भिखारी 'लालाच से' मालिक के पास जाता है)।

एकादश सोपान

कृदन्त-विचार

१६४—धातु[1] में जिस प्रत्यय को जोड़ कर संज्ञा, विशेषण अथवा अव्यय बनता है, उसको कृत् प्रत्यय कहते हैं और इसके द्वारा जो शब्द सिद्ध होता है, उसको कृदन्त (जिसके अन्त में कृत् हो) कहते हैं, जैसे—कृ धातु से तृच् प्रत्यय जोड़कर 'कर्तृ' शब्द बना। यहाँ तृच् कृत् प्रत्यय है और 'कर्तृ' कृदन्त है। यह संज्ञा है और इसके रूप अन्य संज्ञाओं की तरह विभक्तियों में चलेंगे।

कृत्[2] और तिङ प्रत्ययों में यह अन्तर है कि कृदन्त संज्ञा, विशेषण अथवा अव्यय होते हैं, क्रिया नहीं, किन्तु तिङन्त सदा क्रिया ही होते हैं। कृत और तद्धित में यह अन्तर है कि तद्धित सदा किसी सिद्ध संज्ञा, विशेषण, अव्यय अथवा क्रिया के अनन्तर जोड़कर अन्य संज्ञा, विशेषण, अव्यय, क्रिया आदि बनाने के लिए होता है, किन्तु 'कृत्' धातु में ही जोड़ा जाता है।

जो कृदन्त संज्ञा अथवा विशेषण होते हैं, उनके रूप चलते हैं और जो अव्यय होते हैं, वे एकरूप रहते हैं; जैसे—गम् धातु से तृच् लगाकर गन्तृ बना; इसके रूप चलेंगे, किन्तु क्त्वा लगाकर गत्वा बनने पर यह सर्वदा एकरूप रहेगा।

कोई-कोई कृदन्त भी कभी-कभी क्रिया का काम देते हैं; जैसे—स गतः (वह गया) में 'गतः' शब्द। वस्तुतः यह विशेषण है और इस वाक्य में क्रिया छिपी हुई है—स गतः (अस्ति)।

इसमें प्रमाण यह है कि विशेषण के लिङ्ग, वचन और कारक वही होते हैं, जो उसके विशेष्य के; और यहाँ पर 'गतः' पद (पुंल्लिङ्ग का प्रथमा एकवचन का रूप) 'सः' के कारण ही सम्भव हो सकता है।

कृत् प्रत्ययों के मुख्य तीन भेद हैं:—कृत्य, कृत् और उणादि।

---

१ धातोः ।३।१।९१।

२ कृदतिङ ।३।१।९३।

कृत्य प्रत्यय

१६५—कृत्य[1] प्रत्यय सात हैं—तव्यत्, तव्य, अनीयर्, केलिमर्, यत्, क्यप्, ण्यत् । ये[2] प्रत्यय सदा भाववाच्य और कर्मवाच्य में ही प्रयुक्त होते हैं, कर्तृवाच्य में नहीं । ये विभिन्न[3] अर्थों में भी प्रयुक्त होते हैं । अँगरेजी में जो काम पोटेंशल् पार्टिसिप्ल (Potential Participle) से लिया जाता है, वही काम संस्कृत-प्रत्ययान्त शब्द करते हैं । इनको संज्ञाओं के विशेषण स्वरूप भी प्रयोग में लाते हैं, जैसे पक्तव्याः माषाः—उड़द जो पकाये जाने चाहिए; कर्तव्यं कर्म—वह काम जिसे करना चाहिए; प्राप्तव्या सम्पत्तिः—वह सम्पत्ति जिसे प्राप्त करना चाहिए; गन्तव्या नगरी—वह नगरी जहाँ जाना चाहिए; स्नानीयं चूर्णम्—वह चूर्ण जिससे स्नान किया जाय; दानीयो विप्रः—दान देने योग्य ब्राह्मण इत्यादि । इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि हिन्दी में जो अर्थ 'चाहिए' 'योग्य' इत्यादि द्वारा प्रकट किया जाता है, प्रायः वही संस्कृत में कृत्य-प्रत्ययान्त शब्द द्वारा होता है । 'चाहिए' वाला भाव कर्तृवाच्य में वहुधा विधिलिङ से भी सूचित होता है; जैसे रामः सीतां पुनः गृह्णीयात्—राम को चाहिए कि सीता को फिर ग्रहण करें अथवा राम को योग्य है कि सीता को फिर ग्रहण करें; भृत्यः स्वामिनं सेवेत—नौकर मालिक की सेवा करे, नौकर को मालिक की सेवा करनी चाहिए अथवा करनी योग्य है, इंत्यादि । यदि इस प्रकार की विधिलिङ की क्रिया को कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य में पलटना हो तो कृत्यान्त शब्द प्रयोग में लाना चाहिए; जैसे, रामेण सीता पुनर्ग्रहीतव्या, भृत्येन स्वामी सेवनीयः आदि । ऊपर कह आये हैं कि कृदन्त क्रिया नहीं होते, इन प्रयोगों में भी 'ग्रहीतव्या' और 'सेवनीयः' क्रिया नहीं है, किन्तु विशेषण हैं । अँगरेजी में इनको प्रेडिकेटिव् ऐड्जेक्टिव् (Predicative adjective) कहते हैं । कृत्यान्त शब्दों के रूप संज्ञाओं की तरह तीनों लिङ्गों में चलते हैं—पुंल्लिङ्ग और नपुंसक में अकारान्त और स्त्रीलिङ्ग में आकारान्त ।

---

१ कृत्याः ।३।१।९५।

२ तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ।३।४।७०।

३ कृत्यल्युटोबहुलम् ।३।३।११३।

१६६—तव्यत्[1] (तव्य), तव्य, अनीयर् (अनीय) और केलिमर्—(एलिम) ये प्रायः सब धातुओं में लगाये जा सकते हैं। तव्यत् और तव्य में कोई विशेष अन्तर नहीं है, तव्यत् के त् से केवल इतना सूचित होता है कि इस प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द 'स्वरित' होते हैं, इसी प्रकार 'अनीयर्' के र् से सूचित होता है कि अनियर् में अन्त होने वाले शब्द मध्योदात्त होते हैं। किन्तु स्वर की बारीकियाँ केवल वैदिक संस्कृत में काम आती हैं, भाषा की संस्कृत में नहीं। इसलिए तव्यत् और तव्य को बराबर ही समझना चाहिए और अनीयर् को 'अनीय्'। केलिमर् के क् और र् का लोप हो जाता है और केवल 'एलिम' धातुओं में जोड़ा जाता है। यह प्रत्यय प्रायः कुछ सकर्मक धातुओं में ही जुड़ा हुआ प्रयोग में मिलता है।

इन प्रत्ययों के पूर्व धातु के अन्तिम स्वर का अथवा यदि अन्तिम स्वर न हो तो उपधा वाले ह्रस्व का गुण हो जाता है और साधारण सन्धि के नियम लगते हैं। जो धातुएँ सेट् होती हैं, उनमें प्रत्यय और धातु के बीच में इ आ जाती है; जो अनिट् होती हैं उनमें नहीं; और जो वेट होती हैं, उनमें विकल्प से आती है। उदाहरणार्थ कुछ रूप दिए जाते हैं—

धातु	तव्य	अनीय	एलिम
पठ्	पठितव्य	पठनीय	
भू	भवितव्य	भवनीय	
गम्	गन्तव्य	गमनीय	
नी	नेतव्य	नयनीय	
चि	चेतव्य	चयनीय	
चर्	चरितव्य	चरणीय	
दा	दातव्य	दानीय	
भुज्	भोक्तव्य	भोजनीय	
अद्	अत्तव्य	अदनीय	
भक्ष्	भक्षितव्य	भक्षणीय	
शंस्	शंसितव्य	शंसनीय	

१ तव्यत्तव्यानीयरः ।३।१।६२। केलिमर उपसंख्यानम् । वा० ।

धातु	तव्य	अनीय	एलिम
सृज्	स्रष्टव्य	सर्जनीय	
छिद्	छेतव्य	छेदनीय	छिदेलिम
भिद्	भेत्तव्य	भेदनीय	भिदेलिम
पच्	पक्तव्य	पचनीय	पचेलिम
कथ्	कथितव्य	कथनीय	
चुर्	चोरितव्य	चोरणीय	
पूज्	पूजितव्य	पूजनीय	
जिगमिष्	जिगमिषितव्य	जिगमिषणीय	
बुबोधिष्	बुबोधिषितव्य	बुबोधिषणीय, इत्यादि ।	

१६७—कृत्य[1] प्रत्यय यत् (य) केवल ऐसी धातुओं में जोड़ा जाता है जिनके अन्त में कोई स्वर हो अथवा जिनके अन्त में पवर्ग का कोई वर्ण हो और उपधा में अंकार हो ।

यत् के पूर्व स्वर को गुण होता है । यदि[2] आ हो तो उसके स्थान पर पहले ई हो जाती है और फिर गुण (ए) होता है । यत् के पूर्व यदि धातु का अन्तिम स्वर ए, ऐ, ओ अथवा औ हो तो, वह ई हो जाता है और फिर गुण होता है; जैसे—

दा+यत्=द्+ई+य	=द्+ए+य	= देय
धा+यत्=धी+य	= धे+य	= धेय
गै+यत्=गी+य	= गे+य	= गेय
छो+यत्=छी+य	= छे+य	= छेय
चि+यत्=चे+य		= चेय
नी+यत्=ने+य		= नेय
शप्+यत्=शप्+य		= शप्य
जप्+यत्=जप्+य		= जप्य
लप्+यत्=लप्+य		= लप्य
लभ्+यत्=लभ्+य		= लभ्य

१ अचो यत् ।३।१।९७। पोरदुपधात् ।३।१।९८।

२ ईद्यति ।६।४।६५।

आ+लभ्+यत् =आलम्भ्य

उप+लभ्+यत् =उपलम्भ्य

यदि[1] लभ् धातु के पूर्व आ उपसर्ग हो अथवा प्रशंसा-वाचक उप उपसर्ग हो और आगे यकारादि प्रत्यय हो तो बीच में नुम् (न्=म्) आ जाता है; जैसे, 'उपलम्भ्यः साधुः' अर्थात् साधु प्रशंसनीय होता है। प्रशंसा या स्तुति का अर्थ न होने पर 'उपलभ्य' ही रूप बनेगा। इसका अर्थ 'उलाहना योग्य' होगा।

इसके अतिरिक्त यत् प्रत्यय कुछ और व्यञ्जनान्त धातुओं में लगता है, जिनमें मुख्य ये हैं—

[2]तक (हँसने)—तक्य। शस् (हिंसायाम्)—शस्य। चते (याचने) —चत्य। यत्—सत्य। जनृ—जन्य।

[3]हन्—वध्य (यत् के पूर्व हन् का रूप वध् हो जाता है)। इसमें विकल्प से ण्यत् लगकर 'घात्य' भी बनता है। [4]शक्—शक्य; सह—सह्य; [5]गद्—गद्य; मद्—मद्य; चर्—चर्य; यम्—यम्य।

[6]वह+यत्=वह्य शकटम् (वहन्ति अनेनेति) अर्थात् ढोने की गाड़ी।

[7]ऋ+यत्=अर्य अर्थात् स्वामी या वैश्य। इन्हीं अर्थों में 'ऋ' में 'यत्' लगेगा। ब्राह्मण के लिए प्रयोग होने पर 'आर्य' (प्राप्तव्य इत्यर्थः) होगा।

[8]न+जॄ+यत्=अजर्य—यह तभी बनेगा जब जॄ के पूर्व नञ् हो और सिद्ध शब्द संगत का विशेषण हो; जैसे 'अजर्यं (स्थायि, अविनाशि वा) सङ्गतम्'।

१६८—क्यप् (य) कुछ ही धातुओं में लगता है। इसके पूर्व यदि धातु का अन्तिम स्वर ह्रस्व हो तो उसके उपरान्त अर्थात् धातु और प्रत्यय के बीच

१ आङो यि। उपात्प्रशंसायाम् ।७।१।६५—६६।।

२ तकिशसिचतियतिजनिभ्यो यद्वाच्यः। वा०।

३ हनो वा यद्वधश्च वक्तव्यः। वा०।

४ शकिसहोश्च ।३।१।९९।

५ गदमदचरयमश्चानुपसर्गे ।३।१।१००।

६ वह्यं करणम् ।३।१।१०२।

७ अर्यः स्वामिवैश्ययोः ।३।१।१०३।

८ अजर्यं संगतम् ।३।१।१०५।

में त् आ जाता है, जैसे—स्तु+क्यप्=स्तु+त्+य=स्तुत्य । इसके साथ गुण नहीं होता ।

जिन 'धातुओं'[१] में क्यप् लगता है, उनमें ये मुख्य हैं—

इ (जाना)	+	क्यप्	=	इत्य (जाने योग्य)
स्तु		,,	=	स्तुत्य
शास्		,,	=	शिष्य
वृ		,,	=	वृत्य (वरणीय)
दृ		,,	=	(आ+) दृत्य (आदरणीय)
जुष्		,,	=	जुष्य (सेव्य)
मृज्		,,	=	मृज्य (पवित्र करने योग्य)
भृ		,,	=	भृत्य (नौकर)
कृ		,,	=	कृत्य
वृष्		,,	=	वृष्य (सींचने योग्य)

नोट—मृज्, भृ, कृ तथा वृष् में विकल्प से ही क्यप् लगता है । क्यप् न लगने पर ण्यत् लगेगा और क्रमशः मार्ग्य, भार्या, कार्य तथा वर्ष्य शब्द बनेंगे ।

१६६—ऐसी[२] धातुएँ जिनका अन्तिम वर्ण ऋकार अथवा व्यञ्जन हो, उनके उपरान्त कृत्य प्रत्यय ण्यत् (य) लगता है । इसके पूर्व धातु के स्वर की वृद्धि हो जाती है । यदि उपधा में अकार हो, तो उसकी (आ) वृद्धि हो जाती है और यदि कोई स्वर हो, तो वह बहुधा गुण को प्राप्त होता है ।

ण्यत्[३] तथा घित् (जिसमें घ इत् हो) प्रत्यय लगने पर पूर्व के च् और ज् के स्थान में क् और ग् यथाक्रम हो जाते हैं; किन्तु[४] यदि धातु कवर्ग से आरम्भ होती हो (जैसे गर्ज), तो यह परिवर्तन न होगा ।

१ एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् ।३।१।१०९। मृजेर्विभाषा ।३।१।११३। भृञोऽसंज्ञायाम् ।३।१।११२। विभाषा कृवृषोः ।३।२।१२०।

२ ऋहलोर्ण्यत् ।३।१।१२४।

३ चजोः कुघिण्यतोः ।७।३।५२।

४ न क्वादेः ।७।३।५९।

'यत्' का विचार करते समय कह आए हैं कि 'स्वरान्त धातुओं के अनन्तर यत् लगता हैं', किन्तु यहाँ 'ऋकारान्त धातुओं के उपरान्त ण्यत् लगता हैं'—ऐसा नियम रक्खा गया है। इससे सिद्ध हुआ कि ऋकारान्त धातुओं को छोड़ कर अन्य स्वरान्त धातुओं में यत् लगता है, ऋकारान्त में ण्यत्। इसी प्रकार उन व्यंजनान्त धातुओं को छोड़ कर जिनमें यत् और क्यप् लगता है, शेष में ण्यत् लगता है। उदाहरणार्थ—

कृ+ण्यत्=क्+आर् (वृद्धि)+य=कार्य।

पठ्+ण्यत्=प्+आ+ठ्+य=पाठ्य (उपधा के अ को वृद्धि)।

वृष्+ण्यत्=व्+अर्+ष्+=वर्ष्य (उपधा के ऋ को गुण)।

पच्=ण्यत्+प+आ+क्+य=पाक्य—पकाने योग्य (उपधा के अ की वृद्धि और च् को क्)।

मृज्+ण्यत्=म्+आर्+ग+य=मार्ग्य—पवित्र करने योग्य (उपधा के ऋ की वृद्धि और ज् को ग्)।

च[1] और ज का क् और ग् हो जाने वाला नियम यज्, याच्, रुच्, प्रवच्, ऋच्, त्यज् धातुओं में नहीं लगता—याज्य (यज्ञ में देने योग्य, पूज्य), याच्य (माँगने योग्य), रोच्य (प्रकाश करने योग्य), प्रवाच्य (ग्रन्थविशेष——सि० कौ०), अर्च्य (पूज्य), त्याज्य।

भुज्[2] के दोनों रूप वनते हैं—भोग्य (भोग करने योग्य) और भोज्य (खाने योग्य); वच्[3] के भी वाच्य (कहने योग्य) और वाक्य (पद-समूह)—ये दो रूप होते हैं।

उपरान्त[4] अथवा ऊकारान्त धातुओं के अनन्तर भी ण्यत् प्रत्यय लगता है (यदि आवश्यकता का बोध कराना हो, तो); जैसे—

श्रू+ण्यत्=श्राव्य (अवश्य सुनने योग्य)

पू+ण्यत्=पाव्य (अवश्य पवित्र करने योग्य)

---

१ यजयाचरुचप्रवचर्चश्च ।७।३।६६। त्यजेश्च वा०।

२ भोज्यं भक्ष्ये ।७।३।६९। भोग्यमन्यत्।

३ वचोऽशब्दसंज्ञायाम् ।७।३।६७।

४ ओरावश्यके ।३।१।१२५।

यु+ण्यत्=याव्य (अवश्य मिलाने योग्य)
लू+ण्यत्=लाव्य (अवश्य काटने योग्य)

१७०—ऊपर[1] कह आए हैं कि कृत्यप्रत्ययान्त शब्द भाववाच्य और कर्मवाच्य में ही प्रयोग में आते हैं; किन्तु थोड़े से ऐसे शब्द हैं, जो कृत्यान्त होते हुए भी कर्तृवाच्य में भी प्रयुक्त होते हैं। वे ये हैं—

वस्+तव्य=वास्तव्यः (वसने वाला)—इस अर्थ में णिच् भी हो जाता है, जिसके कारण वृद्धि रूप 'वास्' हो गया।

भू+यत्=भव्यः (होने वाला)
गै+यत्=गेयः (गाने वाला)
प्रवच्+अनीयर्=प्रवचनीयः (व्याख्यान करने वाला)
उपस्था+अनीयर्=उपस्थानीयः (निकट होने वाला)
जन्+यत् =जन्यः (पैदा करने वाला)
आप्लु+ण्यत् =आप्लाव्यः (तैरने वाला)
आपत्+ण्यत् =आपात्यः (गिरने वाला)

भव्य से लेकर आपात्य तक के शब्द विकल्प से कर्तृवाच्य में प्रयुक्त होते हैं। कृत्यान्त होने के कारण कर्म और भाववाच्य में तो प्रयुक्त होते ही हैं; जैसे, गेयः साम्नामयम्=यह साम का गाने वाला है (कर्तृवाच्य); गेयं सामानेन (कर्मवाच्य)। इसी प्रकार भव्योऽयं भव्यमनेन वा। अन्य के विषय में भी इसी प्रकार जान लेना चाहिए।

कृत् प्रत्यय

१७१—यद्यपि कृत् से कृत्य, कृत् और उणादि तीनों प्रकार के प्रत्ययों का बोध होता है, तथापि कृत्य और उणादि के अलग होने के कारण, शेष कृत् प्रत्ययों को ही भेद प्रकट करने के लिए कभी-कभी कृत् कहते हैं। इन कृत् प्रत्ययों में कुछ ऐसे हैं, जिनके रूप चलते हैं, कुछ के नहीं। जिनके रूप नहीं चलते, उनके

---

१ वसेस्तव्यत्कर्तरि णिच्च। वा०। भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा।३।४।६८।

विषय में ऐसा स्पष्ट उल्लेख कर दिया जायगा। शेष के रूप चलते हैं; ऐसा समझना चाहिए।

भूतकाल के कृत् प्रत्यय

१७२—भूतकाल के कृत् प्रत्ययों को अंग्रेजी में पास्ट् पार्टिसिप्ल् (Past Participle) कहते हैं। इस[1] अर्थ में प्रधानतः दो प्रत्यय हैं—क्त (त) और क्तवतु (तवत्); इन दोनों प्रत्ययों को "निष्ठा" कहते हैं। निष्ठा शब्द का यौगिक अर्थ है—'समाप्ति'। क्त और क्तवतु किसी कार्य की समाप्ति का बोध कराते हैं, इसीलिए इनको निष्ठा (समाप्ति) कहते हैं; जैसे, 'तेन भुक्तम्'—यहाँ भुज् धातु में क्त प्रत्यय लगाने से यह तात्पर्य निकला कि भोजन का कार्य समाप्त हो गया; सोऽपराधं कृतवान्—यहाँ क्तवतु प्रत्यय से यह निश्चय हुआ कि उसने अपराध कर डाला—करने का कार्य समाप्त हो गया। सारांश यह कि क्त और क्तवतु समाप्तिबोधक प्रत्यय हैं। ये दोनों प्रत्यय प्रायः सभी धातुओं के अनन्तर भूत काल अथवा समाप्ति का अर्थ बताने के लिए लगाए जाते हैं। इनके क् और उ लोप हो जाता है और 'त' तथा 'तवत्' शेष रह जाते हैं। इनके रूप तीनों लिङ्गों में और सातों विभक्तियों में विशेष्य के अनुसार होते हैं। यदि विशेष्य पुंल्लिङ्ग हुआ तो पुंल्लिङ्ग, स्त्री० और नपुंसक० तो स्त्री० नपुंसक०। क्त-प्रत्ययान्त शब्द पुंल्लिङ्ग और नसपुंकलिङ्ग में अकारान्त, और स्त्रीलिङ्ग में आकारान्त होते हैं। क्तवतु में अन्त होने वाले शब्द पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में तकारान्त (श्रीमत् के समान) और स्त्रीलिङ्ग में ईकारान्त (नदी के समान) होते हैं। उदाहरणार्थ नीचे कुछ धातुओं के क्तान्त और क्तवन्त रूप तीनों लिङ्गों में प्रथमा के एकवचन में दिए जाते हैं—

क्त-प्रत्ययान्त

पुं०	न०	स्त्री०
पठ्—पठितः	पठितम्	पठिता
स्ना—स्नातः	स्नातम्	स्नाता
पा—पातः	पातम्	पाता

---

१ भूते।३।२।८४। क्तक्तवतू निष्ठा।१।१।२६।

भू—भूतः	भूतम्	भूता
कृ—कृतः	कृतम्	कृता
त्यज्—त्यक्तः	त्यक्तम्	त्यक्ता
तृप्—तृप्तः	तृप्तम्	तृप्ता
शक्—शक्तः	शक्तम्	शक्ता
सिच्—सिक्तः	सिक्तम्	सिक्ता

क्तवतु-प्रत्ययान्त

पठितवान्	पठितवत्	पठितवती
स्नातवान्	स्नातवत्	स्नातवती
पातवान्	पातवत्	पातवती
भूतवान्	भूतवत्	भूतवती
कृतवान्	कृतवत्	कृतवती
त्यक्तवान्	त्यक्तवत्	त्यक्तवती
तृप्तवान्	तृप्तवत्	तृप्तवती
शक्तवान्	शक्तवत्	शक्तवती
सिक्तवान्	सिक्तवत्	सिक्तवती

(१) निष्ठा[1] प्रत्ययों के पूर्व जिन धातुओं में संप्रसारण होता है, उनमें निष्ठा प्रत्यय जुड़ने पर भी संप्रसारण हो जाता है, अर्थात् यदि प्रथम वर्ण य, र, ल, व हों, तो उसके स्थान में क्रम से इ, ऋ, लृ, उ हो जाते हैं; जैसे ब्रू+क्त=वच्+त=उक्त, ब्रू+क्तवतु=वच्+तवत्=उक्तवत्, वस्+क्त=उषित, वस्+क्तवतु=उषितवत् ।

(२) यदि[2] निष्ठा प्रत्यय ऐसी धातु के उपरान्त आवे जिसके अन्त में र् अथवा द् हो (और निष्ठा तथा धातु के बीच में सेट् अथवा वेट् की "इ" न आवे, जैसे—चर्+क्त=चर्+इ+त=चरित) तो निष्ठा के त् के स्थान में न् हो जाता है और उसके पूर्व के द् को भी न् हो जाता है; जैसे—शृ से शीर्ण,

१ इग्यणः सम्प्रसारणम् ।१।१।४५।

२ रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ।८।२।४२।

शीर्णवत्; जृ से जीर्ण, जीर्णवत्; छिद् से छिन्न, छिन्नवत्; भिद् से भिन्न, भिन्नवत् ।

संयुक्ताक्षर[1] से आरम्भ होने वाली और आकार में अन्त होने वाली तथा कहीं न कहीं य्, र्, ल्, व् में से कोई अक्षर रखने वाली धातु की निष्ठा के त को भी न हो जाता है, जैसे—म्लान, ग्लान, स्त्यान, गान, घ्यान । किन्तु कुछ में नहीं भी होता—ख्यात, घ्यात आदि ।

१७३—क्तवतु[2] प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द सदा कर्तृवाच्य में प्रयोग में आते हैं, अर्थात् कर्ता (Agent) के विशेषण होते हैं; जैसे—स भुक्तवान्, भुक्तवत्सु तेषु, इत्यादि । खल्[3] तथा कृत्य प्रत्ययों की ही भाँति क्त प्रत्यय भी कर्मवाच्य और भाववाच्य में प्रयुक्त होता है, अर्थात् कर्म (Object) का विशेषण होता है; जैसे—तेन भुक्तम्, रामेण सीता त्यक्ता, तेन, गतम्, दत्तं धनम् (दिया हुआ धन) । परन्तु[4] गत्यर्थक धातुओं में तथा अकर्मक धातुओं में का 'क्त' कर्तृवाच्य के अर्थ में भी प्रयोग में आता है; जैसे—स गतः, चलितः, ग्लानः । इसी प्रकार श्लिष्, शी, स्था, आस्, वस्, जन्, रुह्, तथा जॄ धातुओं के क्तान्त शब्द भी कर्तृवाच्य का बोध कराते हैं—लक्ष्मीमाश्लिष्टो हरिः=हरि ने लक्ष्मी का आलिङ्गन किया; हरिः शेषमधिशयितः, हरि शेष (नाग) पर सोये; हरिः वैकुण्ठमधिष्ठितः; शिवमुपासितः हरिः—हरि ने शिव को पूजा; बालकः रामनवमीमुपोषितः—लड़के ने रामनवमी को उपवास किया । राममनुजातः, गरुडमारूढः, विश्वमनुजीर्णः इत्यादि प्रयोग भी इसी प्रकार होंगे ।

नपुंसक लिङ्ग[5] में क्तान्त शब्द कभी-कभी उस क्रिया से बताए हुए कार्य की भी सूचना देता है, अर्थात् वर्बल् नाउन (Verbal noun) की तरह प्रयोग में आता है, जैसे—तस्य गतं वरम् (उसका चला जाना अच्छा है) ।

---

१ संयोगादेरातोधातोर्यण्वतः ।८।२।४३।

२ कर्तरि कृत् ।३।४।६७।

३ तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ।३।४।७०।

४ अगत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च ।३।४।७२।

५ नपुंसके भावे क्तः ।३।३।११४।

यहाँ 'गतं' 'गमन' के अर्थ में आया है। इसी प्रकार पठितम्=पठनम्; सुप्तम् स्वापः, इत्यादि।

लिट्[1] (परोक्षभूत) के अर्थ का बोध कराने के लिए दो कृत प्रत्यय क्वसु (वस्) और कानच् (आन) हैं। क्वसु परस्मैपद है, अतः परस्मैपदी धातु के अनन्तर जोड़ा जाता है, और कानच् आत्मनेपद है, अतः आत्मनेपदी धातु के अनन्तर। इन प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्द प्रायः वैदिक संस्कृत में ही मिलते हैं, किन्तु कभी-कभी भाषा-संस्कृत में भी प्रयोग में आते दिखाई पड़ते हैं।

लिट् के अन्य पुरुष के वहुवचन में प्रत्यय लगने के पूर्व धातु का जो रूप होता है (जैसे गम् का लिट् के अन्यपुरुष के वहुवचन में रूप हुआ जग्मुः, इस में 'जग्म्' धातु का रूप हुआ; इसी प्रकार ददुः से दद् इत्यादि) इसमें ये प्रत्यय जोड़े जाते हैं। यदि ऐसा धातु का रूप एकाक्षर हो अथवा अन्त में आ हो तो धातु और प्रत्यय के वीच में इ हो जाती है, उदाहरणार्थ—

धातु—	क्वसु	कानच्
गम्—	जग्मिवस्	
नी—	निनीवस्	निन्यान
दा—	ददिवस्	ददान
वच्	ऊचिवस्	ऊचान
कृ—	चकृवस्	चक्राण
दृश्—	ददृश्वस् (या ददृशिवस्)	

इनके रूप तीनों लिङ्गों में अलग-अलग संज्ञाओं के समान चलते हैं; जैसे, स जग्मिवान्—वह गया; तं तस्थिवासं नगरोपकण्ठे—नगर के निकट खड़े हुए उसको; श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मिवांस्त्वम्—तुम ने सब अच्छी बातें प्राप्त की थीं।

वर्तमानकाल के कृत् प्रत्यय

१७४—इनको अँग्रेजी में प्रेजेंट पार्टिसिप्ल् (present participle) कहते हैं। इस[2] अर्थ का बोध कराने के लिए शतृ (अत्) और शानच् (आन)

---

१ लिटः कानज्वा। क्वसुश्च ।३।२।१०६—७।

२ लटःशतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ।३।२।१२४। तौ सत् ।३।२।१२७।

मुख्य हैं। इन दोनों को संस्कृत वैयाकरण 'सत्' कहते हैं। 'सत्' का अर्थ है—'विद्यमान', 'वर्तमान'। ये दोनों प्रत्यय किसी धातु में जुड़कर उस धातु द्वारा सूचित वर्तमान काल की क्रिया का बोध विशेषणरूप से कराते हैं; जैसे, सः गच्छन्—वह जाता हुआ (है) अर्थात् वह जाता रहा है; सः पठन् (अस्ति)—वह पढ़ रहा है। इन प्रयोगों से सूचित होता है कि क्रिया अभी जारी है। क्रिया के जारी रहने का अर्थ सत् प्रत्ययों से सूचित किया जाता है।

१७५—शतृ परस्मैपदी धातुओं के अनन्तर तथा शानच् आत्मनेपदी धातुओं के अनन्तर जोड़ा जाता है। धातुओं का वर्तमान काल के अन्यपुरुष के बहुवचन में प्रत्यय लगने के पूर्व जो रूप होता है (जैसे, गच्छन्ति—गच्छ्, ददति—दद् आदि), उसी में सत् प्रत्यय जोड़े जाते हैं। यदि धातु के रूप के अन्त में अ हो तो शतृ (अत्) के पूर्व उसका लोप हो जाता है। यदि शानच्[1] के पूर्व अकारान्त धातुरूप आवे तो शानच् (आन) के स्थान पर 'मान' जुड़ता है, अन्यथा 'आन'। नीचे कुछ रूप उदाहरणार्थ दिये जाते हैं—

	परस्मै०	आत्मने०	कर्मवाच्य
पठ्	पठत्		पठ्यमान
कृ	कुर्वत्	कुर्वाण	क्रियामाण
गम्	गच्छत्		गम्यमान
नी	नयत्	नयमान	नीयमान
दा	ददत्	ददान	दीयमान
चुर्	चोरयत्	चोरयमाण	चोर्यमाण
पिपठ्ष्	पिपठिषत्	पिपठिमाण	पिपठिष्यमाण

आस्[2] धातु के बाद शानच् आने से शानच् के 'आन' को 'ईन' हो जाता है—आस्+शानच्=आसीन।

विद्[3] धातु के बाद शतृ प्रत्यय जुड़ता है और शतृ के ही अर्थ में विकल्प

१ आने मुक् ।७।२।८२।

२ ईदासः ।७।२।८३।

३ विदेः शतुर्वसुः ।७।१।३६।

से 'वसु' आदेश हो जाता है। इस प्रकार विद्+शतृ=विदन्; विद् वसु= विद्वस्, जिसके रूप विद्वान् इत्यादि होंगे। स्त्रीलिङ्ग में विदुषी बनेगा।

सत् में अन्त होने वाले शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में अलग-अलग चलते हैं।

(क) वर्तमान[1] का ही अर्थ प्रकट करने के लिए पू (पवित्र करना) तथा यज् धातुओं के बाद शानन् प्रत्यय जोड़ते हैं; जैसे—पू+शानन्=पवमानः। यज्+शानन्=यजमानः।

(ख) चानश्[2] (आन) प्रत्यय परस्मैपदी तथा आत्मनेपदी दोनों प्रकार की धातुओं में किसी की आदत, उम्र अथवा सामर्थ्य का बोध कराने के लिए जोड़ा जाता है; जैसे, भोगं भुञ्जानः—भोग भोगने की आदत वाला। कवचं बिभ्राणः—कवच धारण करने की अवस्था वाला (अर्थात् तरुण) शत्रुं निघ्नानः—शत्रु को मारने वाला (अर्थात् मारने की शक्ति रखने वाला)।

भविष्यकाल के कृत् प्रत्यय

१७६—भविष्यकाल[3] के प्रत्यय जिनको अँग्रेजी में फ्यूचर् पार्टिसिप्ल् (Future Participle) कहते हैं, संस्कृत में दो हैं—वही सत् प्रत्यय जो वर्तमान के हैं। अन्तर केवल इतना है कि ये भविष्य (लृट्) के अन्यपुरुष के बहुवचन में जो धातु-रूप होता है, उसके अनन्तर जोड़े जाते हैं; जैसे भविष्यन्ति के 'भविष्य' में अत् और मान जोड़ने पर 'भविष्यत्' और 'भविष्यमाण' रूप बनते हैं। इसी कारण भविष्यकाल के इन प्रत्ययों को कभी-कभी 'ष्यत्' और 'ष्यमाण' भी कहते हैं। उदाहरणार्थ कुछ रूप दिये जाते हैं—

	परस्मै०	आत्मने०	कर्मवाच्य
पठ्	पठिष्यत्		पठिष्यमाण
कृ	करिष्यत्	करिष्यमाण	करिष्यमाण
गम्	गमिष्यत्		गमिष्यमाण
नी	नेष्यत	नेष्यमाण	नेष्यमाण
दा०	दास्यत्	दास्यमान	दास्यमान

१ पूङ्यजोः शानन् ।३।२।१२८।
२ ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् ।३।२।१२९
३ लृटः सद्वा ।३।३।१४।

चुर्	चोरयिष्यत	चोरयिष्यमाण	चोरयिष्यमाण
पिपठिष्	पिपठिष्यत्	पिपठिष्यमाण	पिपठिष्यमाण

इन प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के रूप भी तीनों लिङ्गों में अलग-अलग संज्ञाओं के समान चलते हैं।

तुमुन् प्रत्यय

१७७—जब[1] कोई दूसरी क्रिया करने के लिए कोई क्रिया करता है, तब जिस क्रिया के लिए क्रिया की जाती है, उसकी धातु में तुमुन् (तुम्) प्रत्यय लगता है; जैसे कृष्णं द्रष्टुं याति—कृष्ण को देखने के लिए जाता है। इस वाक्य में दो क्रियाएँ हैं—देखना और जाना। जाने की क्रिया देखने की क्रिया के निमित्त होती है। 'जाने' का प्रयोजन देखना है, इसलिए दृश् में तुमुन् (तुम) जोड़कर "द्रष्टुम्" बनाया गया। तुमुनन्त क्रिया जिस क्रिया के साथ आती है, उसकी अपेक्षा सदा बाद को होती है; ऊपर के उदाहरण में देखने की क्रिया जाने की क्रिया के बाद ही सम्भव है। इसी प्रकार 'कृष्णं द्रष्टुमगमत्' इस वाक्य में जाने की क्रिया की समाप्ति के उपारन्त ही देखने की क्रिया हो सकती है, इसीलिए तुमुनन्त क्रिया दूसरी क्रिया की अपेक्षा भविष्य में होती है।

तुमुनन्त क्रिया के अर्थ का बोध अँग्रेजी में जेरिण्डियल् इन्फिनिटिव् (Gerundial Infinitive) से होता है; जैसे—He goes to see Krishna वाक्य में to see का अर्थ है 'देखने के लिये'। किन्तु अँग्रेजी में इन्फिनिटिव् संज्ञा की तरह भी प्रयोग में आता है और तब उसको नाउन् इन्फिनिटिव् या सिम्पिल इन्फिनिटिव् कहते हैं। संस्कृत की तुमुनन्त क्रिया नाउन इन्फिनिटिव् की तरह कभी भी प्रयोग में नहीं आती, इतना ध्यान रखना आवश्यक है; जैसे To go to see Krishna is good—कृष्ण को देखने के लिये जाना अच्छा है।

---

१ तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ।३।३।१०। जिस क्रिया के लिए कोई क्रिया की जाती है, उसकी धातु में भविष्यत् अर्थ प्रकट करने के लिए तुमुन् और ण्वुल (अक) होते हैं। जैसे 'कृष्णं द्रष्टुं दर्शको वा याति।)'

इस वाक्य में दो क्रियाएँ हैं—देखना, और जाना। इनमें से दो के लिए अंग्रेजी में इन्फिनिटिव् प्रयोग में आया है; एक का अर्थ है 'जाना', दूसरे का 'देखने के लिए'। इनमें से 'देखने के लिए'—इस अर्थ के लिए संस्कृत में तुमुनन्त क्रिया आवेगी, 'जाना' के लिए कोई संज्ञा। संस्कृत अनुवाद यह होगा—कृष्णं द्रष्टुं गमनं वरमस्ति। इस वाक्य में 'द्रष्टुं' तुमुनन्त क्रिया है और 'गमनं" संज्ञा। इस प्रकार, नाउन् इन्फिनिटिव् की तरह, संस्कृत के शब्द को प्रयोग में नहीं ला सकते, ला सकते हैं तो केवल जेरण्डियल् इन्फिनिटिव् की तरह।

(क) जिस[1] क्रिया के साथ तुमुनन्त शब्द आता है, उस क्रिया का तथा तुमुनन्त क्रिया का कर्ता एक ही होना चाहिए, भिन्न कर्ता होने से तुमुनन्त शब्द प्रयोग में नहीं लाया जा सकता; जैसे, रामः पठितुं विद्यालयं गच्छति—इस वाक्य में पठितुं' और 'गच्छति' दोनों का कर्ता राम ही है। यदि दोनों का कर्ता अलग-अलग होता तो तुमुनन्त शब्द प्रयोग में न आता।

(ख) कालवाची[2] शब्दों (काल, समय, बेला) के साथ एक कर्ता न होने पर भी तुमुनन्त शब्द प्रयोग में आता है; जैसे गन्तुम् कालोऽयमस्ति—यह समय जाने के लिए है। यहाँ दो शब्द क्रियावाचक हैं—'है' और 'जाने के लिए'। 'है' का कर्त्ता है 'कालः' और 'जाने के लिए' का कर्त्ता कोई और किन्तु, यहाँ तब भी तुमुनन्त शब्द का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार, भोक्तुं वेला, अध्येतुं समयः, द्रष्टुं कालः इत्यादि प्रयोग होते हैं।

तुमुनन्त[3] शब्द अव्यय होता है, इसके रूप नहीं चलते।

पूर्वकालिक क्रिया

१७८—जब किसी क्रिया के हो जाने पर दूसरी क्रिया आरम्भ होती है, तब हो गई हुई क्रिया को पूर्वकालिक क्रिया कहते हैं। हिन्दी में इसका बोध 'कर'

---

१ समानकर्तृकेषु तुमुन् ।३।३।१५८।

२ कालसमयवेलासु तुमुन् ।३।३।१६७।

३ मान्तत्वादव्ययत्वम्। सि० कौ०

अथवा 'करके' लगा कर होता है; जैसे, राम ने रावण को मारकर विभीषण को राज्य दिया—इस वाक्य में राज्य देने की क्रिया रावण के मारे जाने पर होती है, इसलिए 'मारा जाना' पूर्व-कालिक क्रिया होगी। पूर्वकालिक क्रिया और उसके साथ वाली क्रिया का कर्ता एक होना चाहिए। ऊपर के वाक्य में 'मारकर' और 'दिया' दोनों का कर्ता 'राम' है। भिन्न कर्ता होने से पूर्वकालिक क्रिया का प्रयोग नहीं हो सकता; जैसे, 'लक्ष्मण ने मेघनाद को मार कर, राम ने विभीषण को राज्य दिया'—यह वाक्य अशुद्ध है क्योंकि मारने की क्रिया का कर्ता लक्ष्मण, देने की क्रिया के कर्ता राम से भिन्न है।

[1]पूर्वकालिक क्रिया का बोध कराने के लिए संस्कृत में धातु के आगे क्त्वा (त्वा) प्रत्यय जोड़ा जाता है। ऊपर के हिन्दी वाक्य का अनुवाद संस्कृत में इस प्रकार होगा—रामः रावणं हत्वा विभीषणाय राज्यं ददौ। परन्तु[2] यदि धातु के पूर्व में कोई उपसर्ग हो अथवा उपसर्गस्थानीय कोई पद हो तो क्त्वा के स्थान में ल्यप् (य) आदेश हो जाता है, परन्तु नञ् के पूर्व होने पर नहीं। उदाहरणार्थ—

गम्	+	क्त्वा	=	गत्वा;
किन्तु अवगम्	+	ल्यप्	=	अवगत्य; अवगत्वा नहीं।
पठ्	+	क्त्वा	=	पठित्वा;
किन्तु प्रपठ्	+	ल्यप्	=	प्रपठ्य; प्रपठित्वा नहीं।

परन्तु नञ् पूर्व पद रहने पर अगत्वा ही होगा अगत्य नहीं।

पूर्वकालिक क्रिया के रूप नहीं चलते। यह अव्यय है।

(क) क्त्वा का 'त्वा' प्रायः धातु में जैसा का तैसा जोड़ा जाता है; जैसे, स्ना—स्नात्वा; ज्ञा—ज्ञात्वा; नी—नीत्वा; भू—भूत्वा; कृ—कृत्वा; धृ—धृत्वा; ऐसी नकारान्त धातुएँ जिनमें सेट् या वेट् की इ नहीं जुड़ती, न् का

१ समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ।३।४।२१।

२ समासेऽनञ्पूर्वे ल्यप् ।७।१।३७।

लोप करके जोड़ी जाती हैं; जैसे हन्—हत्वा; मन्—मत्वा; किन्तु जन्—जनित्वा, खन्—खनित्वा। धातु का प्रथम अक्षर यदि य, र, ल, व हो तो बहुधा क्रम से इ, ऋ, ल, उ हो जाता है; जैसे, यज्+क्त्वा=इष्ट्वा, प्रच्छ्—पृष्ट्वा, वप्—उप्त्वा। यदि धातु और प्रत्यय के बीच में इ आ जावे तो पूर्व का स्वर गुण-रूप धारण करता है, जैसे—शी+क्त्वा=श्+ए+इ+त्वा=शे+इ+त्वा=शयित्वा; इसी प्रकार जागरित्वा आदि।

[1]जान्त धातुओं और नश् धातु के बाद क्त्वा जुड़ने पर विकल्प से 'न' का लोप होता है; जैसे—भुञ्ज्+क्त्वा=भुक्त्वा; भुङ्क्त्वा; रञ्ज्+क्त्वा=रक्त्वा; रङ्क्त्वा; नश्+क्त्वा=नष्ट्वा, नंष्ट्वा। इसका नशित्वा भी रूप होगा।

ल्यप् के पूर्व यदि स्वर ह्रस्व हो तो 'य' न जुड़कर 'त्य' जुड़ता है, अर्थात्[2] धातु और ल्यप् के 'य' के बीच में त् जुड़ जाता है; जैसे, निश्चित्य, अवकृत्य, विजित्य; किन्तु आ+दा+ल्यप्=आदाय, इसी प्रकार विनीय, अनुभूय इत्यादि, क्योंकि दा, नी तथा भू धातुएँ दीर्घस्वर में अन्त होती हैं। बहुधा नकारान्त धातुओं के न् का लोप करके त्य जोड़ा जाता है; जैसे अवमत्य, प्रहृत्य, वितत्य, किन्तु प्रखन्य। गम्, नम्, यम्, रम् के म् रहने पर अवगम्य आदि और लोप होने पर अवगत्य आदि दो-दो रूप होते हैं।

णिजन्त[3] और चुरादिगण की धातुओं की उपधा में यदि ह्रस्व स्वर हो तो उनमें ल्यप् के पूर्व अय् जोड़ा जाता है, अन्यथा नहीं; यथा—प्रणम् (णिजन्त) +अय्+ल्यप् (य) =प्रणमय्य, किन्तु प्रचोर्+य=प्रचोर्य (प्रचोरय्य नहीं होता)।

आप्[4] धातु के बाद जुड़ने पर विकल्प से अय् आदेश होता है; जैसे प्र+आप्+ल्यप्=प्रापय्य, प्राप्य।

---

१ जान्तनशां विभाषा ।३।४।३२।

२ ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् ।६।१।७१।

३ ल्यपि लघुपूर्वात् ।६।४।५६।

४ विभाषापः ।६।१।५७।

(ख) पूर्वकालिक[1] क्रिया (क्त्वान्त तथा ल्यबन्त) जब अलम् शब्द और खलु शब्द के साथ आती है, तब पूर्वकाल का बोध न कराकर प्रतिषेध (मना करने) का भाव सूचित करती है; जैसे, अलं कृत्वा—बस, मत करो; पीत्वा खलु—मत पियो; विजित्य खलु—बस, न जीतो; अवमत्यालम्—बस, अपमान न करो।

णमुल् प्रत्यय

१७६—जब[2] किसी क्रिया को बार-बार करने का भाव सूचित करना हो तो क्त्वा प्रत्ययान्त शब्द अथवा णमुल्-प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग होता है और यह शब्द दो बार[3] रक्खा जाता है; जैसे, वह बार-बार याद करके शिव को प्रणाम करता है—यहाँ याद करने की क्रिया बार-बार होती है। इसलिए संस्कृत में कहेंगे—"सः स्मारं स्मारं प्रणमति शिवम्", अथवा "सः स्मृत्वा प्रणमति शिवम्"। याद करने की क्रिया प्रणाम करने की क्रिया से पूर्व होती है। स्मृत्वा इसी प्रकार—

पी पी कर अर्थात्	बार-बार पीकर—पायं पायं	अथवा	पीत्वा पीत्वा—पा
खा खाकर ,,	,, खाकर—भोजं भोजं	,,	भुक्त्वा भुक्त्वा—भुज्
जा जाकर ,,	,, जाकर—गामं गामं	,,	गत्वा गत्वा—गम्
जग जगकर ,,	,, जगकर—जागरं जागरं,	,,	जागरित्वा जागरित्वा—जागृ
पा पाकर ,,	,, पाकर—लाभं लाभं	,,	लब्ध्वा लब्ध्वा—लभ्
सुन सुनकर ,,	,, सुनकर—श्रावं श्रावं	,,	श्रुत्वा श्रुत्वा—श्रु

णमुल् का 'अम्' धातु में जोड़ा जाता है। यदि धातु आकारान्त हुई तो णमुल् के अम् और इस अ के बीच 'य' आ जाता है अर्थात् अम् के स्थान में यम् जुड़ता है।

१ अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राच्यां क्त्वा ।३।४।१८।

२ आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ।३।४।२२।

३ नित्यवीप्सयोः।८।१।४।

जैसे—दा+अम्=दायं दायं; इसी प्रकार पायं पायं, स्नायं स्नायं; प्रत्यय में ण होने के कारण पूर्व स्वर की वृद्धि भी होती है; जैसे, स्मृ+अम्=स्मारम्, श्रु+अम् =श्रौ+अम्=श्रावम् इत्यादि। णमुलन्त शब्द के रूप नहीं चलते। यह अव्यय होता है।

[1]यदि दृश् और विद् धातुएँ ऐसे उपपदों के साथ आवें जो उनके कर्म हों तो इनके आगे णमुल् प्रत्यय जुड़ेगा और समस्त प्रत्ययान्त शब्द साकल्य (All) अर्थ का बोधक होगा और प्रयोग एक ही बार होगा, दो बार नहीं; जैसे, कन्यादर्शं वरयति—जिस-जिस कन्या को देखता है, उसी से व्याह कर लेता है। यहाँ 'सभी कन्याओं से व्याह कर लेता है'—यह अर्थ है।

[2]अन्यथा, एवं, कथं, इत्थं शब्द कृ धातु के पूर्व आवें और कृ धातु का अर्थ वाक्य में इष्ट न हो और केवल अव्ययों का अर्थ प्रकट करना ही अभीष्ट हो तो णमुल् का प्रयोग होता है; जैसे, अन्यथाकारं ब्रूते—वह दूसरी ही तरह बोलता है; यहाँ कृ का कुछ अर्थ न निकला वह बेकार है। इसी प्रकार एवङ्कारं—इस तरह; कथङ्कारं—किसी तरह; इत्थङ्कारं—इस तरह।

[3]स्वादु के अर्थ में कृ धातु में णमुल् प्रत्यय लगता है; जैसे—स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते (अस्वादुं कृत्वा भुङ्क्ते इत्यर्थः)। इसी प्रकार सम्पन्नङ्कारं, लवणङ्कारम्। सम्पन्न और लवण शब्द स्वादु के पर्याय हैं।

[4]यावत् के साथ विन्द् और जीव् धातुओं में भी णमुल् जुड़ता है; जैसे यावत्+विन्द्+णमुल्=यावद्वेदम्। स यावद्वेदं भुङ्क्ते—वह जब तक पाता है तब तक खाता जाता है। इसी प्रकार 'यावज्जीवमधीते' अर्थात् सारे जीवन भर अध्ययन करता जायगा।

[5]जब निमूल और समूल कष् के कर्म हों तो कष् में णमुल् जुड़ता है; जैसे

१ कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये ।३।४।२६।

२ अन्यथैवङ्कथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ।३।४।२७।

३ स्यादुमि णमुल् ।३।४।२६।

४ यावति विन्दजीवोः ।३।४।३०।

५ निमूलसमूलयोः कषः ।३।४।३४।

निमूलकाषं कषति, समूलकाषं कषति (निमूलं समूलं कषति इत्यर्थः)—समूल अर्थात् जड़ से गिरा देता है ।

[1]जब समूल, अकृत और जीव शब्द हन्, कृ और ग्रह् धातुओं के कर्म हों तो इनके आगे णमुल् जुड़ता है; जैसे—समूलघातं हन्ति अर्थात् जड़सहित उखाड़ रहा है; जीवग्राहं गृह्णाति अर्थात् जीवित ही (जीवन्तमेव) पकड़ता है; इसी प्रकार अकृतकारं करोति ।

[2]यदि धातु के पूर्व आने वाले उपपद तृतीया या सप्तमी विभक्ति का अर्थ प्रकट करते हों तो धातु के बाद णमुल् प्रत्यय लगता है और समस्त पद सामीप्य अर्थ को ध्वनित करता है; जैसे—केशग्राहं युध्यन्ते (केशेषु गृहीत्वा इत्यर्थः) अर्थात् (वे) केशों को पकड़कर युद्ध कर रहे हैं । 'बहुत समीप से लड़ रहे हैं' यह ध्वनित होता है । इसी प्रकार, हस्तग्राहं (हस्तेन गृहीत्वा) युध्यन्ते ।

णमुलन्त शब्द प्रायः समास के अन्त में आने पर बार-बार के भाव को नहीं सूचित करता; जैसे, सा बन्दिग्राहं गृहीत्वा—वह कैदी करके पकड़ ली गई, अर्थात् कैद कर ली गई; समूलघातमघ्नतः परान्नोद्यन्ति मानिनः—मानी पुरुष शत्रुओं को जड़ से उखाड़े बिना उन्नति नहीं करते ।

कर्तृवाचक कृत् प्रत्यय

१८०—(क) [3]किसी भी धातु के अनन्तर ण्वुल् (वु+अक) और तृच् (तृ) प्रत्यय उस धातु से सूचित कार्य्य के करने वाले (Agent) के अर्थ में लगाये जाते हैं; जैसे—कृ धातु से सूचित अर्थ हुआ 'करना' । 'करने वाला' यह भाव प्रकट करने के लिए कृ+ण्वुल्=कृ=अक='कारक' शब्द हुआ और कृ+तृच्=कृ+तृ=कर्तृ शब्द हुआ । कारक, कर्तृ (करने वाला); इसी प्रकार पठ् से पाठक, पठितृ; दा से दायक, दातृ; पच् से पाचक, पक्तृ; हृ से हारक, हर्तृ इत्यादि । ण्वुल् के पूर्व धातु में वृद्धि तथा तृच् के पूर्व धातु में गुण भाव होता है, यह ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है ।

---

१ समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः ।३।४।३६।

२ समासत्तौ ।३।४।५०।

३ ण्वुल्तृचौ ।३।१।१३३।

नोट—[1]ण्वुल् प्रत्यय तुमुन् (१७७) की तरह क्रियार्थ भी प्रयोग में आता है; जैसे, कृष्णं दर्शको याति—कृष्ण को देखने के लिए जाता है।

(ख) नन्दि[2] आदि (नन्दि, वाशि, मदि, दूषि, साधि, वर्धि, शोभि, रोचि के णिजन्त रूप) धातुओं के अनन्तर ल्यु (अन), ग्रहि आदि (ग्राही, उत्साही, स्थायी, मन्त्री, अयाची, अवादी, विषयी, अपराधी इत्यादि इस गण के मुख्य शब्द हैं) के अनन्तर णिनि (इन्); तथा पच् आदि (पचः, वदः, चलः, पतः, जरः, मरः, क्षमः, सेवः, व्रणः, सर्पः आदि इस गण के मुख्य शब्द हैं) धातुओं के अनन्तर अच् (अ) लगाकर कर्तृबोधक शब्द बनाये जाते हैं; जैसे—नन्द+ल्यु=नन्दनः (नन्दयतीति नन्दनः) इसी प्रकार वाशनः, मदनः, दूषणः, साधनः, वर्धनः, शोभनः, रोचनः। गृह्णातीति ग्राही (ग्रह्+इन्=ग्राहिन्)। पच्+अच् (अ)=पचः (पचतीति पचः)।

(ग) जिन[3] धातुओं की उपधा में इ, उ, ऋ, लृ में से कोई स्वर हो, उनके अनन्तर तथा ज्ञा (जानना), प्री (प्रसन्न करना) और कॄ (बिखेरना) के अनन्तर कर्तृवाचक क (अ) प्रत्यय लगता है जैसे—

क्षिप्+क=क्षिपः (क्षिपतीति क्षिपः—फेंकने वाला); इसी प्रकार लिखः (लिखने वाला), बुधः (समझने वाला), कृशः (दुबला), ज्ञः (जानने वाला), प्रियः (प्रसन्न करने वाला), किरः (बखेरने वाला)।

आकारान्त[4] धातु के (तथा ए, ऐ, ओ, औ में अन्त होने वाली जो धातु आकारान्त हो जाती है, उसके) पूर्व यदि उपसर्ग हो, तब भी 'क' प्रत्यय लगता है; जैसे—प्रजानानीति प्रज्ञः (प्रज्ञा+क), आह्वयतीति आह्वः (आह्वे+क)।

(घ) यदि[5] कर्म के योग में धातु आवे तो कर्तृवाचक अ (अण्) प्रत्यय

---

१ तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ।३।२।१०।

२ नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ।३।१।१३४।

३ इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ।३।१।१३५।

४ आतश्चोपसर्गे ।३।१।१३६।

५ कर्मण्यण् ।३।२।१।

होता है; जैसे—कुम्भं करोतीति कुम्भकारः (कुम्भ+कृ+अण्); भारं हरतीति भारहारः (भार+हृ+अण्) । अण् के पूर्व वृद्धि हो जाती है ।

नोट—कर्म[1] के योग में अण् प्रत्यय क्रियार्थ तुमुन् की तरह प्रयोग में आता है । जैसे, कम्बलदायो याति—कम्बल देने के लिए जाता है ।

परन्तु[2] यदि धातु आकारान्त हो और उसके पूर्व कोई उपसर्ग न हो तो कर्म के योग में धातु के अनन्तर क (अ) प्रत्यय लगेगा, अण् नहीं; जैसे—गां ददातीति गोदः (गो+दा+क); किन्तु गाः सन्ददातीति—गोसन्दायः (गो+सम्+दा+अण्) ।

इसके[3] अतिरिक्त मूलविभुज, नखमुच, काकग्रह, कुमुद, महीध्र, कुध्र, गिरिध्र आदि कुछ शब्दों के अनन्तर भी क प्रत्यय इसी अर्थ में लगता है ।

कर्म[4] के योग में अर्ह धातु के अनन्तर अच् (अ) प्रत्यय लगता है, अण् नहीं; जैसे—पूजामर्हतीति पूजार्हः ब्राह्मणः (पूजा+अर्ह+अच्) ।

(ङ)[5] चर् के पूर्व यदि अधिकरण का योग हो और धातु से कर्तृवाचक शब्द बनाना हो तो ट (अ) प्रत्यय लगाते हैं; जैसे कुरुषु चरतीति—कुरुचरः (कुरु+चर्+ट)

यदि[6] चर् के पूर्व भिक्षा, सेना, आदाय शब्दों में से किसी का योग हो, तब भी ट प्रत्यय लगेगा; जैसे—भिक्षां चरतीति भिक्षाचरः (भिक्षा+चर्+ट) सेनां चरति (प्रविशतीति) सेनाचरः, आदाय (गृहीत्वा) चरति (गच्छतीति) आदायचरः ।

कृ[7] धातु के पूर्व यदि कर्म का योग हो और हेतु, आदत (ताच्छील्य) अथवा आनुलोम्य (अनुकूलता) का बोध हो, तो अण् (कर्मण्यण्) प्रत्यय न लगकर

१ अण् कर्मणि च ।३।३।१२।

२ आतोऽनुपसर्गे कः ।३।२।३।

३ अप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम् । वा०

४ अर्हः ।३।२।१२।

५ चरेष्टः ।३।२।१६।

६ भिक्षासेनादायेषु च ।३।२।१७।

७ कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ।३।२।२०।

ट प्रत्यय लगता है; जैसे, यश: करोतीति यशस्करी विद्या—यश पैदा करने वाली विद्या; यहाँ विद्या यश की हेतु है, इसलिए ट प्रत्यय हुआ; श्राद्धं करोतीति श्राद्धकरः (श्राद्ध करने की आदत वाला); वचनं करोतीति वचनकरः (वचनानुकूल कार्य करने वाला) ।

यदि[1] कृ धातु के पूर्व दिवा, विभा, निशा, प्रभा, भास्, अन्त, अनन्त आदि, बहु, नान्दी, किं, लिपि, लिवि, बलि, भक्ति, कर्तृ, चित्र, क्षेत्र, संख्या (संख्यावाचक शब्द), जङ्घा, बाहु, अहर् (अहस्), यत्, तत्, धनुर् (धनुष्), अरुष् शब्द कर्म रूप में आवें तो ट प्रत्यय लगता है, अण् नहीं; जैसे, दिवाकरः, विभाकरः, निशाकरः, बहुकरः, एककरः, धनुष्करः, अरुष्करः, यत्करः, तत्करः इत्यादि ।

(च)[2] णिजन्त एज् धातु के पूर्व यदि कर्म का योग हो तो खश् (अ) प्रत्यय लगता है; जैसे—जनम् एजयतीति जनमेजयः (जन+एज्+खश्) ।

[3]अरुष्, द्विषत् तथा अजन्त शब्दों (यदि वे अव्यय न हों) के अनन्तर यदि खित् (जिसका ख इत् हो) प्रत्यय में अन्त होने वाला शब्द आवे तो बीच में एक म् आ जाता है; जैसे—जन शब्द अकारान्त है, इसके अनन्तर एजयः शब्द आया जिसमें खश् प्रत्यय लगा है जो खित् है, अतः बीच में म् आवेगा—जन+म्+एजय= जनमेजयः ।

[4]ध्मा और धेट् के पूर्व यदि नासिका और स्तन कर्मरूप में हों तो इनके आगे खश् प्रत्यय जुड़ता है; जैसे—नासिकां ध्मायतीति नासिकन्धमः; स्तनं धयतीति स्तनन्धयः ।

[5]**नोट**—खिदन्त शब्दों के आगे आने पर पूर्वपद का दीर्घस्वर ह्रस्व हो जाता है और तब मुमागम होता है । इसीलिए नासिका में 'का' का आकार अकार में परिणत हो गया ।

---

१ दिवाविभानिशाप्रभाभास्करान्तानन्तादिबहुनान्दीकिलिपिलिविबलिभक्तिकर्तृचित्रक्षेत्रसंख्याजङ्घाबाह्वहर्यत्तद्धनुरुष्षु ।३।२।२१।

२ एजेः खश् ।३।२।२८।

३ अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् ।६।३।६७।

४ नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः ।३।२।२९।

५ खित्यनव्ययस्य ।६।३।६६।

[1]उत्पूर्वक रुज् और वह् धातुओं के पूर्व 'कूल' शब्द के कर्म-रूप में आने पर खश् प्रत्यय जुड़ता है; जैसे—कूल+उत्+रुज्+खश्=कूलमुद्रुजः; इसी प्रकार कूलमुद्वहः।

[2]लिह् के पूर्व वह (स्कन्ध) और अभ्र के कर्मरूप में आने पर खश् प्रत्यय लगता है। जैसे—वहं (स्कन्धं) लेढीति वहंलिहो गौः; इसी प्रकार अभ्रंलिहो वायुः।

[3]तुद् के पूर्व विधु और अरुष् के कर्मरूप में आने पर खश् लगता है; जैसे—विधुं तुदतीति विधुन्तुदः; इसी प्रकार अरुन्तुदः।

[4]दृश् के पूर्व असूर्य और तप् के पूर्व ललाट होने पर खश् जुड़ता है। असूर्य में नञ् का सम्बन्ध दृश् धातु के साथ होगा; जैसे—सूर्यं न पश्यतीति असूर्यंपश्याः (राजदाराः); इसी प्रकार ललाटन्तपः सूर्यः।

(छ) [5]वद् धातु के पूर्व यदि प्रिय और वश शब्द कर्म-रूप में आवें तो वद् धातु में खच् (अ) प्रत्यय जुड़ता है; जैसे—प्रियं वदतीति प्रियंवदः (प्रिय+म्+वद्+खच्), वशंवदः (वश+म+वद्+खच्)।

(ज) [6]भृ, तॄ, वृ, जि, जि, धृ, सह्, तप्, दम् धातुओं के योग में तथा गम् धातु के योग में यदि कर्मरूप कोई शब्द आवे और पूरा शब्द किसी का नाम हो तो खच् (अ) प्रत्यय लगता है; जैसे—विश्वं बिभर्तीति विश्वम्भरा (विश्व+म्+भृ+खच्+टाप्)—पृथ्वी का नाम; रथं तरतीति रथन्तरम् (रथ+म्+तृ+खच्)—साम का नाम; पतिं वरतीति पतिंवरा—कन्या का नाम; शत्रुञ्जयतीति शत्रुञ्जयः—एक हाथी का नामः, युगान्तरः—पर्वत का नाम; शत्रुंसहः—राजा का नाम, परन्तपः—राजा का नाम;, अरिन्दमः—राजा का नाम; सुतङ्गमः।

---

१ उदिकूले रुजिवहोः ३।२।३१।

२ वहाभ्रे लिहः।३।२।३२।

३ विध्वरुषोस्तुदः।३।२।३५।

४ असूर्यललाटयोर्दृशितपोः।३।२।३६।

५ प्रियवशे वदः खच्।३।२।३८।

६ संज्ञायां भृतॄवृजिधारिसहितपिदमः। ३।२।४६। गमश्च।३।२।४७।

[1]यदि ताप् (तप् का णिजन्त रूप) के पूर्व द्विषत् और पर शब्द कर्म रूप आवे तो ताप् धातु के आगे खच् प्रत्यय जुड़ेगा; जैसे, द्विषन्तं परं वा तापयतीति द्विषन्तपः, परन्तपः।

[2]यदि व्रत का अर्थ प्रकट करना हो तो वाक् शब्द के उपपद होने पर यम् धातु के आगे खच् प्रत्यय जुड़ता है; जैसे, वाचं यच्छतीति वाचंयमी मौनव्रती इत्यर्थः। व्रत का अर्थ अभीष्ट न होने पर और निर्बलतादि के कारण वाक् का नियन्त्रण करने पर वाचं यच्छतीति 'वाग्यामः'—ऐसा शब्द बनेगा।

[3]क्षेम, प्रिय और मद्र शब्दों के उपपद होने पर धातु के आगे खच् प्रत्यय जुड़ता है और अण् भी—क्षेमङ्करः, क्षेमकारः; प्रियङ्करः, प्रियकारः; मद्रङ्करः, मद्रकारः। क्षेमं करोति क्षेमङ्करः में 'क्षेम' 'कृ' का कर्म था। यही 'क्षेम' जब कर्म न होकर शेषत्वविवक्षा होने पर 'शेषे षष्ठी' के अनुसार षष्ठी विभक्ति में होगा, तब अच् प्रत्यय लगकर 'क्षेमकरः' शब्द बनेगा। उसका विग्रह होगा —करोतीति करः (कृ+अच्); क्षेमस्य करः इति क्षेमकरः; जैसे, 'अल्पारम्भा क्षेमकराः'।

(झ)[4] दृश् धातु के पूर्व यदि त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम् अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत्, किम्, अन्य तथा समान शब्दों में से कोई रहे और दृश् धातु का अर्थ देखना न हो तो उसके अनन्तर कञ् (अ) प्रत्यय लगता है तथा विकल्प से क्विन् भी; जैसे—तद्+दृश्+कञ्=तादृशः (वैसा); इसी प्रकार त्यादृशः, यादृशः, एतादृशः, सदृशः, अन्यादृशः।

इसी अर्थ में क्स भी लगता है। क्विन् का लोप हो जाता है, धातु में कुछ नहीं जुड़ता, क्स का स जुड़ता है; जैसे—तादृश् (तद्+दृश्+क्विन्), तादृक्ष (तद्+दृश्+क्स); अन्यादृश् (अन्य+दृश्+क्विन्), अन्यादृक्ष (अन्य+दृश्+क्स) इत्यादि।

---

१ द्विषत्परयोस्तापेः।३।२।३९।

२ वाचि यमो व्रते।३।२।४०।

३ क्षेमप्रियमद्रेऽण् च।३।२।४४।

४ त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च।३।२।६०। समानान्ययोश्चेति वाच्यम्। वा०। क्सोऽपि वाच्यः।वा०।

(ञ) [1]सद् (बैठना), सू (पैदा करना), द्विष् (वैर करना), द्रुह् (द्रोह करना), दुह् (दुहना), युज् (जोड़ना), विद् (जानना, होना), भिद् (भेदना, काटना), छिद् (काटना, टुकड़े करना), जि (जीतना), नी (ले जाना) और राज् (शोभित होना) धातुओं के पूर्व कोई उपसर्ग रहे या न रहे, इनके अनन्तर क्विप् प्रत्यय लगता है। धातु के पूर्व सु, कर्म, पाप, मन्त्र तथा पुण्य शब्दों के कर्म रूप में आने पर भी क्विप् प्रत्यय लगता है। क्विप् का कुछ भी नहीं रहता सब लोप हो जाता है; जैसे—

द्युसत् (स्वर्ग में बैठने वाला=देवता), प्रसूः (माता), द्विट् (शत्रु), मित्रध्रुक् (मित्र से द्रोह करने वाला), गोधुक् (गाय दुहने वाला), अश्वयुक् (घोड़ा जोतने वाला), वेदवित् (वेद जानने वाला), गोत्रभित् (पहाड़ों को तोड़ने वाला—इन्द्र), पक्षच्छित् (पक्ष काटने वाला—इन्द्र), इन्द्रजित् (मेघनाद), सेनानी (सेनापति), सम्राट् (महाराज), सुकृत्, कर्मकृत्, पापकृत्, मन्त्रकृत्। कुछ और धातुओं के अनन्तर भी क्विप् प्रत्यय लगता है; जैसे, चि—अग्निचित्, स्तु—देवस्तुत्, कृ—टीकाकृत्, दृश्—सर्वदृश्, स्पृश्——मर्मस्पृश्, सृज्—विश्वसृज् आदि।

[2]ब्रह्म, भ्रूण तथा वृत्र शब्दों के कर्म रूप में हन् धातु के पूर्व होने पर क्विप् प्रत्यय जुड़ता है;—ब्रह्म+हन् क्विप्=ब्रह्महा; इसी प्रकार भ्रूणहा, वृत्रहा इत्यादि।

(ट) [3]जातिवाचक संज्ञा (ब्राह्मण, हंस, गो आदि) को छोड़कर यदि कोई और सुवन्त (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण) किसी धातु के पूर्व आवे और ताच्छील्य (आदत) का भाव सूचित करना हो तो उस धातु के अनन्तर णिनि (इन्) प्रत्यय लगता है; जैसे—उष्णं भोक्तुं शीलमस्य उष्णभोजी (उष्ण+भुज्+णिनि)—गरम-गरम खाने की जिसकी आदत हो; इसी प्रकार शीतभोजी

---

१ सत्सूद्विषद्रुहदुहयुज्विदभिदच्छिद्जिनीराजामुपसर्गे क्विप् ।३।२।६१। सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः ।३।२।८६।

२ ब्रह्मभ्रूकवृत्रेषु क्विप् ।३।२।७८।

३ सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ।३।२।७८। साधुकारिण्युपसंख्यानम् । वा०। ब्रह्मणि वदः । वा० ।

यदि ताच्छील्य (आदत) न सूचित करना हो तो यह प्रत्यय नहीं लगेगा। किन्तु कृ तथा वद् के पूर्व क्रमशः साधु तथा ब्रह्मन् शब्द होने पर ताच्छील्य अर्थ के अभाव में भी णिनि लगता है; जैसे—साधुकारी, ब्रह्मवादी।

हन्[1] धातु के पूर्व कुमार और शीर्ष उपपद होने पर णिनि प्रत्यय जुड़ता है; जैसे—कुमारघाती। शिरस् शब्द का 'शीर्ष' भाव हो जाता है इस प्रकार शीर्ष-घाती शब्द बनेगा।

[2]मन् के पूर्व यदि कोई सुबन्त रहे तब भी णिनि लगेगा आदत हो या न हो—पण्डितमात्मानं मन्यते इति पण्डितमानी (पण्डित+मन्+णिनि); इसी प्रकार दर्शनीयमानी।

[3]अपने आप को कुछ मानने के अर्थ में खश् प्रत्यय भी होता है; जैसे—पण्डितम्मन्यः (खिदन्त शब्द के पूर्व म् आ जाता है)।

(ठ) [4]अधिकरण पूर्व में रहने पर जन् धातु के अनन्तर प्रायः ड (अ) प्रत्यय लगता है; जैसे—प्रयागे जातः प्रयागजः; मन्दुरायां जातो मन्दुरजः। जाति-वर्जित पञ्चम्यन्त उपपद होने पर भी ड लगता है; जैसे—संस्काराज्जातः संस्कारजः। पूर्व में होने पर भी जन में 'ड' लगता है, यदि बना हुआ शब्द किसी का नाम-विशेष हो तो, जैसे—प्रजा (प्रजन्+ड+टाप्)। अनुपूर्वक जन् धातु के पूर्व कर्म उपपद होने पर भी ड प्रत्यय लगता है; जैसे—पुंमासमनुरुध्य जाता पुमनुजा। अन्य उपपदों के पूर्व में होने पर भी जन् में ड लगता है; जैसे—अजः, द्विजः इत्यादि।

[5]अन्त, अत्यन्त, अध्व, दूर, पार, सर्व, अनन्त, सर्वत्र, पन्न, उरस् और अधि-करण अर्थ में सु तथा दुःख के वाद गम् धातु में ड प्रत्यय जुड़ता है; जैसे—अन्तगः,

---

१ कुमारशीर्षयोर्णिनिः ।३।२।५१।

२ मनः ।३।२।८३।

३ आत्ममाने खश्च ।३।२।८३।

४ सप्तम्यां जनेर्डः। पञ्चम्याजातौ। उपसर्गे च संज्ञायाम्। अनौ कर्मणि। अन्येष्वपि दृश्यते ।३।२।९७।१०१।

५ अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु डः ।३।२।४८। सर्वत्रपन्नयोरुपसंख्यानम् (वार्तिक)। उरसो लोपश्च । वा०। सुदूरोधिकरणे।। (वार्तिक)

अत्यन्तगः; अध्वगः दूरगः, पारगः:, सर्वगः, अनन्तगः, सर्वत्रगः, पन्नगः (सर्पः), उरगः (सर्पः), सुखेन गच्छत्यत्रेति सुगः, दुःखेन गच्छत्यत्रेति दुर्गः (किला) ।

नोट—उरस् के स् का लोप हो जाता है ।

शील-धर्म-साधुकारिता वाचक कृत्

१८१—(क) [1]किसी भी धातु के अनन्तर शील, धर्म तथा भली प्रकार सम्पादन—इन तीन में से कोई भी भाव लाने के लिये तृन् (तृ) प्रत्यय लगाया जाता है; जैसे, कृ+तृन्=कर्तृ—कर्ता कटम्; जो चटाई बनाया करता है, अथवा जिसका धर्म चटाई वनाना है, अथवा जो चटाई भली प्रकार बनाता है—ये तीनों अर्थ इससे सूचित हो सकते हैं ।

(ख) [2]अलंकार, निराकृ, प्रजन्, उत्पत्, उन्मद्, रुच्, अप्—त्रप्, वृत्, वृध्, सह, चर्—इन धातुओं के अनन्तर इसी अर्थ में इष्णुच् (इष्णु) प्रत्यय लगता है; जैसे—अलङ्करिष्णुः (अलंकृत करने वाला); निराकरिष्णुः (अपमान करने वाला); प्रजनिष्णुः (पैदा करने वाला); उत्पचिष्णुः (पकाने वाला); उत्पतिष्णुः (ऊपर उठाने वाला); उन्मदिष्णुः (उन्मत्त होने वाला); रोचिष्णुः (अच्छा लगने वाला); अपत्रपिष्णुः (लज्जा करने वाला); वर्तिष्णुः (विद्यमान रहने वाला); वर्धिष्णुः (बढ़ने वाला); सहिष्णुः (सहनशील); चरिष्णुः (भ्रमणशील) ।

(ग) [3]शील्, धर्म तथा भली प्रकार सम्पादन का अर्थ सूचित करने के लिए निन्द्, हिंस्, क्लिश्, खाद्, विनाश, परिक्षिप्, परिरट्, परिवाद्, व्ये, भाष्, असूय—इन धातुओं के अनन्तर वुञ् (अक) प्रत्यय लगता है; जैसे—निंदकः, हिंसकः, क्लेशकः, खादकः, विनाशकः, परिक्षेपकः, परिरटकः, परिवादकः, व्यापकः, भाषकः, असूयकः ।

---

१ आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ।३।२।१३४। तृन् ।३।२।१३५।

२ अलङ्कृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रवृतुवृधुसहचर इष्णुच् ।३।२।१३६।

३ निन्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षिपपरिरटपरिवादिव्याभाषासूयो वुञ् ।३।२।१४६।

(घ) [1]चलना, शब्द करना अर्थ वाली धातुओं के अनन्तर तथा क्रोध करना, आभूषित करना अर्थों वाली धातुओं के अनन्तर शील आदि अर्थ में युच् (अन) प्रत्यय लगता है; जैसे—चलितुं शीलमस्य सः चलनः (चल्+युच्), कम्पनः, शब्दं कर्त्तुं शीलमस्य सः शब्दनः (खगः) (पठिता विद्याम्—यहां सकर्मक धातु होने के कारण युच न लगकर साधारण तृन् लगा) क्रोधनः, रोषणः, मण्डनः, भूषणः—ये सब मनुष्यवाचक शब्द हैं।

(ङ) [2]जल्प्, भिक्ष्, कुट्ट (अलग करना, काटना), लुण्ट् (लूटना), और वृ (चाहना)—इनके अनन्तर शील, धर्म और साधुकारिता का द्योतक षाकन् (आक) प्रत्यय लगता है; जैसे—जल्पाकः (बहुत बोलने वाला), भिक्षाकः (भिखारी), कुट्टाकः (काटने वाला), लुण्टाकः (लूटने वाला), वराकः (बेचारा)।

(च) [3]स्पृह्, गृह्, पत्, दय्, शी धातुओं के अनन्तर तथा निद्रा, तन्द्रा श्रद्धा के अनन्तर आलुच् (आलु) जोड़ा जाता है—स्पृहयालुः, गृहयालुः, पतयालुः, दयालुः, निद्रालुः, तन्द्रालुः, श्रद्धालुः।

(छ) [4]सन्नन्त (इच्छावाची) धातुओं तथा आशंस् और भिक्ष् के अनन्तर उ प्रत्यय लगता है; जैसे—कर्तुमिच्छति चिकीर्षुः, आशंसुः, भिक्षुः।

(ज) [5]भ्राज्, भास्, धुर्, विद्युत्, ऊर्ज्, पॄ, जु, ग्रावस्तु—इन धातुओं के अनन्तर तथा औरों के भी अनन्तर क्विप् प्रत्यय होता है; जैसे—विभ्राट्, भाः, धूः, विद्युत्, ऊर्क्, पूः, जूः, ग्रावस्तुत्, छित्, श्री, धीः, प्रतिभूः इत्यादि।

भावार्थ कृत् प्रत्यय

१८२—(क) [6]भाव का (धातु का अपना) अर्थ द्योतित करने

---

१ चलनशब्दार्थादकर्मकाद्युच् ।३।२।१४८। क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च ।३।२।१५१।

२ जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन् ।३।२।१५५।

३ स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्यः आलुच् ।३।२।१५८। शीङोवाच्यः ।वा०।

४ सनाशंसभिक्ष उः ।३।२।१६८।

५ भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप् ।३।२।१७७। अन्येभ्योऽपि दृश्यते ।३।२।१७८।

६ भावे ।३।३।१८।

के लिए धातु के अनन्तर घञ् के अनन्तर घञ् (अ) प्रत्यय जोड़ा जाता है। जब कोई धात्वर्थ सिद्ध हो जाय, पूरा हो जाय, तब भाव कहलाता है; जैसे, पाकः—पक जाना (पच्+घञ्), लाभः, कामः।

'प' आकार की वृद्धि इस नियम से हुई है कि यदि[1] कोई ञित् अथवा णित् प्रत्यय लगता हो, तो धातु की उपधा के अ की वृद्धि हो जाती है। च् के स्थान में क् इसलिए हुआ है कि [2]घित् (घ जिसका इत् हो) तथा ण्यत् प्रत्यय के पूर्व च् तथा ज् का क्रमशः क् तथा ग् हो जाता है।

(ख) [3]इकारान्त धातुओं में अच् (अ) जोड़ा जाता है, जैसे—जि+ +अच्=जयः, नी+अच्=नयः, भि+अच्=भयम्।

(ग) [4]ऋकारान्त और उकारान्त धातुओं में अप् लगता है; जैसे—कृ+अप्=करः—विखेरना। गृ+अप्=गरः—विष। यु+अप्=यवः—जोड़ना। लू (ञ्) + अप्=लवः—काटना। स्तु+अप्=स्तवः—प्रशंसा, स्तुति। पू (ञ्)+अप्=पवः—पवित्र करना।

[5]ग्रह्, वृ, दृ, निश्चि, गम्, वश, रण् में भी अप् लगता है; जैसे—ग्रहः, वरः, दरः, निश्चयः, गमः, वशः, रणः।

(घ) [6]यज्, याच्, यत्, विच्छ् (चमकना), प्रच्छ, रक्ष् में भावार्थक नङ् (न) प्रत्यय लगता है; जैसे—यज्ञः, याच्ञा, यत्नः, विश्नः, प्रश्नः, रक्ष्णः।

(ङ) [7]उपसर्ग-सहित घुसंज्ञक धातुओं [(डु) दा (ञ्)—देना, दाण्—देना, दो—खंडन करना, दे—प्रत्यर्पण करना, रक्षा करना, धा—

---

१ अत उपधायाः ७।२।११६।

२ चजोः कु घिण्यतोः ।७।३।५२।

३ एरच् ।३।३।५६। भयदीनामुपसंख्यानम् (वार्तिक)।

४ ऋदोरप् ।३।३।५७।

५ ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च ।३।३।५८। वशिरण्योरुपसंख्यानम्। वा०।

६ यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् ।३।३।९०।

७ उपसर्गे घोः किः। कर्मण्यधिकरणे च ।३।३।९२-९३।

धारण करना, धे—पीना] के अनन्तर भावार्थ कि (इ) होता है जैसे—प्रधिः =प्रधा+किः (आतो लोप इटि च ।६।४।६४। से आकार का लोप हुआ), अन्तर्धिः; अधिकरणवाचक शब्द बनाना हो तो भी धु धातुओं में कर्म के योग में 'कि' प्रत्यय लगता है, जैसे—जलधिः (जलानि धीयन्ते अस्मिन्निति), नीरधिः ।

(च)[1] स्त्रीलिङ्ग भाववाचक शब्द धातुओं में क्तिन् (ति) जोड़कर बनाये जाते हैं; जैसे—कृतिः, धृतिः, मतिः, स्तुतिः, चितिः ।

[2]ॠकारान्त धातुओं तथा लू आदि धातुओं के अनन्तर ति जोड़ने पर वही विकार होता है जो निष्ठा प्रत्यय जोड़ने में होता है; जैसे—कॄ+ति (क्तिन्) =कीर्णिः; इसी प्रकार गीर्णिः, लूनिः, धूनिः इत्यादि ।

(छ) [3]सम्पद्, विपद्, आपद्, प्रतिपद्, परिषद् में क्विप् और क्तिन् दोनों भावार्थ प्रत्यय लगाए जाते हैं; जैसे—सम्पत्, विपत् आपत्, प्रतिपत्, परिषत् सम्पत्तिः, विपत्तिः, आपत्तिः, प्रतिपत्तिः, परिषत्तिः ।

(ज) जिन[4] धातुओं में कोई प्रत्यय (जैसे सन्, यङ आदि) पहले से ही लगा हो, उनमें स्त्रीलिङ्ग के भाववाचक शब्द बनाने के लिए 'अ' प्रत्यय जोड़ा जाता है; जैसे—कृ से सन् लगाकर चिकीर्ष धातु, उससे भाववाचक 'अ' प्रत्यय जोड़ा तो चिकीर्ष शब्द बना, फिर स्त्रीलिङ्ग का टाप् (आ) प्रत्यय लगाकर चिकीर्षा (करने की इच्छा) बना । इसी प्रकार जिगमिषा, बुभुक्षा, पिपासा, पुत्रकाम्या आदि ।

यदि[5] धातु हलन्त हो किन्तु उसमें कोई गुरु अक्षर (संयुक्त व्यञ्जन अथवा दीर्घ स्वर) हो, तब भी क्तिन् न लगकर 'अ' लगता है; जैसे—ईह् से ईहा, ऊह् से ऊहा इत्यादि ।

---

१ स्त्रियां क्तिन् ।३।३।९४।

२ ॠल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः । (वा०)

३ सम्पदादिभ्यः क्विप् । वा० । क्तिन्नपीष्यते । वा० ।

४ अ प्रत्ययात् । ३। ३।१०२।

५ गुरोश्च हलः ।३।३।१०३ ।

(झ) [1]चिन्त्, पूज्, कथ, कुम्ब्, चर्च् धातुओं में तथा उपसर्गसहित आकारान्त धातुओं में अङ प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिङ्ग भाववाचक शब्द बनाते हैं; जैसे—चिन्ता, पूजा, कथा, कुम्बा, चर्चा, प्रदा, उपदा, श्रद्धा, अन्तर्धा।

(ञ)[2] णिजन्त (प्रेरणार्थक) धातुओं में तथा आस्, श्रन्थ्, घट्ट्, वन्द्, विद् में भावार्थ स्त्रीलिङ्ग प्रत्यय युच् (अन) लगता है; जैसे—कारण (कृ+णिच्+युच्+टाप्); इसी प्रकार हारणा, दारणा। आस्+युच्+टाप्= आसना, श्रन्थना, घट्टना, वन्दना, वेदना।

(ट) नपुंसकलिङ्ग[3] भाववाचक शब्द बनाने के लिए कृत् प्रत्यय 'क्त' (निष्ठा) अथवा ल्युट् (अन) धातुओं में लगाया जाता है; जैसे—हसितम्, हसनम्; गतम्, गमनम्; कृतम्, करणम्; हृतम्, हरणम् इत्यादि।

(ठ) पुंल्लिङ्ग[4] नाम शब्द बनाने के लिए प्रायः धातुओं में 'घ' प्रत्यय लगाया जाता है; जैसे—आकृ+घ=आकरः (खान), आखनः (फावड़ा) आपण (बाजार), निकषः (कसौटी), गोचरः (चरागाह) सञ्चरः (मार्ग), वहः (स्कन्ध), व्रजः (बाड़ा), व्यजः (पंखा), निगमः (वेद) आदि।

परन्तु[5] हलन्त धातुओं में घञ् लगता है, घ नहीं; जैसे—रम् से रामः; इसी प्रकार अपामार्गः (एक ओषधि का नाम)।

भावार्थ कृत् प्रत्यय

१८३—(क) कठिन[6](इसलिए दुःखात्मक) और सरल (अतएव सुखात्मक) के भाव का बोध कराने के लिए धातुओं के अनन्तर खल् (अ) प्रत्यय लगाया

१ चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च ।३।३।१०५। आतश्चोपसर्गे ।३।३।१०६।

२ ण्यासश्रन्थो युच् ।३।३।१०७। घट्टिवन्दिविदिभ्यश्चेति वाच्यम्। वा०।

३ नपुंसके भावे क्तः। ल्युट् च ।३।३।११४।—१५।

४ पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण ।३।३।११८। गोचरसञ्चरवहव्रजव्यजापणनिगमाश्च ।३।३।११९।

५ हलश्च ।३।३।१२१।

६ ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ।३।३।१२६।

जाता है। वह भाव दिखाने के लिए सु और ईषत् शब्द (सुखार्थ) तथा दुर् (दुःखार्थ) धातु के पूर्व रहते हैं; जैसे, सुखेन कर्तुं योग्यः, सुकरः (सुकृ+खल्)—सुकरः कटो भवता=चटाई आप से (आसानी से) बन सकती है; ईषत्करः कटो भवता=चटाई आप से जरा में ही (अनायास ही) बन सकती है; दुखेन कर्तुं योग्यः, दुष्करः (दुष्कृ+खल्)—दुष्करः कटो भवता=चटाई आप से मुश्किल से (दुःख से) बन सकती है।

(ख) आकारान्त[1] धातुओं के अनन्तर खल् के अर्थ में युच् प्रत्यय होता है, खल् नहीं; जैसे—सुखेन पातुं योग्यः सुपानः, ईषत्पान; इसी प्रकार दुष्पानः।

इसी[2] प्रकार दुःशासनः, दुर्योधनः, दुर्वहः, सुवहः, ईषद्वहः इत्यादि, तथा स्त्रीलिङ्ग दुष्करा, दुर्वहा आदि तथा नपुं० दुष्करं, दुर्वहं आदि रूप होते हैं।

नोट—खल्[3] और खलर्थ प्रत्यय कर्म की सूचना देते हैं, कर्ता की नहीं; इसलिए कर्म के विशेषण हो सकते हैं, कर्ता के नहीं।

उणादि प्रत्यय

१८४—कृत् प्रत्ययों के दो भेदों (कृत्य और कृत्) का व्याख्यान ऊपर किया जा चुका है, बाकी रहे उणादि। उणादि का अर्थ है—उण् आदि प्रत्यय। अर्थात् उस वर्ग के प्रत्यय जिनका पहला प्रत्यय उण् है। ये प्रत्यय बड़े टेढ़े हैं और बड़ी जोड़-तोड़ से धातुओं में शब्द बनाने के लिए लगाए जाते हैं।

उणादि[4] का प्रयोग भी बहुल है—कभी किसी अर्थ में, कभी किसी अर्थ में। महर्षि पाणिनि ने इनके द्वारा संस्कृत के शेष ऐसे शब्दों की सिद्धि की है जो और किसी वर्ग के प्रत्ययों से सिद्ध नहीं होते।

उदाहरणार्थ[5]—करोतीति 'कारुः' (कृ+उण्) शिल्पी कारकश्च, वातीति 'वायुः', पिवत्यनेनेति 'पायुः' गुदम्, जयति रोगान् इति 'जायुः' औषधम्, मिनोति

१ आतो युच् ।३।३।१२८।

२ भाषायां शासियुधिदृशिधृषिमृषिभ्यो युज्वाच्यः (वा०)

३ तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ।३।४।७०।

४ उणादयो बहुलम् ।३।३।१।

५ कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्। उणादि, सूत्र १।

प्रक्षिपति देहे ऊष्माणमिति 'मायुः' पित्तम्, स्वदते रोचते इति 'स्वादुः', साध्नोति परकार्यमिति 'साधुः', अश्नुते इति 'आशु' शीघ्रम् ।

परुषम्[३] (पॄ+उषच्), नहुषः (नह्+उषच्), कलुषम् (कल्+उषच्) इत्यादि ।

---

३ पॄनहिकलिभ्य उषच् ।

द्वादश सोपान

लिङ्ग-विचार

१८५—हिन्दी में दो लिङ्ग होते हैं—स्त्रीलिङ्ग और पुंल्लिङ्ग और सारे पदार्थ वाचक शब्द चाहे चेतन हों अथवा अचेतन इन्हीं दो लिङ्गों में विभक्त होते हैं। जैसे—लड़की जाती है, गाड़ी आती है; आदमी आया, रथ चला आदि। संस्कृत में इन दो लिङ्गों के अतिरिक्त एक और होता है, जिसे नपुंसकलिङ्ग कहते हैं। सारी संज्ञाएँ इन्हीं तीन लिङ्गों में विभक्त हैं; कोई पुंल्लिङ्ग कोई स्त्रीलिङ्ग और कोई नपुंसकलिङ्ग। एक ही वस्तु का बोध कराने वाला कोई शब्द पुंल्लिङ्ग में है, तो कोई स्त्रीलिङ्ग में अथवा नपुंसकलिङ्ग में, जैसे—तनुः (स्त्री०), देहः (पुं०) और शरीरम् (नपुं०) सभी शरीरवाची हैं। 'दाराः' शब्द पुंल्लिङ्ग में होते हुए भी स्त्री का अर्थ बताता है; देवता शब्द स्त्रीलिङ्ग में होते हुए भी देव (पुरुष) का अर्थ बताता है। इस प्रकार यह विदित है कि संस्कृत भाषा में लिङ्ग प्रकृति के अनुसार नहीं है। यदि सारे अचेतन-पदार्थवाचक शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते, पुरुषवाची शब्द पुंल्लिङ्ग में और स्त्री-वाची स्त्रीलिङ्ग में तो कहा जा सकता कि लिङ्ग प्रकृति के क्रम से है। परन्तु बात इससे उलटी है। इसी कारण संस्कृत की संज्ञाओं का लिङ्ग जानना बड़ा कठिन है। इसका ज्ञान कोषों से तथा काव्यग्रन्थों के अध्ययन से होता है।

व्याकरण के कुछ मोटे-मोटे नियम हैं। उनसे भी कुछ सहायता मिल सकती है।

पुंल्लिङ्ग शब्द

१८६—(क) भावार्थक[1] घञ्, भावार्थक अप् तथा घ्, अच्, नङ (घुसंज्ञक धातुओं के उपरान्त) कि प्रत्यय—इन में अन्त होने वाले शब्द पुंल्लिङ्ग के होते हैं, उदाहरणार्थ—

---

१ घञबन्तः। घाजन्तश्च। भयलिङ्गभगपदानि नपुंसके। नङन्तः। याच्ञा स्त्रियाम्। क्यन्तो घुः। इषुधिः स्त्री च। लिङ्ग० ३६—४२।

घञन्त—पाकः, त्यागः ।

अवन्त—करः, गरः ।

घान्त—सञ्चरः, गोचरः ।

अजन्त—चयः, जयः [भय, लिङ्ग, भग, पद—ये शब्द नपुं० लि० में होते हैं]

नङन्त—यज्ञः, यत्नः [याच्ञा स्त्रीलिङ्ग में]

क्यन्त—जलधिः, निधिः आधिः [इषुधिः स्त्रीलिङ्ग में भी होता है]

(ख) न्[1] तथा उ में अन्त होने वाले शब्द प्रायः पुँल्लिङ्ग के होते हैं; जैसे—राजन् (राजा), तक्षन् (तक्षा), प्रभुः, इक्षुः । कुछ नकारान्त शब्द चर्मन् आदि नपुंसक होते हैं । धेनु, रज्जु, कुहु, सरयु, तनु, रेणु, प्रियङ्गु—ये उकारान्त स्त्रीलिङ्ग में; और श्मश्रु, जानु, वसु (धन वाची), स्वादु, अश्रु, जतु, त्रपु, मधु, सानु, तालु, दारु, कसेरु, वस्तु और मस्तु नपुंसकलिङ्ग में होते हैं ।

(ग) ऐसे[2] शब्द जिनकी उपधा में क्, ट्, ण्, थ्, न्, प्, भ्, म्, य्, र्, ष्, स् में से कोई अक्षर हो और यदि वे अकारान्त हों तो प्रायः पुंल्लिङ्ग होते हैं; जैसे—स्तवकः, कल्कः, घटः, पटः, गुणः, गणः, पाषाणः, उग्दीथः, रथः [किन्तु काष्ठ, सिक्थ, उक्थ नपुंसक होते हैं]; इनः, फेनः [जघन, अजिन, तुहिन, कानन, वन, वृजिन, विपिन, वेतन, शासन, सोपान, मिथुन, श्मशान, रत्न, निम्न तथा चिह्न नपुंसक होते हैं]; यूपः, दीपः [पाप, रूप, उडुप, तल्प, शिल्प, पुष्प, समीप, अंतरीप नपुंसक में] ; स्तम्भः, कुम्भः, सोमः, भीमः, समयः, हयः, [किसलय, हृदय, इन्द्रिय, उत्तरीय नपुंसक में]; क्षुरः, अंकुरः [द्वार आदि बहुत से शब्द नपुंसकलिंग होते हैं]; वृषः, वत्सः, वक्षः, वायसः, महानसः ।

---

१ नान्तः । लि० ४८। उकारान्तः । लि० ५१।

२ कोपधः ।६१। टोपधः । ६४। णोपधः ।६७। थोपधः ।७०। नोपधः ।७४। पोपधः ।७७। भोपधः ।८०। मोपधः ।८३। योपधः ।८६। रोपधः ।८९। षोपधः ।९३। सोपधः ।९६।

(घ) देव[1], असुर, आत्म, स्वर्ग, गिरि, समुद्र, नख, केश, दन्त, स्तन, भुज्, कण्ठ, खड्ग, पङ्क, ऋतु, पुरुष, कपोल, गुल्फ, मेघ, रश्मि, दिवस— ये शब्द तथा इनका अर्थ बताने वाले शब्द प्रायः पुंल्लिङ्ग के होते हैं; उदाहरणार्थ, देवः—सुरः, असुरः—दैत्यः, आत्मा—क्षेत्रज्ञः; स्वर्गः—नाकः (त्रिविष्टप नपुंसकलिङ्ग में और द्यौः स्त्रीलिङ्ग में होते हैं); गिरिः—पर्वतः, समुद्रः—अब्धिः, नखः—कररुहः, केशाः—शिरोरुहाः, दन्तः—दशनः; स्तनः—कुचः; भुजः—दोः; कण्ठः—गलः; खड्गः—असिः; शरः;—वाणः; पङ्कः—कर्दमः; ऋतुः—अध्वरः; पुरुषः—नरः; कपोलः—गण्डः; गुल्फः—प्रपदः; मेघः—नीरदः (अभ्र नपुंसकलिङ्ग में); रश्मिः—मयूखः (दीधितिः स्त्रीलिङ्ग में); दिवसः— घस्रः (दिन और अहन् नपुंसक में होते हैं) ।

(ङ) दार[2], अक्षत, लाज, असु शब्द पुंल्लिङ्ग में तथा सदा वहुवचन में होते हैं—दाराः, अक्षताः; लाजाः, असवः ।

स्त्रीलिङ्ग शब्द

१८७—(क) [3]अनि, ऊ, मि, नि, क्तिन् (ति) और ई प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्द प्रायः स्त्रीलिङ्ग में होते हैं । क्रम से उदाहरण—अवनिः, चमूः, ग्लानिः, कृतिः और लक्ष्मीः । परन्तु वह्नि, वृष्णि, अग्नि पुंल्लिङ्ग में होते हैं तथा अशनि, भरणि, अरणि, श्रोणि, योनि और ऊर्मि स्त्रीलिङ्ग और पुंल्लिङ्ग दोनों में होते हैं ।

---

१ देवासुरात्मस्वर्गगिरिसमुद्रनखकेशदन्तस्तनभुजकण्ठखड्गशरपङ्का-भिधानानि ।४३। ऋतुपुरुषकपोलगुल्फमेघाभिनानि ।४९। रश्मिदिवसाभिधानानि ।१००।

२ दाराक्षतलाजानां बहुत्वञ्च ।१०६।

३ अन्यूत्प्रत्ययान्तो धातुः । अशनिभरण्यरयः पुंसि च । मिन्यन्तः । वह्निवृष्ण्यग्नयः पुंसि श्रोणियोन्यूर्मयः पुंसि च । क्तिन्नन्तः । ईकारान्तश्च । लिङ्गानुशासनम् ४—१०

(ख) ऊङ तथा टाप्[1] प्रत्यय में अन्त होने वाले सभी शब्द स्त्रीलिङ्ग के हैं; जैसे—कुरूः, वामोरूः, विद्या, अजा, कन्या आदि ।

(ग) एकाक्षर[2] ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग में होते हैं, जैसे—श्रीः, भूः आदि । एकाक्षर न होने से पुंल्लिङ्ग भी हो सकते हैं जैसे—पृथुश्रीः, प्रतिभूः आदि ।

(घ)[3] तल् प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द स्त्रीलिङ्ग के हैं; जैसे पवित्रता, जनता आदि ।

(ङ)[4] १९ (एकोनविंशतिः) से लेकर ९९ (नवनवतिः) तक के संख्यावाची सभी शब्द स्त्रीलिङ्ग के होते हैं ।

(च)[5] भूमि, विद्युत्, सरित्, लता और वनिता—इन शब्दों का अर्थ रखने वाले शब्द स्त्रीलिङ्ग के होते हैं; जैसे—पृथिवी, तडित्, नदी, वल्ली, स्त्री आदि ।

(छ) ऋकारान्त[6] शब्दों में केवल मातृ, दुहितृ, स्वसृ, पोतृ और ननान्द ही स्त्रीलिङ्ग के होते हैं ।

स्त्री प्रत्यय

१८८—कुछ संज्ञाएँ ऐसी होती हैं, जिनके जोड़े के शब्द होते हैं—एक पुरुष और एक स्त्री । इस प्रकार की पुंल्लिङ्ग संज्ञाओं से स्त्रीलिङ्ग की जोड़ीदार संज्ञा बनाने के लिए जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं, उन्हें स्त्री प्रत्यय कहते हैं; जैसे—'अज' से टाप् लगाकर 'अजा' स्त्रीलिङ्ग का शब्द बना । इस प्रकार के स्त्रीलिङ्ग शब्द बनाने के लिए बहुधा नीचे लिखे प्रत्यय लगाए जाते हैं ।

---

१ ऊङाबन्तश्च । लिङ्गा० ११।

२ य्वन्तमेकाक्षरम् । लिङ्गा० १२।

३ तलन्तः ।। लि० १७।

४ विंशत्यादिरानवतेः । लि० १३।

५ भूमिविद्युत्सरिल्लतावनिताभिधानानि । लि० १८।

६ ऋकारान्ता मातृदुहितृस्वसृपोतृननान्दरः । लि० ३१।

टाप्

नोट—टाप् प्रत्यय के ट् और प् का लोप होकर केवल आ शेष रह जाता है, यह आ अजादि (अजा आदि) गण में पठित तथा ह्रस्व अकारान्त शब्द में जोड़ा जाता है।

१८९—(क) अजा[1] आदि [अजा, एडका, कोकिला, चटका, अश्वा, मूषिका, बाला, होडा, पाका, वत्सा, मन्दा, विलाता, पूर्वापिहाणा, अपरापहाणा, क्रुञ्चा, उष्णिहा, देवविशा, ज्येष्ठा, कनिष्ठा मध्यमा, द्रंष्ट्रा] शब्दों में तथा अकारान्त शब्दों में स्त्रीबोधक टाप् प्रत्यय लगता है; जैसे;—अज+आ=अजा, एडक+आ=एडका, अश्व+आ=अश्वा, बाल+आ=बाला, उष्णिह्+आ=उष्णिहा, देवविश्+आ=देवविशा। भुञ्जान+आ= भुञ्जाना, गंग+आ=गंगा इत्यादि।

(ख) टाप्[2] के जोड़ने के पूर्व यदि शब्द में 'क' अन्त में आवे और उसके पूर्व 'अ' हो तो 'अ' के स्थान में 'इ' हो जाती है। परन्तु यह नियम तभी लगेगा जब 'क' किसी प्रत्यय का हो और टाप् के पूर्व प्रत्ययों में से कोई न लगे हों; जैसे——मूषक+टाप् (आ)=मूषिक्+आ=मूषिका; कारक+टाप् (आ)=कारिक+आ=कारिका; सर्वक+टाप्=सर्विक+आ=सर्विका; मामक+टाप्=मामिक+आ=मामिका; इसी प्रकार दाक्षिणात्यिका, पाश्चात्त्यिका। यदि 'क' किसी प्रत्यय का न होगा तो नियम नहीं लगेगा; जैसे—शङ्क+आ=शङ्का। यहाँ 'क' धातु का है किसी प्रत्यय का नहीं।

ङीप्

१९०—(क) ऋकारान्त[3] और नकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों के अनन्तर ङीप् (ई) लगाकर स्त्रीलिङ्ग शब्द बनाया जाता है, जैसे—कर्तृ—कर्त्री,

१ अजाद्यतष्टाप् ।४।१।४।

२ प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः ।७।३।४४। मामकनरकयोरुपसंख्यानम्। त्यक्त्यपोश्च। वा०।

३ ऋन्नेभ्यो ङीप् ।४।१।५।

दण्डिन्—दण्डिनी, राजन्—राजी, श्वन्—शुनी। किन्तु[1] जिनके अन्त में मन् हो अथवा जिस बहुव्रीहि के अन्त में अन् हो उनसे स्त्रीलिङ्ग में ङीप् नहीं जुटता।

१६१—जिन[2] प्रातिपदिकों में उक् प्रत्याहार (इ उ ऋ लृ) का कोई वर्ण इत् हुआ हो तो उन से ङीप् लगाकर स्त्रीलिङ्ग शब्द बनाते हैं। जैसे भू-शतृ=भवत्+ङीप्=भवन्ती।

नोट—ङीप् की ई जुड़ने के पूर्व प्रातिपदिक में नीचे लिखे अनुसार हेर-फेर कर लिया जाता है—

व्यञ्जनान्त शब्द का वह रूप लेकर जो तृतीया के एकवचन में होता है, उसका अंतिम स्वर गिरा दिया जाता है और शतृ तथा स्यत् प्रत्ययों से बने हुए शब्दों में त् के पूर्व न् जोड़ दिया जाता है; जैसे—(राजन् का तृ० ए० व० राज्ञा है, इसका आ गिराकर 'राज्ञ्' हुआ, इससे ई जोड़ कर राज्ञी बना; इसी प्रकार शुनी आदि; पचता से पचत्+ई=पचती)। स्वरान्त शब्दों का अंतिम स्वर गिरा दिया जाता है (सुमङ्गल=सुमङ्गल+ई=सुमङ्गली)।

(ख) नीचे[3] लिखे शब्दों के अनन्तर ङीप् लगाया जाता है—कर में अन्त होने वाले ; जैसे, भोगकरः—भोगकरी।

नद, देव, चोर, ग्राह, गर, प्लव—नदी, चोरी, देवी, ग्राही, गरी, प्लवी।

ढक्, अण्, अञ्, द्वयसच्, मात्रच, दघ्नञ्, तयप्, ठञ्, कञ् और क्वरप् प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्द; जैसे, सुपर्णी—सौपर्णेयी, इन्द्र—ऐन्द्री, उत्स—औत्सी; इसी प्रकार उरुद्वयसी, उरुदघ्नी, उरुमात्री, पञ्चतयी, आक्षिकी, लावणिकी, यादृशी, इत्वरी।

---

१ मनः।४।१।११; अतो बहुव्रीहेः।४।१।१२।

२ उगितश्च

३ टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः।४।१।१५।

(ग) प्रथम[1] वयस् (अन्तिम अवस्था को छोड़कर) का बोध कराने वाले शब्दों के अनन्तर ङीप् लगता है; जैसे, कुमारः—कुमारी; इसी प्रकार किशोरी, वधूटी इत्यादि; किन्तु, वृद्धा, स्थविरा ।

ङीष्

१९२—(क) षित्[2] शब्दों (नर्तक, खनक, पथिक आदि) तथा गौरादि गण के शब्दों (गौर, मनुष्य, हरिण, आमलक, वदर, उभय, भृङ्ग, अनडुह्, नट, मङ्गल, मण्डल, बृहत्—ये इस गण के मुख्य शब्द हैं) के अनन्तर ङीप् (ई) जोड़ा जाता है; जैसे—नर्तकी, पथिकी, गौरी आदि ।

(ख) पुंल्लिङ्ग[3] शब्द जो नर का द्योतक हो, उससे मादा बनाने के लिये ङीप् जोड़ा जाता है, किन्तु पालक शब्द में अन्त होने वाले शब्दों के अनन्तर नहीं; जैसे, गोपः—गोपी, शूद्रः—शूद्री; किन्तु गोपालकः से गोपालिका ।

ई जुड़ने के पूर्व शब्द में १९१ नोट में लिखे परिवर्तन हो जाते हैं ।

इन्द्र[4], वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, आचार्य—इनके अनन्तर तथा (विस्तार बताने के लिए) हिम और अरण्य के अनन्तर, खराब यव के अर्थ में यव के अनन्तर यवनों की लिपि का बोध कराने के लिए यवन के अनन्तर तथा मातुल, उपाध्याय के अनन्तर ङीप् लगने के पूर्व आनुक् (आन्) जोड़ दिया जाता है—इन्द्राणी, भवानी, शर्वाणी, रुद्राणी, मृडानी, आचार्याणी, हिमानी, अरण्यानी यवानी (खराब जौ), यवनानी (यवनों की लिपि), मातुलानी, उपाध्यायी ।

(ग) अकारान्त[5] ऐसे जातिवाचक शब्द जिनकी उपधा में, 'य्' न हो, ङीप् लगाकर स्त्रीलिङ्ग होते हैं; जैसे, ब्राह्मणः—ब्राह्मणी, हरिणी, मृगी ।

---

१ वयसि प्रथमे ।४।१।२०। वयस्यचरम इति वाच्यम् ।

२ षिद्गौरादिभ्यश्च ।४।१।४१।

३ पुंयोगादाख्यायाम् ।४।१।४८। पालकान्तान्न । वा० ।

४ इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक् ।४।१।४९। हिमारण्ययोर्महत्त्वे । यवाद्दोषे । यवनाल्लिप्याम् । वा० ।

५ जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ।४।१।६३।

(घ)[1] उकारान्त गुणवाची शब्दों के अनन्तर स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए विकल्प से ङीप् लगाते हैं—जैसे—मृदु से मृद्वी अथवा मृद्वी । किन्तु यदि उपधा में संयुक्त वर्ण हो तो ङीप् नहीं लगेगा, जैसे पाण्डु पुं० तथा स्त्रीलिङ्ग दोनों में ।

इ अथवा ई में अन्त होने वाले गुणवाची शब्दों का पुल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग दोनों में समान रूप रहता है;, जैसे—शुचि, सुधी ।

(ङ)[2] बहु आदि गण में पठित (तथा अन्य आकृति गणों) से विकल्प से ङीप् लगते हैं । जैसे बह्वी, बहुः ।

(च)[3] क्तिन् प्रत्यय को छोड़कर सभी इकारान्त कृदन्त शब्दों के आगे स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय विकल्प से जुटता है जैसे—रात्रिः रात्री ।

(छ)[4] अङ्ग वाचक शब्द जिनकी उपधा संयुक्त न हो तथा जो उपसर्जन रूप में ही यदि प्रातिपदिक के अन्त में आयें तो उनसे विकल्प से ङीष् प्रत्यय जुटता है जैसे—चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा । किन्तु नख, मुख, शब्द यदि किसी के नाम के अन्त में आयें तब नहीं होते, जैसे—अशूर्पणखा, गोमुखा ।

(ज)[5]उस उकारान्त शब्द से जिसकी उपधा में य् न हो तथा जो मनुष्य जातिवादी हो, स्त्रीलिङ्ग में, ऊङ (ऊ) प्रत्यय जुटता हो—जैसे कुरूः । करभोरूः ।

ङीन्

(क) [6]जातिवाचक शार्ङ्गरव आदि शब्दों से तथा अञ् प्रत्यय का अकार जिनके अन्त में है उनसे, एवं नृ और नर शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में ङीन् प्रत्यय जुटता है । [7]नृ और नर को तो वृद्धि भी होती है । जैसे शार्ङ्गरवी, बैदी, नारी ।

---

१ वोतो गुणवचनात् ।४।१।४४।

२ बह्वादिभ्यश्च ।४।१।४५। (आकृतिगणोऽयम्)

३ कृदिकारादक्तिनः (ग०)

४ स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ।४।१।५४।

५ नखमुखात् संज्ञायाम् ।४।१।५८।

६ ऊङुतः ।४।१।६६; ऊरूत्तरपदादौपम्ये ।४।१।६९

७ शार्ङ्गरवाद्यञोङीन् ।४।१।७३; नृनरयोर्वृद्धिश्च (इतिगणसूत्रम्)

नपुंसकलिङ्ग शब्द

१६३—(क)[1] भावार्थक ल्युट्, भावार्थक क्त तथा भावार्थ और कर्मार्थ ष्यञ् यत्, य, ढक्, यक्, अञ्, अण्, वुञ्, छ, इन प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्द, नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। उदाहरणार्थ—

ल्युट्—हसनम् (यदि ल्युट् भावार्थ में न होगा तो नपुं० नहीं होगा; जैसे, पचनः—पकाने वाला (अर्थात् अग्नि); क्त—गतम्, गीतम्; त्व—शुक्लत्वम्; ष्यञ्—चातुर्यम्, ब्राह्मण्यम्; यत्—स्तेयम्; य—सक्यम्; ढक्—कापेयम्; यक्—आधिपत्यम्; अञ्—औष्ट्रम्; अण्—द्वैहायनम्; वुञ्—पैतापुत्रकम्; छः—अच्छावाकीयम्।

(ख) [2]अव्ययीभावसमास तथा एकवचनान्त द्वन्द्व सर्वदा नपुंसकलिङ्ग में होते हैं; जैसे—अधिस्त्रि, पाणिपादम्। एकवचनान्त द्विगु समास तो प्रायः नपुंसकलिङ्ग में होते हैं; जैसे, त्रिभुवनम्, चतुर्युगम्; परन्तु कुछ स्त्रीलिङ्ग में भी होते हैं; जैसे—पञ्चवटी, पञ्चमूली।

(ग)[3] इस्, उस् में अन्त होने वाले शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं; जैसे—हविः, धनुः।

(घ)—[4]मन् में अन्त होने वाला शब्द यदि दो स्वरों वाला हो और कर्तृवाचक न हो तो नपुंसक होगा; जैसे—चर्म, शर्म, वर्म; किन्तु अणिमा पुंल्लिङ्ग होता है, क्योंकि यह दो स्वरों वाला नहीं है; इसी प्रकार दामा (देने वाला) पुं० होता है क्योंकि यह कर्तृवाचक है।

(ङ) अस्[5] में अन्त होने वाले दो स्वरों वाले शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं; जैसे, मनः, यशः, तपः आदि।

---

१ भावे ल्युडन्तः ११६। निष्ठा च १२०। त्वष्यञौ तद्धितौ।१२१। कर्मणि च ब्राह्मणादिगुणवचनेभ्यः।१२२। यद्यढग्यञण्वुञ्छाश्च भावकर्मणि। १२३।

२ अव्ययीभावश्च।२।४।१८। द्वन्द्वैकत्वम् १२४। द्विगुः स्त्रियां च।१३३।

३ इसुसन्तः।१३४।

४ मन् द्व्यच्कोऽकर्तरि।१३६।

५ असन्तो द्व्यच्कः।१५२।

(च) त्र[1] में अन्त होने वाले शब्द प्रायः नपुंसक होते हैं; जैसे—छत्रम्, पत्रम् आदि; किन्तु यात्रा, मात्रा, भस्त्रा, दंष्ट्रा, वरत्रा स्त्रीलिङ्ग के हैं तथा भृत्र, अमित्र, वृत्र, उष्ट्र, मंत्र, पुत्र, छात्र इत्यादि पुंलिङ्ग के हैं ।

(छ) जिन[2] शब्दों की उपधा में ल हो, वे प्रायः नपुंसक होते हैं; जैसे—कुलम्, स्थलम्, कूलम् ।

(ज)[3] शत से आरम्भ करके ऊपर की संख्या नपुंसक होती हैं, केवल शत, प्रयुत तथा अयुत पुंल्लिङ्ग में भी होते हैं, लक्षा और कोटि स्त्रीलिङ्ग में तथा शंकुः पुंल्लिङ्ग में होते हैं । 'वा लक्षा नियुतं च तत्'—अमरकोष की इस पंक्ति के अनुसार लक्षम् (नपुं०) भी होता है ।

(झ)[4] मुख, नयन, लोह, वन, मांस, रुधिर, कार्मुक, विवर, जल, हल, धन, अन्न, बल, कुसुम, शुल्व, पत्तन, रण—ये शब्द तथा इनका अर्थ बताने वाले शब्द प्रायः नपुंसक होते हैं; जैसे, मुखम्-आननम्, नयनम्—नेत्रम्, लोहम्—फालम्, वनम्—गहनम्, मांसम्—आमिषम्, रुधिरम्—रक्तम्, कार्मुकम्—शरासनम्, विवरम्—विलम्, जलम्—वारि, हलम्—लाङ्गलम्—धनम्—द्रविणम्, अन्नम्—अशनम्, बलम्—वीर्यम्, कुसुमम्—पुष्पम्, शुल्वम्—ताम्रम्, पत्तनम्—नगरम्, रणम्—अयुद्धम् । परन्तु आहव और संग्राम पुंल्लिङ्ग तथा 'आजि' स्त्रीलिङ्ग में होते हैं ।

(ञ) फलों[5] की जाति बताने वाले शब्द नपुंसक होते हैं; जैसे—आम्रम्, आमलकम् ।

---

१ त्रान्तः ।१५४। यात्रामात्राभस्त्रादंष्ट्रावरत्राः स्त्रियामेव ।१५५। भृत्रामित्रछात्रपुत्रमन्त्रवृत्रमेढ्रोष्ट्राः पुंसि ।१५६।

२ लोपधः ।१४१।

३ शतादिः संख्या । शतायुतप्रयुता पुंसि च । लक्षा कोटिः स्त्रियाम् । शंकुः पुंसि ।१४४—४७।

४ मुखनयनलोहवनमांसरुधिरकार्मुकविवरजलहलधनान्नाभिधानानि ।१३७। बलकुसुमशुल्वपत्तनरणाभिधानानि । १५७। आहवसंग्रामौ पुंसि ।१६०। आजिः स्त्रियामेव ।१६०।

५ फलजातः ।१६२।

त्रयोदश सोपान

अव्यय-विचार

१६४—अव्यय[1] ऐसे शब्द को कहते हैं, जिसके रूप में कोई विकार न उत्पन्न हो, जो सदा एक-सा रहे। जिसका खर्च न हो अर्थात् जो लिङ्ग, विभक्ति, वचन के अनुसार घटे-बढ़े नहीं, वही अव्यय है।

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्॥

उदाहरणार्थ—उच्चैः (ऊँचे), नीचैः (नीच), अभितः (चारों ओर), हा आदि।

अव्यय चार प्रकार के होते हैं—(१) उपसर्ग, (२) क्रियाविशेषण (३) समुच्चयबोधक शब्द (conjunctions) तथा (४) मनोविकार-सूचक शब्द (interjection)। इनके अतिरिक्त प्रकीर्ण।

उपसर्ग

१६५—जो अव्यय धातु या धातु से बने हुए विशेषण, संज्ञा आदि शब्दों के पूर्व जोड़े जाते हैं, उनको उपसर्ग कहते हैं। इनके द्वारा धातु का अर्थ कुछ परिवर्तित हो जाता है, इनके द्वारा ही धातु के विभिन्न अर्थों का प्रकाश होता है। उदाहरणार्थ कृ धातु का अर्थ है 'करना', किन्तु इसके पूर्व उपसर्ग लगा कर अपकार, उपकार, अधिकार आदि शब्द बनते हैं। सिद्धांतकौमुदीकार कहते हैं—

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत्॥

उपसर्ग से कभी धातु का अर्थ उलटा हो जाता है, कभी वही रहते हुए अधिक विशिष्ट हो जाता है, कभी ठीक वही। यही भाव इस श्लोक में दिया है—

१ स्वरादिनिपातमव्ययम्।१।१।३७।

धात्वर्थं बाधते कश्चित्कश्चित्तमनुवर्तते ।
तमेव विशिनष्ट्यन्य उपसर्गगतिस्त्रिधा ।।

उदाहरणार्थ, 'जय:' का अर्थ है 'जीत', किन्तु 'पराजय', का अर्थ हुआ 'हार'—उससे विल्कुल उल्टा; 'भू' का अर्थ है 'होना, किन्तु 'अभिभू' का अर्थ है 'हराना, 'प्रभू' का अर्थ है 'सामर्थ्यवान् होना'; 'कृष्' का अर्थ है 'खींचना', किन्तु 'प्रकृष्' का 'खूब जोर से खींचना' इत्यादि ।

नीचे[1] उपसर्ग उन मुख्य अर्थों सहित, जो वहुधा उसके साथ चलते हैं, दिए जाते हैं—

अति—इसका अर्थ बाहुल्य अथवा उल्लंघन होता है; जैसे अतिक्रमः—सीमा का उल्लंघन, अतिनिद्रा—अधिक नींद ।

अधि—ऊपर; जैसे अधिकारः—ऊपरी काम, जिसमें दूसरे वश में हों ।

अनु—पीछे, साथ; जैसे अनुगमनम्—पीछे चलना ।

अप—दूर; जैसे अपहारः—दूर ले जाना, अपकारः—बुरा करना ।

अपि—निकट; जैसे अपिधानम्—ढक्कन (अपि का विकल्प से अ लुप्त हो जाता है—अपिधानम्, पिधानम्) ।

अभि—ओर; जैसे अभिगमनम्—किसी की ओर जाना ।

अव—दूर, नीचे; जैसे अवतार—नीचे आना, अवमानः—नीचा मानना ।

आ— तक, कम; जैसे आच्छद्—चारों ओर तक ढकना, आकम्प—कुछ काँपना ।

उद्— ऊपर; जैसे उद्गम्—ऊपर जाना (निकलना), उत्पत्—ऊपर गिरना (उड़ना) ।

उप—निकट; जैसे उपासना—निकट बैठना (प्रार्थना) ।

दुर्—बुरा; जैसे दुराचारः—खराब काम ।

दुस्—कठिन; जैसे दुष्करः—करने में कठिन, दुःसहः—सहने में कठिन ।

---

१ प्र, परा, अप, सम, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ, नि, अधि, अपि, अति, सु, उद्, अभि, प्रति, परि, उप एते प्रादयः ।

नि—नीचे आदि; जैसे निपत्—नीचे गिरना, निकाय—समूह।

निर्—बाहर; जैसे निर्गम—बाहर निकलना, निर्दोषः—दोष से बाहर।

निस्—विना, बाहर; जैसे निःसारः—सार-रहित, निःशङ्क—शङ्का-रहित।

परा—पीछे, उल्टा; जैसे पराजयः—हार, पराभवः—हार, परागतः—चला गया।

परि—चारों ओर; जैसे परिखा—चारों ओर की खांई।

प्र—अधिक; जैसे प्रणामः—अधिक झुकना।

प्रति—ओर, उल्टा; जैसे प्रतिकारः—बदला, प्रतिगम—किसी की ओर जाना।

वि—बिना; अलग; जैसे विचलः—दूर चला हुआ, वियोगः—विरह।

सम्—अच्छी तरह; जैसे संस्कारः—अच्छी तरह किया हुआ।

इनमें से एक या कई उपसर्ग धातु, क्रिया अथवा धातु से निर्मित अन्य शब्दों के पूर्व जुड़े मिलते हैं और भिन्न-भिन्न अर्थों में। ऊपर के अर्थ केवल निर्देशमात्र हैं।

(ख) इनके अतिरिक्त कुछ और शब्द भी हैं, जो धातु आदि के पूर्व लगते हैं। इनका नाम 'गति' है। मुख्य-मुख्य 'गति' शब्द ये हैं—

असत्—जैसे असत्कारः।

सत्—जैसे सत्कारः, सद्गतिः।

नमः (कृ के पूर्व) नमस्कारः।

साक्षात्— " "साक्षात्कारः।

अन्तः—अन्तर्हितः (छिपा हुआ)।

अस्तम्—(गत्यर्थक धातुओं के पूर्व)—अस्तङ्गतः, अस्तन्नीतः आदि।

आविः—(कृ, अस्, भू के पूर्व) आविष्कारः, आविर्भूतः।

प्रादुः— (" " ") प्रादुष्कारः, प्रादुर्भूतः।

तिरः—(भू और धा के पूर्व) तिरोभूतः, तिरोहित ः।

पुरः—(कृ, भू, गम् के पूर्व) पुरस्कारः, पुरोगतः, पुरोभवः।

स्वी—(कृ के पूर्व) स्वीकारः, स्वीकृतः आदि।

न[1] (नञ्) प्रायः सादृश्य (जैसे अब्राह्मणः—ब्राह्मण नहीं, किन्तु उसी के सदृश कोई और), अभाव (जैसे अज्ञानम्—ज्ञानस्य अभावः), अन्य प्रकार (जैसे अयम् अपटः—यह कपड़े से भिन्न है), अल्पता (जैसे अनुदरा कन्या—कम पेट वाली), बुराई (जैसे अकार्य—बुरा काम) अथवा विरोध (जैसे अनीतिः—नीतिविरोध) का बोध उपसर्ग-रूप में लग कर कराता है ।

कुछ अव्यय शब्द के अंत में भी लगते हैं; जैसे किम् के उपरान्त 'चित्' अथवा 'चन' अनिश्चय का बोध कराने के लिए और वर्तमान काल की क्रिया के अनन्तर 'स्म' भूतकाल का बोध कराने के लिए लगता है ।

१९६—क्रियाविशेषण

कुछ क्रियाविशेषण स्वः आदि अव्ययों में गिनाए हुए शब्द हैं, जैसे—पृथक्, विना, वृथा आदि; कुछ सर्वनामों से बनते हैं, जैसे—इदानीम्, यथा, तथा आदि; कुछ संख्यावाची शब्दों से बनते हैं, जैसे—एकधा, द्विधा, द्विः, त्रिः आदि; और कुछ संज्ञाओं में तद्धित प्रत्यय लगाकर ; जैसे—पुत्रवत्, भस्मसात् आदि । इसके अतिरिक्त संज्ञाओं को द्वितीया के एकवचन में बहुधा क्रियाविशेषण-स्वरूप प्रयोग में लाते हैं; जैसे सत्यम्, सुखम् आदि ।

(क) नीचे अकारादि क्रम से मुख्य-मुख्य प्रचलित क्रियाविशेषण दिए जाते हैं—

अकस्मात्—इकबारगी
अग्रतः—आगे
अग्रे—पहले
अचिरम्—, अचिरात्—, अचिरेण— } शीघ्र
अजस्रम्—निरन्तर
अन्तर्—अन्दर
अतः—इसलिए
अपरम्—और
अपरेद्युः—दूसरे दिन
अधुना—अब
अनिशम्—निरन्तर
अन्तरेण—बारे में, बिना
अन्तरा—बिना, बीच में
अन्तरे—बीच में
अन्यच्च—और

---

१ तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता ।
अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्तिताः ।।

अतीव—बहुत
अत्र—यहाँ
अथ—तब, फिर
अथकिम्—हाँ, तो क्या
अद्य—आज
अधः—, अधस्तात्— } नीचे
असम्प्रति—, असाम्प्रतम् } अनुचित
आरात्—दूर, समीप
इतः—यहाँ से
इतस्ततः—इधर-उधर
इति—इस प्रकार
इत्थम्—इस प्रकार
इदानीम्—इस समय
इह—यहाँ
ईषत्—कुछ, थोड़ा
उच्चैः—ऊँचे
उभयतः—दोनों ओर
ऋतम्—सच
ऋते—बिना
एकत्र—एक जगह
एकदा—एक बार
एकधा—एक प्रकार
एकपदे—एक साथ
एतर्हि—अब
एव—ही
एवम्—इस तरह
कच्चित्—, कच्चन— } क्यों

अन्यत्र—दूसरी जगह
अन्यथा—दूसरी तरह
अभितः—चारों ओर, पास
अभीक्ष्णम्—निरन्तर
अर्वाक्—पहले
अलम्—बस, पर्याप्त
असकृत्—कई बार
कदाचित्—कभी, शायद
कदापि—कभी
कदापि न—कभी नहीं
किञ्च—और
किन्तु—लेकिन
किम्—क्या, क्यों
किमुत—और कितना
किंवा—या
किल—सचमुच
कुतः—कहाँ से
कुत्र—कहाँ
कुत्रचित्—कहीं
कृतम्—बस, हो गया
केवलम्—सिर्फ
क्व—कहाँ
क्वचित्—कहीं
खलु—निश्चय करके
चिरम्—देर तक
जातु—कभी भी
झटिति—जल्दी
तत्—इसलिए
ततः—फिर
तत्र—वहाँ

कथम्—कैसे
कथञ्चन—, कथञ्चित्— } किसी प्रकार
कदा—कब
तथाहि—जैसे (विशद रूप से वर्णन)
तस्मात्—इसलिए
तर्हि—तब, तो
तावत्—तब-तक
तिरः—, तिर्यक्— } —तिर्छे
तूष्णीम्—चुपचाप
दिवा—दिन में
दिष्ट्या—सौभाग्य से
दूरम्—दूर
दोषा—रात को
द्राक्—शीघ्र, फौरन
ध्रुवम्—निश्चय ही
नक्तम्—रात को
न—नहीं
न चिरम्—परन्तु
नाना—हर तरह से
नाम—नाम वाला, नामक
निकषा—निकट
नीचैः—नीचे
नूनम्—निश्चित
नो—नहीं
परम्—फिर, परन्तु
परश्वः—परसों
परितः—चारों ओर
परेद्युः—दूसरे दिन (कल)

तथा—उस तरह
तदा—तब
तदानीम्—तब
पर्याप्तम्—काफी
पश्चात्—पीछे
पुनः—फिर
पुरतः, पुरः—, पुरस्तात्— } आगे
पुरा—पहले
पूर्वेद्युः—पहले दिन (कल)
पृथक्—अलग-अलग
प्रकामम्—यथेष्ट, बहुत
प्रतिदिनम्—हर रोज
प्रत्युत—उलटे
प्रसह्य—जबर्दस्ती
प्राक्—पहले
प्रातः—सबेरे
प्रायः—अक्सर
प्रेत्य—मरकर, दूसरी दुनिया में
बलात्—जबर्दस्ती
बहिः—बाहर
बहुधा—बहुत प्रकार से
भूयः—फिर-फिर, अधिक
भृशम्—बार-बार, अधिकाधिक
मनाक्—थोड़ा
मिथः—परस्पर
मिथ्या—झूठ
मुधा—बेकार
मुहुः—बार-बार
मृषा—झूठ, बेकार

पर्याप्तम्—काफी
यतः—क्योंकि
यत्र—जहाँ
यथा—जैसे
यथा तथा—जैसे-तैसे
यथा यथा—जैसे-जैसे
यदा—जब
यावत्—जब तक
युगपत्—साथ, इकबारगी
विना—विना
वृथा—बेकार
वै—निश्चय
शनैः—धीरे-धीरे
श्वः—कल (आने वाला दिन)
शश्वत्—सदा
सर्वथा—सब प्रकार से
सर्वदा—सब दिन
सह—साथ
सहसा—इकबारगी
सहितम्—साथ
सकृत्—एक वार
सततम्—बरावर, सब दिन
सदा—हमेशा
सद्यः—तुरन्त
यत्—जो, क्योंकि
सदा—सब दिन
सपदि—तुरन्त, शीघ्र
समन्तात्—चारों ओर
समम्—बराबर-बराबर
समया—निकट
समीपे, समीपम्—निकट
समीचीनम्—ठीक
सम्प्रति—इस समय, अभी
सम्मुखम्—सामने, मुँह दर मुहँ
सम्यक्—भली प्रकार
सर्वतः—चारों ओर
सर्वत्र—सब कहीं
साक्षात्—आँखों के सामने
सार्धम्—साथ
साकम्—साथ
साम्प्रतम्—अब, उचित
सायम्—शाम को
सुष्ठु—अच्छी तरह
स्वस्ति—आशीर्वाद
स्वयम्—अपने आप
हि—इसलिए
ह्यः—कल (पूर्वदिन)

१९७—समुच्चयबोधक शब्द

च—'और' शब्द का अर्थ संस्कृत में बहुधा 'च' शब्द से बतलाया जाता है, किन्तु जहाँ 'और' हिन्दी में जोड़े हुए शब्दों के बीच में आता है, जैसे—राम और

गोविन्द, वहाँ संस्कृत में 'च' शब्द के उपरान्त आता है, अथवा अलग-अलग दोनों के उपरान्त; जैसे—रामो गोविन्दश्च अथवा रामश्च गोविन्दश्च । 'च' को बहुधा अन्य समुच्चय-बोधक शब्दों के अनन्तर भी जोड़ देते हैं, जैसे—अथच, परञ्च, किञ्च ।

अथ, अथो, अथ च—वाक्य के आदि में आते हैं और बहुधा 'तब' का अर्थ बताते हैं । इसके पूर्व कुछ वाक्य आ चुके हुए होते हैं, अथवा प्रकरण में कुछ बीत चुका है ।

तु—तो; यह वाक्य के आदि में नहीं आता; जैसे, स तु गतः:—वह तो गया आदि ।

किन्तु, परन्तु, परञ्च—लेकिन ।

वा—या के अर्थ में च की तरह इसका भी प्रयोग प्रत्येक शब्द के उपरान्त अथवा दोनों के उपरान्त होता है; जैसे, रामो गोविन्दो वा अथवा रामो वा गोविन्दो वा—राम या गोविन्द ।

अथवा—इसका भी प्रयोग व की तरह उसी अर्थ में होता है ।

चेत्, यदि—यदि, अगर । चेत् का प्रयोग वाक्य के आरम्भ में नहीं होता ।

नोचेत्—नहीं तो,

यदि-र्तार्ह—यदि, तो

तत्—इसलिए ।

हि—क्योंकि

यावत्-तावत्—जब तक-तब तक ।

यदातदा—जब-तब ।

इति—वाक्य के अन्त में समाप्तिसूचक, जैसे—अहम् गच्छामि इति सोऽवदत् । इससे हिन्दी की 'कि' का बोध होता है । 'कि' का बोध यत् से भी होता है किन्तु यह वाक्य के आदि में आता है; जैसे—सोऽवदत् यदहं गच्छामि ।

१९८—मनोविकारसूचक अव्यय

इनका वाक्य से कोई सम्बन्ध नहीं रहता । मुख्य-मुख्य दिए जाते हैं ।

हन्त—हर्षसूचक, खेदसूचक ।

आः, हुम्, हम्—क्रोधसूचक।

हा, हाहा, हन्त—शोकसूचक।

वत—दयासूचक, खेदसूचक।

किम्, धिक्—धिक्कार-सूचक।

अङ्ग, अयि, अये, भोः—आदरसहित बुलाने के काम में आते हैं। अरे, रे, रेरे—अवज्ञा से बुलाने में।

अहो, ही—विस्मयसूचक।

१९९—प्रकीर्ण अव्यय

ऊपर कह आए हैं कि जो विभक्ति, लिङ्ग और वचन के अनुसार रूप-परिवर्तन को प्राप्त न हो, वही अव्यय है। इस गणना के अनुसार कई तद्धित-प्रत्ययान्त, कई कृदन्त तथा कुछ समासान्त शब्द अव्यय होते हैं।

तद्धितों[1] में—तसिल् प्रत्ययान्त, त्रल्-प्रत्ययान्त; दा-प्रत्ययान्त, दानीम्-प्रत्ययान्त, अधुना, कर्हि, यर्हि, सद्यः से लेकर ऊत्तरेद्युः तक (५।३।२२), थाल्-प्रत्ययान्त, दिक् कालवाचक, पुरः, पश्चात्, उत्तरा, उत्तरेण आदि, धा-प्रत्ययान्त (एकधा आदि), शस्-प्रत्ययान्त (बहुशः, अल्पशः आदि), च्वि-प्रत्ययान्त (भस्मीभूय, शुक्लीभूय आदि) सातिप्रत्ययान्त (अग्निसात्, ब्रह्मसात् आदि), कृत्वसुच्, प्रत्ययान्त (पंचकृत्वः, सप्तकृत्वः) तथा इसके अर्थ में आने वाले सुच् प्रत्ययान्त (द्विः, त्रिः)।

कृदन्तों[2] में—म् में अन्त होने वाले जैसे—णमुल्-प्रत्ययान्त (स्मारं स्मारम् आदि), तुमुन्-प्रत्ययान्त (गन्तुम्) तथा ए, ऐ, ओ, औ में अन्त होने वाले, जैसे—गन्तुम्, जीव से (तुमर्थ प्रत्यय अ से लगा कर), पिबध्यै (तुमर्थ शध्यै प्रत्यय); तथा[3] क्त्वा (और क्त्वार्थल्यप्), तोसुन् और कसुन् प्रत्ययों में अंत होने वाले शब्द; जैसे—कृत्वा, उदेतोः, विसृपः।

अव्ययीभाव[4] समास—अधिहरि, यथाशक्ति, अनुविष्णु इत्यादि।

---

१ तद्धितश्चासर्वविभक्तिः।१।१८।

२ कृन्मेजन्तः १।१कृ३९।

३ क्त्वातोसुन्कसुनः।१।१।४०।.

४ अव्यययीभावश्च।१।१।४१।

१—परिशेष

छन्द

संस्कृत काव्य गद्य और पद्य में होता है। गद्य में पदों का विभाग पादों में नहीं होता।

प्रत्येक पद्य में चार "पाद" होते हैं। पादों की व्यवस्था या तो अक्षरों (Syllable) से या मात्राओं (Syllabic instants) से होती है।

(क) 'अक्षर' शब्द के उस भाग को कहते हैं, जो एक ही बार के प्रयत्न में स्वच्छन्दता-पूर्वक उच्चारण किया जा सके। एक स्वर के साथ जो व्यञ्जन लगे होते हैं, उन्हें मिलाकर वह स्वर अक्षर कहलाता है; जैसे—प्र, अप्, अञ्ज् आदि। यदि उसके साथ कोई व्यञ्जन न भी हो, तो अकेला ही वह अक्षर कहलाएगा; जैसे—अपाद शब्द में अ।

(ख) मात्रा समय के उस परिमाण को कहते हैं, जो कि एक ह्रस्व स्वर के उच्चारण करने में लगता है। इसलिए ह्रस्व स्वर एक मात्रा वाला है। दीर्घ स्वर के उच्चारण करने में ह्रस्व से दूना समय लगता है, इसलिए उसमें दो मात्राएँ होती हैं।

अक्षर दो प्रकार के होते हैं

(१) लघु, (२) गुरु। "लघु" अक्षर उसे कहते हैं, जिसमें स्वर ह्रस्व हो; "गुरु" अक्षर उसे कहते हैं, जिसमें स्वर दीर्घ हो।

ह्रस्व स्वर

अ, इ, उ, ऋ, और लृ ह्रस्व स्वर हैं।

दीर्घ स्वर

आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ और औ दीर्घ स्वर होते हैं।

'जब किसी ह्रस्व स्वर के उपरान्त अनुस्वार या विसर्ग या संयुक्ताक्षर आवे तो उस ह्रस्व को छन्द-शास्त्र में गुरु मानते हैं; जैसे—"गन्ध" में "ग" गुरु है क्योंकि "ग" के उपरान्त संयुक्ताक्षर "न्ध" आ जाता है, इसी प्रकार "संशय" में "सं" गुरु है, क्योंकि "स" अनुस्वार-सहित है, "रामः" में "मः" गुरु है, क्योंकि "मः" विसर्ग सहित है।

यदि किसी पद्य में पाद के अन्त वाले अक्षर को गुरु होना चाहिये, लेकिन वह लघु है तो उसे उस स्थान पर गुरु मान लेते हैं;

किसी पद्य का उच्चारण करते समय जहाँ साँस लेने के लिए क्षणभर रुक जाते हैं, वहाँ पद्य की 'यति' होती है। ये यतियाँ व्यवस्थित हैं। जहाँ यति होती हो वहाँ उचित यही है कि शब्द का अन्त होना चाहिए, मध्य नहीं।

छन्द दो प्रकार का होता है—(१) वृत्त और (२) जाति वृत्त;

जिस पद्य की रचना अक्षरों के हिसाब से होती है, उस वृत्त कहते हैं। सुविधा के लिए तीन-तीन अक्षरों के समूह को गण कहते हैं; जैसे—

'कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः" इस पद में (१) "कश्चित्का", (२) "न्ताविर", (३) "हगुरु", (४) 'णास्वाधि", (५) "कारात्प्र", ये पाँच गण हैं। यहाँ पर (१) में "क" एक अक्षर है, "श्चि" दूसरा अक्षर है, "त्का" तीसरा अक्षर है, इस प्रकार तीन अक्षर का एक गण (कश्चित्का) हुआ। इसी प्रकार (२ में) "न्ता" एक अक्षर है, "वि" दूसरा अक्षर है, "र" तीसरा अक्षर है, फिर तीन अक्षरों का एक गण (न्ताविर) हुआ।

गण आठ होते हैं—

(१) भगण (२) जगण (३) सगण (४) यगण
(५) रगण (६) तगण (७) मगण (८) भगण

आदिमध्यावसानेषु भजसा यान्ति गौरवम्।
यरता लाघवं यान्ति मनौ तु गुरुलाघवम्॥

---

१ सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत्।
वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा॥

(१) भगण उसे कहते हैं, जिसमें पहला अक्षर गुरु तथा द्वितीय और तृतीय लघु हों।

(२) जगण में मध्य अक्षर गुरु होता है, शेष पहला और तीसरा लघु होते हैं।

(३) सगण में तीसरा अक्षर गुरु होता है और शेष पहला और दूसरा लघु होते हैं।

(४) यगण में केवल पहला अक्षर लघु होता है, शेष दो गुरु।

(५) रगण में दूसरा अक्षर लघु होता है, शेष दो गुरु।

(६) तगण में केवल तीसरा अक्षर लघु होता है, शेष दो गुरु।

(७) भगण में तीनों अक्षर गुरु होते हैं।

(८) नगण में तीनों अक्षर लघु होते हैं।

लघु का चिह्न ।

गुरु का चिह्न ऽ

आठों गण चिह्नों द्वारा नीचे दिखाए जाते हैं—

(१) भगण	ऽ । ।
(२) जगण	। ऽ ।
(३) सगण	। । ऽ
(४) यगण	। ऽ ऽ
(५) रगण	ऽ । ऽ
(६) तगण	ऽ ऽ ।
(७) मगण	ऽ ऽ ऽ
(८) नगण	। । ।

(२) जाति (अथवा मात्रिक)

जिस छन्द की व्यवस्था मात्राओं के हिसाब से की जाती है, उसे जाति कहते हैं। सुविधा के लिए कभी-कभी मात्राओं का भी गणों में विभाग करते हैं। किन्तु मात्रिक छन्द का प्रत्येक गण चार मात्राओं का होता है तीन वर्णों का नहीं। जैसे—

"येनामन्दमरन्दे दलदरविन्दे दिनान्यनायिषत"—इस पद्य में "येना", "मन्दम्", "रन्दे" गण हैं; क्योंकि "ये" में दो मात्राएँ हैं और "ना" में दो मात्राएँ हैं, इस प्रकार चार मात्राएँ हुईं; इसलिए इन चार मात्राओं का एक गण (येना) हो गया। यहाँ पर इस बात को ध्यान से देखना चाहिए कि अगर यह पद्य वृत्त होता तो "येना" एक गण न माना जाता, प्रत्युत वह "येनाम" एक गण होता।

मात्रागण सब मिल कर पाँच होते हैं--

(१) मगण	ऽऽ
(२) सगण	।।ऽ
(३) जगण	।ऽ।
(४) भगण	ऽ।।
(५) नगण	।।।।

वृत्त तीन प्रकार के होते हैं--

(१) समवृत्त—वह होता है, जिस पद्य के चारों चरण (अथवा पाद) एक से होते हैं।

(२) अर्धसमवृत्त—वह होता है, जिस पद्य के प्रथम तथा तृतीय चरण एक तरह के और द्वितीय तथा चतुर्थ दूसरी तरह के होते हैं।

(३) विषम—वह होता है, जिस पद्य के चारों चरण एक दूसरे से भिन्न होते हैं।

संस्कृत काव्य में बहुधा समवृत्त छन्दों का अधिक प्रयोग मिलता है।

समवृत्त

समवृत्त कई प्रकार के होते हैं। किसी के प्रत्येक चरण में १ अक्षर (Syllable) होता है, किसी के २, किसी के ३ और किसी के ४। इसी प्रकार २६ अक्षर तक चला जाता है। यहाँ पर केवल थोड़े से ऐसे समवृत्त दिखाए जायेंगे जो बहुधा साहित्यिक प्रयोग में आते हैं।

८ अक्षर वाले समवृत्त

आठ अक्षर वाले समवृत्तों में से एक समवृत्त "अनुष्टुप्" है, इसे "श्लोक" भी कहते हैं। इसका लक्षण यह है—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुःपादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ।।

अर्थात् "श्लोक" के सभी चरणों में छठवाँ अक्षर (Syllable) गुरु तथा पाँचवाँ लघु होता है । सातवाँ अक्षर दूसरे तथा चौथे चरण में ह्रस्व होता है और पहले और तीसरे में दीर्घ होता है । लक्षण वाला श्लोक ही उदाहरण भी है ।

११ अक्षर वाले समवृत्त

(१) इन्द्रवज्रा

स्यादिन्द्रवंज्रा यदि तौ जगौ गः

इन्द्रवज्रा के प्रत्येक पाद में दो तगण, एक जगण, फिर दो गुरु अक्षर होते हैं । उदाहरणार्थ लक्षण ही को लीजिए—

तगण	तगण	जगण	ग ग
S S ।	S S ।	। S ।	S S
स्या दि न्द्रि	व ज्रा य	दि तौ ज	गौ गः

(२) उपेन्द्रवज्रा

उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ

उपेन्द्रवज्रा के प्रत्येक पाद में जगण, तगण, जगण, तथा दो गुरु होते हैं ।

जगण	तगण	जगण	ग ग
। S ।	S S ।	। S ।	S S
उ पे न्द्र	व ज्रा ज	त जा स्त	तो गौ

(३) उपजाति

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ
पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।

उपजाति उस वृत्त को कहते हैं जो इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा के मिश्रण से बनता है । उदाहरणार्थ लक्षण ही को लीजिए—

जगण	तगण	जगण	ग ग
।ऽ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
अनन्त	रो दी रि	त ल क्ष्म	भा जौ
तगण	तगण	जगण	ग ग
ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
पा दौ य	दी या वु	प जा ट	य स्ता:

इसमें प्रथम चरण उपेन्द्रवज्रा का है और द्वितीय इन्द्रवज्रा का। कभी-कभी प्रथम तथा तृतीय चरण इन्द्रवज्रा के रहते हैं, द्वितीय तथा चतुर्थ उपेन्द्र-वज्रा के।

१२ अक्षर वाले समवृत्त

(१) द्रुतविलम्बित

द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ

द्रुतविलम्बित के प्रत्येक पाद में नगण, भगण, भगण, और रगण होते हैं; जैसे—

नगण	भगण	भगण	रगण
। । ।	ऽ । ।	ऽ । ।	ऽ । ऽ
द्रु त वि	लम्बित	मा ह न	भौ भ रौ

(२) भुजङ्गप्रयात

भुजङ्गप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः

भुजङ्गप्रयात के प्रत्येक पाद में चार यगण होते हैं; जैसे—

यगण	यगण	यगण	यगण
। ऽ ऽ	। ऽ ऽ	। ऽ ऽ	। ऽ ऽ
भु ज ङ्ग	प्र या तं	च तु र्भि	र्य का रैः

१४ अक्षर वाले समवृत्त

वसन्ततिलका

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः

वसन्ततिलका के प्रत्येक पाद में तगण, भगण, जगण, जगण और दो गुरु होते हैं; जैसे—

तगण	भगण	जगण	जगण	ग ग
ऽ ऽ ।	ऽ । ।	। ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
उ क्ता व	स न्त ति	ल का त	भ जा ज	गौ गः

१५ अक्षर वाले समवृत्त

मालिनी

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः

मालिनी के प्रत्येक पाद में नगण, नगण, मगण, यगण तथा यगण होते हैं और आठवें तथा सातवें अक्षर के बाद यति होती है; जैसे—

नगण	नगण	मगण	यगण	यगण
। । ।	। । ।	ऽ ऽ ऽ	। ऽ ऽ	। ऽ ऽ
न न म	य य यु	ते यं, मा	लि नी भो	गि लो कैः

१७ अक्षर वाले समवृत्त

(१) मन्दाक्रान्ता

मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्

मन्दाक्रान्ता के प्रत्येक पाद में मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और दो गुरु, अक्षर होते हैं।

चार अक्षर के उपरान्त, तदनन्तर छः अक्षर के उपरान्त, तदनन्तर फिर सात अक्षर के उपरान्त यति होती है; जैसे—

मगण	भगण	नगण	तगण	तगण	ग	ग
ऽ ऽ ऽ	ऽ । ।	। । ।	ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	ऽ	ऽ
क श्चि त्का	न्ता, वि र	ह गु रु	णा, स्वा धि	का रा त्प्र	म	त्तः

यहाँ पर पहिली यति "न्ता" के उपरान्त दूसरी "णा" के उपरान्त, तीसरी अन्त में "त्तः" के उपरान्त है। इसी प्रकार चारों चरणों में यति होगी।

(२) शिखरिणी

रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी

शिखरिणी के प्रत्येक पाद में यगण, मगण, नगण, सगण, भगण तदनन्तर एक लघु और एक गुरु होता है। छः अक्षर के उपरान्त तदनन्तर फिर ग्यारह अक्षर के उपरान्त यदि होती है; जैसे—

यगण	मगण	नगण
। ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	। । ।
स मृ द्धं	सौ भा ग्यं,	स क ल
सगण	भगण	ल ग
। । ऽ	ऽ । ।	। ऽ
व सु धा	याः कि म	पि तन्,

यहाँ पर पहिली यति छठे अक्षर 'ग्य" के उपरान्त और दूसरी यति ग्यारहवें अक्षर "तन्" के उपरान्त है। पूरा श्लोक यों है—

समृद्धं सौभाग्यं सकलवसुधाया किमपि तन्
महैश्वर्यंलीलाजनितजगतः खण्डपरशोः।
श्रुतीनां सर्वस्वं सुकृतमथ मूर्तं सुमनसां,
सुधासौन्दर्यं ते सलिलमशिवं नः शमयतु॥

१९ अक्षर वाले समवृत्त

शार्दूलविक्रीडितम्

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।

शार्दूलविक्रीडित छन्द के प्रत्येक पाद में मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण फिर एक गुरु अक्षर होता है। बारहवें अक्षर के उपरान्त पहिली यति, तदनन्तर सातवें अक्षर के उपरान्त दूसरी यति होती है; जैसे—

मगण	सगण	जगण	सगण
ऽ ऽ ऽ	। । ऽ	। ऽ ।	। । ऽ
पा तुं न	प्र थ मं	व्य व स्य	ति ज लं,
तगण	तगण	ग	
ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	ऽ	
यु ष्मा स्व	पी ते षु	या,	

यहाँ पर पहिली यति वारहवें अक्षर "ल" के उपरान्त तथा दूसरी यति फिर सातवें अक्षर "या" के उपरान्त है। पूरा श्लोक यों है—

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युस्मास्वपीतेषु या,
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः,
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥

२१ अक्षर वाले समवृत्त

स्रग्धरा

म्रभ्नैर्यानां त्रयेण, त्रिमुनियतियुता, स्रग्धरा कीर्तितेयम्

स्रग्धरा के प्रत्येक पाद में मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, यगण, यगण होते हैं। इसमें सात-सात अक्षरों पर यति होती है; जैसे—

मगण	रगण	भगण	नगण
ऽ ऽ ऽ	ऽ । ऽ	ऽ । ।	। । ।
व्या को षे	न्दी व रा	मा, क न	क क ष
	यगण	यगण	यगण
	। ऽ ऽ	। ऽ ऽ	। ऽ ऽ
	ल स, त्पी	त वा साः	सु हा सा,

यहाँ पर पहिली यति सातवें अक्षर "भा" के उपरान्त तदनन्तर दूसरी यति फिर सातवें अक्षर "स" के उपरान्त, तीसरी यति फिर सातवें अक्षर "सा" के उपरान्त है। पूरा श्लोक यों है—

व्याकोषेन्दीवरामा कनककषलसत्पीतवासाः सुहासा,
वर्हैरुच्चन्द्रकान्तैर्वलयितचिकुरा चारुकर्णावतंसा ।
अंसव्यासक्तवंशीध्वनिसुखितजगद्वल्लवीभिर्लसन्ती-
मूर्तिर्गोपस्य विष्णोरवतु जगति नः स्रग्धरा हारिहारा ।।

अर्धसमवृत्त

पुष्पिताग्रा

अयुजि नयुगरेफतो यकारो
युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा

पुष्पिताग्रा के प्रथम तथा तृतीय चरण में नगण, नगण, रगण, यगण, (इस प्रकार १२ अक्षर) और द्वितीय तथा चतुर्थ में नगण, जगण, जगण, रगण और एक गुरु (इस प्रकार १३ अक्षर) होते हैं ।

नगण	नगण	रगण	रगण	
I I I	I I I	S I S	I S S	प्रथम तथा तृतीय चरण

नगण	जगण	जगण	रगण	ग	
I I I	I S I	I S I	S I S	S	द्वितीय तथा चतुर्थ चरण

जैसे—

I	I	I	I	I	I	I	I	I	I	I	S	
अ	थ	म	द	न	व	धू	रु	प	प्ल	वा	न्तं	
I	I	I	I	S	I	I	S	I	S	I	S	
व्य	स	न	कृ	शा	प	रि	पा	ल	या	म्ब	भू	व

पूरा श्लोक यों है—

अथ मदनवधूरुपप्लवान्तं
व्यसनकृशा परिपालयाम्बभूव ।
शशिन इव दिवातनस्य लेखा
किरणपरिक्षयधूसरा प्रदोषम् ॥

विषमवृत्त

विषमवृत्त साधारणतः साहित्य में बहुत कम आते हैं। उदाहरणार्थ केवल उद्गता का लक्षण देते हैं—

। । ऽ	। ऽ ।	। । ऽ	।	
प्रथमे,	सजौय	दिसलौ	च	
। । ।	। । ऽ	। ऽ ।	ऽ	
नसज,	गुरुका	ण्यनन्त	रम्	
ऽ । ।	। । ।	। ऽ ।	। ऽ	
यद्यथ,	भनज,	लगास्यु,	रथो	
। । ऽ	। ऽ ।	। ऽ ऽ	ऽ	ऽ
सजसा,	जगौच,	भवती,	यमुद्ग,	ता

जाति

जसा कि पहले कह आये हैं, "जाति" छन्द उसे कहते हैं, जिसमें के गण मात्रा (Syllabic instants) के हिसाब से व्यवस्थित किए जाते हैं। "जाति" का सब से साधारण भेद "आर्या" है, जो नव प्रकार की होती है—

पथ्या विपुला चपला मुखचपला जघनचला च ।
गीत्युपगीत्युद्गीतय आर्यागीतिश्च नवधार्या ॥

आर्या

यस्याः पादे प्रथमे, द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये, चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥

अर्थात् आर्या के प्रथम तथा तृतीय चरण में १२ मात्रायें होती हैं; द्वितीय में १८ और चतुर्थ में १५ मात्रायें होती हैं। उदाहरणार्थ लक्षण का ही पद्य द्रष्टव्य है। आर्या भी विषम वृत्तों में ही गिना जायगा।

नोट—छन्दों के अधिक ज्ञान के लिए श्रुतबोध, वृत्तरत्नाकर अथवा पिङ्गल-मुनि-रचित छन्द-सूत्र शास्त्र पढ़ना चाहिए।

२—परिशेष

रोमन अक्षरों में संस्कृत लिखने की विधि

संस्कृत भाषा को यूरोपीय विद्वान् बड़े चाव से पढ़ते हैं। केवल मनोरंजन के लिये ही नहीं, बहुत सी बातों में उन्होंने संस्कृत ग्रन्थों से हम भारतीयों की अपेक्षा अधिक लाभ उठाया है। इनके आधार पर भारती सभ्यता और संस्कृति पर उपादेय ग्रन्थ भी लिखे हैं, जिनसे हम लोगों का भी कुछ उपकार हो सकता है। बहुधा संस्कृत शब्दों को वे रोमन अक्षरों में लिखते हैं। हम लोगों को भी उस विधि को जान रखना आवश्यक है। पुरातत्त्व का अन्वेषण करते समय इस ज्ञान का पग-पग पर काम पड़ता है।

a	á	i	í	u	ú	r	ṛ	í	e	o	ai	au
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	ॡ	ए	ओ	ऐ	औ

अनुनासिक (स्वर के ऊपर) अथवा अनुस्वार— ṁ अथवा ṃ

विसर्ग— ḥ

क्	ख्	ग्	घ्	ङ
k	kh	g	gh	ñ
च्	छ्	ज्	झ्	ञ्
c	ch	j	jh	ñ
ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्
ṭ	ṭh	ḍ	dh	ṇ
त्	थ्	द्	ध्	न्
t	th	d	dh	ṇ

प्	फ्	ब्	भ्	म्
p	ph	b	bh	m
य्	र्	ल्	व्	
y	r	l	v	
श्	ष्	स्	ह्	
ś	ṣ	s	h	

कभी-गभी ऋ, ॠ, लृ को क्रम से ri ri lri; च्, छ् को ch, chh श्, ष् को c, sh भी लिखते हैं ।

इस प्रकार इन अक्षरों को जोड़ कर शब्द लिखे जाते हैं; उदाहरणार्थ—

रश्मि	rasmi
प्रद्योत	pradyota
क्षत्रिय	kṣatriya
उदीर्णधन्वा	udirṇadhanva
क्लृप्त	k í p t a
संस्कृतिः	samskṛitiḥ

———

SRI A...
LIBRARY
PONDICHERRY (India)

३—परिशेष

अकारादि क्रम धातुओं की सूची (कर्तृवाच्य)

धातु	पृ० सं०
अ	
अद्	३५०
अस्	३५२
अर्च्	४३५
अर्ज्	४३६
अर्थ	४३६
आ	
आप्	३९३
आस्	३५२
इ	
इङ् (अधिपूर्वक)	३५४
इण् (इ)	३५६
इष्	४०३
क	
कथ्	४३६
कम्प्	३३६
काश्	३३७
काङ्क्ष्	३३७
कुप्	३८६
कृ	४२१
कृत्	४०५
कृष्	४०५
कॄ	४०५
क्रन्द्	३३५
क्रम्	३८८
क्री	४२३
क्रीड्	३३५
क्रुध्	३८९
क्रुश्	३३५
क्लम्	३३६
क्लिश्	३८९
क्षम् (भ्वादि) ...	३३६
क्षम् (दिवादि) ...	३८९
क्षल्	४३७
क्षुध्	३९०
ख	
खन्	३३७
खिद्	३९०
ग	
गम्	३१३
गण्	४३७
गॄ	४६८
ग्रह्	४२६
ग्लै	३३७
च	
चल	३३७

धातु	पृ० सं०
चि	३९४
चिति	४३७
चुर	४३२
छ	
छिद	४१२
ज	
जन्	३८५
जि	३१६
ज्ञा	४२८
ज्वल	३३८
त	
तड्	४३७
तन्	४१८
तुद्	४०१
तुल	४३९
तुष्	३९०
त्यज्	३३८
त्रुट	४०५
द	
दण्ड	४३८
दम्	३९०
दह	३३८
दा	३७३
दिव्	३८४
दुष्	३९०
दृश्	३१७
द्रुह्	३९०
ध	
धा	३७६
धृ	३१९
ध्यै	३३८
न	
नी	३२१
प	
पच्	३३९
पठ्	३२४
पा (पिब्)	३२५
प्रच्छ	४०६
प्री	४३८
फ	
फल्	३४०
फुल्ल्	३४०
ब	
बन्ध्	४३०
बाध्	३४०
बुध्	३४०
ब्रू	३५८
भ	
भज्	३४०
भक्ष्	४३८
भञ्ज्	४१४
भर्त्स्	४३८
भाष्	३४०
भिक्ष्	३४१

धातु	पृ० सं०
भी	३८०
भुज्	४१५
भू	३१२
भूष् (भ्वादि)	३४१
भूष् (चुरादि)	४३९
भृ	३९१
भ्रम् (भ्वादि)	३४२
भ्रम् (दिवादि)	३९१
भ्रंश्	३४१
म	
मंत्रि	४३९
मथ्	३४२
मन्	३९२
मन्थ्	३४२
मान्	४३९
मार्ग्	४३९
मार्ज्	४३९
मिल्	४०६
मुच्	४०६, ४४२
मुद्	३४२
य	
यज्	३४२
यत्	३४३
या	३६१
याच्	३४३
युध्	३९२
र	
रच्	४४०
रभ्	३४३
रम्	३४४
रुद्	३६३
रुध्	४०९
रुह्	३४४
ल	
लभ्	३२७
लिख्	४०७
लिप्	४०७
व	
आस्	३५२
वन्द्	३४४
वप्	३४५
वस्	३४५
वञ्च्	४४०
वर्ण्	४४०
वाञ्छ्	३४६
विद्	३८७
विश्	४०८
वृ	३९७
वृज्	४४०
वृत्	३२८
वृध्	३४६
वृष्	३४६
व्रज्	३४७
व्यध्	३९२
श	
शक्	४००

धातु		पृ० सं०	धातु		पृ० सं०
शङ्क्	... ...	३४७	स्वाद्	... ...	३४९
शंस्	... ...	३४७	स्वप्	... ...	३७०
शास्	... ...	३६५		ह	
शिक्ष्	... ...	३४७	हन्	... ...	३७१
शी	... ...	३६६	हा	... ...	३८२
शुच्	... ...	३४७	हृष्	... ...	३९३
शुभ्	... ...	३४७	ह्लाद्	... ...	३४९
शुध्	... ...	३९२	कृ	कर्मवाच्य	४५३
श्रि	... ...	३३०	ची	... ...	४४८
श्रु	... ...	३३२	चुर्	... ...	४५६
श्वस्	... ...	३७२	जि	... ...	४५०
	स		ज्ञा	... ...	४४६
सद्	... ...	४०८	दा	... ...	४४३
सह्	... ...	३४७	धृ	... ...	४५५
सिच्	... ...	४०८	ध्यै	... ...	४४८
सिव्	... ...	३९३	नी	... ...	४५१
सिध्	... ...	३९३	पठ्	... ...	४४२
सृ	... ...	३४८	पा	... ...	४४५
सृज्	... ...	४०८	भृ	... ...	४५५
सेव्	... ...	३४८	मुच्	... ...	४४२
स्था	... ...	३३४	वच्	... ...	४५६
स्ना	... ...	३६८	वद्	... ...	४५६
स्पृश्	... ...	४०८	वप्	... ...	४५६
स्पृह्	... ...	४४०	वस्	... ...	४५६
स्फुट्	... ...	४०८	वह्	... ...	४५६
स्फुर्	... ...	४०९	वृ	... ...	४५६
स्मृ	... ...	३४८	श्रि	... ...	४५०
स्वद्	... ...	३४९	हृ	... ...	४५६